हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल
एम० ए०, डी० फिल्०

साहित्य भवन प्रा० लि०
इलाहाबाद

प्रकाशक :
साहित्य भवन लिमिटेड
प्रयाग

प्रथम सस्करण १६५३ ईसवी
द्वितीय सस्करण १६६० ईसवी

दस रुपया

मुद्रक—द्वारका नाथ भार्गव,
भार्गव प्रेस, १ बाई-का बाग, इलाहाबाद-

हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास

माता-पिता की
महानता और
आरती के संतोष को

परिचय

हिन्दी कहानी-साहित्य अन्य साहित्यांगो की अपेक्षा अधिक गतिशील है। मासिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं के नियमित प्रकाशन ने इस साहित्य के विकास मे बहुत अधिक योग दिया है। फलस्वरूप कहानी-साहित्य मे सर्वाधिक प्रयोग हुए हे और कहानी किसी निर्झरिणी की गतिशीलता लेकर विविध दिशाओ मे प्रवाहित हुई हैं।

इस वेग मे मर्यादा रहनी चाहिए। बरसात मे किसी नदी के किनारे कमजोर हो तो गाँव और नगर मे पानी भर जाता है। इसलिए वेग को विस्तार देने की आवश्यकता है। प्रवाह मे गभीरता आनी चाहिए। मनोरजन की लहरे उठाने वाला कहानी-साहित्य, तट को तोडकर बहने वाला साहित्य नही है। उसमे जीवन की गहराई है—जीवन का सत्य है। दिग्वधू की घनश्याम केश-राशि मे सजा हुआ इन्द्रधनुष बालको का कुतूहल ही नही है, वह प्रकृति का सत्य भी है। कितनी प्रकाश-किरणो ने जीवन की बूँदो के हृदय मे प्रवेश कर इस सौन्दर्य-विधि मे अपना आत्म-समर्पण किया है।

कहानी के इस सत्य को समझने की आवश्यकता है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल स्वय एक प्रसिद्ध कहानी-लेखक और उपन्यासकार हैं। इन्होने सफलता के साथ अपना खोज-कार्य किया, जिस पर इन्हे डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त हुई, और इस दिशा मे इनका कार्य श्रेष्ठ समझा गया। मुझे प्रसन्नता है कि इनका यह कार्य अब साहित्य-जगत् मे इतना प्रतिष्ठित हुआ है। मै आशा करता हूँ कि इस ग्रथ मे साहित्य-जगत् का हित होगा और लेखक का भावी पथ अधिक प्रशस्त बनेगा।

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय

डॉ० रामकुमार वर्मा

प्रथम संस्करण की भूमिका

व्यापकता और प्रसार की दृष्टि से कहानी-कला का स्थान आधुनिक हिन्दी साहित्य के समस्त प्रकारो मे सर्वोपरि है। इस कला को वर्तमान युग की प्रतिनिधि धारा कही जाय तो कोई अत्युक्ति नही। कहानी अपने साधारण रूप, अर्थात् कथा, लघुकथा, आख्यायिका और आख्यानक आदि रूपो मे प्राचीन भारतीय साहित्य का शृंगार है। इस की परम्परा वैदिक साहित्य से आरम्भ हो कर बौद्ध जातक, जैन कथाओ, संस्कृत कथा साहित्य, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के चारणकाल और मध्य-युग तक आती है। कहानी के इस भारतीय स्रोत ने कदाचित् किसी समय समूचे संसार को प्रेरणा दी है।

हिन्दी कहानी-कला अपने विशिष्ट रूप मे उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्द्ध से आरम्भ होती है और आधुनिक हिन्दी कहानी का उत्थान वास्तव मे बीसवी सदी के प्रथम दशक मे हुआ। इस तरह हिंदी कहानी शिल्पविधि के विकास और उद्गम सूत्र का अध्ययन अत्यन्त व्यापक है और यह सूक्ष्म अन्वेषक दृष्टि की अपेक्षा करता है। अध्ययन की पृष्ठभूमि में प्राचीन भारतीय कथा-परम्परा का वैज्ञानिक विवेचन अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि उसी के उपरान्त हिन्दी कहानी की शिल्प-विधि के आविर्भाव, विकास आदि युगो के स्वतंत्र अध्ययन की स्थिति आती है।

उक्त दृष्टिकोण से आज तक हिन्दी कहानी-कला पर हिन्दी जगत् मे कोई खोजपूर्ण आलोचना-ग्रंथ नही है। अब तक इस दिशा मे यथासंभव जितनी आलोचनाएं हुई है, वे दो कोटियो में आती है। प्रथम, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास' के अध्ययन क्रम मे—इस क्षेत्र मे डा० श्रीकृष्णलाल का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' निबंध (ग्रंथ) उल्लेखनीय है। दूसरी कोटि मे अनेक कहानी-संग्रहो की भूमिकाएं आती हैं। इन दो कोटियों के उपरात, किसी एक विशिष्ट कहानीकार के सपूर्ण व्यक्तित्व को लेकर उस पर एक स्वतंत्र आलोचना ग्रंथ लिखने की शैली आती है। इस दिशा में डा० सत्येन्द्र लिखित 'प्रेमचंद-उनकी कहानी कला' एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

प्रस्तुत ग्रंथ प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत डी० फिल्० थीसिस—'इवोयूलशन ऑव् द टेक्नीक ऑव् हिन्दी शार्ट स्टोरीज एंड इट्स सोर्सेज़'—(हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास और उद्गम सूत्र) के रूप में लिखा गया था। पुस्तक रूप देने में कई स्थान पर काट-छाँट हुई है। उपलब्ध

सामग्री का यथावश्यक-वैज्ञानिक प्रयोग और उसकी परख में सर्वथा मौलिक दृष्टिकोण रखने का प्रयत्न किया गया है। विषय-विस्तार और उस की सीमा मे अध्ययन की वे सारी मान्यताएँ उपस्थित की गयी है, जिन का संकेत ऊपर कि ा गया है।

खोज का क्रम-सूत्र, कहानी-कला की प्राचीन तथा हिंदी कहानी साहित्य की प्रारम्भिक दिशाओ से लेकर इन की आधुनिकतम प्रवृत्तियो के आकलन तक आया है। विकास-क्रमो की समुचित पीठिका और उन की मूल प्रवृत्तियो का वैज्ञानिक अध्ययन, प्रस्तुत ग्रंथ की मूल विशेषता है। यही कारण है कि हिंदी कहानी-साहित्य के अनेक महत्वपूर्ण कहानीकारों को अध्ययन-सीमा में न बाँध पाना अपनी सहज विवशता हो गयी है। इस मे उन के व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रति किसी तरह की अवज्ञा नही है। यहाँ कहानीकारो के नाम गिनाना अभीष्ट न था, वरन् हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि के वैज्ञानिक विकास-क्रम और उन की प्रवृत्तियों का विवेचन हमारा लक्ष्य था।

'थीसिस' के प्रस्तुत विषय को श्रद्धेय डा० धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए० डी० लिट्० (पेरिस), अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय ने विशेष कृपा करके मुझे दिया, मै इस के लिए उनका सदैव आभारी हूँ। थीसिस का पाडित्यपूर्ण निर्देशन गुरुवर डा० रामकुमार वर्मा एम०, ए० पी० एच० डी० ने किया है। अपने व्यस्त क्षणो मे उन्होने जितनी तत्परता असीम स्नेह और बहुमूल्य परामर्शों से मुझे विषय के वैज्ञानिक अध्ययन मे उत्साहित किया है, उस के लिए मै उन का अत्यन्त कृतज्ञ एवं ऋणी हूँ। अध्ययन-क्रम से हिन्दी के प्राय समस्त आधुनिक कहानीकार विशेषकर अज्ञेय' और इलाचन्द्र जोशी ने अपने परामर्शों और अनेक सूचनाओ से मेरी सहायता की है।

३, प्रयाग आश्रम
इलाहाबाद
गाँधी जयंती, १९५३

लक्ष्मीनारायण लाल

द्वितीय संस्करण की भूमिका

गत दशक में हिन्दी कहानियो के रूप और धरातल मे अपूर्व विकास हुआ है। इस शोध-ग्रंथ को समाप्त करते समय, आज से प्राय सात वर्ष पूर्व, उस समय पत्र-प्रत्रिकाओ मे प्रकाशित कहानियो और कतिपय प्रतिनिधि कहानीकारो के कहानी कला विषयक मानदंडो से यह लग रहा था कि आगे कहानो के रूप विधान और शिल्पविधान मे सरलता के स्थान पर कला का क्लिष्ट आग्रह आने वाला है। लग रहा था कि कहानी का स्वर और व्यक्तित्व उत्तरोत्तर बौद्धिक होगा। उस समय पश्चिम के कलाप्रयोग और वहाँ की अन्यान्य कहानियो के प्रभाव से हिन्दी कहानियो के रूप से बहुत सतोष की आशा नही बध रही थी। जिस प्रकार से कहानियो मे कथा तत्त्व का ह्रास हो रहा था, उसका पूर्णचित्र इस सस्करण के परिशिष्ट (क) के रूप मे दिया जा रहा है उससे उक्त सत्य सर्वथा स्पष्ट हो जायगा।

पर उन्ही वर्षों की संक्रान्ति अवस्था से जिस रूप और धरातल से हिन्दी कहानी ने एक नया मोड लिया है, उससे तद्विषयक सभी निराशा धुल गयी। गत पाँच-छ. वर्षो मे जिन नये कहानीकारो की रचनाये हिन्दी कहानी साहित्य को मिली और उनसे कहानी को जो नयी दिशा, और गति प्राप्त हुई, वह अपने आप मे बहुत ही मूल्यवान, उपलब्धिपूर्ण और आशाजनक है। इसका स्वर विशुद्ध भारतीय है, जिसका अपना ऐतिहासिक दाय है, जो परम्परा पुष्ट, नयी रूढ़ियो की रूढ़ि है। इसका विस्तृत आकलन निश्चय ही आगे किया जा सकेगा। पर परिशिष्ठ (ख) मे नयी कहानियो की एक तात्त्विक समीक्षा जोडकर इस शोधग्रंथ को, जिसमे इसकी समसामयिकता भी आयी है, इसे मैने अति आधुनिक करने का प्रयत्न किया है।

१७, तुलाराम बाग
इलाहाबाद—६
१० जनवरी १९६१

लक्ष्मीनारायण लाल

विषय-सूची

विषय-प्रवेश

जब भाव और अनुभूति की प्रेरणा मनुष्य के मन और मस्तिष्क मे घनाभूत होती है, तब वह उस की अभिव्यक्ति मे संलग्न होता है। अभिव्यक्ति के लिए वह कभी वाणी का सहारा लेता है, कभी आकृति का, लेकिन वह अपने भाव-प्रकाश मे अधिक से अधिक रोचकता, आकर्षण और प्रभविष्णुता के लिए अन्यान्य रूप विधानो की योजना करता है। यही रूप विधान-योजना को प्रवृत्ति कहानी कला को जन्म देती है और उस के विभिन्न रूप कहानो की शिल्पविधि के प्रेरक होते है।

सामग्री

कथा-कहानी कहने की प्रवृत्ति उतनी ही पुरानी है, जितनी की मानवता। जीवन मे क्रमश जितने विकास—जितने परिवर्तन आते गये हैं, उतने ही परिवर्तन और विकास कथा-कहानी की शिल्पविधि मे भी देखे जा सकते है। इस प्रकार जीवन के समस्त आनन्द, समस्त अन्तर्द्वन्द्व और समस्त रस कहानी के विस्तृत क्षेत्र मे समाविष्ट होते है। लेकिन बौद्धिक और नैसर्गिक विकास के अनुरूप इस के रूप विधान और शिल्पविधान में भी परिवर्तन होते जाते हैं, यह सत्य पूर्णत. निर्विरोध है। इस के उदाहरण मे ऋग्वेद से चल कर, धर्मसूत्रो, बौद्ध जातको, जैन कथाओ, पौराणिक आख्यानो, तथा सस्कृत के लोक-प्रसिद्ध कथा सरित्सागर से लेकर पचतंत्र, हितोपदेश, प्राकृत-अपभ्रंश की कथाओ तक हम आते है, और सर्वत्र हमे कथा-कहानी के रूप और विधानो मे परिवर्तन और विकास मिलता है। हिन्दी कहानी के जन्म से चल कर, दूसरी ओर इस के आविर्भाव, विकास और सक्राति युगो मे, हमे शिल्पविधान के इतने रूप, इतने आकार मिलते हैं, कि हमे आश्चर्यचकित रह जाना पडता है। एक ही भाव, एक ही अनुभूति को विभिन्न कहानीकार क्यो इतने विभिन्न रूप-विधानो मे रख कर सवाँरता है? एक तो जिसे दृष्टि-बिन्दु मे वह ससार को समेटना चाहता है उसके अनुसार जीवनगत सत्य अपना आकार प्राप्त करता है, और, दूसरे उस की कला की अभिव्यंजना इस प्रकार होती है कि वह अपने लिये एक अलग कोटि का निर्माण कर लेता है। परिणाम यह होता है कि प्रत्येक कलाकार के विशिष्ट भाव-प्रकाश से अधिक से अधिक श्रोता और पाठको का मन आकृष्ट होता है, और उन्हे

अन्यान्य मौलिक शिल्प विधानो की विविधता प्राप्त होती है। कलाकार भी सदैव अपनी भावाभिव्यक्ति के लिये कुछ ऐसे माध्यमो, विधानो और तत्रो की खोज मे लगा रहता है, जो एक ओर अभिनव हो, दूसरी ओर उन मे इतनी शक्ति हो कि वे कहानी कला की परम्परा मे नयी रूढ़ियाँ उपस्थित कर सके।

दृष्टिकोण

विचारणीय यह है कि जिस शिल्पविधि का उल्लेख ऊपर किया गया है उस की परिभाषा क्या हो सकती है ? शिल्पविधि का बोध अंग्रेजी के 'टेकनीक' शब्द से किया जाता है। टेकनीक का अर्थ है, ढग, विधान, तरीका, जिस के माध्यम से किसी लक्ष्य की पूर्ति की गयी हो। यह लक्ष्य भौतिक जीवन मे किसी वस्तु अथवा मनोवाछित तत्त्व की प्राप्ति से सबध रखता है और कला के क्षेत्र मे इस लक्ष्य से अभिप्राय है—सपूर्ण भावाभिव्यक्ति का प्रकार। कला के विभिन्न तत्त्वो अथवा उपकरणों की योजना का वह विधान, वह ढग जिससे कलाकार की अनुभूति अमूर्त्त से मूर्त्त हो जाय।

प्रत्येक कला की सृष्टि और प्रेरणा दोनो रूपो मे अनुभूति और लक्ष्य ही मुख्य तत्त्व हैं। चित्रकार की सृष्टि मे नि सदेह एक अनुभूति होती है, जिसे वह अपनी रेखाओ और विभिन्न रगो के आनुपातिक संयोग से अभिव्यक्त करता है, अमूर्त्त अनुभूति को मूर्त्त करता है। जैसे, कोई कलाकार अकाल की पीडा की अनुभूति को चित्रात्मक अभिव्यक्ति देना चाहता है। इस के लिए प्रथमत. उसे एक ऐसी सवेदना को आधार शिला बनानी होगी, जिस की पृष्ठभूमि पर वह अपनी अनुभूति व्यक्त करेगा, अतएव इस तत्व मे कथा वस्तु के बीज अकुरित हुए, फिर उसे भावो को वहन करने के लिये कुछ पात्रो की अवतारणा करनी पड़ेगी, जैसे अकाल पीडित मानव, जीव-जन्तु आदि, इनके माध्यम से वह अनुभूति को सजीव अभिव्यक्ति देगा। अतएव यह तत्त्व, चरित्र अवतारणा की ओर निर्देश करता है। इसके उपरान्त चित्रकार का यह प्रयत्न होगा कि वह किन-किन रगो, परिपार्श्वो के सहारे, पात्रो को कहाँ-कहाँ रखे, किन-किन स्थितियो की व्यजना करे जिस से अकाल के भाव घनीभूत हो जायँ, फलतः उस का यह प्रयत्न उसकी शैली हुई, जिस के सहारे उस ने अपने चित्र को पूर्ण किया। इस सम्यक चित्र से उस के लक्ष्य की पूर्ति हुई और जिस प्रक्रिया से उसका चित्र

प्रस्तुत हुआ, वही उस चित्र की शिल्पविधि अथवा टेकनीक हुई । शिल्पविधि के इस मोटे रूपक से यह प्रकट है कि किसी भाव को एक निश्चित रूप देने के लिये जो विधान प्रस्तुत किये जाते हैं, वही उस कला की शिल्पविधि है ।

कहानी मे यह व्याख्या अनुभूति और लक्ष्य, इन दोनो रूपो मे अत्यन्त स्पष्ट है । कहानी की रचना मे जिस तरह अनुभूति उस के तत्वो मे ढलती जाती है, वही उसकी टेकनीक है । दूसरी ओर एक निश्चित लक्ष्य अथवा एकान्त प्रभाव की पूर्ति के लिये कहानी की रचना मे जो एक विधानात्मक प्रक्रिया उपस्थित करनी पडती है, वही उस की शिल्पविधि है । इस तरह सृजन की दृष्टि से कहानी को प्रेरणा दो पक्षो से आती है । एक ओर, कहानी अनुभूति की प्रेरणा से अपनी सृष्टि कराती है, दूसरी ओर लक्ष्य की प्रेरणा से, और सम्यक दृष्टि से दोनो की प्रेरणा किसी न किसी अनुपात मे कहानी की रचना मे विद्यमान रहती है । क्योकि कहानी मे अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए उस के अनुरूप एक लक्ष्य की कल्पना करनी पडती है, और लक्ष्य के स्पष्टीकरण के लिए एक मूलभाव का सहारा लेना पडता है[१]। उदाहरण स्वरूप, किसी तरुणी विधवा मे प्रेमानुभूति को ले कर जैसे, कोई कहानी लिखनी हो, इसके लिये कहानीकार को प्रथमत. उस के अनुरूप एक कथावस्तु लेनी होगी, फिर चरित्र लेने होगे, चरित्रो के प्रकाश मे विधवा का चरित्र-विश्लेषण, व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा और उस का मानसिक ऊहापोह उपस्थित करना होगा ।

कथावस्तु और चरित्र की कल्पना के उपरात कहानी का रूप आरम्भ होगा और यहाँ से कहानी मे शैलीगत समस्या आयेगी । शैली के अन्तर्गत कहानी की रूपशैली अथवा निर्माणशैली के प्रश्न खड़े होगे । अर्थात् कहानी किस पुरुष मे (उत्तम, मध्यम अथवा अन्य पुरुष) लिखी जाय, फिर ऐतिहासिकता के सहारे से लिखी जाय, या चिन्तन के सहारे या किसी अन्य माध्यम से इस का आरम्भ हो, और इसकी चरम सीमा कैसी हो ? वस्तुतः रूप विधान के ये सभी प्रश्न, शैली के व्यापक पक्ष मे आते हैं । इस के साथ ही साथ कहानी-निर्माण मे शैली का सामान्य पक्ष भी आता है, जैसे वर्णन, चित्रण, वातावरण-निर्माण, गद्यशैली और कथोपकथन आदि । शैली के इन्ही दोनो पक्षो के प्रकाश में कहानी अपने व्यावहारिक रूप मे सामने आती है । देश-काल-परिस्थिति का निर्माण होता है, चरित्र अपने मूर्त्तरूप मे सामने आते है, अपनी सजीवता के साथ मानव-कार्य व्यापारो

---

[१]The short story. by Sean'o Faoaaio, page173 St. James Landon 1949

मे रत हो जाते है, घटनाएँ उपस्थित करते है। मुख्य भाव, मुख्य अनुभूति, घटनाओ मानवो व्यापारो के सहारे उत्तरोत्तर स्पष्ट होती जाती है। विधवा के प्रति प्रेमानुभूति का केन्द्रीय भाव बिल्कुल स्पष्ट हो कर कहानी की चरम सीमा, निष्पत्ति या अत पर अपने सम्पूर्ण प्रभाव को प्राप्त हो जायगा।

अनुभूति के धरातल अथवा प्रेरणा से लिखी हुई कहानी मे लक्ष्य केवल सुप्त व्यजना के रूप मे आता है, अतएव इस की सोद्देश्यता भी अस्पष्ट ही रह जायगी। लेकिन अपने सम्पूर्ण प्रभाव मे ऐसी कहानी बहुत ही सशक्त होगी। योजना की दृष्टि से अनुभूति की प्रेरणा से लिखी हुई कहानियो मे अपेक्षाकृत, कहानी की सवेदना, और चरित्र अवतारणा मे यथार्थ का सबल बहुत रहता है, यही कारण है कि ऐसी कहानियो मे एकान्त प्रभाव आश्चर्यजनक ढग से होता है। दूसरी ओर, जब किसी लक्ष्य, सिद्धात अथवा किसी तत्त्व की प्रतिष्ठा की प्रेरणा से कहानी लिखनी हो, अर्थात् जब यह सिद्ध करने के लिए कहानी की रचना करनी हो कि विधवा विवाह होना चाहिए, वर्ग सघर्ष शाश्वत है, आर्थिक पहलू व्यक्ति का प्रधान पहलू है, मनुष्य का अवचेतन जगत् ही सब कुछ है, चेतन जगत् उसकी अभिव्यक्ति मात्र है, या वर्तमान सामाजिक व्यवस्था मे नारी सब से अधिक शोषित है, फिर इनकी अभिव्यक्ति के लिए रचना के अनुसार, प्रथमत: उचित और स्वाभाविक कथावस्तु की कल्पना करनी होगी। उस के अनुरूप विभिन्न पात्र जुटाने होगे, और शैली के अतर्गत वे सब प्रश्न सुलझाने होगे जो ऊपर अनुभूति परक कहानी की दिशा मे आए है। केवल निष्पत्ति, अत या चरम सीमा पर लक्ष्यात्मक कहानी इस से कुछ भिन्न हो जायगी। वस्तुत: वहाँ उस की सोद्देश्यता, एकलक्ष्यता पूर्ण स्पष्ट हो जायगी। लगेगा कि कहानी का कार्य सम्पूर्ण हो गया और उस का अभिप्राय सिद्ध हो गया। लेकिन अनुभूति से प्रेरित कहानी मे अपेक्षाकृत इससे कुछ विरोधी तत्त्व मिलेंगे।

इस तरह कहानी, शिल्पविधि मे लक्ष्य और अनुभूति सब से मुख्य तत्त्व हैं। इन्ही के प्रकाश से कहानी के विधान मे कथावस्तु की योजना, चरित्र अवतारणा और शैली का निर्माण होता है।

शिल्पविधि मे कहानी के भावपक्ष का क्या स्थान है, यह भी एक प्रश्न है। वस्तुत: विधान के अध्ययन मे भावपक्ष का कोई निरपेक्ष स्थान नही निर्धारित किया जा सकता। इस का यथासंभव संबध अनुभूति और लक्ष्य तत्त्व से है। इस की ही सीमा मे कहानी के भावपक्ष की ओर प्रकाश डाला जा सकता

है, वैसे शिल्पविधि के अध्ययन-क्षेत्र मे कहानी का कलापक्ष ही मुख्य रूप से आता है।

विषय-विस्तार

स्थूल रूप से हमारे आलोच्य-विषय का काल बीसवी शताब्दी से आरम्भ होता है, क्योकि पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि से तभी से हिन्दी कहानियाँ अपने वैधानिक रूप मे विकसित हुई। लेकिन अध्ययन की दृष्टि से बीसवी शताब्दी से पूर्व की ओर चल कर हमे समूचे हिन्दी-काल की साहित्यिक सम्पत्ति मे कथा स्तर से अन्वेषण करना चाहिए और उन समस्त तथ्यो को ढूँढ़ लेना आवश्यक है जो इस की दिशा मे है। हिन्दी साहित्य से भी पूर्व हमे वैदिक, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रश साहित्य मे कथा, आख्यायिका, गाथा आदि रूपो से पूर्ण परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। व्यापक रूप मे हमे अपने यहाँ की उस महती परम्परा से पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना है जो कथा-कहानी, आख्यायिका, आख्यान और उपाख्यान तथा किस्सा, दास्तान आदि की साहित्यिक विधाओ तथा रूपो मे बहुत प्राचीनकाल से हिन्दी-प्रान्त मे उपस्थित थी। यद्यपि यह निश्चित है कि हिन्दी कहानी की वैज्ञानिक शिल्पविधि पश्चिम के सम्पर्क की देन है: लेकिन यह भी निश्चित है कि कथा, आख्यायिका, दास्तान और किस्से के विधान से जितना हमारा प्राचीन साहित्य परिपूर्ण है, उतना संसार का कोई साहित्य नही। अतएव इस दिशा मे जितनी हमारी पूर्व सम्पत्ति है, उस का ज्ञान हमारे अध्ययन की प्राथमिक विशेषता है, क्योकि इस ने परोक्ष रूप से निश्चय ही हिन्दी कथा-साहित्य को प्रभावित किया है।

इस के उपरान्त कहानी के आविर्भाव के स्वतत्र अध्ययन की आवश्यकता पडती है और प्रेरणा स्वरूप हमे उस की उत्पत्ति की उस व्यापक पृष्ठभूमि को भी देखना है जहाँ इसके जन्म के बीज बोए गए है। इस सबध मे समूची उन्नीसवी शताब्दी, विशेषकर उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्द्ध—हरिश्चन्द्र युग की प्रेरणा और उस काल की मुख्य पत्र-पत्रिकाओ[१] का अध्ययन हमारे लिए सब से अधिक आवश्यक है। फिर बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ का युग, हिन्दी कहानियो के

---

[१] हरिश्चन्द्र मैगज़ीन १८७३ ई० श्री हरिश्चन्द्र चंद्रिका १८७४ ई० हिन्दी प्रदीप १८७७ ई०

आरम्भ, प्रयोग और विस्तार के मेरुदण्ड 'सरस्वती' (१६०० ई०) और 'हिन्दी गल्पमाला' (१६१८) आदि मासिक पत्रो के अध्ययन की अपेक्षा है। इस के उपरान्त ही हिन्दी कहानियो की निश्चित शिल्पविधि हमारे सामने आ जाती है। तत्पश्चात् हमे इस के विकास और उत्कर्ष के उस व्यापक क्षेत्र का अध्ययन उपस्थित करना है, जिस मे हिन्दी कहानियाँ अपनी मुख्य प्रवृत्तियो मे बँटकर विकसित हुई है। इस दिशा मे केवल प्रवृत्तियो और शिल्पविधानात्मक धाराओ को ही लेकर और उन्ही के धरातल पर अध्ययन करना, आलोच्य-विषय के अनुकूल होगा।

आलोच्य-विषय मे उद्गम सूत्र के अध्ययन की भी विशेषता है। इस दिशा मे उन अनेक उद्गम-स्थलो की खोज करके, उन के प्रभाव और प्रेरणाओ को देखने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही साथ उन समस्त शक्तियो और विभिन्न प्रेरणाओ की समीक्षा प्रस्तुत की गई है, जो कहानी शिल्पविधि के उद्गम और विकास मे प्राणशक्ति के रूप मे कार्य कर रही थी। आलोच्य-विषय के अध्ययन मे प्रवृत्तियो की ओर भी मुख्यता दी गयी है, क्योकि शिल्पविधान के विकास मे उनकी प्रेरणा सबसे अधिक रही है। इसके साथ ही साथ कहानी के कलापक्ष, तत्त्वो, और रूपो के अध्ययन का भी यथा सम्भव प्रयत्न किया गया है, तथा उन नवीन प्रयोगो पर भी प्रकाश डाला गया है, जो वर्तमान कहानी-कला-क्षेत्र मे अवतरित हो रहे है।

पूर्व परिचय

असंख्य वर्षो की साधना से अनेक युगो मे विकसित भारतीय साहित्य की अन्य विशेषताओ के अतिरिक्त इस की कथा प्रवृत्ति तथा इस कला की विशेषता अनुपम है। वैदिक सस्कृत, सस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रश और आदि साहित्यिक युगो मे कथा की कला क्रमश. अपने बोज रूप से विकसित होती हुई चरम सीमा पर फलवती हुई है। यही कारण है कि आज भी भारतीय साहित्य के प्रतिनिधि और आधुनिकतम रूप हिन्दी-साहित्य मे कहानी-कला की उत्पत्ति और विकास के अध्ययन के साथ हमारी दृष्टि भारत के उस प्राचीन कथा-साहित्य की ओर जाती है। यद्यपि यह सत्य है कि हिन्दी-कहानियाँ आधुनिक युग की देन है, तथापि हमारा यह देख लेना कि इस दिशा मे भारत के प्राचीन साहित्य की क्या स्थिति रही है, हमारे अध्ययन का यह एक विनम्र दृष्टिकोण है। भारत का प्राचीन साहित्य अपने विभिन्न युगो और भाषाओ मे अभिव्यक्ति पाता हुआ कथा की कला मे अपनी स्वतत्र विशेषताएँ रखता है। आलोच्य विषय की समीक्षा करने के पूर्व, भारत के प्राचीन कथा साहित्य की विभिन्न कलात्मक विशेषताओ—जैसे, आख्यायिका, आख्यानक, जातक, पौराणिक और दन्त कथाओ-वार्ताओ के रूपो को देखना हमारे लिए परम आवश्यक है। कथा की ये विधाये और रचना प्रकार भारत की अपनी साहित्यिक सम्पत्ति है, और इन्ही स्रोतो से उस समय ससार को अन्य भाषाओ को भी शक्ति मिली है।

भारत का प्राचीन कथा साहित्य

भारत का प्राचीन कथा-साहित्य वैदिक संस्कृत, सस्कृत, पालि, प्राकृत, और अपभ्रंश आदि भाषा-युगो मे मिलता है। इन समस्त भाषा युगो मे कथा की कला अपनी अलग-अलग विशेषताओ के साथ प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकी है। फलत. आलोचको ने प्राचीन कथा साहित्य का आरम्भ वैदिक संस्कृत अर्थात् ऋग्वेद से जोड़ा है। लेकिन ऋग्वेद मे हमे कथाये नही मिलती वरन् कथाओ के बीज मिलते है। इन कथा-बीजो मे मूल रूप से यज्ञ-धूम्र की सुगन्धि और मंत्रो का सुन्दर संगीत मिलता है। इन मे कही भी कथा का वह रूप नही मिलता, जिसे हम ब्राह्मण और उपनिषदो मे पाते हैं। ऋग्वेद विभिन्न दैवी शक्तियो की आराधना, पूजा, प्रशंसा मे कहे गए असख्य मंत्रो का भाडार है।

इन मत्रो के बीच-बीच मे कुछ ऐसे सूक्त अवश्य मिल जाते है, जिन मे दो या तीन पात्रो के परस्पर कथोपकथन जुडे होते है। ऐसे सूक्तो की 'संवाद सूक्त' कहते है। भारतीय साहित्य के अनेक अगो और रूपो का उद्गम, आलोचक गण इन्ही सवाद-सूक्तो से जोडते है। इन के अतिरिक्त सामान्य स्तुति-परक सूक्तो मे भी भिन्न-भिन्न देवताओ के विषय मे अनेक छोटे-छोटे मनोरजक तथा शिक्षाप्रद आख्यानो के सकेत मिलते है—जैसे, प्रसिद्ध 'अपाला की कथा' का सकेत—एक रोगी, दुखी युवती अपने पति से त्याग दी जाती है । उस नि सहाय अबला की सहायता इन्द्र करते है।

उपनिषदों की कथाएँ

उपनिषदो मे सुख-शान्तिदायिनी सूक्तियो के बीच-बीच मे कथाएँ आने लगती है । लेकिन ये कथाएँ कथा-साहित्य की दृष्टि से नही आई है, वरन् उपनिषदो के भिन्न-भिन्न प्रतिपाद्य तत्त्वो को ले कर उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत की गयी है—ठीक उसी तरह, जैसे 'बाइबिल' मे इसाई-धर्म की महान सत्ता और ईश्वर की अनन्त शक्ति मे विश्वास और अविश्वास के धरातल पर अनेक कथाएँ मिलती है। उपनिषदो की कथाओ मे उक्तविषय के उदाहरण सर्वत्र मिलते है, जैसे :

१ केनोपनिषद् मे : देवताओ की शक्ति-परीक्षा की कथा।
२. कठोपनिषद् मे नाचिकेता के साहस की कथा।
३ छान्दोग्य उपनिषद् मे : सत्य काम की गो सेवा, उषस्ति की कठिनाई, महात्मा रैक्व और राजा जान श्रुति आदि की कथाएँ।
४ वृहदारण्यक मे : गार्गी और याज्ञवल्क की कथा।
५ छन्दोग्य मे : श्वेतकेतु और उद्दालक की कथा।
६ तैत्तिरीय मे : अश्विनीकुमार और उनके गुरु दध्यग की कथा।
७ प्रश्नोपनिषद् मे : कबन्धी, वैदर्भि, कौशल्य, सत्य काम, गार्ग्य और सुकेशा की कथाएँ।
८ मुण्डकोपनिषद् मे . महाशल्य शौनक और अगिरा की कथा।

वस्तुत उक्त कथाओ का सम्बन्ध हमारे आत्मिक जीवन से है, तथा इन कथाओ का रूप पूर्णत: वर्णनात्मक और कथात्मक है, जिन के माध्यम से आध्यात्मवाद, यज्ञ, मृत्यु के बाद का जीवन, पूर्वजन्म, मोक्ष, आनन्द आदि विषय प्रतिपादित किये गये हैं। इन अमूर्त्त विषयो को मानव के हृदय मे

प्रतिष्ठित करने के लिये यहाँ कथाओ को ही उन का माध्यम बनाया गया है। अत: इन कथाओ मे जहाँ तत्कालीन समाज, के परिप्रेक्ष्य मे दर्शन तथा अन्य स्थितियाँ व्यंजित हुई है, वहाँ उन मे एक अलौकिक पवित्रता भी मिलती है। इन कथाओ के पात्र प्राय: ऋषि, ब्रह्मचारी, राजा तथा पुरोहित ही के रूप मे मिलते हैं और इन कथाओ का मूल विषय भी आत्मा-परमात्मा के धरातल से चला है। ये कथाए आदर्श और शिक्षाप्रद है। प्रत्येक कथा मे कथानक का विकास गहन तत्त्वो के प्रवचन के बीच तथा प्राय समस्त कथाओ का आरम्भ प्रश्न और जिज्ञासा से हुआ है। यही कारण है कि उपनिषद् की मुख्यत: उक्त कथाएँ अत्यन्त मनोरजक है।

आख्यानक काव्य तथा पौराणिक कथाओं का जन्म

सहिता, ब्राह्मण-ग्रथ और उपनिषदो के कथा-तत्त्व के सयोग से आगे अनेक कथाए प्रचलित हुई और उनका विकास लोक-भावना मे इतना हुआ कि तत्कालीन मनीषियो को कथाओ के महासग्रह प्रस्तुत करने पडे। लेकिन उस समय तक आते-आते धर्म, लोक-भावना और साहित्यिक रुचि तीनो एक दूसरे से तादात्म्य स्थापित करने लगी थी। अतएव उस काल के साहित्यिक मनीषियो को एक महान् और व्यापक कथा ढूँढनी पडी, लेकिन तब तक की सामग्री के अन्तस्तल मे ढूँढने से उन्हे जो राम-कृष्ण की कथा मिली होगी, वह बहुत छोटी रही होगी। अत. बाल्मीकि और वेदव्यास को कुछ मूल-कथा और बहुत कुछ कल्पना के संयोग से एक आख्यान बनाना पड़ा होगा, जो अपने रूप मे समस्त पूर्ववर्ती कथाओ से महान् और व्यापक सिद्ध हुआ होगा और ऐसे हीं आख्यान के मेरुदंड पर उन मनीषियो ने क्रमश रामायण और महाभारत आख्यानक[१] काव्यो की सृष्टि की होगी तथा इन मे अन्यान्य कथाओ की सुन्दर लडी गूँथ कर उन काव्यो को महाकाव्य बनाना पडा होगा। वस्तुत भारतीय साहित्य मे यह कलासृष्टि उन आदि कलाकारो की मौलिक और अपूर्व सृष्टि सिद्ध हुई होगी। लेकिन इन आख्यानक काव्यो के पूर्व ही उपनिषदो की कथाओ की मूल आत्मा जिज्ञासा और प्रश्नोत्तर की भावना पर आधारित थी। फलत: इन आदि महाकाव्यो मे भी जिज्ञासा और धार्मिक पिपासा की शान्ति के लिये मनीषियो ने कितने प्रश्नोत्तरो को प्रस्तुत किया होगा। बाल्मीकि रामायण में

---

[१] पाँचवी शताब्दी में आचार्य बुद्धघोष महाभारत और रामायण को कहते हैं। 'आक्खानं ति भारत रामाणादि' (दी० नि० अ० १-८४)

सरयू नदी की उत्पत्ति की कथा इस का उदाहरण है तथा महाभारत मे विभिन्न पात्रो के सम्वाद, प्रश्न तथा समस्त गीता के प्रवचन इसके साक्षी है।

काल की दृष्टि से रामायण और महाभारत का समय बौद्ध जातक कथाओ से बहुत पहले पडता है। रामायण की रचना बुद्ध के जन्म से पहले ही हुई, अर्थात् रामायण को ५०० ई० पू० से पहले की रचना मानना न्याय-सगत है।[१] महाभारत भी बुद्ध के पहले की रचना है, परन्तु वर्तमान रूप उसे बुद्ध के पीछे प्राप्त हुआ है।[२] इस तरह से रामायण और महाभारत के माध्यम से आख्यानको और पौराणिक कथाओ का आरम्भ जातक कथाओ से बहुत पहले हो चुका था।

रामायण मे मूल-कथा के साथ विभिन्न अंतर्कथाएँ प्रासगिक और अप्रासगिक ढग से गुँथी हुई है। बाल्मीकि ने राम-कथा को अपनी काव्यात्मक सृष्टि द्वारा इतना शाश्वत और चिरन्तन बनाया कि इससे कथातत्त्व और मानव तत्त्व, दोनो लोक-भावना मे व्याप्त है। यहाँ नाटकीय परिस्थितियो का सृजन तथा सजीव पात्रो की अवतारणा ने परवर्ती सस्कृत कथा साहित्य के लिये एक नवीन युग का मार्ग प्रशस्त किया।

आख्यान और पौराणिक कथाओ की दृष्टि से महाभारत का स्थान प्राचीन सस्कृत कथा साहित्य मे अपूर्व है। कथा-तत्त्व की दिशा मे इसकी कथाओ की परम विशेषता यह है कि इन मे इतिहास, धर्म और कल्पना तीनो का इतना सुन्दर समन्वय हुआ है कि ये कथाएं स्वभावत पौराणिक कथाओ के रूप मे समूचे परवर्ती सस्कृत नाट्य साहित्य की उपजीव्य बनी है। इसके उपाख्यानो के ही अवलम्बन से आगे के संस्कृत कवियो, लेखको ने काव्य, नाटक, चम्पू और कथा-आख्यायिकाओ आदि की सृष्टि की है। दूसरी ओर महाभारत की ये असख्य कथाएं मूल आख्यान से इतनी कलात्मकता के साथ जुडी हुई है कि इनके सामूहिक कथा-तत्त्व मे हमारा समग्र जीवन अपने विस्तृत रूप मे समा गया है। यही कारण है कि महाभारत जहाँ एक ओर आख्यानक काव्य है, वहाँ दूसरी ओर पुराण भी। सस्कृत मे पुराण शब्द का अर्थ पुराना आख्यान है......'पुराणमाख्यानम्'। पुराणो के सम्बन्ध मे यह धारणा, वस्तुतः महाभारत पुराण के ही आधार पर निश्चित हुई है, क्योकि महाभारत मे प्रायः

---

[१] संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, गौरीशंकर उपाध्याय पृष्ठ ४५।

[२] वही, पृष्ठ ५७।

समस्त प्रसिद्ध आख्यानो की सृष्टि हुई है : जैसे इसके आदि पर्व मे 'शकुन्तलोपाख्यान', वनपर्व मे 'मत्स्योपाख्यान' और 'रामोपाख्यान', 'शिविउपाख्यान', 'सावित्री उपाख्यान', और 'नलोपाख्यान।'

इस तरह से आख्यानको और पौराणिक कथाओ का प्रारम्भ यही से होकर आगे आने वाले तमाम पुराणो मे विकसित होकर ये कथाए प्राचीन भारतीय साहित्य मे अपनी पूर्णता तक पहुँच गयी। ये पौराणिक कथाए विभिन्न अवतारो सूर्य-चन्द्र वशो राजाओ व्रत, पर्व, महोत्सव आदि की कथाओ के आधार पर प्रस्तुत हुई। भाव और कला पक्ष की दृष्टि से पुराण के पाच लक्षण[१] भी इन कथाओ मे सर्वत्र विद्यमान है।

दन्त-कथाओं का आरम्भ

पौराणिक कथाओ के विस्तार तथा प्रसार से जन-मस्तिष्क शीघ्र ही पूर्ण रूप से सुसम्बद्ध हो गया होगा, क्योकि कथा कहने-सुनने की प्रवृत्ति ने लोक-रुचि को पौराणिक कथाओ के कहने-सुनने की ओर प्रेरित किया होगा। इस तरह धीरे-धीरे इन पौराणिक कथाओ का अधिकाश रूप मौखिक हो गया होगा, फलतः इसका प्रभाव दो रूपो मे पडा : ये पौराणिक कथाएं लोक-रुचि, लोक-सवेदना की सीमाओ मे बाँधी गई होगी और दूसरी ओर इन कथाओ के सादृश्य पर अन्य स्वतन्त्र कथाओ की अवतारणा होने लगी होगी। यही कारण है कि दन्त-कथाओ के इन दोनो रूपो ने परिवर्ती कथा-साहित्य को पूर्ण रूप से प्रभावित किया है, क्योकि उनकी अवतारणा पौराणिक कथाओ के सादृश्य और साम्य पर असीम ढंग से हुई।

इस प्रभाव का उदाहरण हमे समस्त परवर्ती सस्कृत कथा-ग्रन्थो मे मिलता है, जहाँ पशु-पक्षी, देव-दानव, नदी-पहाड, सरोवर, पेड-पौधे आदि समस्त चर-अचर सजीव चरित्र के रूप मे प्रयुक्त हुए है। वस्तुत: दन्त-कथाओ की इस शैली का पूर्ण प्रभाव हमे सर्वप्रथम बौद्ध-जातक कथाओ मे मिलता है।

जातक

काल-क्रमानुसार जातक कथाओ का स्थान परवर्ती सस्कृत कथाओ के

---

[१] मत्स्य, विष्णु, तथा ब्रह्मांड आदि महापुराणों में पुराण का लक्षण बतलाते हुए लिखा है .....'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम्॥

पहले आता है। निश्चय ही ये कथाएं ईसा पूर्व पाचवी शताब्दी से भी पहले से लेकर ईसा के बाद की प्रथम या द्वितीय शताब्दी तक ही रची गयी होगी।[१]

जातक शब्द का अभिप्राय है, जन्म सम्बन्धी। विकासवाद के अनुसार एक फूल को विकसित होने के लिए, उस पुष्प की जाति विशेष के अस्तित्व मे आने मे लाखो वर्ष लग जाते है। तब क्या कोई भी प्राणी साठ-सत्तर या अधिक से अधिक सौ वर्षो के जीवन मे बुद्ध बन सकता है ? उसे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक जन्म धारण करने होगे। गौतम बुद्ध को भी धारण करने पडे। बुद्ध होने से पूर्व अपने सब पिछले जन्मो तथा अन्तिम जन्म मे उनकी सज्ञा बोधिसत्व रही। 'बोधि' का अर्थ है बुद्धत्व और 'सत्त्व' का अर्थ प्राणी—बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी।[२] इस तरह जातक मे बोद्धिसत्त्व के पाच सौ सैतालीस जन्मो का उल्लेख है और उनकी कथाएँ भी है। ये कथाएँ अपनी शिल्प-विधि के रूप मे चार भागो मे विभक्त है:

१ पञ्चुपन्नवत्थु कथा : वर्तमान कथा
२. अतीतवत्थु : पुनर्जन्म की कथा या अतीत कथा
३. अत्थ वरणाना गाथाओ को व्याख्या
४ समोधान , अन्त मे आने वाला भाग जिसमे, बुद्ध बताते है, क पात्रो मे कौन क्या था, वे स्वयं उस समय किस योनि मे पैदा हुए थे।

उक्त भागो को हम पाच सौ सैतालीस जातक कथाओ मे से किसी भी कथा मे देख सकते हैं, उदाहरणार्थ खरीदिय जातक को ले सकते है। यह गाथा बुद्ध ने जैतवन मे बिहार करते समय, एक कटुभाषी भिक्षु के सबन्ध मे कही थी।

१. वर्तमान कथा

वह कटुभाषी भिक्षु (किसी का) उपदेश न ग्रहण करता था। बुद्ध ने उससे पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच कटुभाषी है, किसी का उपदेश ग्रहण नही करता ?"

"भगवान! यह बात सच है।"

बुद्ध ने कहा—"पहले भी तू ने कटुभाषिता के कारण पंडितो का उपदेश नही ग्रहण किया।" कह अतीत की कथा सुनाई।

---

[१] जातक प्रथम, भूमिका, पृष्ठ २४

[२] जातक प्रथम खंड भूमिका पृष्ठ १२

भदन्त आनन्द कौशल्यायन

२. अतीत कथा

पूर्व समय मे, वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोद्धिसत्व मृग की योनि मे पैदा हो, मृगगण के साथ जगल मे रहते थे । (एक दिन) उनकी बहन ने उन्हे हरिणपुत्र दिखाकर कहा, "भाई ! यह तुम्हारा भाजा है। इसे मृग माया सिखाओ।" यह कह (उसे मृग-पुत्र) सोपा । उसने भाजे को कहा-अमुक समय पर आकर सीखना । वह कहे हुए समय पर न आया । जैसे एक दिन उसी उसी प्रकार सात दिनो तक, सात उपदेशो का उल्लंघन कर, वह मृगमाया को बिना सीखे ही चरता हुआ पाश मे बँध गया । माता ने भाई से आकर पूछा—"क्यो भाई ! तूने भाजे को मृगमाया सिखा दी ?" बोधिसत्व ने, (उस बात) न मानने वाले का सोच मत कर । तेरे पुत्र ने मृगमाया नही सीखी । कहकर अब भी उसे सिखाने का अनिच्छुक ही हो गाथा कही ।

अटठ खुरं खरादिये मिगं वंकातिवङ्किन ।
सत्तहि कलाहत्ति वकंत न तं ओवदितुस्सहै ।

३. गाथा की व्याख्या

अटठ खुर, एक-एक पाव मे दो-दो खुर खरीदिये । इस नाम से संबोधन करता है । मिग-सब (मृगो) के लिए एक शब्द है । वकातिवकिन-आरम्भ मे टेढे, इस प्रकार वकातिवक जिसके ऐसे सीग हो, वह वकातिवङ्क, (उस त) वङ्कातिवङ्की को । सत्तहि कलाहति वकत का अर्थ है, उपदेश के सात समयो पर उपदेश का उल्लघन करने वाला । न त आवेदिनुस्सहै का अर्थ है, इस प्रकार के कटुभाषी मृग को उपदेश देने की मेरी प्रवृत्ति नही होती । ऐसे को उपदेश देने का मुझे विचार तक नही होता । यही स्पष्ट किया है ।

४. समोधान

सौ शिकारी, उस पाश मे बँधे हुए कटुभाषी मृग को मारकर मास लेकर चला गया ।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु ! तू केवल अब भी कटुभाषी नही है, पहले भी कटुभाषी ही रहा है ।'—यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला जातक का साराश निकाल दिखाया ।

उस समय का भाजा मृग (अनका) कटुभाषी भिक्षु था । बहन (अबकी) उत्पल वर्णा (भिक्षुणी) थी । लेकिन उपदेश देने वाला मृग तो मैं ही था ।[१]

इन जातक कथाओ से तीन बाते मूलत स्पष्ट है । ये कथाएं बौद्ध-धर्म

के प्रकाश और प्रचारार्थ लिखी गयी है । इनमे पिछली पौराणिक कथाओ और आख्यानो की अपेक्षा अधिक कलात्मकता आयी है । ये कथाए सीधे वर्णनात्मक या कथात्मक न होकर वर्तमान कथा, अतीत कथा, गाथा की व्याख्या और समोधान क्रमो की सुन्दर शृङ्खला है, तथा फिर भी इनमे कथा का तारतम्य सुरक्षित है और इनका लक्ष्य भी पूर्ण सफलता से स्पष्ट है । एक बात से एक स्वतत्र कथा का, जन्म, और उस कथा से अन्य कथा का जन्म होने की कला सभवत इन्ही जातक कथाओ से आरम्भ हुई तथा इस कला की चरमसीमा हमे आगे चलकर सस्कृत के सुप्रसिद्ध कथा-सग्रह "कथासरित्सागर" और "पचतत्र" मे मिलती है।

कुछ विद्वानो ने प्राय. जातक कथाओ और रामायण महाभारत तथा अन्य पुराण के समान या एक दूसरे से मिलती-जुलती कथाओ तथा आख्यानको को लेकर, यह समस्या खडी की है कि अमुक कथा जातक को मूल देन है, अमुक आख्यान तथा अमुक गाथा रामायण-महाभारत अथवा अमुक पुराण की देन है। वस्तुतः बात यह है कि बौद्ध और अबौद्ध दोनो कथा-साहित्य एक ही परपरा के ऋणी हैं और यह परम्मपरा साहित्य के कथा बीज, उपनिषद् आख्यानक महाकाव्य का कथा प्रसार तथा दन्त-कथाओ का स्वतत्र निर्माण और सब का आपस मे सम्मिश्रण।

फिर भी जहाँ तक प्राचीन कथा-तत्त्व मे कलात्मकता के विकास का प्रश्न है, जातक कथाओ ने इसमे अपूर्व बल दिया है। जातक कथाओ मे जितनी वर्तमान कथाए आती है उनमे प्राय. कल्पना-तत्व मुख्य है और उनमे जितनी अतीत कथाएं आती हैं, उनमे प्राय ऐतिहासिक तत्त्व मिलते है। इस तरह यथार्थ कल्पना और व्याख्या तत्त्व का एक साथ तादात्म्य, कथा की दिशा मे जातक कथाओ की पहली कलात्मक देन है। प्राय समस्त जातक कथाओ मे अतीत कथा का आरभ इस वाक्य "पूर्व काल मे वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त राज्य करते थे" से होता है। वस्तुत यह कथा आरम्भ करने की एक कलात्मक टेक थी, लगता है कि आगे चल कर इसी के कलात्मक सादृश्य पर उर्दू और अग्रेजी को प्राचीन कहानियाँ और अफसाने यो आरम्भ किए गए है : "एक दफा का जिक्र है कि" और "वस आपन ए टाइम"।

---

[१] जातक-प्रथम खंड, पृष्ठ २०७, २०८, २०९
भदन्त आनन्द कौशल्यायन

ये जातक कथाएं बहुत ही व्यापक और मानवतत्त्व के समीप है। इन मे राजा, सेठ-साहूकार से लेकर दरिद्र, चोर, चाडाल, अपराधी आदि चर तथा नदी, पहाड, पेड-पौदे आदि अचर तथा सब प्रकार के जीव-जन्तु पशु-पक्षी, आदि सजीव पात्रो से रूप मे प्रयुक्त हुए है, और इन सब के माध्यम मे हमारे जीवन के व्यापक रूपो को बाधने का प्रयत्न किया गया है। यही कारण है कि पिछले दो वर्षो के इतिहास मे ये कथाए मानव समाज पर अनेक रूप से अपनी छाप छोडने मे असमर्थ हुई है तथा इन का समान प्रभाव परवर्ती सस्कृत कथा-साहित्य के निर्माण और दन्त-कथाओ पर इतना पडा कि जातक कथाएं कभी भुलाई नही जा सकती।

संस्कृत का परवर्ती कथा-साहित्य

सस्कृत के परवर्ती कथा-साहित्य मे 'वृहत्कथा' का स्थान सब से महत्वपूर्ण है, क्योकि प्राचीन संस्कृत कथा-साहित्य मे यह अति प्राचीन और सुमान्य कथा सग्रह माना गया है। पता लगता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी मे आन्ध्र राजाओ के समय गुणाढ्य नाम के किसी पंडित पैशाची भाषा मे इस कथा-ग्रथ को लिखा था। इसका समय ईसा की छठी शताब्दी से पूर्व ही माना जाना है। लेकिन वर्तमान समय मे यह ग्रथ एकदम अप्राप्य है, केवल इसका वैज्ञानिक प्रमाण हमे वाण के 'हर्ष-चरित्' दडी के 'काव्यादर्श' क्षेमेन्द्र की 'वृहत्कथा 'मजरी' औरसोम देवके 'कथा सरित्सागर' मे मिलता है। कुछ विद्वानो का तो कहना है कि क्षेमेन्द्र की 'वृहत्कथा मजरी', सोमदेव का 'कथा सरित्सागर' और बुद्ध स्वामी का 'वृहत्कथा श्लोक सग्रह' वृहत्कथा के ही आधार पर लिखे गए कथा-ग्रंथ है। जब तक 'वृहत्कथा' अप्राप्य है इस समस्या पर कोई समुचित प्रकाश डालना कठिन है।

इस भॉति परवर्ती सस्कृत कथा-साहित्य के अन्तर्गत 'वृहत्कथा श्लोक' 'कथा सरित्सागर' 'वैताल पचविंशतिका', 'शुकसप्तति', 'सिंहासन द्वात्रिंशिका', 'पचतत्र' और 'हितोपदेश' ही मुख्य कथा- ग्रथ हैं। वैसे लोग परवर्ती संस्कृत कथा साहित्य के वाण की कादम्बरी वसुवधुकी 'वासवदत्ता' और दडी का 'दस कुमार चरित्र' भी लेते हैं। परन्तु ये काव्य-ग्रथ कथा और उपन्यास की अपेक्षा गद्य काव्य अधिक और कथा कम हैं। वैसे यह तो व्यक्ति-स्वातत्रय की बात है कि दंडी ने गद्य-काव्य को ही कथा कही है। वैज्ञानिक दृष्टि से ये काव्य-ग्रथ हमारे आलोच्य ग्रंथो मे नही आ सकते। वैसे ये ग्रंथ कभी भुलाये नही जा सकते। वाण का 'हर्ष चरित्' तो निश्चित रूप से कथा-ग्रथ के बहुत ही समीप है

इसके कथा-तत्व मे यथार्थ और कल्पना का कलात्मक सयोग हुआ है, लेकिन कादम्बरी शिलष्ट और सामासिक पदावली की शैली के कारण इसकी कथात्मकता नष्ट हो गई है और भाषा चमत्कार उभर आया है।

वृहत्कथाश्लोक

यह ग्रथ बुद्ध स्वामी द्वारा प्रस्तुत हुआ है। इसकी कुछ कथाएं 'पचतत्र' और 'वैताल पचविंशतिका' से मिलती-जुलती है। लगता है कि ये समान कथाएं एक ही स्रोत दन्त कथा के फलस्वरूप प्रस्तुत हुई हैं। इसकी समस्त कथाएं श्लोको के माध्यम से आई हैं, फिर भी इन कथाओ मे कथा-तत्त्व पर्याप्त मात्रा मे है। इसका समय आठवी या नवी शताब्दी माना जाता है।

कथासरित्सागर

कथासरित्सागर का स्थान परवर्ती सस्कृत कथा-साहित्य मे अद्वितीय है। इस का समय ग्यारहवी शताब्दी है। इस विशाल कथा-ग्रथ मे असख्य कथाएं सग्रहीत हैं तथा सारी कथाए विभिन्न 'लवको' मे विभाजित होकर अन्यान्य तरगो के माध्यम से आई है। प्रत्येक 'लवक' क्रमश कथा की सवेदनाओ के अनुकूल आए है, जैसे—१. कथापीठ, २ कथामुख, ३. लावणक, ४. नर वाहन-दत्तोत्पति, ५. चतुर्दारिका, ६. मदनमचुका, ७ रत्नप्रभा, ८. सूर्यप्रभा, ९- अलकारवती, १०- शक्तिपशा, ११. वैला, १२ शशाकवती, १३ मदिरा-वती, १४. पच, १५ महाभिषेक, १६. सुरतमजरी, १७. पद्मावती और १८. विशमशील लवक। कथापीठ लवक की यह संज्ञा इसलिए दी गयी है कि वस्तुत. यह सम्पूर्ण 'कथा सरित्सागर' की पृष्ठभूमि है, धरातल है, जिस पर असख्य कथाएं प्रतिष्ठित हुई है। हिमालय के उत्तरवर्ती कैलाश शिखर पर अपनी प्रिया पार्वती के साथ शिव जी रहते है। एक बार शिव जी पार्वती जी से प्रसन्न हुए और उनसे पूछा—प्रिये! क्या चाहती हो? पार्वती जी ने उत्तर दिया—स्वामिन् कोई नयी कथा सुनाइए। शकर जी ने अपने और पार्वती जी के विवाह की कथा कह सुनाई, लेकिन इस कथा से पार्वती जी को सतोष न हुआ। तब शिवजी ने अपूर्व और मनोहर कथा कहने की प्रतिज्ञा कर पार्वती का रोष शात किया। पार्वती जी ने बदी को दरवाजे पर बिठा दिया और कह दिया कि भीतर किसी को न आने देना। फिर शिव जी पार्वती जी से विद्याधरो की कथा सुनाने लगे। लेकिन जब शिव जी कथा कहने लगे तब उन का बड़ा प्यारा गण—'पुष्पदंत' आया और जल्दी से रोकने पर भी वह न रुका और

योगबल से वह भीतर चला गया तथा जो कथा शिव जी ने सात विद्याधरो की कही—सब उस ने सुन ली और घर आकर निज स्त्री 'जया' को भी ज्यो की त्यो सुना दी। जया ने पार्वती जी से सब कथाओ को कह दिया। इस पर पार्वती जी बहुत कुपित हुईं और उन्होने शकर जी से कहा कि आपने कैसी पुरानी कथाएँ कही, उन सब को तो जया जानती थी। महादेव ने सब रहस्य बता दिया और पार्वती जी ने क्रोधित होकर पुष्पदत को शाप दिया—'नीच ! जा तू मनुष्य रूप मे जन्म ले।'

रुद्राणी चडिका का ऐसा शाप सुनकर माल्यवान गण पुष्पदत का पक्षपात करने लगा। इस पर कोपवती उमा ने उसे भी शाप दे दिया। फिर वे दोनो जया सहित भवानी के चरणो पर गिर पडे। तब भवानी ने शात होकर कहा, 'सुनो कुबेर जी के शाप से सुप्रतीक नामक एक यक्ष पिशाच हो गया है और विंध्याचल के जगलो मे रहता है, उसका नाम' 'काणभूति' है। उसे देखकर पुष्पदत को अपने इस जन्म की कथा याद आ जायगी और जब वह काणभूति को अपनी कथा सुनायेगा तो शाप से उसकी मुक्ति हो जायगी। फिर काणभूति से इस कथा को 'माल्यवान' सुनेगा, तब काणभूति की मुक्ति हो जावेगी और जब माल्यवान इस कथा को लोक मे प्रकाशित करेगा तब वह शाप से मुक्त होगा। यह कहकर पार्वती जी चुप हो गयी और वे दोनो न जाने कहाँ लुप्त हो गए।

योही कुछ दिनो के बाद पार्वती जी ने दया करके शकर जी से पूछा कि नाथ यह बताइये कि वे दोनो शापित व्यक्ति अब इस समय कहाँ होगे। तब शकर जी ने बताया कि कौशाम्बी महानगरी मे पुष्पदत तो वररुचि नाम से जन्मा है और माल्यवान सुप्रतिष्ठ नामक नगर मे गुणाढ्य नाम से प्रसिद्ध है।

इधर मृत्युलोक मे वस्तुतः पुष्पदत मनुष्य रूप मे वररुचि अथवा कात्यायन नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह विंध्याचल मे 'काणभूति' नामक पिशाच से भेंट करता है और शाप के अनुसार कात्यायन को अपने पूर्व जन्म की बाते स्पष्ट हो जाती है और यह कह उठा—मै पुष्पदत है मै तुझे महाकथा सुनाऊँगा। यह कहकर कात्यायन ने सात लाख श्लोको वाली महाकथा काणभूति को सुनायी।

कथासरित्सागर मे कथा का रूप

'कथासरित्सागर'[१] की कथाओ को पढने से स्पष्ट है कि ये अपने

---

[१]भाषा कथा सरित्सागर-प्रथम, द्वितीय भाग, बाबू रामकृष्ण द्वारा संपादित। भारत जीवन प्रेस, काशी, १९०५ ई०

कलात्मक रूप मे पुराणो की कथाओ की भॉति है—अर्थात् एक श्रोता है और एक वक्ता-कथाकार, जो एक मूलभूत कथा आरम्भ करता है तथा उसी मूलभूत कथा से धीरे-धीरे अन्यान्य कथाए स्वत. निकलती रहती है और प्रत्येक कथा अपने वास्तविक मूल्य मे स्वतत्र और पूर्ण-सी प्रतीत होती है। वस्तुत कथा की यह शैली मूलत. पौराणिक कथा-शैली और जातक तथा जैन कथाओ की शैलियो की मिश्रित शैली है।

वस्तुत श्रोता और वक्ता की दृष्टि से इसका मूल सबध शकर और पार्वती से है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से 'कथासरित्सागर' की सारी कथाएं वररुचि द्वारा कही गयी है और विध्याचल के जगल मे काणभूति ने सुनी है। वररुचि अपने जन्म से स्वय अपनी कथा आरम्भ करता है, लेकिन यहॉ दो विशेषताए आती है। यद्यपि 'कथासरित्सागर' की समस्त कथाओ की सवेदनाएं वररुचि के जीवन के धरातल से चलती है फिर भी कथा-रूप मे संवेदना इतनी विशाल और व्यापक हो जाती है कि वररुचि के समय का भारत, उस की समस्त तत्कालीन परिस्थितियाँ जैसे इनमे पिरो उठी है। फलत कथा सरित्सागर असंख्य स्वतत्र और पूर्ण कथाओ से परिपूर्ण हो उठा है। जहॉ किसी भी तरग मे वररुचि अपना वृतान्त कहते-कहते यह कहने लगता है कि—हे काणभूति योही व्याडी और इद्रदत्त के साथ उपाध्याय जी के स्थान पर रह कर मैने समस्त विद्या प्राप्त किया और युवा हुआ। एक समय की बात है कि हम लोग उस नगर मे इन्द्रोत्सव देखने गये और वहॉ एक कन्या परमसुन्दरी ऐसी दीख पडी कि उसे कामदेव का साक्षात् अस्त्र ही कहना चाहिए। उसे देखते ही मैने इंद्रदत्त से पूछा कि मित्र ! यह कौन है ? बस, इसके उत्तर मे इंद्रदत्त एक स्वतंत्र कथा कहने लगता है और दोनो के प्रश्नोत्तर से इस तरह असंख्य कथाएं निकलती-बनती रहती है। कभी राजा, मंत्री, पुरोहित की व्यक्तिगत कथा, कभी शासन और समाज की कथा और कभी ऐतिहासिक और पौराणिक चरित्र जैसे राजा वत्सराज, नरवाहनदत्त, राजा सूर्यप्रभ और विक्रमादित्य और इद्र, कुबेर, मयदानव और महासुर आदि की कथाए आती-रहती है तथा सर्वत्र इन कथाओ मे कथा की मूल सवेदना बहुत ही स्थूल वाह्य परिस्थितियो के धरातल पर चलती-रहती है, फलतः समस्त कथाओ का रूप एक ही जैसा है—अर्थात् एक कथा के तारतम्य और सूत्र मे अन्यान्य कथाएं पुष्प की पखडियो की भॉति विकसित होती जाती हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन पौराणिक दन्त-कथाएं, अधिक से अधिक रूप मे इस की कथाओ मे सगृहीत हो गयी हैं और यह कथाओं का सागर हो गया है।

वैताल पंचविशतिका

यह पच्चीस कथाओ का सग्रह है और इन कथाओ का वक्ता शव मे बसा हुआ एक वैताल था जो अपने श्रोता राजा विक्रमादित्य को अपने हठ से तंग करता था और अंत मे वह एक रहस्य का उद्घाटन करता है जिसमे राजा का बहुत कल्याण होता है। कोई ठग राजा विक्रमादित्य को ठगने की चाल से उन्हे आदेश देता है कि वे अमुक वृक्ष से अमुक लटकती हुई लाश को अगर उसके पास लाएँ तो वह राजा के लिए महान हितकर सिद्ध होगा। जब राजा उस लाश को उतार कर ले चले तो रास्ते मे उस लाश मे प्रतिष्ठित वैताल ने उन से प्रतिज्ञा करा ली कि वे रास्ते भर चुप रहेगे और अगर ये बोले तो वह फिर उसी पेड से जा लटकेगा। राजा ने प्रतिज्ञा कर ली और वैताल राजा को एक कथा सुनाने लगा और उससे उत्पन्न एक समस्या उस ने राजा के सामने रख दी, राजा ने उसका उत्तर दे दिया फलतः वैताल फिर उसी डाल से जा लगा। इस भाँति उस वैताल ने राजा से कुल चौबीस स्वतत्र कथाए कही और पचीसवी कथा को कह कर उस ने राजा के सामने कोई समस्या नही रखी, बल्कि उसने उस पाखंडी महात्मा का रहस्योद्घाटन कर दिया।

शुक सप्तति

इस कथा-ग्रन्थ मे कुल सत्तर कथाए है। एक तोते ने (वक्ता) अपनी स्त्री मैना (श्रोता) से ये सब कथाएं कही है। इसमे अधिकाश रूप मे तोते ने उन स्त्रियो की कथाएं ली हैं जो दुष्टा और कुल्टा है तथा जो अपने प्रपचो और छद्मभेषो से पुरुषो को छलती रहती है। लेकिन इन कथाओं का ध्येय स्त्री वर्ग को नीचा दिखाना या द्वेष मानना नही है वरन् उन्हे अधर्म-पथ से सत्पथ पर लाना है।

शुक सप्तति की कथाओ का धरातल यो है—एक वणिक मदनसेन परदेस जाता है और अपने शुक को घर को परी जिम्मेदारी दे जाता है। वह शुक वस्तुतः एक गधर्व था, उसने देखा की वणिक की पत्नी अपने पतिव्रत धर्म से गिरना चाहती है, तोता उस स्त्री को सत्पथ पर लाने के लिए सतर-रातों तक सतर कथाए कह सुनाता है और अन्तिम कथा को रात्रि को मदन स्वय आ जाता है।

सिहासन द्वात्रिशिका

इस कथा-सग्रह मे, विक्रमादित्य के सिंहासन में लगी बत्तीस पुतलियो

द्वारा कही हुई कथाए है, जिन्हे राजा भोज सुनते है और उस दैवी सिंहासन पर नही बैठ पाते। वस्तुत राजा विक्रमादित्य का सिंहासन इंद्र द्वारा दिया गया था जो विक्रमादित्य की मृत्यु के उपरान्त पृथ्वी मे गड गया था। कालान्तर उसे राजा भोज ने पुन: प्राप्त किया और उसकी सदुपयोग करना चाहा। लेकिन जब राजा उस पर बैठने को होते, हर बार सिंहासन से एक युवती निकल कर उन्हे सिंहासन पर बैठने से रोकती और राजा विक्रमादित्य की प्रशसा, महानता, शौर्य आदि की कथाएं सुनाती। इस तरह इस कथा-सग्रह मे कुल बत्तीश पुतलियो द्वारा सुनाई हुई बत्तीस कथाए है।

समीक्षा

उपर्युक्त चारो कथा-सग्रह 'कथा सरित्सागर' वैताल पचविंशतिका' 'शुक सप्तति' और 'सिंहासन द्वात्रिशिका' परवर्ती सस्कृत कथा-साहित्य के विशिष्ट स्तम्भ है। इनका प्रभाव जहाँ एक ओर जन-मस्तिष्क की कथा-ववृत्ति पर पडा, दूसरी ओर प्राकृत और अपभ्रश कथा-धारा पर भी पडा

जन-मस्तिष्क मे पैठ कर इन सग्रहो की कथाए आगे चलकर दन्त-कथाओ के रूप मे प्रचलित हुई तथा जन-समुदाय मे इनके आधार पर अनेक कथाएं गढी गयी। वस्तुत आगे चल कर हिन्दी-प्रदेश मे जितनी भी दत-कथाए और लोक-कथाए प्रचलित हुई, उन सब के आदिस्रोत यही उक्त कथा-सग्रह है, जो अपने विभिन्न विकसित रूप मे क्रमश 'कथा सरित्सागर' से 'कथासागर', 'वैतालपच-विंशतिका' से 'बैताल पचीसी', 'शुक सप्तति' से 'तोता-मैना किस्सा' और सिंहासन द्वात्रिशिका' से 'सिंहासन बत्तीसी' की कथाओ के रूप मे आई।

नीति सबंधी कथा संग्रह

समूचे परवर्ती सस्कृत-कथा साहित्य मे दो प्रकार की कथाए मिलती हैं, एक मनोरजन प्रधान, दूसरी शिक्षा और नीति प्रधान। संस्कृत कथा-साहित्य मे पहले प्रकार की कथाएं बहुत ही सामित और मानव-सापेक्ष है। लेकिन दूसरी प्रकार की कथाए सस्कृत कथा-साहित्य मे असीम है। इसमे चर-अचर, पशु-पक्षी सब को कथा-साधन बनाया गया है जैसे 'शुक सप्तति', 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' आदि की कथाए।

'पचतत्र' और हितोपदेश क्रमश' तेरहवीं और चौदहवी शताब्दी के आसपास की रचनाये है। लेकिन कथा की दृष्टि से ये दोनो नीति संबंधी कथा-

सग्रह है । लेकिन कथा की दृष्टि से ये दोनो कथा-सग्रह सस्कृत साहित्य की दो अमूल्य निधियाँ है । इन दोनो की तुलना पूर्व कथित कथा-ग्रंथ जैसे 'सरित्सागर' आदि से नही की जा सकती । क्योकि उनका प्रयोजन पाठको को विशुद्ध मनोरंजन देना है । जब कि इन कथा-ग्रन्थो का उद्देश्य मूलत धर्म और राजनीति की शिक्षा देनी है । इनका उद्देश्य नीति का स्पष्टीकरण है । इनके पात्र मूलतः पशु-पक्षी है और सभी मानव-समवेदनाओ से युक्त है ।

पचतंत्र में कथा का स्वरूप

समूचा पचतंत्र[१] पॉच विभिन्न तत्रो, जैसे १. मित्र भेद २. मित्र सप्राति ३ काकोलूकीय ४ लब्ध प्रणासे और ५. अपरीक्षित कारके मे सकलित है । ये प्रत्येक तत्र अपने मे स्वतत्र है और प्रत्येक तंत्र के अपने उपदेश और अपनी नीति है । यह समूची नीति, धर्मोपदेश और कूटनीति, विभिन्न कथाओ के माध्यम से आई है तथा प्रत्येक तंत्र मे अधिक से अधिक बीस कथाएं तक आई है । जैसे मित्रभेद तत्र मे मूर्ख बानर कथा, शृगाल दुन्दुभि कथा, दन्तित्म कथा, देवशर्म परिब्राजक कथा, वकलीर कथा, धर्म बुद्धि पाप बुद्धि कथा, वानरचत्क दम्पति कथा आदि कुल बाइस कथाएँ आई है ।

ये कथाएँ जिस रूप मे कही गयी है, कला की दृष्टि से उन मे जो विशेषताएँ आई हैं, वे सर्वत्र स्पष्ट हैं । प्रायः सभी तत्रो की मुख्य सवेदनाएं नीति संबधी हैं और इन संवेदनाओ की अभिव्यक्ति जिन कथाओ से हुई है, वे कथाएँ छोटी-छोटी और अनेक है । सब कथाओ के कथाकार पशु-पक्षी है और कथाओ के पात्र जड-चेतन है । ये कथाएँ अपनी शिल्पविधि के रूप मे, कथा-सरित्सागर की कथाओ की ही भॉति है । अर्थात कथा मे कथाओ का जुडने जाना और एक कथा से दूसरी कथा की उत्पत्ति और विकास होना इस की शैलीगत विशेषता है । सब कथाओ का मुख्य देश—दक्षिण प्रान्त मे महिलारोप्य नामक एक नगर और तंत्रो की उपकथाओ के देश उसी के समीपवर्ती वन, पहाड और वृक्षादि है ।

---

[१]विष्णु शर्मा का 'पंचतंत्र', सम्पादक—मन्नालाल अभिमन्यु और पंडित सीताराम झा, प्रकाशक—खेलाड़ी लाल ऐंड संस, कचौड़ी गली, बनारस सिटी, सन् १९३१ ई० ।

उक्त बातो के उदाहरण मे हम किसी भी तत्र को ले सकते है, जैसे मित्र भेद प्रथम तत्र का आरम्भ, मध्य और अत केवल इसी नीति से भरा पडा है कि धन का क्या महत्व है ? राजा किसे अपना मित्र बनाता है ? कौन मित्र कैसा होता है ? मित्रो के सबध मे राजा की क्या नीति होनी चाहिए। ये नीतियाँ विभिन्न कथाओ के माध्यम से कही गयी है तथा इन के कथाकार है 'करटक' और 'दमनक' नामक दो सियार। तत्र की कथा यो आरम्भ होती है—दक्षिण देश मे महिलारोप्य नाम का एक नगर था, वहाँ एक धनवान बनिया रहता था। वह धनोपार्जन के लिए अपनी गाडी पर बैठ कर, जिसमे सजीवक और नन्दक नामक बैल जुते थे, रवाना हुआ। रास्ते मे सजीवक नामक बैल जमुना की तलहटी के दलदल मे फस गया और बनिया उसे वही छोड कर अपने रास्ते चला गया। भाग्यवश बैल स्वस्थ होकर निकल आया और वही जगल मे रहने लगा। एक समय पिंगलक नामक एक शेर उसी जगह जमुना मे पानी पीने आया और वहाँ बैल को गर्जते हुए सुनकर, शेर वही डर से बैठ गया। सिह के करटक और दमनक नाम के दो सियार मित्र थे। दोनो अधिक विलब होने के कारण आपस मे चिन्ता करने लगे कि उनका राजा सिह कहाँ रह गया। इस पर करटक कहता है कि हे मित्र ! जो पुरुष बिना काम के काम करता है वह उसी प्रकार नष्टावस्था को प्राप्त होता है, जिस प्रकार काटे को निकाल कर मूर्ख बानर। इस तरह करटक मूर्ख बानर की कथा कहने लगता है। इस भाँति करटक दमनक और पिगलक आपस मे इस तत्र की तमाम कथाएँ कहते है। ये कथाएँ मानव-जीवन से प्रत्यक्ष रूप से संबधित न होकर पशुपक्षियो के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से मानव-जीवन की नीति दिशा मे प्रकाश डालती है। सब कथाएँ उपदेशात्मक शैली मे कही गयी है, यद्यपि कथाओ का रूप पूर्णत वर्णनात्मक है। वस्तुत पचतंत्र की कथाए कथा-तत्व को ध्यान मे रख कर नही लिखी गयी हैं, बल्कि इनका ध्येय इन कथाओ के साधन-मात्र से अमरशक्ति राजा के दुष्ट मूर्ख राजकुमारो को नीति कुशल और व्यावहारिक बनाना था। इस दिशा मे पचतंत्र की कथाएं पूर्णतः सफल हैं।

हितोपदेश और उसकी कथाएँ

पचतंत्र की ही भाँति हितोपदेश भी नीति-ग्रन्थ है तथा जिस उद्देश्य को लेकर पंचतत्र की कथाएँ आई है, उसी उद्देश्य से हितोपदेश की भी कथाएं आई हैं। पाटलीपुत्र के राजा सुदर्शन के समस्त पुत्र पराडमुख, कुमागी और शास्त्र के

पठन-पाठन से विरक्त थे। राजा के ऐसे ही पुत्रो को शिक्षा देने के लिए हितोपदेश कार विष्णुशर्मा ने इन कथाओ तथा अन्यान्य उपकथाओ और अन्तर्कथाओ मे समस्त शिक्षाओ और हितोपदेशो को पिरोया है। इससे यह सिद्ध है कि हितोपदेश पचतत्र की भाँति-नीति-ग्रन्थ है। इसकी आत्मा शिक्षा और उपदेश है और इसके रूप का निर्माण छोटी-छोटी कथाओ, अन्तर्कथाओ और उपकथाओ द्वारा हुआ है। इसमे कुल १ मित्रलाभ २ सुहृद्भेद ३ विग्रह और ४ सधि चार प्रकरण है तथा इन चारो प्रकरणो मे कुल मिला कर अडतीस कथाए है और इन कथा रूपी लताओ मे न जाने कितनी शिक्षाए, उपदेश आदि रूपी फल-फूल और पत्तियाँ चुनी हुई है।

प्रत्येक प्रकरण का अपना एक साध्य विन्दु है। इसी के प्रकाश मे उस प्रकरण की सारी शिक्षाए आती है और उस शिक्षा के ही अनुरूप उस प्रकरण की कथाए भी आई है। जैसे मित्रलाभ प्रकरण का साध्य-विन्दु है—उचित मित्रो से कितने लाभ है। बस इसी के प्रकाश मे मूल कथा आरम्भ होती है। कबूतरो और एक बहेलिये की कथा—बहेलिया कबूतरो को फँसाने के लिये जाल फैलाता है और उस पर चावल बिछाता है। इसे देखकर कबूतरो का सरदार उन्हे १. बाघ और लालची व्यक्ति की कथा सुना कर, सावधान करता है, और मूल कथा फिर आगे बढ़ती है। सब कबूतर अपने सरदार की आज्ञा से जाल सहित उडे तथा उडते-उडते एक चूहे के पास जाते है। वहाँ चूहा सब को बंधन-मुक्त कर देता है। चूहे की यह महानता देख कर एक कौए ने उस से मित्रता जोडने के लिए प्रार्थना की। इस पर चूहे ने २. सियार और मृग की कथा तथा ३. एक बिलाव और गृद्ध की कथा सुना कर उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है कि भक्ष्य और भक्षक की मित्रता कभी नही होती। फिर वह चूहा उस निर्जन वन मे क्यो रहता था उसने यह स्पष्ट करने मे ४. एक सन्यासी और अपनी कथा कह सुनाई। ५. लीलावती तथा बूढे की कथा तथा ६. लालची सियार की कथा कह सुनायी। इसके उपरान्त मूल-कथा का सूत्र फिर आगे चलत है। जिस समय चूहे कौए को ये कथाएं सुना रहा था, एक डरा हुआ मृग उसकी शरण मे आया। लेकिन चूहे ने मृग से ७ एक बनिये और उनकी पत्नी की बेइज्जती की कथा तथा ८. हाथी और सियार की कथा सुना कर उससे कहता है कि उन्हे वह स्थान शीघ्र ही छोड देना चाहिए। उन लोगो ने वही किया। लेकिन फिर भी बहेलिया उन का पीछा करता ही रहा। परन्तु मित्रो के लाभ से उनका कुछ भी न बिगड सका।

उक्त कथाओ के अध्ययन से स्पष्ट है कि एक मूल कथा समूचे प्रकरण में आदि से अन्त तक चलती है। इसकी एक निश्चित शिक्षा होती है। इसे शिक्षा के उदाहरण मे तथा इसकी परिपुष्ट मे अन्य उपकथाए और अतर्कथाए आती हैं। समस्त कथाओ के पात्र प्राय पशु-पक्षी हैं तथा समस्त देव-अदेव पात्र उपदेश और शिक्षाप्रद कथाएं कहते रहते है।

फलत, पचतत्र और हितोपदेश की कथाएं विशुद्ध रूप से नीति कथाएं है। इनका मुख्य लक्ष्य शिक्षा है और कथा-तत्व इन के साधन मात्र है। फिर भी परवर्ती सस्कृत कथा-साहित्य मे ये दोनो नीति ग्रन्थ सदा अमर रहेगे।

प्राकृत और अपभ्रंश में कथा-तत्व

संस्कृत की भाँति प्राकृत मे भी हमे कितने मुक्तक और प्रबन्ध काव्य मिलते है। लेकिन स्मरणीय यह है कि यहाँ इन मुक्तक और प्रबन्ध काव्यो मे आख्यान या आख्यानक काव्य के तत्व बहुत ही कम मिलते है। परन्तु महाराष्ट्री प्राकृत मे 'कौतूहल' द्वारा रचित 'लीलावती कथा' का स्थान आख्यानक काव्यो में बहुत है। इसकी कथा भी मनोरञ्जक है। गोदावरी तट पर प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन और सिंहल के राजा शिलामेघ की पुत्री लीलावती के प्रेम और विवाह का चित्रण कवि ने गाथाबद्ध रचना मे किया है। यह गाथाबद्ध रचना प्राकृत की सबसे बडी देन है। फलन संस्कृत कथा-शैली से प्राकृत मे गाथा का यह विकास स्मरणीय रहेगा। इस कथा को कवि ने दिव्य-मानुषी कथा कही है और इसमे वस्तुत: देवता और मनुष्य परस्पर दोनो वर्गों के पात्र मिलते है। सम्पूर्ण कथा अलंकृत काव्यमय शैली मे प्रस्तुत की गयी है तथा इस पर प्रबन्ध शैली का प्रत्यक्ष प्रभाव है। इसके अतिरिक्त मुख्य कथा के अतर्गत और कथाएं भी आयी है और इस के सुसबध करने तथा कथा को एक सूत्रता देने मे स्पष्ट रूप से कवि पर 'कथा सरित्सागर' और 'पञ्चतन्त्र', 'हितोपदेश' की कथा-शैली का प्रभाव लक्षित है।

अपभ्रश मे साहित्य और कला की दृष्टि से जैन अपभ्रश का स्थान सर्वोपरि है। इसमे मुक्तक काव्य और कथाएं अधिकाश रूप मे मिलती है। आख्यानक काव्य की दृष्टि से इसमे प्रेम-कथा 'पउमिसिरी चरिउ'—पद्मश्री चरित्र' धारिल कवि की एक मात्र कृति मिलती है। इसमे पद्मश्री के पूर्व जन्मो की कथाएं है। एक जन्म मे वह वसन्तपुर नगर के सेठ धनसेन की पुत्री धनश्री थी। धनदत्त और धनावह उसके भाई थे। एकाएक धनश्री विधवा

हो जाती है, और अपने भाई की शरण मे धार्मिकता का जीवन व्यतीत करती है। लेकिन उस के बडे भाई की स्त्री यशोमति उस पर व्यंग करती है और कुछ ही दिनो बाद तप करती हुई धनश्री स्वर्गवास करती है । दूसरे जन्म मे इस का जन्म हस्तिनापुर मे होता और इसका नाम पद्मश्री रखा जाता है । उधर धनदत्त और धनावह का पुनर्जन्म अयोध्या मे होता है और इनका नाम क्रमशः समुद्रदत्त तथा वृषभदत्त रखा जाता है । तरुण होने पर संयोगवश धनश्री और समुद्रदत्त से प्रेम होता है । लेकिन पूर्व जन्म के कर्मानुसार दोनो मे भेद उत्पन्न होता है। फलत समुद्रदत्त पद्मश्री को छोड कर कान्तिमती से विहाह करता है। पद्मश्री भ्रमण करती हुई अयोध्या पहुँचती है और पुन॰ कान्तिमती से अपमानित होती है। अन्त मे तपस्या करती हुई पद्मश्री मोक्ष प्राप्त करती है।

इस के अतिरिक्त श्रीचद के एक कथा-कोष का भी पता मिलता है। इस मे, विद्वानो का कहना है कि मनुष्य, देव, पशु-पक्षी आदि पात्रो के माध्यम से अनेक उपदेशात्मक कथाएं है । इस पर भी प्रत्यक्ष रूप से जातक और पचतंत्र का प्रभाव स्पष्ट है।

जैन अपभ्रश साहित्य मे महाभारत की कथा से सबधित अनेक कृतियाँ मिलती है। इस मे यशकीर्ति का 'हरिवश पुराण' सब से महत्वपूर्ण है।

साराशत प्राकृत और अपभ्रश साहित्य मे कथा का रूप मूलत. काव्यामक रहा है । जिसमे प्रबन्ध और मुक्तक के रूप विशेष ढग से मिलते हैं । जैसे, प्राकृत प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत 'सेतुबन्ध' साहित्यिक महाकाव्य है। 'महावीर चरितादि' जैन धार्मिक प्रबधात्मक रचनाएँ है, तथा बसुदेव हिन्दी और समराहच्चकहा गद्य-पद्य मिश्रित कथा कृतियॉ है । मुक्तक के अन्तर्गत गाथा सप्तशती' और 'वज्जलग्ग' स्मरणीय है । अपभ्रश प्रबन्धात्मक काव्य मे 'पउमसिरीचरिउ' के अतिरिक्त 'भविसयत्त कहा' और 'विशुद्ध खड-काव्य' के अतर्गत 'सदेसरासक' और व्रतादि से सम्बन्धित अनेक पद्यवद्ध छोटी-छोटी कथाएँ मिलती हैं।

इन सब का प्रभाव परवर्ती साहित्य के कथा-तत्व पर कितना पडा इस के उत्तर मे हम मध्यकालीन हिन्दी आख्यान काव्य को रख सकते हैं तथा प्राकृत अपभ्रश के कथा-तत्व को हम इत मध्यकालीन आख्यानक काव्य के कथा-तत्व मे ढूँढ़ सकते हैं । लेकिन हिंदी के आदि युग चारणकाल अथवा वीरगाथा काल मे इसका क्या प्रभाव पडा, यह चिन्त्य है । वस्तुत हिंदी साहित्य के आदि काल मे भी कथा-तत्व और कथा-प्रवृत्ति दोनो अपने सुदर रूप मे हमे मिलती

है। यही कारण है कि कुछ विद्वानो ने इस काल को प्रेम-गाथा और लोक-गाथा काल कहा है।

चारण साहित्य मे कथा-तत्व

समूचे चारण साहित्य मे दो शैलियाँ मिलती है। प्रथम प्रबन्धात्मक शैली और द्वितीय गीतात्मक शैली। पिछले पृष्ठो मे हमने देखा है कि प्राकृत और अपभ्रश मे प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य दोनो वहाँ मिले है। उस काल मे भी अपेक्षाकृत प्रबन्ध काव्य साहित्य के अन्तर्गत था और मुक्तक काव्य जनता की वस्तु थी। तथा इसी को गेय बता कर और इस मे अन्यान्य दन्त-कथाओ को जोड कर इसे अपने मनोरञ्जन मे लाते थे। दूसरी ओर इसी को जैन धर्मावलम्बी, नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय वाले अपनी धार्मिकता के प्रचार मे सदुपयोग करते थे।

विषय की दृष्टि से चारण साहित्य मुख्यत चार त्रिषयो मे विभाजित हैं। ये विषय हैं—इतिहास, बात, प्रसग और दास्तन। इन की परिभाषा चारणों ने यो दी है—

—'जिण रिवसा मे दराजी रहै खिसो इतिहास कहावै।'

—'जिण खिसा मे कम दराजी सो खिसो बात कहावै।'

—'इतिहास रो अवयव प्रसंग कहावै।'

—'जिण बात मे एक प्रसंग हीज चमत्कारिक होय तिनका बात दास्तान कहावै[१]।'

इस प्रकार चारण साहित्य मे पद्य को कविता और गद्य को वार्ता कहा गया है। इसी वर्ता को ही 'वचन का' बात और ख्यात कहा गया हैं। बात वस्तुत· किस्से और कथा के रूप मे आया है और ख्यात इतिहास के रूप मे।

कविता के अतर्गत 'वीसलदेव रासो' पृथ्वीराज रासो' आते है। प्राय इन सब कथात्मक काव्यो मे विभिन्न कथाओ की अवतारणा हुई है और उन्ही के धरातल पर इनके काव्यात्मक स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई है। यहाँ इन कथाओ मे प्राय. एक ही मूलभूत सवेदना है—कि कोई राजा किसी रानी से प्रेम करता

---

[१]A Descriptive catalogue of Bardic and Historical Manuscripts, Sectison 1, Prose Chronicles Part 1, dy Dr. L P. Tessitory Page 6.

है, उस से विवाह होता है, विरह की स्थिति आती है, सयोग होता है, अथवा किसी राजा को अपने तमाम विवाहों मे अनेक युद्ध करने पडते हैं।

कथा के इन रूपो मे लौकिक भावना अधिक है। यही कारण है कि इन मे से कुछ प्रथाओ का प्रचलन हमारी लोक-भावना मे अधिक है और इन का रूप मुख्यत: दन्त-कथात्मक हो गया है। फलत (चारण काल) ग्यारहवी शताब्दी से आरम्भ) से आगे ही दन्त-कथाओ और कथात्मक लोक-रूचि ने अनेक लोक-गाथाओं की सृष्टि की है। डा० रामकुमार[1] वर्मा ने, चारण काल के उपरान्त ही इस सृष्टि काल को स्वतत्र लोक गाथा काल माना है।

लोक-गाथाएँ

वस्तुत अपभ्रश मे ही और उसके साथ ही साथ सिद्धानाथ सम्प्रदाय वाले जन-भावना मे वैराग्य अथवा धार्मिकता के अन्य स्वरूपो को प्रतिष्ठित करने के लिए अनेक इतिवृत्तात्मक सृष्टि करते थे। ये सब इतिवृत्ति संसार के भौतिक प्रेम के धरातल पर खडे किए जाते थे और अन्त मे इनके द्वारा इस भौतिक ससार की निस्सारता सिद्ध की जाती थो। दूसरी और प्रकृति, अपभ्रंश और बाद को चारण साहित्य के कथात्मक काव्य धीरे-धीरे अपने परिवर्तित और अपरिवर्द्धित रूप मे लोक रूचि मे घुल-मिल रहे थे।

इग लोक-गाथाओ मे गीतात्मकता इनकी प्रमुख विशेषता है। इस के अतिरिक्त इनमे जातीय सास्कृतिक परपरा, प्राकृति सौदर्य, जीवन की सरलता और सरसता, आलौकिक प्रभाव तथा मानव और अमानव का संबध इन की अनेक विशेषताएँ हैं। भावपक्ष की दृष्टि से इन मे सर्वत्र व्यक्तिगत और पारस्परिक परिस्थितियाँ भी समान रूप मे वर्तमान रहती हैं, जैसे, नायक और नायिका मे पूर्वानुराग, वियोग और बारहमासा चित्रण आदि। समस्त लोकगाथाए अपने तीन रूपो मे मिलती हैं। पहला रूप पद्यात्मक दूसरा गद्यात्मक और तीसरा मिश्रित है।

पद्यतमक रूप मे सबसे प्रसिद्ध लोक-गाथाए 'ढोलामारूरा दूहा'[2] और

---

[1] हिंदी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलता—ड० रामकुमार वर्मा, तीसरा प्रकरण पृष्ठ १३४।१६७ साहित्य भवन, ५ फनेस रोड, लाहौर।

[2] ढोलामारूरा दूहा—काशी ना० प्रचा० सभा से प्रकाशित १९९१ वि०

'माधवानल काम कदला'[१] है। इन के अतिरिक्त 'हीर रॉझा' कुतुब सतक, 'सिहासन बत्तीसी'[२] 'पच सहैलीरादूहा'[३] मैनासत'[४] 'चन्दन मालियागिरी सी बात', त्रिया विनोद[५] भी सुन्दर पद्यात्मक लोग-गाथाएं है।

गद्यात्मक रूप से 'बैताल पचीसी', 'सिहासन बत्तीसी' की कथा 'बगले हंसिणी की कथा', और 'फुटकर वाता रौ सग्रह' हैं। 'फुटकर बाता रौ' सग्रह मे, डा० एल० पी० टैसीटरी ने अनेक कथाओ का संग्रह दिया है, जैसे 'साई कर रहबो है तै री बात' 'कुतुब दी साहिजादै री बात', 'मौसल री बात', 'देवौ नायक देरी बात', 'बुद्धिमल कथा दो कहाणियाँ', 'मौसल री बात', 'सुपियार देरी बात', 'आठ कहाणियाँ', 'पाँच कहाणियाँ', 'वीभरे अहीर री बात', 'अमादै भटियाणै री बात', 'पलक दरियाव री कथा'। इन सब के कथाकार अलग-अलग चारण है।

मिश्रित रूप मे 'मदन सतक', 'चद्र कुवर री बात', 'वीजा सोरठ री बात', और 'सदाबछ सावलिगा री बात' इन के सुन्दर उदाहरण है।

वस्तुतः इन सब के निर्माण और सृष्टि मे सस्कृत के परवर्ती कथा-साहित्य, दन्त-कथाओ, इतिहास और कल्पना का सामूहिक हाथ है। इन लोक-गाथाओ के अध्ययन से स्पष्ट है कि जहाँ कोई लोक-गाथा कुछ काल्पनिक प्रेम चरित्रो को लेकर उन की इतिवृत्ति में सँवारी गयी है, वहाँ अन्य लोक-गाथाएँ कुछ ऐतिहासिक या सामाजिक घटनाओ के आधार पर अवतरित हुई है। इन के अतिरिक्त कुछ कथाए ऐसी भी आती है, जिन पर प्रत्यक्ष रूप से प्राकृत, अपभ्रंश और चारण काल के कथात्मक काव्य की छाप है जैसे—'ढोलामारू', 'हीर-रॉझा'।

इस तरह इन लोक गाथाओ ने अपने समस्त पूर्ववर्ती कथा-साहित्य के प्रकारो का अपने रूपो मे इतनी सुन्दरता से समन्वय किया है कि उन मे जहाँ एक ओर विभिन्न कथा-शैलियो का समावेश है, दूसरी ओर उन मे उपदेश, नीति, शिक्षा, इतिहास व्यक्ति और समाज सब से तादात्म्य स्थापित हुआ है।

---

[१]सम्पादक, एम० आर० मजूमदार : ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, बडौदा

[२]राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (प्रथम भाग) पृष्ठ १५२ १५३ : पं० मोतीलाल मैनारिया, हिन्दी विद्यापीठ उदयपुर १९४२।

[३]वही पृष्ठ ५०

[४]बार्डिक एण्ड हिस्टा० सर्वे अव् राजपूताना सेक्सन २, पार्ट १, पृ० ४२

[५]राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रान्थो की खोज (प्रथम भाग) पंडित मोतीलाल मैनारिया, हिन्दी विद्यापीठ, उदयपुर, १९४२; पृष्ठ ३९।

ऐसा एक स्थान पर सब कुछ कैसे सभव हुआ ? इसका सीधा-सा उत्तर है कि साहित्य का कथा-पक्ष बहुत सरलता से जन-रुचि मे स्थान कर लेता है और जन-रुचि की दत-कथात्मक, मनोरजनात्मक शक्ति तथा प्रेम और वीरता की प्रेरणा उनमे अनायास ही कितनी लोक-गाथाओ की सृष्टि करती रहती है ।

उपर्युक्त गाथाओ मे कितनी प्रमुख गाथाएँ है—जैसे 'ढोलामारू' और 'माधवानल काम कदला' इन सब का धरातल मुख्यत: प्रेम है । इन प्रेम-गाथाओ का स्थान जन-भावना मे इतना है कि इन के विभिन्न रूप अथवा इन के सादृश्य पर बने और भी प्रेम-गाथाओ हमे अन्य जनपदीय बोलियो मे मिलती है । फलत: यही लोक-गाथा काल हमारे जनपदीय साहित्य का विकास काल है और इसी साहित्य के प्रभाव से हमारी ग्राम कथाए, प्रेम कथाएं आज भी विकसित होती रहती है । लेकिन विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से इन लोक-गाथाओ का प्रारम्भ जैन कवियो की वैराग्य परक् रचनाओ से प्रारम्भ हुआ, लौकिक प्रेम-कथाओ मे इन का पूर्ण उत्कर्ष हुआ और प्रेमाख्यानक काव्यो मे इन का पर्यवसान हुआ[1] ।

मध्यकालीन हिन्दी आख्यानक काव्य

मध्यकालीन हिन्दो काव्य मे प्रेमाख्यानक काव्य सब से अधिक मिलते है प्राकृत और अपभ्रंश मे आए हुए प्रबन्ध काव्य या आख्यान काव्य विशुद्ध प्रेम के धरातल पर मिलते है । हिन्दी के चारण काल मे भी उस की प्राय. वही स्थिति रही लेकिन लोक-गाथाओ मे वह प्रेम विशुद्ध लौकिक धरातल पर आया तथा उस पर अन्यान्य लोक-गाथाएं और प्रेम-कथाएं प्रतिष्ठित हुई । मध्यकालीन हिन्दी आख्यानक काव्यो मे इन्ही लौकिक-कल्पित अथवा मिश्रित प्रेम कथाओ में अध्यात्मिकता जोडी गयी, और इस के तादात्म्य से हिन्दी मे जो आख्यानक काव्य आए, उन मे कथा शिल्प और भावात्मकता दोनो अपूर्व ढग से सिद्ध हुए। ये मध्यकालीन हिन्दी-आख्यानक काव्य-जैसे, कुतुबन की 'मृगावती', जायसी का 'पद्मावत', मझन की 'मधुमालती', उसमान की 'चित्रावली', नूर मुहम्मद की 'इंद्रावती' और दुखहरन की 'पुष्पावती', आदि . जहाँ एक ओर अपने

[1] **हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० १४५ : डा० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन लाहौर ।**

वर्णनो, चित्रणो और काव्यात्मक रसात्मिकता मे उत्कृष्ट है : वहाँ दूसरी ओर इन का कथा शिल्प भी परम आकर्षक है ।

कथा-शिल्प

'पद्मावती', 'मृगावती', 'मधुमालती', 'इद्रावती' आदि प्रेमाख्यानो का कथा-शिल्प प्राय एक ही भाँति है । क्योकि इन सब मे मूल कथा प्रारम्भ से विभिन्न आरोह-अवरोहो के साथ अन्त तक चलती रहती है तथा अपने संयोग विन्दु पर आकर रुक जाती है । इन के पात्र, कथानको की सधियाँ तथा इन के वर्णन सब प्रायः एक ही प्रकार है, लेकिन मझन की 'मधुमालती' के कथा-शिल्प पर 'कथा सरित्सागर' और 'हितोपदेश' के कथा-शिल्प का प्रभाव है । अर्थात् मूल कथा के विकास के साथ-साथ तमाम अन्तर्कथाएँ और उपकथाएँ उस से फूटती रहती है और इन कथाओ की चरम-परिणति मूल कथाओ मे ही होती रहती है ।

इस प्रकार उक्त सभी प्रेम कथात्मक कृतियो मे कथा-तत्व और कथा-शिल्प दोनो पर्याप्त मात्रा मे है ।

यहाँ कथा-तत्व अथवा कथानक वस्तुत इसीलिए इतनी कलात्मकता से प्रस्तुत किए गए है, कि उस समय जनता उतने बडे-बडे प्रेमाख्यानो को अधिकतर कथा की जिज्ञासा और आग्रह से पढती और सुनती रही होगी, आध्यात्मिकता के आग्रह से उतना नही । अतः स्पष्ट शब्दो मे इन प्रेमाख्यानो मे कथा-तत्व युग की वस्तु है और इनको आध्यात्मिकता कवि को अपनी वस्तु रही है, जिस का संचयन वह स्वान्त-सुखाय के लिए करता रहा होगा तथा इस विकास के पीछे प्राकृत और अपभ्रम कथा-तत्व की प्रेरणा सस्कृत के परवर्ती कथा-साहित्य के तत्वो की प्रेरणा से अधिक रही है ।

वार्ता साहित्य की धार्मिक-कथाएँ

चारण साहित्य मे हमे बात की शैली का दर्शन हो जाता है । लेकिन उस काल मे बात मुख्यत. पद्य ही के लिए प्रयुक्त होता था । यहाँ वार्ता साहित्य मुख्यतः ब्रज भाषा गद्य की वस्तु है और इस वार्ता पर प्राचीन संस्कृत की कथा वार्ता शैली की पूरी छाप है । यह साहित्य विशेषकर पुष्ट-मार्गीय श्री वल्लभ सम्प्रदायी वैष्णव से सम्बन्धित है । इस मे यथासम्भव वैष्णव भक्तो के जीवन सम्बन्धी घटनाओ का वर्णन कथाओ के माध्यम से हुआ है । इन कथाओ के

ध्येय वल्लभ सम्प्रदाय के प्रति हममे आस्था उत्पन्न करनी है। वाता से यहाँ तात्पर्य, वैष्णव के जीवन सम्बन्धी घटनाओं की कथा के पुट से अभिगत करना है। वार्ता साहित्य के मुख्यत: दो प्रतिनिधि ग्रथ है १. चौरासी वैष्णवन की वार्ता[1] और २. दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता[2]।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता

चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे कुल चौरासी वार्ताएँ संगृहीत है। इन मे वे वार्ताएँ मिलती है जो वैष्णव के जीवन सम्बन्धी विवरण पर थोडा-सा प्रकाश डालती है, जैसे, 'दामोदर दास हर्षानी की वार्ता', 'पद्मनाभ दास कन्नौजिया ब्राह्मण', 'कन्नौज मे रहने तिनकी वार्ता', 'नरहर दास तिनकी वार्ता' आदि। इन वार्ताओं मे वैष्णव भक्तो के जीवन सम्बन्धी किसी एक घटना से अधिक का विवरण इन मे नही मिलता और यह विवरण केवल एक छोटी-सी बात के धरातल पर कथात्मक के पुट से आता है। जैसे, कविराज भाट 'तिनकी वार्ता[3] 'सो वे कविराज भाट ब्राह्मण हुते, सो तीन भाई हुते सो तीन भाई श्री आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय है उनका समर्पण करवायौ पाछै श्रीनाथ जी के सन्निधान कवित्त सुनावते पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभु कविराज भाट के ऊपर बहुत प्रसन्न रहने सो वे कविराज भाट श्री आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे परम कृपा पात्र भगवदीय है ताते इनकी वार्ता अब कहाँ ताई लिखिए।'

उक्त वार्ता से स्पष्ट है कि इस का धरातल कथा की दृष्टि से कितना सामान्य है। न इसमें कोई कथा-तत्व ही है, न जीवन का कोई सतुलितपक्ष ही।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

ये वार्ताएँ भी मूलत: धार्मिक धरातल से आई है, लेकिन इन की संवेदनाओ मे अपेक्षाकृत कुछ अधिक कथा-तत्व आए है। भाव-पक्ष मे मानव अनुभूतियाँ और उनके चरित्रचित्रण की ओर आग्रह भी है जैसे वेश्या की

---

[1] **गोकुलनाथ, लक्ष्मी वेंकटेश्वर, कल्याण बम्बई, स० १९८५,**

[2] **गोकुलनाथ, लक्ष्मी वेंकटेश्वर, कल्याण बम्बई, सं० १९८८,**

[3] **चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ० २४९**

बेटी[१], हस हसनि[२], दो ठग[३], दो प्रेत[४], एक वेश्या[५], एक चोर[६], पठान का बेटा[७], एक सौदागर[८] और सासुबहू[९] आदि वार्ताएं चौरासी वैष्णवन की वार्ताओ से बिलकुल अलग है। इन मे अधिक से अधिक कथा-तत्व आए है तथा इन का स्थान कथा विकास की कडी मे कथा-तत्व की तीन विशेषताएं नितान्त स्पष्ट है। इस मे एक छोटी-सी कथा वस्तु है, एक घटना है, और इन दोनो का आरोह अवरोह भी है, तथा इन के विकास की एक सूत्रता भी है। लेकिन फिर भी इन वार्ताओ का ध्येय वही है कि वैष्णवधर्म सर्वोत्कृष्ट है और श्री ठाकुर जी परम महान् है।

शिल्प विधि

विशुद्ध शैली की दृष्टि से ये वार्ताएँ वर्णनात्मक ढग से कही गयी हैं। इन मे कौतूहल और जिज्ञासा वृत्ति पर कोई विशेष बल नही पडता। फलत इन वार्ताओ मे कथा-तत्व केवल इसी अर्थ मे है कि यहाँ जीवन की किंचित् घटनाओ विवरणो की अभिव्यक्ति कथा के माध्यम से हुई है। लेकिन इन से हम यो भी कह सकते है कि हिन्दी गद्य मे यह पहला प्रयत्न है, जहाँ जीवन की कुछ यथार्थ बाते कथा-तत्त्व मे ढल कर हमारे साहित्य मे आई हैं।

सिहावलोकन

पिछले पृष्ठो मे हमने सक्षिप्त रूप मे वैदिक काल से लेकर हिन्दी के मध्ययुग तक कथा-साहित्य के ऐतिहासिक विकास-सूत्र का अध्ययन किया है, इस मे हमने वैदिक सस्कृत, पाली प्राकृत, अपभ्र श, चारण-काल तथा मध्य युगीन हिन्दी आख्यानाक काव्यो वार्ताओ आदि मे कथा के क्रमिक रूपो का अवलोकन

---

१ **दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० १२७**

२ **दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ३७२**

३ **दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ३६४**

४ **दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० २७८**

५ **दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० २६४**

६ **दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० २२४**

७ **दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ३०८**

८ **दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ४९५**

९ **दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ३९२**

तथा अध्ययन् किया है। इन मे जहाँ हमने कथा की विभिन्न शैलियो से परिचय प्राप्त किया है, वहाँ हमे यह भी स्पष्ट हुआ है कि कथा और चरित्र के रूपो के परिवर्तन के साथ-साथ किस भाँति कथाओ, आख्यानो के विषय और लक्ष्य मे भी परिवर्तन होते गये हैं।

वैदिक काल मे कथाएँ अपने बीज रूप मे, देवताओ की स्तुति और यज्ञादि के मत्रो के बीच मे छिपी हुई थी और उनका ध्येय विशुद्ध धार्मिक था। उपनिषद् काल मे कथाओ की मुख्य सवेदनाएँ अध्यात्म ज्ञान और आध्यात्म चर्चा को लिये हुए आई हैं। पौराणिक काल मे जीवन अपने सम्पूर्ण रूपो मे अभिव्यक्त हो उठा है। धर्म, समाज, राजनीति का समावेश साहित्य मे हुआ है: फलतः यहाँ से दन्त-कथाओ एव आख्यानो का आरम्भ हुआ है। जीवन और साहित्य मे कथा ने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया है। इस के प्रभाव का उदाहरण हम ने सम्पूर्ण परिवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य मे देखा है। पालि साहित्य मे कथाओ का आकार अपेक्षाकृत छोटा हो गया है और कथा के माध्यम से धर्म की प्रचारात्मक नीति की नीव पडी है। प्रकृति और अपभ्रंश मे कथाएँ लौकिक एव जीवन और यथार्थ धरातल पर आयी है, फलतः यहाँ मनोरजक कथाओ के साथ ही प्रेमाख्यानो और आख्यानो की भी सृष्टि हुई। चारण काल और गाथा काल मे कथा के इस विकास का चरम उत्कर्ष हुआ तथा मध्य युग के प्रेमाख्यानो और वार्ताओ मे से उसका पर्यवसान हुआ।

आविर्भाव युग

हिन्दी के आरम्भ और मध्यकाल मे काव्य की प्रमुखता थी। प्रायः सब प्रकार के विषयो और विवेचनाओ का माध्यम पद्य ही था, लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि काव्य की इस अपूर्व प्रमुखता मे कथा का महत्व सर्वत्र था। कुछ ही स्फुट गीतो और उद्‌गार प्रकट करने वाले कवियो को छोड कर शेष समस्त कवियो की वाणी का मूलाधार कथा ही था। चन्दबरदाई का, 'रासो' जगनिक का, 'आल्ह-खण्ड', तथा उस समय की अन्य लोक-गाथाएँ, जायसी का पद्‌भावन सूर का 'सूरसागर तुलसी का 'मानस' केशव की 'रामचन्द्रिका' लाल का 'छत्र प्रकाश' और सूदन का 'सुजान चरित्र' आदि सब काव्य ग्रथो का मेरुदण्ड कथा ही है। दूसरे शब्दो मे हम यहाँ तक कह सकते हैं कि ये सब कथाएँ हैं या कथाओ पर आश्रित काव्य कृतियाँ है। वस्तुतः यह परम्परा सस्कृत साहित्य के महाकाव्यो और अपभ्रश साहित्य के प्रेमख्यानो से आई हुई ज्ञात हुई है। हिन्दी के मध्य युग ही मे बल्लभ-सम्प्रदाय ने ब्रजभाषा गद्य को भी जन्म दिया और गोकुलनाथ जी की वैष्णवो की वर्त्ताओ के माध्यम से हिन्दी कथा को एक नवीन मार्ग मिला, लेकिन इस दिशा मे शीघ्र ही हिन्दी खडी बोली के आ जाने से यह मार्ग बन्द हो गया और कथा का सर्वथा अन्य रूप हमारे सामने आया।

हिन्दी खड़ी बोली में कथाओं का आरम्भ

ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रजभाषा, राजस्थानी और खडी बोली गद्य इन तीनो की स्फुट साहित्यिक परम्पराएँ हमे पहले मिली थी, लेकिन उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे इन तीनो परम्पराओ से खडी बोली गद्य को एक नूतनतम पथ मिला और यह ब्रजभाषा और राजस्थानी की परम्पराओ को छोड कर स्वयं प्रकाश मे आ गई तथा यहाँ से इसके गद्य साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास मिलने लगा, जिस मे कथा की श्रृखला सब से महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध ही हिन्दी कहानियो की पीठिका है। पिछले पृष्ठो मे हमने जो अब तक कथा-सूत्र का अध्ययन किया है, वस्तुत. उस का महत्व केवल ऐतिहासिक है, लेकिन भारतेन्दु से पूर्व का हिन्दी कथाओ का

अध्ययन तथा अगले पृष्ठो मे उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्द्ध के कथा-सूत्र और पत्र-पत्रिकाओ मे कथा-तत्व और कहानी-तत्व का इतिवृत्तात्मक अध्ययन हिन्दी कहानियो की भावभूमि का वह अध्ययन है, जिसके प्रकाश मे इसकी उत्पत्ति ढूढ़ी जा सकती है।

भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी कथाएँ

भारतेन्दु से पूर्व का कथा साहित्य मुख्यत, पौराणिक आख्यानो पर आधारित है और लेखक गण रागात्मक कल्पनाओ से प्रेरित हैं। भारतेन्दु से पूर्व (१८०० ई० से १८५८ ई०) हिन्दी गद्य की दिशा मे, हमे तीन महत्वपूर्ण ग्रन्थ मिलते है। पहला लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' (१८०३-१८०९) दूसरा सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' (१८०३ ई०) और तीसरा सैयद इसा अल्ला खॉ का 'रानी केतकी का कहानी' (१८०० ई० १८१० के बीच)। प्रेम सागर के अतिरिक्त लल्लू लाल से सम्बन्धित 'सिंहासन बत्तीसी' 'बैताल पच्चासी' और 'माधोनल' उनके अन्य कथा ग्रथ कहे जाते है, लेकिन ऐतिहासिक और आलोचनात्मक दृष्टि से केवल 'प्रेमसागर' का ही महत्व है, क्योकि इन के अन्य ग्रन्थ सस्कृत कथा साहित्य के भावानुवाद या छायानुवाद मात्र है।

प्रेम सागर

लल्लू लाल का प्रेमसागर[१] भागवत के दशम स्कन्ध का अनुवाद नहीं है, बल्कि दशम स्कन्ध के अनुसार कृष्ण चरित्र का पौराणिक दृष्टि से वर्णन है। इस तरह, समस्त प्रेमसागर इक्यानबे अध्यायो मे बॅटा है और सब अध्यायो मे कृष्ण के जन्म से लेकर कंस-बध और महाभारत के नायक अर्जुन-भेट तक की कथा है। इन अध्यायो के विस्तार मे भागवत के दशम स्कन्ध की सारी कथाएँ इस मे आ गई हैं, इन कथाओ की शैली अक्षरश. पौराणिक है। वर्णनो के माध्यम से कथा आरम्भ होती है और एक कथा की पूर्ति मे अनेक कथाएँ जन्म पाती जाती हैं। ये कथाएँ पुराणो की भॉति श्री शुकदेव जी द्वारा राजा परीक्षित से कही गई है।

"इतनी कथा सुनाय' श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, हे

---

[१] **प्रेमसागर—अनुवादक लल्लू लाल, सम्पादक प० योगाध्वन मिश्र फोर्ट विलियम किताब कालेज १८४२ ई०**

महाराज ! कस तो इस अनीति से मथुरा मे राज करने लगा और उग्रसेन दुख भरने । देवक जो कंस का चाचा था, उसकी कन्या देवकी जब ब्याहन योग हुई तब विन्नैजा कस से कहा कि यह लड़की किसको दे । वह बोला, सूरसेन के पुत्र बसुदेव को दीजिये । इतनी बात सुनते ही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलाय शुभ लग्न ठहराय, सूरसेन के घर टीका भेज दिया, तब तो सूरसेन भी बडी धूम धाम से बारात बनाय, सब देश देश के नरेश साथ ले मथुरा मे बसुदेव को ब्याहन आये[१] ।"

नासिकेतोपाख्यान

नासिकेतोपाख्यान[२] की भूमिका से स्पष्ट है कि यह पुस्तक सस्कृत के नासिकेतोपाख्यान से अनूदित है जिसमे चन्द्रावली की कथा कही गई है। वस्तुत. यह भी पौराणिक कथा है जिसे वैशम्पायन जी जनमेजय को सुनाते है कि ब्रह्मा के पुत्र उद्दालक मुनि के पास पिप्पलाद मुनि गये और उन्होने उनसे वैवाहिक जीवन व्यतीत करने की सलाह दी । घटनाओ के विकास मे उद्दालक नासिकेत के पिता होते है : और वह अपने पिता से मिलता है । नासिकेत की माता चन्द्रावली भी बाद को ढूढ़ती-ढूढती वही मिलती है और सब अपने आश्रम पर जाते है वहाँ उद्दालक की आज्ञा की अवहेलना पर नासिकेत को जीवित ही यमपुर जाने का शाप मिलता है। समयानुकूल वह फिर पिता के पास लौटता है तथा यमपुर आदि का वर्णन करता है ।

वस्तुत. यह कथा कठोपनिषद की है और अपने पौराणिक रूपो मे होती हुई आख्यान रूप मे बदली है । शैली की दिशा मे नासिकेतोपाख्यान 'प्रेम सागर' की अपेक्षा अधिक कलात्मक और सुसगठित है । यह पूर्णतः पौराणिक शैली मे आई हुई कथा है तथा समस्त कथाओ के वर्णन और उद्देश्य भी पौराणिक है ।

---

[१] प्रेमसागर, पृष्ठ ६

[२] नासिकेतोपाख्यान—अनुवादक, सदल मिश्र, सम्पादक श्याम सुन्दर दास, ना० प्र० सभा १९२५

[३] सैयद इंशा अल्ला खां लिखित रानी केतकी की कहानी : श्याम-सुन्दर दास बी० ए०, ना० प्र० सभा, तृतीय आवृति सं० २००२

रानी केतकी की कहानी

आलोच्य काल के कथा सूत्र मे, रानी केतकी[२] की कहानी का महत्व सब से अधिक है। यद्यपि इस के लिखने का उद्देश्य था कि एक ऐसी रचना की जाय जिसमे 'हिन्दी, हिन्दवी छुट और किसी वोली का पुट न मिले, हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो।' लेकिन फिर भी यह रचना उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध की प्रथम कथात्मक मौलिक रचना है। यह न किसी के आधार पर लिखी गई है, न इस पर किसी की छाया तक है। कथा कहने का ढग भी चित्ताकर्षक और मनोहर है। इस मे जहाँ-तहाँ कविता का भी पुट दिया गया है।

इसकी कथावस्तु से स्पष्ट है कि किसी देश के एक राजकुमार कुँवर उदैभान एक बार शिकार मे एक हिरनी का पीछा करते-करते एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ चालीस-पचास रडियाँ (स्त्रियाँ) झूला झूल रही थी। उन मे से एक रानी केतकी से इनका प्रेम हो गया। राजकुमार जब अपनी राजधानी मे लौटा, तब उस ने राजा से इस विवाह का प्रस्ताव किया। राजा की ओर से एक ब्राह्मण उस राजा के यहाँ गया, लेकिन राजा ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, फिर दोनो राजाओं मे लडाई हुई। रानी केतकी के पिता ने जोगी महेन्दर की सहायता से कुँवर उदैभान और उसके माँ-बाप को हिरनी बना दिया। इधर रानी केतकी ने भी उसी योग क्रिया से कुँवर का पक्ष लिया और उस ने उसे विजय दिलवाई। फिर दोनो की शादी हो जाती है।

शैली

वस्तुत. इशा अल्ला खॉ अरबी-फारसी के विद्वान थे। उनके संस्कारों में अरबी, फारसी मसनवियाँ और दास्तानो के रूप ताजे थे, फलतः उन्होंने इन सब अरबी-फारसी शैलियो को मिला कर, रानी केतकी की, कहानी लिखी है। इस का आरम्भ ईश्वर की प्रार्थना से होता है। इस के आरम्भ ही मे कहानी लिखने का प्रयोजन दिया गया है। इन बातो से मसनवी शैली का प्रभाव स्पष्ट है। दूसरी ओर इसकी कथा, इसके विकास आदि मे दास्तान शैली का प्रभाव है। समूची कथा विभिन्न परिच्छेदो से होकर आगे बढी है, जैसे (क) कहानी के जीवन का उभार और बोलचाल की दुलहिन का सिगार, (ख) आना जोगी महेन्दर गिर का कैलास पहाड से और कँवर उदैभान तथा उसके मॉ बाप को

हिरनी-हिरन कर देना, (ग) रानी केतकी का भभूत लगाकर बाहर निकल जाना, (घ) राजा इन्दर का कुँवर उदैभान का साथ करना, (ड) आ पहुँचना कुँवर उदैभान का ब्याह के ठाट के साथ दूल्हन की ड्योढी पर।

इशा अल्ला खाँ ने अपनी इस लम्बी कथा को 'कहानी' कहा है, यही कारण है कि हिन्दी के कुछ आलोचको ने 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की पहिली कहानी मानी है, लेकिन यह पूर्णत. अवैज्ञानिक है। यहाँ उन्होने कहानी का तात्पर्य केवल कथा से लिया है। जैसा कि इस कथा-ग्रन्थ से ही स्पष्ट है, यह एक लम्बी और विस्तृत कथा है, जिस मे बार-बार पद्य का भी प्रयोग हुआ है तथा इस की शैली से दास्तान और मसनवी का रूप स्पष्ट हो जाता है। लेकिन यह सत्य है कि हमारे आलोच्य काल की कथा की दिशा मे इसका मूल्य सब से अधिक है।

व्यवधान

हमारे उक्त आलोच्य काल मे यह जो कुछ कथा की दिशा मे सभव हुआ, उसका भी विकास आगे काफी समय तक न हो सका। यद्यपि यह सत्य है कि उक्त कथा साहित्य अपने कलात्मक रूप मे कुछ भी नही था। लेकिन फिर भी इस का विकास आगे एक लम्बे व्यवधान के कारण रुक ही गया। वह लम्बा व्यवधान दो दिशाओ से प्रस्तुत हुआ—प्रथम गद्य कथा के पाठको की अत्यन्त कमी थी और कोई भी गद्य कथा पढ़ने से दूर भागता था। यह विधा उस समय अत्यन्त उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती थी, फलतः जितने पाठक थे वे मुख्यतः पद्य की रचनाओ को पढ़ते थे। दूसरी दिशा मे राजनीनिक व्यवधान था। उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्द्ध तक आते-आते देश मे एक अजीब राजनीतिक असतोष फैल रहा था। अग्रेजी शासन के विरुद्ध देश मे क्रान्ति और विद्रोह की ज्वाला भडक रही थी, जिसकी चरम सीमा थी अठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति। इस तरह उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध के अतिम पन्द्रह-बीस वर्षो की स्थिति साहित्य-अवतारणा के बिल्कुल विरुद्ध थी। विशेषकर गद्य कथा की दिशा और भी रुकी थी राजनीतिक असतोष, फलतः स्वाभिमान जागरण की प्रेरणा से राजा शिवप्रसाद ने कुछ नई शैली मे जरूर लिखना आरम्भ किया, जैसे, 'गुलाब चमेली का किस्सा' 'राजा भोज का सपना', 'नरसिंह का वृत्तान्त', लेकिन इन सब के पीछे स्पष्ट रूप से पूर्व सस्कृत की नीति कथाओ और अरबी-फारसी की दास्तान शैली कार्य कर रही थी। फलत. इन सब हिन्दी कथाओ को कोई

नवीन मार्ग न मिल सका। (हम स्पष्ट रूप से कह सकते है कि हरिश्चन्द्र से पूर्व तक का हिन्दी कथा-साहित्य, उपन्यास और कहानी किसी भी क्षेत्र अथवा विद्या मे नही आ सकता। क्योंकि न इसमे उपन्यास कहानी की कोई शिल्प-विधि ही थी और न कोई भाव विशेष या वत्व विशेष ही।)

भारतेन्दु युग मे कथा-विकास

विशेषकर कथा की दिशा मे उन्नीसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतेन्दु युग है। इस युग मे कथा के धरातल से नाटको और उपन्यासो की सृष्टि अपूर्व ढंग से हुई। ऐसा क्यो और कैसे हुआ, इसको समझने के लिये हमे उन शक्तियों को देखना होगा, जो इस युग की मुप्रख प्रेरणा थी तथा जिनकी प्राण-शक्ति से यह समूचा युग अपने मे इतने विशाल साहित्य की सृष्टि कर गया। जिस से हमारे आधुनिक हिन्दी साहित्य को गौरव मिला तथा आधुनिकता की नीव पडी।

शक्तियाँ

वे शक्तियाँ थी-सुधारवादी आन्दोलन और राजनीतिक प्रतिक्रियाएँ। सुधारवादी आन्दोलन मे सर्व प्रथम 'ब्राह्म समाज' (१८२८ ई०) का नाम आता है। इसका जन्म पाश्चात्य विचारधारा की प्रेरणा से हुआ था, अत. बगाल मे भी यह केवल शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रहा। इसका प्रभाव न हमारी सामाजिकता पर पडा ना हो हमारे साहित्य पर, क्योकि इस आन्दोलन मे विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण नही के बराबर था।

भारतीय नवोत्थान तथा विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण हमे आर्यसमाज आन्दोलन मे मिला। इसकी स्थापना स्वामी दयानन्द ने १८७५ ई० मे की। यह आन्दोलन मुख्यत हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र का महान् आन्दोलन था। इस ने ही सब से पहले हिन्दू समाज के पुनरुत्थान और ईसाई तथा मुस्लिम धर्म के विरोध मे सब से सशक्त और ऊँची आवज उठाई। इस आवाज से समूची उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्द्ध को प्रेरणा मिली तथा इस के आन्दोलन का प्रभाव हमारे समाज के उच्च मध्यम और निम्न वर्ग पर समान रूप से पडा। सामाजिक क्षेत्र मे इस ने बाल विवाह, बहु-विवाह और वृद्ध विवाह का निषेध किया तथा विधवा विवाह का प्रचार किया। इसने स्त्री अधिकार और समानता की सर्व प्रथम आवाज उठाई। धर्म-पाखड, व्यभिचार के विरुद्ध इस ने आन्दोलन किया तथा अधविश्वासो रूढ़ियो, अध, भक्ति और भूत-प्रेतादि अमानुषिक शक्तियो की

आस्था को खडित किया। इस तरह से आर्य-समाज ने जहाँ देश मे सामाजिक पुनर्जागरण किया, वहाँ दूसरी ओर इसने देश की इसकी वास्तविक सस्कृति और विशालता की ओर प्रेरित किया। इस ने स्थान-स्थान पर गौ रक्षिणी सभाएँ और समाज की शाखाएँ स्थापित की। जगह-जगह पर यज्ञशालाएँ और गुरुकुलो को स्थापित कर, उन से वैदिक आदशो की शिक्षा दी। इसी समय अमेरिका मे थियोसोफिकल सोसायटी के जन्म दाता मेडम ब्लैटवस्की और कर्नल अलकाट भारतवर्ष मे आये तथा उन लोगो ने यहाँ थियोसोफिकल सोसायटी का केन्द्र स्थापित किया। इसके बाद ही श्रीमती ऐनीबिसेन्ट के भारत-आगमन ने इस मत का भारत मे और प्रचार किया। इन्होने अपनी सोसाइटी द्वारा पाश्चात्य दर्शन की उत्कृष्टता को सिद्ध करना चाहा और इसके साथ ही साथ इस मत ने हमारे देश की प्राचीन गौरव को भी हमारे सामने रखा तथा इसका खूब गुण-गान किया। इस सोसाइटी को यहाँ के शिक्षित वर्ग ने बहुत ही शीघ्र अपनाया क्योकि इस से हमारी राष्ट्रीय भावना को बल एवं हमारे सामाजिक पुनरुत्थान आन्दोलन को सहयोग मिल रहा था। थियोसोफी ने विशेषकर हमारी संकीर्णता को दूर करने के लिये बहुत अधिक प्रयत्न किया। रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानद और स्वामी रामतीर्थ के प्रयत्न और इनकी प्रतिभा ने देश मे आध्यत्मिकता की प्रतिष्ठा की तथा इन लोगो ने देश का ध्यान वैदिक संस्कृति की ओर आकर्षित किया।

दूसरी ओर इस युग मे राजनीतिक शक्तियो तथा इनकी प्रतिक्रियाओ ने भी अपूर्व शक्ति और नवोत्थान की प्रेरणा दी। वस्तुत १८५७ ई० की क्राति उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्द्ध की सब से बडी राजनीतिक घटना है। इस घटना के बाद, आने वाली बीस वर्ष तक देश मे शान्ति थी और अग्रेजी ने इसी समय में कितने शासन सम्बन्धी सुधार किये। देश मे वैज्ञानिक आविष्कारो रेल-तार आदि का प्रचार हुआ तथा १८५७ ई० के ही आसपास प्रमुख विश्वविद्यालयो की स्थापना भी हुई। फलस्वरूप, इगलैड, फ्रास, रूस जैसे देशो के साहित्य से हमारे सम्पर्क स्थापित होने का सूत्रपात हुआ। इसी समय इटली का स्वतंत्र होना और अमेरिका के सयुक्त राज्य की स्थापना ने हमारी राष्ट्रीय भावना मे और भी प्राण फूके। इस मे दूसरी ओर से आयरलैन्ड, रूस, इथोपिया, चीन जापान तथा इस्लाम आदि के आन्दोलनो ने अपूर्व बल दिया। इस तरह इन अन्याय राजनीतिक शक्तियो, प्रतिक्रियाओ और आधुनिकता के आन्दोलनो के फल स्वरूप १८८८ मे इण्डियन नेशनल काग्रेस का जन्म हुआ यह भी

घटना इस युग की दूसरी महान् घटना है। इससे हमारी राष्ट्रीय भावना को एक सशक्त और निश्चित मोर्चा मिल गया। हम आत्मसम्मान और राष्ट्र गौरव की भावना लेकर और भी प्रेरित हुए। इसी समय हाजसन, बोतलिंक् और मैक्समूलर आदि ने प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन और अनेक खोजो को हमारे सामने उपस्थित किया। इनकी खोजो तथा रचनाओ का प्रभाव यहाँ के शिक्षित वर्ग पर अपूर्व ढग से पडा और इन्हे अपने पूर्वजो, कवियो, मनीषियो, लेखको का सर्व प्रथम वैज्ञानिक परिचय मिलना आरम्भ हुआ। विशेषकर इस प्रेरणा से उस काल के लेखको मे एक अजीब रचनात्मक तथा उदात्त प्रतिक्रिया हुई।

उपर्युक्त दोनो प्रकार की शक्तियो और प्रेरणाओ ने भारतेन्दु युग को आधुनिक हिन्दी साहित्य के समस्त पक्षो के निर्माण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान की। सामाजिक आन्दोलनो ने जहाँ एक ओर हमारी सामाजिकता मे पुनर्जागरण क्रिया को स्फूर्ति दी, दूसरी ओर उसने युग के समस्त लेखको के सामने असख्य कथा-वस्तुओ और सवेदनाओ को उपस्थित किया तथा लेखको को अपनी मूक वाणी से आमत्रित किया कि वे इन के धरातल से नवीन साहित्य का निर्माण करे, अपनी लेखनी से समाज मे नव चेतना के प्राण फूके तथा देश मे नव प्रकाश ला दे। राजनीतिक प्रतिक्रियाओ ने जहाँ उन्हे राष्ट्रीय भावना और प्राचीन साहित्य की ओर प्रेरित किया, उसने युग के लेखको को विदेशी साहित्य के संपर्क मे ला खडा किया। इन्ही शक्तियो के फलस्वरूप इस युग के तमाम साहित्यिक उन्नायको (विशेषकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) के व्यक्तित्व पर स्पष्ट रूप से राजनीतिक, समाज-सुधारक, धर्मोपदेशक और प्राचीन सस्कृति के उन्नायक की छाप है। (यही कारण है कि भारतेन्दु युग के कथा-साहित्य की दिशा मे नाटक और उपान्यास की सृष्टि अपूर्व है। इस समूची सृष्टि मे भारतेन्दु का व्यक्तित्व सदा अमर रहेगा।) आधुनिक कथा-साहित्य मे उपन्यास और नाटको की परम्परा की देन इन्ही के व्यक्तित्व की देन है। इन्होने कथा की दिशा मे आधुनिक हिंदी कहानी का विकास क्यो नही किया, इस पर आश्चर्य होता है। भारतेन्दु मे कहानी कला को आगे बढाने की प्रतिभा और क्षमता थी। इस के उत्तर मे हम यही कह सकते है कि उस समय तक भारतवर्ष मे आधुनिक कहानी कला का बहुत ही अस्पष्ट रूप आ सका था। बगाल भी अभी पश्चिम से केवल उपन्यास कला सीख रहा था। भारतेन्दु विशेषकर प्राचीन संस्कृत नाटको को अनूदित करने तथा मौलिक नाटको, उपन्यासो आदि के लिखने मे

व्यस्त थे। उन्हे शायद कहानी-कला की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला और वे शायद यह समझते थे कि साहित्यिक क्रान्ति मे कहानी का विशेष महत्व नही है। वह हलकी और नगण्य है। इस युग के अन्य लेखक भी कथा-शैली के बडे रूप नाटक और उपन्यास के अनुवाद और मालिक सृष्टि मे ही अधिकतर व्यस्त थे। इस काल मे इस का विस्तार भी इतना हुआ कि वस्तुत. कहानी की कथा वस्तुओ और सवेदनाओ पर अधिकाशत: नाटक और प्रहसन ही लिखे गये। कहानी-कला का प्रयोग साहित्यिक आदर्श के अनुरूप नही समझा गया।

नाटक का विषय हमारी आलोचना सीमा के बाहर का विषय है, अतएव हम इसकी स्वतत्र समीक्षा न देकर केवल इतना ही कहना चाहते है कि इस काल मे नाटक साहित्य का इतना प्रसार और प्रभाव हुआ कि पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटको के अतिरिक्त लेखक गण छोटी-छोटी सवेदनाओ, इतिवृत्तो, घटनाओ और विषयो को लेकर प्रहसन लिखने लग गये, जिनमे देवकीनदन (१८७०) का नाम प्रमुख है और इनकी रचनाओ मे, 'रक्षा-बन्धन', 'एक-एक' के तीन-तीन', 'स्त्री-चरित्र', 'वेश्या विलास'' 'बैल छ टके को', 'जय नरसिंह को', 'सैकडो मे दस-दस', और 'कलजुगी जनेऊ', विशेष रूप से उल्लेखन्नीय है। अन्य प्रहसन लेखको और उनके प्रहसनो मे राधाचरण स्वामी का 'बूढे मुँह मुँहासे, लोग देखे तमाशे' किशोरीलाल गोस्वामी का 'चौपट चपेट', देवकीनदन तिवारी का 'कलयुगी विवाह' और चौधरी नवलसिंह का 'वेश्या नाटक' तथा गोपलराय गहमरी का 'जैसा का तैसा', आदि रचनाएँ प्रमुख है। इन प्रहसनो की संवेदनाएँ वस्तुत कहानी की सवेदनाएँ है, लेकिन उस समय तक कहानी-कला की अवहेलना के कारण उक्त लेखको ने इन कहानी अनुकूल सवेदनाओ से विवशत. प्रहसनो की सृष्टि की।

इन प्रहसनो की समस्याएँ अथवा वर्ण्य विषय मुख्यत: सामाजिक नैतिक कुरीतियाँ हैं, जैसे, बहु-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह, वेश्यागमन, चोरी-चडाली, अनैतिकता, पश्चिमी सभ्यता की गुलामी, धार्मिक-पाखड और स्त्री की हीन दशा तथा उन का शोषण। सवेदना की ये इकाइयाँ शिल्प-विधि की दृष्टि से कहानी की सवेदनाएँ है। लेकिन इस युग के लेखक तो कथा-साहित्य की दिशा मे केवल नाटक और उपन्यासो की सृष्टि मे व्यस्त थे। कहानी-कला के विकास की ओर इन लोगो ने ध्यान ही नही दिया। निष्पक्ष रूप से यह युग मुख्यत: भारतीय साहित्य की प्राचीन परम्पराओ का उपासक रहा और इस

युग की अपनी मौलिक देन है, नाट्य-कला के साथ उपन्यास कला भी। कहानी-कला के आविर्भाव की पृष्ठ भूमि का श्रेय भी इस काल को है जिस पर हम आगे विचार करेंगे।

उपन्यास

इस काल मे नाटको की अपेक्षा उपन्यासो का आरम्भ कुछ बाद मे हुआ। इसका कारण था कि भारतेन्दु को स्वभावत नाटको की सृष्टि प्रिय थी। उपन्यास-साहित्य को इन्होने मूलत अध्ययन और प्रसार की दृष्टि से देखा था। लेकिन इस दिशा मे भी भारतेन्दु की सेवा स्तुत्य हे। इन्होने ही सर्व प्रथम वकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय कृत 'राजसिह' का अनुवाद किया, तथा अपने निर्देशन और प्रेरणा से अनेक उपन्यासो को अनूदित कराया, जैसे बाबू गदाधर सिह द्वारा 'कादम्बरी' और, 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद पं० रमाशंकर व्यास द्वारा 'मधुमनी' और बाबू राधाकृष्ण दास द्वारा 'स्वर्णलता' का अनुवाद। इस के अतिरिक्त भारतेन्दु जी दो-एक मौलिक उपन्यास जैसे एक कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती', और 'हम्मीर हठ', लिखने की ओर तत्पर हुए, पर ये दोनो मौलिक उपन्यास अपूर्ण ही छूट गए, लेकिन भारतेन्दु की दीक्षा और प्रेरणा से अन्य मौलिक उपन्यासकार प्रकाश मे अवश्य आए। सर्व प्रथम श्री निवासदास ने 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास की सृष्टि की। उपन्यास की भूमिका से स्पष्ट है कि यह अंग्रेजी उपन्यासो के अनुकरण मे रचित एक कथाकृति है। लेखक ने इन मे पात्रो को स्वतत्र व्यक्तित्व प्रदान करने की चेष्टा की है तथा इस मे व्यावहारिक जीवन तत्वो को अपनाने का प्रयत्न हुआ है। इस की कथा एक रईस के जीवनवृत्त को लेकर चलती है जिस मे उसके उत्थान और पतन का चित्र दिया गया है। इस की शैली पर सस्कृत के कथा-साहित्य की उपदेशात्मक प्रवृत्ति सर्वत्र स्पष्ट है। इस में कथा की वर्णनात्मिकता और उस मे लम्बे-लम्बे उपदेश के अश इस की मुख्य विशेषताएँ हैं। वस्तुत· 'परीक्षा गुरु' भारतेन्दु काल के समस्त उपन्यासो मे सफल और यथार्थवादिता की प्रेरणा से लिखा गया है। इस युग के उपन्यासकारो मे किशोरीलाल गोस्वामी का स्थान वहो है जो भारतेन्दु का स्थान नाटको की दिशा मे है। इन्होने 'त्रिवेणी', (१८८८) 'स्वर्गीय कुसुम' (१८८९), 'हृदयहारिणी' (१८१०), 'लवगलता' (१८९०) आदि उपन्यासो की सृष्टि से हिन्दी उपन्यासो की श्री वृद्धि की। इन के साथ अन्य उपन्यासकार प० देवी प्रसाद शर्मा, राधाचरण कार्तिक प्रसाद खत्री,

और गोपाल राम गहमरी के भी नाम उल्लेखनीय है। इन उन्यासकारो ने वस्तुतः आधुनिक हिन्दी उपन्यास का शृगार किया तथा भाव और कला की दिशा मे अपनी अपूर्व क्षमता का प्रदर्शन भी किया। विशेषकर किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासो मे इन की औपन्यासिकता तथा सामाजिकता की समस्याएँ दोनो सफलता से प्रदर्शित हुई है। 'त्रिवेणी' मे इन्होने सनातन धर्म के पक्ष मे आवाज उठाई है तथा आर्यसमाज, ईसाई और इस्लाम धर्म की मान्यताओ को चुनौती दी है। 'स्वर्गीय कुसुम' मे बिहार के राजा कर्णसिह की पुत्री कुसुमकुमारी की करुण कथा है। इस मे भी सामाजिक रूढियो-कुरीतियो के विरुद्ध विद्रोह की भावना प्रतिष्ठापित हुई है। कलात्मक दृष्टि से इस उपन्यास मे घटना बाहुल्य, प्रेम की प्रधानता, षडयन्त्र, ऐयारी, जासूसपन और स्वाभाविकता की अवतारणा हुई है तथा इन सब के समन्वय से आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। 'हृदयहारिणी' और 'लवगलता' मे तत्कालीन राजनीतिक समस्याओ को स्थान मिला है तथा उन के प्रकाश मे इन उपन्यासो की सवेदनाओ को पूर्ण विकास मिला है तथा जीवन की आदर्श मान्यताओ की प्रतिष्ठा हुई है। बालकृष्ण कृत, 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ सुजान और एक अजान' मेहता लज्जाराम शर्मा कृत 'स्वतत्र रमा और परतत्र लक्ष्मी,' गोपाल राम गहमरी कृत 'बडा भाई और सास पतोहू' इस के स्पष्ट उदाहरण है।

इन उपन्यासो की रचना के पूर्व हिन्दी मे 'सिहासन बत्तीसी', 'वैताल पच्चीसी', 'किस्सा तोता मैना', 'रानी केतकी की कहानी', 'प्रेमसागर', और 'नासिकेतोपाख्यान' आदि कथा की रचनाएं थी। उर्दू की ओर से हिन्दू जनता मे 'बागो बहार' 'फसानाएँ अजायब', 'अलिफ लैला', आदि की कथाएँ मनोरजन उपस्थित कर रही थी।

इन के अतिरिक्त लोक-भावना मे दंत-कथाओ के स्वरूप से जोगियो और सिद्धो की अनेक जादू टोना और रहस्य आदि की अनेकानेक तिलस्मी कथाएँ भी प्रचलित थी। इन का प्रभाव सीधे और परोक्ष दोनो ढगो से समस्त हिन्दी-जनता पर पड रहा था। प्रायः समस्त उपन्यासकार ही इस प्रभाव से नही बच सके। इस काल के प्रतिनिधि उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी पर इस का प्रभाव सब से अधिक स्पष्ट है। 'स्वर्गीय कुसुम' मे तिलस्मी घर और कमरे मिलते है। 'लवगलता' रहस्यपूर्ण घटनाओ तथा आश्चर्यजनक कार्य व्यापारो से अभिभूत है। 'प्रणयिनी परिणय' को पढ़ने से 'रानी केतकी की कहानी' याद आती है। इसी प्रवृति के विकास मे हम आगे चलकर देवकीनदन खत्री के

'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सतति' ग्रन्थ को पाते है। 'चन्द्रकान्ता' मे राजकुमार वीरेन्द्र सिंह तथा एक वजीर के लडके क्रूरसिंह और राजकुमारी चन्द्रकान्ता के प्रेम मे अभियान की अनेकानेक आश्चर्यजनक कथाएँ हैं। संतति, मे चन्द्रकान्ता की संतति के अनेक तिलस्मी करिश्मे सग्रहीत है।

समूचे हरिश्चन्द्र युग के कथा-साहित्य मे नाटक और उपन्यासो की मौलिक सृष्टि हुई और उन दोनो कलाओ को, पर्याप्त प्राण-शक्ति भी मिली। इस के फलस्वरूप शीघ्र ही बीसवी शताब्दी मे उनकी दिशा मे पूर्ण विकास हुआ। अतएव हरिश्चन्द्र-युग हिन्दी साहित्य मे नवोत्थान युग सिद्ध हुआ। इस युग मे हिन्दी नाटक, उपन्यास, कविता और निबन्ध आदि सभी काव्य-रूपो को विकास मिला। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि इस साहित्यिक पुनरुत्थान और आविर्भाव-युग मे हिन्दी कहानी के विकास की क्या स्थिति रही ? इस नवोत्थान युग ने हिन्दी कहानी के विकास मे कितनी प्राण शक्ति दी ?

✓वस्तुत. चमत्कार और कौतूहल ही कहानी की प्रबल प्रेरणा है। कहानी अपने द्विज रूप से ही दो प्रकार से चली है—

१ दैवी प्रभाव से   २. स्वाभाविकता से

कहानी की प्रेरणा का पहला स्वरूप ही भारतेन्दु युग की कथा-प्रवृत्ति की मूल देन है, जिसके सम्यक स्वरूप को हम निम्न रेखाओ मे देख सकते हैं।
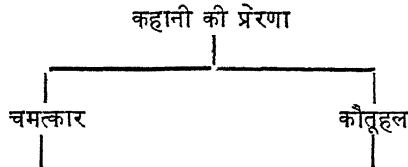
देवी, अद्भुत शक्ति, आकस्मिकता   असम्भव घटना, आदर्श की पुष्टि

✓२कहानी का दूसरा प्रकार जीवन की स्वाभाविकता से सम्बन्ध रखता है। इस का विकास भारतेन्दु-युग के उपरान्त ही आरम्भ हुआ है। कहानी कला के विकास की दृष्टि से, ससार के कहानी साहित्य के इतिहास से स्पष्ट है कि जिस देश के कलाकार जितने ही शीघ्र जीवन के यथार्थ प्रश्नो और सघर्षों के धरातल पर उतरे है, उतने ही शीघ्र उन मे कहानी कला की वास्तविक उत्पत्ति हुई है।

भारतेन्दु युग मे या उससे पूर्व ही कहानी विकास की समस्त परिस्थितियाँ उपस्थित थी। मानव सघर्ष राजनीतिक और सामाजिक दोनो रूपो मे प्रबल हो

चुका था। लेकिन फिर भी कहानी के विकास मे आश्चर्य जनक विलम्ब हुआ। वस्तुत. भारतेन्दु-युग आदर्श-मर्यादा का युग था। काव्य के क्षेत्र मे यह एक ऐसा युग था जहाँ यथार्थ पर आदर्श का आरोप पग-पग पर होता था। दूसरी ओर तब तक भारतीय मान्यताओ मे काफी रूढ़िवादिता थी, इस काल ने मूलत. नाटक उपन्यास की ही कला के माध्यम से युग सघर्षो की यथासभव अभिव्यक्ति की, क्योकि ये दोनो कलाएँ पिछली परम्पराओ के सूत्र मे थी। इन दोनो के अनुवाद, अनुसरण का सुदरतम पृष्ठभूमि हमारे प्राचीन साहित्य मे उपस्थित था। अतएव इन कलाओ को हिंदी मे आरभ करने के लिए कोई विशेष बाधा नही उपस्थित हुई, लेकिन फिर भी इस युग ने हिंदी कहानी की उत्पत्ति की कुछ प्राण-शक्ति अवश्य उपस्थित की, जिसके प्रेरणा सूत्र से ही आगे हिंदी कहानी का विकास सभव हुआ।

हिन्दी कहानी की कहानी

इशा अल्ला की, 'रानी केतकी की कहानी' प्रयोगात्मक रूप मे लिखी गई थी, जिसे कलात्मक दृष्टि से कहानी के विधान का कोई भी रूप नही मिल सका। वस्तुत: कौतूहल तत्व के सहारे आश्रयदाता को प्रयत्न करने के लिए यहाँ एक लम्बी कहानी गढी गई है। हिंदी कहानी की सम्यक शैली की ओर प्रेरित करने का श्रेय भारतेन्दु युग को है। यह युग पत्रकारिता के आरभ का युग था, और तत्कालीन समाज को इस ओर आकर्षित करने के लिए इस युग ने मुख्यत मनोरञ्जक शैलियो को अपनाया, जिन के क्रोड मे कहानी कला के बीज निश्चित रूप से आये।

इस तरह भारतेन्दु युग मे हिंदी कहानी-उत्पत्ति की प्राणशक्ति को हम सर्वथा यहाँ की पत्र-पत्रिकाओ मे पाते है। 'कवि वचन सुधा' (१८६७), 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (१८७३), 'हरिश्चन्द्र' 'चन्द्रिका' (१८७४), 'हिंदी प्रदीप' (१८७७), 'ब्राह्मण' (१८८०), 'सार सुधानिधि' (१८७६), 'क्षत्रिय पत्रिका' (१८८०), और 'भारत मित्र' (१८७७) आदि मासिक-पत्रो और साप्ताहिको मे जहाँ एक ओर आधुनिक हिन्दी भाषा शैली के विकास का प्रयत्न हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर इन्ही प्रयत्नो के माध्यम से हिंदी गद्य काव्य के लघु रूपो का जन्म हो रहा था। इन लघु रूपो मे निबन्ध, व्यग चित्र, स्फुट चित्र, हास्य चित्र और स्वप्न चित्र आदि गद्य-शैलियाँ उल्लेखनीय हैं। वस्तुत: इन्ही गद्य शैलियो के अध्ययन से आगे हम देखेगे कि भावी हिंदी कहानी का रूप किस तरह प्रकट हो रहा था।

इन पत्र-पत्रिकाओ मे साधारण कोटि के सामाजिक अथवा राजनीतिक निबध के रूप मे जो लेख आते थे, वे प्राय. सम्पादको की लेखनी से ही अभिव्यक्त होते थे, अर्थात् सपादकीय होते थे। ये सम्पादकीय प्राय. सामाजिक विषयो और समस्याओ पर आधारित होते थे जो बहुत कुछ कहानी की सवेदना होती थी। जैसे हरिश्चन्द्र चन्द्रिका[१] का सपादकीय निबध 'भ्रूण हत्या'—"हम सरकार से और अपने सब आर्य भाइयो से हाथ जोडकर निवेदन करते है इस को सब लोग एक बेर चित्त देकर और हठ छोडकर सुनै, यदि सरकार कहै कि हम धर्म विषय मे नही बोलते तो उसका हमसे पहले उत्तर ले। सती होना हमारे यहाँ स्त्रियो का परम धर्म है इसको सरकार ने बल पूर्वक क्यो रोका है, क्योकि यह धर्म प्राण से सबध रखता है और प्रजा की प्राण रक्षा राजा को सबके पहले मान्य है। वैसे ही हम जो कहेगे उसमे भी प्रजा के प्राण से सबध है। अभी बनारस मे बूलानाले पर से एक लडकी नल मे से निकली है। नि सदेह भगवान ने उस को अपने प्रकोप बल से बचाया है नही तो उसकी माता तो अपनी जान से उसे मार चुकी थी। ऐसी हत्या सारे हिंदुस्तान मे यदि सब पकडी जाय और गिनी जाय तो प्रति महीने मे एक हजार होती है, इस हत्या के दोषी कौन है?"

"हमारे ही आर्य गण और धर्माभिमानी लोग, यदि वह यौनर्भव सतति का निन्दा न करते उस का अनुमोदन करते तो यह हत्या क्यो होती? यह हमने कभी कहा है न कहेगे कि सबका बलात् पुनर्विवाह हो, परन्तु जो कन्या दशा मे विधवा हो गई है वा जिनको कामचेष्टा हो उनका विवाह क्यो न हो · इसीलिये कि हर महीने एक सहस्र आर्य सतति नष्ट हो। हाय रे काम! अपनी स्त्री मरे पर कैसा कूदकर व्याह कर लेती हो, पर स्त्रियो को नही करने देते क्योकि इन्द्रिय दमन तुम्ही को है उनको थोड़े ही है, सब अनर्थ हो जाय, स्त्रियाँ वेश्या हो जाँय, गर्भ गिरे बालक मरे यह वा जाहिर हो थाना पुलिस जेहलखाना सब होय पर पुनर्विवाह न होय। होय कैसे इसमे जो नाक कटेगी सच है फूटी सही जायगी आँजी न सहेगे। सच है जबरदस्त का ठेगा सर पर। यदि स्त्रियाँ भी प्रबल होती तो कैसे होने पाता।[२]"

इसी तरह उस समय स्वतत्र साहित्यिक निबन्धो के भी नाम पर जो

---

[१]श्री हरिश्चन्द्र चंद्रिका, खंड २ मार्च १८७५ संख्या ६

[२]श्री हरिश्चन्द्र चंद्रिका, खंड २ संख्या ६ पृष्ठ १७२

लेख आते थे, उनमे भी कहानी की चित्रालेखन के तत्व मिले रहते थे जैसे, 'हरिश्चन्द्र, मैगजीन',[१] मे 'प्रान्तर प्रदर्शन', "अहा हा ! वह कौन सा देवता है जिसके दर्शन के हेतु मुसलमान अपना इस्लाम छोड और क्रुस्तान अपने मत से मुँह मोड उन्मत्त से हो उस दीपक को द्युति के अनुराग मे आपको उसके चारो ओर पतग से उड़ा रहे है और ज्यूज अपने जीवन से हाथ धो बौद्ध बुद्धि खोय गान पाषड तजि और सकल मतावलम्बी इस भुवन के हिन्दुओ की भाँति मनसा वाचा कर्मणा से उस देव की पूजा मे तत्पर हो रहे है। कोई उसके ध्यान के निमित्त अपना पराया घर द्वार कुल परिवार वरन् इस ससार से विमुख हो नदी के करार पर छा रहे हैं जिसका नील वर्ण जल दर्पण सा झलकता है और वायु के सनसनाहट मे छोटी-छोटी लहरे मन तरग मे आकर अपने प्रीतम सिधु की ओर उसके मिलने के लिये पधारती हैं ?

पक्षियो के बोल समीर के डोल भ्रमरो के गुज फूलो के पुज के बान से तो वे मूर्छित हो भूमि पर घूम ही रहे थे, इतने मे क्या देखते है कि बैकुठ की सारी अप्सरा रभा, हूर-परी, मेनका, उर्वशी आदि, इधर-उधर सगमरमर और सग मूसा की सडको को अपने चरण कमल की धूरि से सुगधित करती है। रभाओ के रूप का प्रकाश इतना फैला कि सूर्य मारे भय के अस्ताचल के कन्दरे मे जा छिपा। कोई कहते है कि लज्जा के मारे पश्चिम मे समुद्र मे जा डूबा। और शरद ऋतु का पूर्ण चन्द्रमा ऊपर चढ सारे ग्रह तारो और राशियो के साथ चतुराई कर सबसे पहले इनकी शोभा देखने के लिये आकाश रूपी मे बदी सा आ लटका और आकाश से सुर गण इस चाँदनी मे उस बाटिका के बीचो-बीच एक चबूतरे पर जो कि लाजवर्द का बना है और जिसके चारो ओर और कोने पर फव्वारे हैं। पक्ति की पक्ति सोने रूपे की जडाऊँ चौकियो पर असख्य चन्द्रमा बैठते देख चकोर के समान अपना जी हारने लगे। बैठते ही एक सखी अपने चारो ओर जमुर्द के बृक्षो की झलक, मूगे के समान लाल अधर दिखाती हुई सुधा मेह बरसाती है, हे परियो तुम जानती हो, सुन्दरता क्या वस्तु है ?

इस प्रश्न को सुनकर सब हँस पडी और कहने लगी कि, तू अपने यौवन पर मोहित होकर पागल हो गई हो अतएव ऐसी बाते मुँह से निकालती[२] है।"

---

[१]हरिश्चन्द्र मैगजीन, १५ नवम्बर १८७३ ई० पृष्ठ ३२
[२]हरिश्चन्द्र मैगजीन, १५ नवम्बर १८७३ ई० पृष्ठ ३४

उक्त लेख से स्पष्ट है कि प्राकृतिक चित्रण के सहारे किस तरह एक मनोरजक गद्य विधा का ढाँचा खडा किया गया है। इस मे यदि लेखक ने किसी तरह कथा-वस्तु का प्रयोग किया होता, तो यह गद्य-रचना निश्चित रूप से कहानी के समीप पहुँच गई होती।

ऐसे निबधो और सवाददाताओ के प्रेषित पत्रो के अतिरिक्त इन पत्र-पत्रिकाओ मे व्यग चित्र की भी अवतारणा होती थी। यह गद्य-शैली मूलत. अग्रेजो को देन है। इगलैण्ड के प्रसिद्ध 'लडन पच' का जन्म १८४१ मे हुआ और इस शैली से उस समय इगलैण्ड मे अपूर्व सफलता के साथ सामयिक लेखको, आलोचको तथा अन्य कलाकारो की मनोवृत्ति और भाव धारा पर सुन्दर छोटे और व्यग किये जाते थे। भारतवर्ष मे यह शैली आग्ल भारत पत्रकारिता के माध्यम से आयी तथा पहले यहाँ यह शैली बहुत असम्मानित दृष्टि से देखी जाने लगी[1]। वस्तुतः इस शैली को पहले-पहल उर्दू वालो ने अपनाई और उनकी तज शैली, इसी का विकसित रूप है। हिन्दी मे इस का जन्म, हरिश्चन्द्र मैगजीन, ने दिया और इसकी मान्यता धीरे-धीरे सब पत्र-पत्रिकाओ पर छा गई।

पाठको की दृष्टि से उस समय बिना पच के पत्रिकाएँ आकर्षणहीन समझी जाने लगी। 'भारत मित्र', 'हिन्दी प्रदीप' और 'उचित वक्ता', आदि ने इसे खूब आगे तक बढाया। सक्षेप मे १८६७ से १९०० ई० तक हिन्दी गद्य साहित्य मे पच की वही मान्यता थी जितनी कि आज कहानी की मान्यता है। हिन्दी प्रदीप मे इस व्यग चित्र के बहुत अच्छे-अच्छे उदाहरण मिलते हैं। छोटे-छोटे व्यग चित्रो को यहाँ 'चीज़' की सज्ञा दी गई है। जैसे, चीज़, नम्बर १ "पडित जी वर्ण विवेक पर कुछ वक्तृता कर रहे थे इतने मे एक मसखरा बोल उठा पडित जी कुत्ते की क्या जात है, हिन्दू या मुसलमान। पंडित जी ने जवाब दिया कुत्ता तो हिन्दू मालूम होता है क्योंकि जो मुसलमान होता तो दूसरे कुत्ते को अपने साथ खिलाने मे न भूकता।" चीज़ नम्बर २ "भिखारिन अधी बुढिया बोझ सिर पर लादे जा रही थी किसी ने पूछा बूढ़ा तुम्हारा नाम क्या है ? उसने जवाब दिया दौलत। आदमी ने कहा क्या दौलत भी अंधी होती है। बुढ़िया बोली अधी नही है तो क्यो मेरे घर न आई[1] ?"

बडे व्यग चित्रो मे वस्तुत कहानी के तत्व स्पष्ट रूप से उभर आये हैं

---

[1] हिन्दी प्रदीप, नवम्बर १८७९ ई०, पृ० ७६

और इन्हे पढते समय व्यंगात्मक कहानी की सुधि हो जाती है। जैसे, एक पढे-लिखे सभ्य महाशय बेकारी की हालत मे घर बैठे पाच-सात लगोटिया यारो से सलाह करने लगे कि यार कहाँ जॉय कौन-सा उद्दम करे जिस से रोटी चले। उन की यह बात सुन जिसे जैसा समझ पडा यार लोगो ने अपनी-अपनी राय जाहिर की। बाद इसके सभ्य महाशय ने भी कुछ कहना शुरू किया कि इतने मे उनकी स्त्री जो किसी पुलिस कर्मचारी की बेटी थी, पर्दे के आड मे ढोल बजाय गाने के मिस से सलाह देने लगी सो पीछे सुन लीजिये। पहले उन लगोटिया यारो के दास्तानो को भी सुनते चलिए। एक ने कहा, यार, आप कथक्कड वक्ता बन जाइए। सेर खलिया पीली मिट्टी से दोनो ओर कान तक माथा मोच लीजिये तेली तमोली सूद बाबर को इकट्ठा कर असभ्य देहाती बोली मे गाली गुप्ता बका लाजिए। ओरतो के लिये दो-एक छल्ला अगूठी पहन लाजिए। जनानी बोली मे खूब मटकिए यह न बन सके तो गुरु बन तन-मन-धन अर्पण कराइए। इसा तरह लगोटिया यार गपास्टक करते है चोरी बेइमानी की बाते। इस पर अत मे सभ्य की औरत गाने लगती है—

लिखाय नाही देव्यौ पढ़ाय नाही देव्यौ।
सैयाँ फिरंगिन बनाय नाही देव्यौ ॥

इस गाने के समाप्त होते ही लगोटिया योर सब कहकहे मारते ताली पीट-पीट अपने घर चले गए[१]।

स्फुट चित्र और हास्य चित्र भी 'हिन्दी प्रदीप' मे सर्व प्रथम आए, इन्हे यहा -गपाष्टक' की सज्ञा दी गई है 'गपाष्टक' का वस्तुत. इस मे एक स्वतत्र स्तम्भ भी रहता था, जिस मे एक साथ कई स्फुट हास्य चित्रो को स्थान मिलता था। यह निश्चित रूप से सम्पादक की ही लेखनी से व्यक्त होता रहा होगा। 'हिन्दी प्रदीप' के अप्रैल १८७९ वाले अंक मे सर्वथा एक साथ कई ऐसे चित्र 'गपाष्टक' सज्ञा के नाम से आए हैं, जैसे—

"एक बूढ़ा मनुष्य जिसकी कमर बुढ़ापे से झुक गई थी कुबड़े की भाँति हाट मे चला जा रहा था। एक मसखरे ने पूछा बडे मियाँ क्या ढूँढ़ते जाते हो। बूढे ने जवाब दिया, बेटा मेरी जवानी खो गई है उसी को ढूँढ़ता हूँ। मसखरे ने कहा, कि बड़े मियाँ झूठ क्यो बोलते हो, यो क्यो नही कहते कि कबर के लिए जमीन ढूंढ़ रहा हूँ!"

---

[१]**हिन्दी प्रदीप, सितम्बर १८८९ ई०, पृष्ठ ३६।**

"किसी महफिल मे एक काली कलूटी रडी नाच रही थी। जब नाच चुकी किसी ने पूछा, बीवी आपका इसमशरीफ क्या है ? बीबी ने उत्तर दिया कि जनाब बन्दी को मिसरी कहते है। फिर मियाँ ने कहा कि किस बेवकूफ ने आपका नाम मिसरी रक्खा है तुम तो शीरा हो ! बीबी ने हँसकर उत्तर दिया कि खैर साहब आपकी हमशीरा ही सही !"

"एक बूढा कमर झुकाए लाठी लिए बाजार मे चला जाता था राह मे किसी ने पूछा कि यह कमान तुमने कितने मे लिया है उसने उत्तर दिया कि थोडे दिन सबर करो यह तुम्हे आप से आप मिल जायगा[1]।"

स्वप्न चित्रो मे कहानी के तत्त्व अपेक्षाकृत सब से अधिक स्पष्ट हुए हैं और ऐसे स्वप्नो की अवतारणा विशेषकर 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', और 'हिन्दी प्रदीप' दो ही पत्रो मे होती थी, लेकिन इन दोनो पत्रो मे इसके रूप सामान्यतः कहानी तत्व के समीप रहते थे। उदाहरण के लिए किसी मे से 'स्वप्न' को ले सकते है—'सद्ज्ञान रूपी प्रभाकर के अर्तध्यान होते ही महामोह निशा आन पहुँची सारा जगत् अधकारमय हो गया। रजनीचरो ने अपने अनुकूल समय जान एकाएक हलकड मचा दिया। बचक लुटेरे तस्करगण निशाबल पाप अपने मनोरथ साधन मे तत्पर हुए, उल्लुओ की बन आई। रुद्रगण का तो राज्य ही हो गया लेकिन समयानुकूल प्रत्येक का उदयास्त उचित ही है इसलिए उस परात्पर प्रभु ने भगवान मृगधारी न्याय सुधाकर को प्रकट किया। जिन के नीति-मय मनोहर किरणो के प्रकाश से अधकार हट-हटकर जगत् की भलाई और उपकार का उद्योग होने लगा और सब को भरोसा हुआ कि जिस ज्ञान प्रभाकर के प्रकाश मे हम लोग चैतन्य और स्वतन्त्र स्वरूप थे अब वही समयानुकूल श्वेत वर्ण का न्याय सुधाकर हो के प्रकट हुआ। अब उस की शीतल मनोहर किरणो के आश्रय और सहायता से हमारे सम्पूर्ण प्रयोजन सिद्ध हुए। फिर आलस ने हाथ पकड कर योग-निद्रा को सौप दिया फिर क्या पूछना है ? सम्पूर्ण इन्द्रियो के धर्म शिथिल हो गए, केवल वैर-फूट की लालसा यथावत स्थित रही। इस स्वप्नावस्था मे यद्यपि अनेक प्रकार के वृत्तान्त दृष्टिगोचर हुए है पर इस स्थल पर वह कौतूहल लिखना चाहिए जिसमे अपूर्व और विलक्षण बातें विद्यमान हो। स्वप्नान्तर मे यह चित्त चकोर चाँद की चाँदनी समझ एक चमत्कार उपवन मे जा पड़ा जहाँ श्वेत रंग की मनोहर लता अपने पुष्पो से

[1]हिन्दी प्रदीप, अप्रैल १८७९ ई०, पृष्ठ ४२।

हिल-मिल के कटाक्ष कर रही थी। अब बाटिका की सारी छवि के वर्णन से मेरा प्रयोजन दूर जा पड़ेगा इसलिए मनभावनी बाटिका की शोभा सम्पत्ति के वर्णन से लेखनी को रोक कर एक राजा समाज-वार्त्ता के वर्ण विन्यास मे प्रवृत्त होता हूँ। अहाः क्या विचित्र सभा थी। जिसमे बड़े-बड़े सबल श्रीमन्त जिनको अग्रेजी मे सिविल सर्वेण्ट कहते है यूथ के यूथ विद्यमान हुए। उनके अतिरिक्त और बहुत से यूरप देशी प्रधान जिन को प्रभुता का सम्राट सर्मपित है एकत्र हुए जिन की राज्यश्री और कान्ति के आगे सूरज की किरणे दबक जाती थी, फिर उन के रथो के दमक-चमक के साथ मिलकर ऐसी निकलती थी जैसे घन घटा के बीच से बिजली की छटा। धन्य है। इन का पूर्वज-तप जिस के प्रभाव से ये प्रभुता के पात्र बने। धन्य है, वह देश जहाँ इन महात्माओ ने जन्म लिया। अब सुनिए, उस सभा का वृत्तान्त जब सब साहब लोग बैठ चुके तो बडे साहब ने सब साहबो से यह सम्भाषण किया कि आप महाशयो को हम ने इस हेतु से बुलाया है कि हमारी स्थिति यहाँ बहुत थोडी रह गई है इसलिए लालसा रह गई कि इस भारतवर्ष मे अरबी, फारसी, अग्रेजी का विशेष प्रचार करे और हिन्दी सस्कृत का विस्तार न होने पावे और सयोगवश कही रहे तो ऐसा हो जैसा दाल मे नोन क्योकि हिन्दी सस्कृत सुनकर मेरा जी जलता है, मै चाहता हूँ कि प्रत्येक महानगरो मे अरबी, फारसी, अग्रेजी की अच्छी-अच्छी पाठशाला नियत की जाय। यह बात सुनकर बहुत साहबो ने तालियाँ बजाई बहुतो ने सिर नीचा कर लिया और कई एक साहब आकाश की ओर देखने लगे[१]।

उक्त समस्त गद्य-शैलियो मे किसी न किसी रूप मे कहानी कला के थोड़े-बहुत बीज स्पष्टतः विद्यमान हैं, सामान्य लेखो निबधो और व्यग-चित्रो ने उस समय कथा-जिज्ञासु जनता को आज की हिन्दो कहानी ही जैसा आनन्द और आकर्षण दिया होगा। दूसरी ओर स्वप्न-चित्रो अथवा स्वप्न-कल्पनाओ के माध्यम से अनेक के वर्णन सवेदनाओ के वर्णन और चित्रण निश्चित रूप से हिन्दी कहानी के विकास का सर्वप्रथम मौलिक प्रयोग कहा जा सकता है, अर्थात् उन्नीसवी शताब्दी के अतिम चरण मे हिन्दी कहानी कला के विकास मे यह स्वप्न-चित्र-शैली शिल्प विधि के निर्माण का सर्व प्रथम मौलिक प्रयास है।

सरस्वती का प्रकाशन

प्रयाग मे सरस्वती का प्रकाशन (१९०० ई०) बीसवी शताब्दी के भाषा

---

[१]हरिश्चन्द्र मैग़ज़ीन, १५ अप्रैल १८७४ ई०, पृ० १८७।

साहित्यिक का अन्यतम प्रतीक है। दूसरे शब्दो मे यह आधुनिक हिन्दी साहित्य की वह प्रयोग-भूमि अथवा सधि-स्थल है जहाँ एक ओर भारतेन्दु-युग की प्रेरणा से मिले हुए साहित्य रूपो पर आधुनिक प्रयोग और आधुनिक विकास किए गए, वहाँ दूसरी ओर विभिन्न साहित्य रूपो के लिए निश्चित और स्वाभाविक भाषा का प्रयोग हुआ।

दूसरी ओर इसके प्रकाशन का सब से महान् और क्रांतिकारी प्रयत्न था, हिन्दी कहानी का आरम्भ। इस तरह अगर हम 'सरस्वती' का प्रकाशन बीसवी शताब्दी हिन्दी साहित्य के इतिहास की सब से महान् घटना कहे तो कोई अत्युक्ति न होगी। विशेषकर हिन्दी कहानी कला की उत्पत्ति, प्रयोग और आरम्भ इन तीनो क्रमो अथवा चरणो के प्रकाश मे 'सरस्वती' का नाम कहानी शिल्पविधि के आरम्भ और विकास के इतिहास मे सदा अमर रहेगा।

हिन्दी कहानी का आरम्भ

भारतेन्दु युग मे कहानी कला की उत्पत्ति की दिशा मे जितने भी परोक्ष और प्रत्यक्ष ढग के प्रयत्न हुए, उन समस्त प्रयत्नो और गद्य-शैलियो में हिन्दी कहानी का कोई भी रूप नही बन सका अर्थात् उस काल मे हमे कहानी ऐसी कोई काव्य वस्तु नही मिल सकी। निश्चित रूप से हिन्दी कहानी अपनी संज्ञा और कलात्मक रूप की प्राप्ति में केवल 'सरस्वती' का आभार वहन करेगी। वस्तुतः 'सरस्वती' के भी प्रारम्भिक वर्षो मे इसे आख्यायिका और गल्प की सज्ञा दी गई है। ऐतिहासिक दृष्टि से क्रमश पहली सज्ञा सस्कृत की परम्परा की याद दिलाती है और दूसरी बगला का प्रभाव। फिर भी कहानी के भावी रूप के निर्माण मे भारतेन्दु-काल के व्यग-चित्रों, लेखों और स्वप्न-कल्पनाओ ने इसकी प्राण-शक्ति उपस्थित की तथा यही प्राण-शक्ति वाहक सूत्र अपने विकसित रूप मे 'सरस्वती' मे उदित हुए। इन्ही विकसित माध्यमो से 'सरस्वती' के प्रारम्भिक वर्षों मे हिन्दी कहानी के आरम्भ मे अविकल प्रयत्न और प्रयोग हुए, जिन से हिन्दी कहानी का मौलिक आविर्भाव हुआ।

प्रारम्भिक प्रयत्न और प्रयोग

'सरस्वती' के प्राय प्रारम्भिक दो वर्षो मे हिन्दी कहानी के आरम्भ की दिशा मे मुख्यत सात प्रकार के प्रयत्न और प्रयोग हुए हैं इन प्रयत्नो और प्रयोगो का मूल्य हिन्दी कहानी शिल्पविधि की उत्पत्ति और विकास मे अनन्य है।

इन मे सर्व प्रथम उस प्रयत्न और प्रयोग की कहानी आती है जो शेक्स-पियर के नाटको की इतिवृत्ति की छाया पर अन्य पुरुष और वर्णनात्मक शैली मे निर्मित हुई है—जैसे, किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती'[१]। यह कहानी शेक्शपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' की इतिवृत्ति की छाया लेकर लिखी गई है। इस कहानी की मुख्य प्रेरणा 'टेम्पेस्ट' की मीराण्डा की भाति सघन वन मे छिपकर अपने पिता के साथ रहती है। वह अपने यौवन-काल मे सर्व प्रथम एक नवयुवक अजयगढ के राजकुमारी चन्द्रशेखर को देखती है और फौरन उससे प्रेम करने लगती है। 'टेम्पेस्ट' के 'प्रास्पेरो' की भॉति इन्दुमती का पिता दोनो प्रेमियो के प्रेम की परीक्षा लेता है और अत मे दोनो का विवाह हो जाता है। इस तरह इन्दुमती कहानी, 'टेम्पेस्ट', की इतिवृत्ति की छाया पर एक राजपूत सवेदना के सम्मिश्रण से निर्मित हुई है। डा० श्री कृष्णलाल[२] ने इस कहानी को हिन्दी की सर्व प्रथम मौलिक कहानी कही है। 'इन्दुमती' सर्व प्रथम हिन्दी-कहानी अवश्य है, लेकिन सर्व प्रथम मौलिक कहानी नही कही जा सकती। वस्तुत 'सरस्वती' के उन प्रारम्भिक दो वर्षो मे आई हुई ऐसी तथा अन्य प्रकार की कहानियॉ कलात्मक दृष्टि से हिन्दी की मौलिक कहानी की सृष्टि और शिल्प-विधि क निर्माण की दिशा मे विभिन्न प्रकार के प्रयत्न और प्रयोग है।

दूसरा प्रयत्न है भारतेन्दु युग की स्वप्न के रूप मे उपस्थित की गई कहानी। स्वप्न-कल्पनाओ मे जहॉ हमने देखा है कि उन मे कहानी तत्व लाने का प्रयत्न किया गया है, वहॉ स्वप्न-कल्पनाओ को केवल साधन बनाकर कहानी की सृष्टि हुई है। लेकिन फिर भी यह प्रयत्न पिछले ही सूत्र का विकसित रूप है और इस मे अधिक कहानी तत्व आ गये है, जैसे, केशव प्रसाद सिंह की 'आपत्तियो का पर्वत' कहानी। इस मे लेखक ने स्वप्न को एक अभिव्यक्ति का साधन मानकर कहानी के मनोरजन को सामने लाने का प्रयत्न किया है। यह कहानी प्रथम पुरुष मे मै, और हम, के प्रयोग से लिखी गई है तथा इस मे कौतूहल की मात्रा पर्याप्त रूप से आई है।

इसी प्रयत्न की प्रेरणा से तीसरे प्रयोग मे वह कहानी आती है जो एक सुदूर देश के काल्पनिक चरित्रो को लेकर तथा उनसे एक मौलिक सवेदना की सृष्टि से निर्मित हुई है। जैसे गिरिजादत्त बाजपेई कृत 'पति का पवित्र प्रेम'।

---

[१] सरस्वती, भाग १, संख्या ६

[२] आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, डा० श्री कृष्णलाल, पृ० ३२२

सक्षेप मे इस की शैली का उदाहरण और इस की सवेदना यो है, इगलैंड के दक्षिण मे ससैक्स नाम का एक सूबा है, उस मे समुद्र के तट पर ब्राइटन नाम का एक छोटा-सा नगर है। यहाँ ब्रिमली नामक एक सौदागर के, लिली, नामक एक रूपवती कन्या थी। बचपन मे ही इस से और वहाँ के एक पादरी के लडके जेम्स से इसका प्रेम था। जब वह सोलह वर्ष की हुई तब इस से और 'वैरस्फर्ड' से खिंचाव हुआ। लेकिन यह प्रेम एकागी था। 'लिली' हमेशा 'जेम्स' को प्यार करती थी और अत मे दोनो मे विवाह भी हो गया। कुछ दिनो के बाद जब 'लिली' दो बच्चो की माँ हुई तब 'जेम्स' बीमार पडा और डाक्टर के अनुसार वह 'फिनिक्स' जहाज से कही वायु-परिवर्तन के हेतु चला गया। रास्ते मे सयोग वश जहाज डूब जाता है और लिली उसे मृतक समझकर 'वैरस्फर्ड' से पुर्नविवाह कर लेती है। लेकिन इधर 'जेम्स' जीवित था और जब वह अस्पताल आया और उसने 'लिली' और 'वैरस्फर्ड' का पुर्नविवाह सुना, वह अपनी इन सब बातो को वही के डाक्टर को बताकर मर गया। लिली को इसकी सूचना मिलती है। उसे अतुल करुणा होती है। वह उसकी लाश को बहुत श्रद्धा से अपने पास रखती है, और उस पर सदैव फूल चढाती है।

चौथे प्रयत्न मे यात्रा वर्णन के माध्यम से कहानी-निर्माण का प्रयोग किया गया है। यह वर्णन वस्तुतः प्रथम पुरुष मे चलता है और इस मे कल्पित और यथार्थ दोनो प्रकार के स्थानो के वर्णनो के साथ-साथ अनेक घटनाओ के तादात्म्य से इतिवृत्त के निर्माण और निर्वाह के प्रयत्न किए गए है। जैसे, केशव प्रसाद सिंह कृत 'चन्द्रलोक की यात्रा'[१] मे सब कल्पित अवतारणाएं की गई है लेकिन फिर भी इसमे कहानी के अधिक तत्व सफलता से आए है तथा अत तक पात्रो द्वारा यात्रा-वर्णन और घटना-वर्णन मे मनोरजन के तत्व मिलते हैं। कश्मीर-यात्रा[२], मे वही कहानी तत्व अपेक्षाकृत अधिक सफलता से चरितार्थ हुए हैं, लेकिन इसमे पत्रात्मक-शैली का सहारा नही लिया गया है।

पाँचवे प्रयत्न मे आत्म कहानी की शैली से कहानी की सृष्टि हुई है जैसे कार्तिक प्रसाद खत्री कृत 'दामोदर राव की आत्म कहानी'[३]।

इस मे उत्तम पुरुष मे कहानी कहने की शैली सफलतापूर्वक चरितार्थ

---

[१] सरस्वती, भाग १ संख्या ७, पृष्ठ २२७

[२] सरस्वती, भाग १, संख्या ५

[३] सरस्वती, भाग १ संख्या ८, पष्ठ २६३

हुई है। कहानी के वर्णन पक्ष मे विषय प्रतिपादन तथा व्यक्ति के माध्यम से आदर्श प्रतिष्ठा इन दोनो तत्वो को सफलता मिली है।

छठे प्रयत्न की दिशा मे सस्कृत नाटको की आख्यायिका आती है। जैसे, श्री हर्ष रचित, 'रत्नावली नाटक',[१] की आख्यायिका। इसे पडित जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी ने कहानी के रूप मे ढाला है। यह आख्यायिका अपेक्षाकृत बहुत लम्बी और विस्तृत रूप मे आई है, फलत इस मे कहानी की सीमा नही रह पाती। इस कहानी मे मूल नाटक के समस्त इतिवृत्त को स्थान देने का प्रयत्न किया गया है। सातवे और अतिम प्रयत्न मे एक ऐसी कहानी के निर्माण का प्रयोग किया गया है जहाँ केवल वर्णन और विश्लेषण शैली से एक सामाजिक संवेदना इतिवृत्त मे बाँधी गई है, जैसे लाला पार्वती नदन कृत 'प्रेम का फुआरा[२]' नामक कहानी। इस मे एक समस्यापूर्ण सामाजिक कथानक की अवतारणा हुई है। बीस वर्ष की जवान, काली, चेचक के दाग वाले चेहरे की हुसेनी बीबी की कही शादी नही हो रही है। वह अपनी शादी की ही इच्छा से अपनी खाला के घर जाती है। उसी गाँव मे उस की दो व्याही हुई सखियाँ भी मिलती है लेकिन उन से समवेदना के स्थान पर ईर्ष्या होती है फलतः हुसेनी बीबी उस गाँव को भी छोडकर कही और चल पडती है। सयोगवश उसे रास्ता भूल जाता है और वह एक खडहर मे जा पहुचती है और एक बुढिया से भेट होती है। बुढिया वही के एक फुआरे से तीन घूँट पानी बीबी को पिलाती है और सबेरे उसे एक घोडे पर चढा हुआ युवक मिलता है। वे कहीं के नवाब साहब है। वे इसे एक अन्य स्थान पर ले जाते है कही रगीली के पास। इसे वहाँ बहुत परेशानिया उठानी पडती हैं। वहाँ से उसे कोई करीमबक्स उसके गाँव टिकियापुर पहुँचाने को तैयार होते है, पर सयोगवश बीच मे कोई मोटा आदमी आ जाता है, उसे बहुत सताता है। इस तरह हुसेनी बीबी के साथ अनेकानेक घटनाएँ घटती है और अंत मे उसे वही खडहर की बुढिया बचाती है। इस कहानी का निर्माण केवल सयोगो के आधार पर हुआ है। इसमे घटनाएँ एक के बाद एक आती रहती है।

उपर्युक्त आठो प्रकार के प्रयत्नो और कलात्मक प्रयोगो से हिन्दी कहानी कला के आरम्भ का सूत्रपात निश्चित रूप से हुआ। कहानी के रचना विधान मे

---

[१] सरस्वती, भाग २, संख्या १

[२] सरस्वती, भाग २, संख्या ५ पृष्ठ १६६

कथानक, चरित्र, शैली और समस्या को गुंफित करने की एक निश्चित दिशा भी मिली, अर्थात् कहानी की सीमा, क्षेत्र और ध्येय को एक रूप मिला। कथानक, घटना संयोग पूर्ण और कथापूर्ण चरित्र, काल्पनिक और स्वच्छंद पर स्थूल; शैली वर्णनात्मक; तिलस्मी, ऐयारी, समस्या अथवा वर्ण्य वस्तु में धर्म-आचरण का आदेश, रोमांस और तिलस्मी व्यापार आदि तात्विक विशेषताएं कहानी की सीमा क्षेत्र और रूप को निर्धारित करने लगी। लेकिन यहाँ यह भी स्पष्ट है कि इन समस्त प्रयोगों से निर्मित कोई भी कहानी शिल्पविधि की दृष्टि से हिन्दी की मौलिक कहानी नहीं कही जा सकती। क्योंकि इन कहानियों में से कुछ भाव पक्ष की दृष्टि से छायानुवाद हैं, भावानुवाद हैं, और शेष कलापक्ष की दृष्टि से कहानी नहीं हैं। लेकिन यह अवश्य है की इन प्रयोगात्मक कहानियों में से प्रायः अधिक कहानियाँ अपने लक्ष्य की ओर अवश्यमेव प्रेरित हैं। वस्तुतः इन्हीं की प्रेरणा और भाव-शक्ति के फलस्वरूप शीघ्र ही 'सरस्वती' के तीसरे ही वर्ष मौलिक हिन्दी कहानी का आरम्भ हुआ; शिल्पविधि की दृष्टि से प्रथम हिन्दी की मौलिक कहानी है, रामचन्द्र शुक्ल कृत "ग्यारह वर्ष का समय[१]।"

कथानक

दो मित्र रात को टहलते-टहलते एक उजड़े हुए गाँव के खंडहर में पहुँचते हैं। वहाँ दैव संयोग से वे एक स्त्री देखते हैं और उसका पीछा कर उस से उसका परिचय लेते हैं। स्त्री अपनी कहानी कहती है कि वह काशी की लड़की है। ग्यारह वर्ष हुए उसकी शादी इसी खंडहर वाले गाँव में हुई थी लेकिन दैव संयोग से उसी वर्ष भयानक बाढ़ से वह गाँव बह गया और सब लुप्त हो गए। उस समय वह लड़की बिल्कुल अबोध और अज्ञान थी उसे इन बातों का कुछ भी पता न था। वह बस काशी ही में अपने माँ-बाप के घर रही, लेकिन जब वह तरुणी हुई, उसे घर परिवार से ताने-व्यंग मिलने लगे। फलस्वरूप वह ढूँढ़ती-ढूँढ़ती उसी गाँव के खंडहर में चली आई, उधर उस का पति बाढ़ में बहते-बहते एक व्यापारी की किश्ती में कलकत्ता पहुँचा।

वहाँ कुछ वर्षों के बाद पुरुष को एक शादी देखकर अपनी स्त्री की याद आई वह वहाँ से चल पड़ता है। अंत में स्पष्ट हो जाता है कि वह खंडहर की स्त्री और उससे बातें पूछने वाला वही युवक आपस में दोनों ग्यारह

[१] सरस्वती, सितंबर १९०३ भाग ४, संख्या ९

वर्षों के बिछुडे हुए पति-पत्नी है। इस की पुष्टि स्त्री पुरुष के हाथ मे एक तिल देखकर करती है।

शैली

सपूर्ण कहानी प्रथम पुरुष मे कही गई है। पहले सीधे कहानीकार के मुख से कहानी आरम्भ होती है, फिर स्त्री से भेट होने के उपरान्त कहानी का सूत्र उस स्त्री की आत्म-कथा से आगे बढता है। इस के उपरान्त नायक का मित्र प्रथम पुरुष मे कहानी का सूत्र बढाकर पिछले सूत्र से जोडता है और अत मे रहस्योद्घाटन के बाद कहानी का अत हो जाता है। कहानी अपनी कलात्मक विशेषता मे कथात्मक है तथा अपने विकास क्रम मे सयोगात्मक। लेकिन फिर भी इस कहानी-शैली मे जिज्ञासा-कौतूहल वृत्ति को वर्णनो मे इस तरह सगुम्फित किया गया है कि अत तक कहानी मे आकर्षण विद्यमान रहता है। पात्र और चरित्र चित्रण की प्रतिष्ठा की दृष्टि से कहानी साधारण है। केवल पात्र-चरित्रो के रूप मे कहानी मे पिरोए गए है, उन के व्यक्तित्व विश्लेषण का सर्वथा अभाव है। लेकिन यहाँ हमे यह भी नही भूलना है कि यह कहानी की विकास दृष्ट से आदि कहानी है, फलतः इस की अपनी सीमाएँ होना स्वाभाविक है। वस्तुत. यह कहानी हिन्दी के एक भावी आलोचक की लेखनी से निर्मित हुई है, इसलिए इस कहानी के विकास मे कहानीकार स्पष्ट रूप से आलोचक और समर्थक भी बन गया है। जब कहानी का नायक कलकत्ते पहुँच कर एक दिन सहसा अपनी पत्नी की याद करता है, कहानीकार ने जब ऐसी उक्ति कही, वही उस ने इस का विश्लेषण किया कि "हे ....न कभी साक्षात् हुआ, न वार्तालाप, न लम्बी-लम्बी कोर्टशिप हुई, यह प्रेम कैसा। महाशय रुष्ट न हूजिये। इस अदृष्ट प्रेम का धर्म और कर्तव्य से घनिष्ट सबंध है। इसकी उत्पत्ति केवल सदाशय और नि स्वार्थ हृदय मे हो सकती है। इसकी जड ससार के और प्रकार के प्रचलित प्रेमो से दृढ़तर और प्रशस्त है। आपको सतुष्ट करने को मै इतना और कहे देता हूँ कि इगलैड के भूतपूर्व प्रधान मत्री अर्ल आफ बेकन्स फील्ड का भी यही[१] मत है।"

इस तरह इस कहानी की शिल्प विधि मे वर्णन, विश्लेषण स्थान मुख्य है। इस के आरम्भ, विकास और अत का विधान सयोगो के माध्यम से हुआ है

---

१ **सरस्वती, सितम्बर १९०३, भाग ४, संख्या ९, पृ० १३६**

तथा चरित्र-चित्रण घटनाओ के सहारे आकर्षण के प्रकाश मे हुआ है। फिर भी इस कहानी की सब से बडी विशेषता यह है कि, यह हिन्दी की आदि मौलिक कहानी है, तथा इस की शिल्प-विधि का निर्माण कहानी का अपना मौलिक प्रयास है। इस मे कहानी के वे सब तत्व आ गये है, जिन के प्रकाश मे यह कहानी सर्वथा उल्लेखनीय है। इस कहानी के बाद से हमे आने वाली, 'सरस्वती' की प्राय अधिक सख्याओ मे हिन्दी की और मौलिक कहानियाँ मिलने लगती है। दूसरी ओर अहिन्दी कहानियाँ जैसे बगला, अग्रेजी कहानियो के अनुवाद मिलने लगते है। इन प्रारम्भिक विकास-सूत्र के अध्ययन मे हिन्दी की इन मौलिक कहानियो का सूत्र बहुमूल्य है।

विकास-क्रम

इस विकास-क्रम मे जो दूसरी कहानी आती है, वह है पडित गिरजादत्त वाजपेयी लिखित 'पडित और पडितानी'[1] नामक कहानी। यह कहानी कलात्मक दृष्टि से पिछले व्यग चित्र और हास्य चित्र के विकसित सूत्र मे आती है तथा यहाँ कहानी का समग्र रूप सफलता से निर्मित हो गया है। कहानी की सवेदना एक पैतालिस वर्ष के पडित और उनकी बीस वर्ष की पडितानी की समस्या को लेकर चलती है। दोनो मे स्वभाव विरोध के रहते दाम्पत्य आकर्षण है। शैली अध्ययन के लिये एक दिन का हाल यो हैं। कमरे के एक कोने मे जहाँ मेज कुर्सी लगी थी, पडित जी एक कवि के ऊपर कुछ लिख रहे थे। थोडी ही दूर पर पडितानी भी एक पत्र पढ रही थी। पंडितानी ने उन्हे आकर्षित करने के लिए कुछ खासा, पर पडित जी चुप थे, फिर पडितानी ने अपनी बात शुरू की। वे एक तोता पालने जा रही है। पडित जी अपने लेख के प्रवाह मे कोई विघ्न बाधा नही चाहते थे। दूसरी बात घर मे तोते का पालना उन्हे अच्छा न लगता था, इसलिए वे बराबर मना करते थे, लेकिन पंडितानी जी अपने तर्को पर जुटी थी। उन्होने बताया कि उनका तोता कैसे बोलेगा 'सत्य गुरु दत्त शिवदत्त दाता।'

अन्त मे पडित जी पडितानी के प्रेम मे बहकर कोई विरोध न कर सके। उन्होने पडितानी से प्रेमपूर्वक कहा अच्छा तुम्हारे लिए एक नही छः तोते आ जायेगे, अब तो प्रसन्न हो। इस पर पडितानी जी प्रसन्नता से फूलकर चुपचाप बैठ गई और पडित जी ने जल्दी-जल्दी अपना लेख समाप्त कर डाला। उसी

---

[1]**सरस्वती, सितम्बर १९०३ भाग ४, संख्या ९, पृष्ठ १३६**

वर्ष कुमुद बधु मित्र ने टैगोर की कहानी 'दृष्टिदान'[१] को हिन्दी मे भावानुवाद किया । टैगोर की यह पहली कहानी है, जिसका भावानुवाद हिन्दी मे सर्व प्रथम हुआ । कहानी की सवेदना एक डाक्टर और उसकी पत्नी के प्रेम विश्वास को लेकर निर्मित हुई है । सम्पूर्ण कहानी प्रथम पुरुष मे कही गई है, जिस मे दो कलात्मक विशेषताए उल्लेखनीय है, भावुकता पूर्ण सूक्ष्म वर्णन, और चिन्तन शैली, पात्रो की सजीव अवतारणा के साथ साथ इसमे उन की चरित्र-प्रतिष्ठा भी हुई है । चरित्र-प्रतिष्ठा मे मनोविज्ञान और आत्म विश्लेषण दोनो पुष्ट है । कथोपकथन काफी सयत, कलात्मक और स्वाभाविक है, जैसे, मैने उनके पैरो से लिपट कर कहा—मैने तुम्हारा कौन सा पाप किया है, किस बात मे मेरी भूल हुई है, "दूसरी स्त्री का तुम्हे क्या प्रयोजन" ।[१]

पति ने कहा—'मै सच कहता हूँ मै तुमसे डरा करता हूँ, तुम्हारी अधता ने मुझे एक अनन्त आवरण से ढक रक्खा है, वहाँ मेरा प्रवेश असम्भव है । मै जिसको धमका सकूँ, जिस पर क्रोध कर सकूँ, जिसे आदर कर सकूँ, जिसके लिए गहने गढ़ा सकूँ, मुझे ऐसी पत्नी चाहिए ।" इस तरह इस कहानी मे आदर्शवाद की भी प्रतिष्ठा हुई है । इस की चरम सीमा, यद्यपि कौतूहल जिज्ञासा की दृष्टि से निर्बल है, फिर भी चरित्र के अतर्द्वन्द्व पर आधारित है ।

'सरस्वती' के चौथे वर्ष मे पिछले प्रयत्न 'आत्म कहानी'[२] शैली के प्रयोग से यशोदानद अखौरी कृत 'इत्यादि की आत्म कहानी' और प० महेन्दुलाल गर्ग कृत 'पेट की आत्म कहानी'[३] नाम से दो कहानियो की सृष्टि हुई है । इन दोनो की शलियो मे आश्चर्यजनक प्रवाह और कौतूहल तथा आकर्षण के तत्व हैं । पिछले व्यग चित्र और हास्य चित्र शैली का यहाँ चरम उत्कर्ष हुआ है । इस से कहानी कला मे व्यग पक्ष तथा सवेद्य पक्ष को कितना अधिक बल मिला होगा, यह इस से अनुमान लगाया जा सकता है । इन के विचार प्रतिपादन अश मे जहाँ एक ओर उत्कृष्ट भाव निबन्ध के तत्व है वहाँ दूसरी कहानी तत्व भी इस मे सफलता से आए है । यही कारण है कि इनका महत्व निबन्ध साहित्य मे भी बहुत है ।

'सरस्वती' के दूसरे वर्ष मे कोई भी मौलिक कहानी नही आ सकी

---

[१] सरस्वती, १९०३ भाग ४, सं० २, ३

[२] सरस्वती, जून १९०४ भाग ५, सं० ६

[३] सरस्वती, सितम्बर १९०४ भाग ५, सं० ६

लाला पार्वती नन्दन ने 'मेरी चम्पा'[१] के नाम से एक कहानी अवश्य लिखी लेकिन यह कहानी स्वय लेखक के शब्दो मे टामस कारलायल अनुवादित एक जर्मन कहानी की छाया के आधार पर लिखी गई है। इस के अतिरिक्त लाला पार्वती नन्दन ने एक अन्य कहानी 'नरक गुल्जार'[२] के नाम से अनूदित की है लेकिन इस का पता नही कि यह किस मूल अथवा स्रोत से अनूदित हुई है।

वस्तुत- इन प्रारम्भिक कहानियो के विकास का व्यापक रूप हमे १६०६. ई० की 'सरस्वती' से मिलने लगता है। इस वर्ष उदाहरण स्वरूप कुल नौ कहानियाँ आई है जैसे पंडित सूर्यनारायण दीक्षित कृत, 'चंद्रहास का अद्भुत आख्यान',[३] चाँदनी कृत 'प्रोषित पतिका',[४] लाला पार्वती नन्दन कृत, 'एक के दो दो',[५] बग महिला कृत 'कुम्भ मे छोटी बहू',[६] और 'दान प्रतिदान',[७] प० वेकटेश नारायण कृत, 'एक अशरफी की आत्म कहानी',[८] चतुर्वेदी कृत 'भूल भुलैया',[९] लाला पार्वती नन्दन कृत, 'मेरा पुनर्जन्म',[१०] और भट्टाचार्य कृत, 'राज पूतनी',[११]। इन कहानियो मे, 'एक अशरफी की कहानी', 'एक के दो दो', 'चद्रहास का अद्भुत आख्यान', 'प्रोषित पतिका', और 'मेरा पुनर्जन्म', मौलिक कहानियाँ है। ये सब कहानियाँ साधारण ढग की है और शिल्पविधि विकास की दृष्टि से कुछ भी आगे नही बढ सकी है। शेष पूर्ण अनूदित अथवा छायानुवादित कहानियो मे 'राजपूतनी', 'भूल भुलैया', 'दान प्रतिदान', 'कुम्भ मे छोटी बहू' कहानियाँ प्राय उल्लेखनीय है। इनमे 'राजपूतनी', वग भाषा के 'प्रवासी' नामक प्रसिद्ध मासिक-पत्र मे प्रकाशित बाबू सुधीन्द्र नाथ ठाकुर के

---

[१] सरस्वती एप्रिल १६०५, भाग ६, संख्या ४, पृ० १३२
[२] सरस्वती, सितम्बर १६०५, भाग ६ सं० ६
[३] सरस्वती, भाग ७, सं० ३, पृ० १०४
[४] सरस्वती, भाग ७, सं० ५, पृ० १७४
[५] सरस्वती, भाग ७, स० ६, पृ० २६५
[६] सरस्वती, भाग ७, स० ६, पृ० ३४२
[७] सरस्वती, भाग ७, सं० ४, पृ० १३५
[८] सरस्वती, भाग ७, सं० १०, पृ० ३६६
[९] सरस्वती, भाग ७, सं० १, पृ० ३१
[१०] सरस्वती, भाग ७, सं० १, पृ० ५६
[११] सरस्वती, भाग ७ सं० ५, पृ० १८२

एक लेख के अनुवाद के आधार पर निर्मित कहानी है। 'भूल भुलैया' भावात्मक रूप से शेक्सपियर की 'कामेडी आफ एरर्स' नामक नाटक की संवेदना पर आधारित कहानी है तथा 'दान प्रतिदान' रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बगला कहानी का अनुवाद है।

'कुम्भ मे छोटी बहू' भी वस्तुत बग महिला की माँ श्रीमती नीरदवासिनी घोष रचित बग भाषा के एक गल्प का अनुवाद है, लेकिन फिर भी इस कहानी मे इतनी कला है कि इस का प्रभाव उस समय के हिन्दी पाठको और कहानीकारो पर बहुत पडा। इस कहानी की सवेदना मूलत: हिन्दी प्रदेश की समस्या पर आधारित है, तथा इस के इतिवृत्त का निर्माण हमारी भावनाओ, मान्यताओ को सगुम्फित करके चला है। इस का कथानक है–मिर्जापुर का हिन्दू परिवार अपनी छोटी बहू के साथ प्रयाग कुम्भ मेले मे आता है। प्रयाग मेले मे अपार भीड होने के कारण सब लोग खो जाते है। छोटा बहू का एकलौता बच्चा भी दब कर मर जाता है तथा अन्य स्त्रियो के गहने आदि चोरी चले जाते है बस इस कहानी का कथासूत्र इतना ही है। इस स्वाभाविक समस्या को लेकर कहानी का निर्माण हुआ है। शैली की दृष्टि से सम्पूर्ण कहानी वर्णनात्मक के साथ-साथ अलग अनुच्छेदो मे कही गई है, जैसे, प्रथम अनुच्छेद मे उस परिवार का सामूहिक चित्रण, द्वितीय अनुच्छेद मे छोटी बहू के मेले मे आने की तैयारी का चित्रण तथा तृतीय अनुच्छेद मे प्रयाग के कुम्भ मेले का वर्णन और कहानी की परिसमाप्ति।

इस तरह इस कहानी की मूल आत्मा तथा उस का सामूहिक विकास पूर्ण यथार्थ और स्वाभाविक धरातल हुआ है। इस के कथोपकथन मे यह भी स्वाभाविकता सर्वत्र अक्षुण्य है। उदाहरणार्थ बहुए जिस समय मेले मे आने की तैयारी कर रही थी उस समय गाव की एक औरत आकर कहती है "का हो बहू। का सलाह होत बाय, प्रयाग जी नहाए चलत जाब का। हे भाई, हमहूँ कै लिवाय चला[१]।" इस कहानी का उद्देश्य भी अत्यन्त समस्यापूर्ण और यथार्थ है। मेले आदि मे गाव की लज्जाशीला बहुओ के आने से क्या दुर्गति होती है, फलत: उन का मेले आदि मे न आना इस कहानी का उद्देश्य है। 'सरस्वती' के सातवे वर्ष[१] भर की सख्याओ मे फिर छ. कहानियाँ हैं जैसे बाबूराम दास कृत, "एक के दो-दो", पडित उदय नारायण बाजपेयी कृत "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी", लक्ष्मीधर बाजपेयी कृत "तीक्ष्ण छुरी", श्रीमती

[१]सरस्वती, १९०१ भाग ८, संख्या १ से १२ तक।

वाली", प्रेमनाथ भट्टाचार्य कृत, "पक्का गठि बघन", और प० गगा प्रसाद अग्निहोत्री कृत "सच्चाई का शिखर", इन समस्त कहानियो मे शिल्पविधि की दृष्टि से केवल "दुलाई वाली", कहानी महत्व पूर्ण है। पर कहानी शिल्प के विकास मे इसका भी स्थान ऐतिहासिक है।

यही कारण है कि कुछ आलोचको ने इसी कहानी को हिन्दी की आदि मौलिक कहानी मानी है। इस कहानी की सवेदना दो मित्रो के मनोरजन पूर्ण कलात्मक मजाक के धरातल पर चली है। इलाहाबाद के बशीधर बनारस अपनी ससुराल से दूल्हन बिदाकर मुगलसराय जकशन से होते हुए आ रहे थे। मुगलसराय जकशन पर उन के मित्र नवल किशोर भी अपनी पत्नी को लेकर मिलने वाले थे, लेकिन वहाँ कोई न मिला बल्कि गाडी मे उन्हे एक रोती हुई दूल्हन मिली। सहानभूति और करुणावश वशीधर जी उसे अपनी सरक्षता मे लिए हुए इलाहाबाद स्टेशन पर उतरे। वहाँ उन्हे एक दुलाईवाली बुढ़िया मिली। उसी की देख-रेख मे सब को छोडकर बशीधर जी स्टेशनमास्टर को, उस लावारिश दूल्हन के सबंध मे सूचना देने गए और जब लौट कर आते है, तव वहाँ सब लापता थे—उन की दूल्हन भी। बशीधर जी परेशान होकर जैसे ही आगे बढे उन्होने दुलाई वाली बुढिया को देखा और पूछने पर वह दुलाई वाली अपना घूघट खोलकर हस पडी और बंशीधर ने देखा वह नवल किशोर ही था। वस्तुतः इस इतिवृत्त की कलात्मक सजावट ही इस कहानी की शिल्पविधि की परम विशेषता है। सम्पूर्ण कहानी विभिन्न भागो से विकसित की गई है। कहानी का आरम्भिक भाग समस्या की पृष्ठभूमि तैयार करने और मुख्यत. आकर्षण और कौतूहल प्रस्तुत करने के लिए है। कहानी के दूसरे भाग मे इस का फैलाव आता है। इस मे एक ओर कहानी की कथावस्तु स्पष्ट होकर आगे बढती है, तथा दूसरी ओर कहानी के नायक का द्वन्द्व सामने आता है। तीसरे भाग मे कहानी की समस्या सामने आती है और कहानी के नायक के द्वन्द्व से मिलकर कहानी मे गंभीरता और कौतूहल की सृष्टि करती है। कहानी का चौथा भाग चरम सीमा का भाग है जहाँ हमारी जिज्ञासा वृत्ति को शान्ति मिलती है। विशुद्ध शैली की दृष्टि से इस कहानी मे दो विशेषताएँ उल्लेखनीय है—यथार्थ जीवन का चित्रण और स्वाभाविक वर्णन। यथार्थ जीवन चित्रण मे दो बाते स्पष्ट है, पूर्ण सवेदना से मानव भावनाओ के चित्रीकरण तथा चरित्र और परिस्थिति के साधारणीकरण का प्रयत्न। स्वाभाविक वर्णनो मे, स्वाभाविक कथोपकथन और कहानी की गति के अनुकूल इसके वर्णन विशेष रूप से सफल हुए है।

अगले वर्ष की 'सरस्वती'[१] की सख्याओ मे अध्ययन की दृष्टि से कहानी सामग्री का अभाव है। इस की सख्या सात और ग्यारह मे दो कहानियाँ क्रमश सत्यदेव कृत "कीर्तिकालिमा", और मधुमगलकृत "भुतही कोठरी" आई है, तथा ये दोनो कहानियाँ विकास अध्ययन की दृष्टि से बिल्कुल नगण्य हैं। इसके बाद की 'सरस्वती'[२] मे कुल पाच कहानियाँ आई है जैसे श्री लाल शालग्राम पण्या कृत, "एक ज्योतिषी की आत्म कथा", श्रीमती बंग महिला कृत, "दालिया", कुन्दनलाल शाह कृत "प्रत्युपकार का एक अद्भुत उदाहरण", श्री बृन्दावन लाल वर्मा कृत, "राखी बन्देनाई", और प० शिवनरायन शुक्ल कृत, "सात सुनार"। इन समस्त कहानियो मे केवल वृन्दावन लाल वर्मा कृत राखी बन्देनाई को छोडकर शेष सब कहानियाँ किसी न किसी रूप मे अनूदित हैं। सात सुनार, सम्पादक के शब्दो मे—यह कहानी 'फोक टेल्स' की एक कहानी का भावार्थ है। "दालिया" टेगोर की लिखी हुई बगला गल्प का अनुवाद है "प्रत्युपकार का एक अद्भुत उदाहरण", स्वय अनुवादक श्री शाह के शब्दो मे अनुवाद मात्र है। "राखीबन्द भाई", भावी हिन्दी कहानी जगत् के उस ऐतिहासिक और मर्यादावादी कहानीकार श्री बृन्दावन लाल वर्मा की सृष्टि है जिन्हे इस दिशा मे आगे चलकर अपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। वस्तुत वर्मा जी के भावी कहानीकार व्यक्तित्व की प्राय समस्त विशेषताएँ अपने बीज रूप मे यहाँ मिल जाती हैं। इस कहानी का इतिवृत्त राजस्थान के दो राजाओ से सबधित है जो राजकुमारी पन्ना के राखी बाधने से विकसित होती है। कहानी की आत्मा इस द्वन्द्व और सयोग पर आधारित है कि पन्ना जिस राजा की राखी भेजकर अनजानवश भाई बनाती है वही उसका प्रेमी निकलता है। इस तरह कहानी का अत मानव आदर्श और चिरतन द्वन्द्व के आधार पर होता है। कहानी कलात्मक रूप मे वर्णनात्मक और इतिवृत्त प्रधान है। इसका प्रभाव हृदय पर पूर्णत आदर्श भावना के साथ पडता है। आगे चलकर 'सरस्वती' १९१० की संख्या १० मे इन की इसी शिल्पविधि की अन्य कहानी "तातार और एक वीर राजपूत" के नाम से आती है।

'सरस्वती' की इतनी कहानी सेवा और प्रेरणा ने हिन्दी कहानी शिल्प-विधि के विकास मे जहाँ एक ओर कहानी युग की प्रतिष्ठा की, दूसरी ओर इस ने

---

[१]सरस्वती, १९०८ ई० भाग ९, संख्या १ से १२ तक।

[२]सरस्वती, १९०९ ई० भाग १०, संख्या १ से १२ तक।

हिन्दी प्रदेश और इस के एक-एक भाषा-भाषी तथा पाठक और लेखक के हृदय मे कहानी की सत्ता की जड जमा दी। अब पाठक साहित्य के अन्य रूपो की अपेक्षा कहानी के पठन-पाठन को अधिक प्रश्रय देने लगा। उस समय की यह मनोवृत्ति मुख्यत. दो कारणो से इस विशेष दिशा मे बदली।

वस्तुत. १६०६ और १६१० ई० के आस-पास का समय, भारतीय परिस्थिति मे कठिन राजनीतिक और सामाजिक असतोष के आरम्भ का काल है। इस के पूर्व भी भारत मे यह असतोष था, लेकिन उस असतोष मे आशा थी, भाग्यवादिता का संबल था। इस समय से देश मे वह असतोष आरम्भ होता है, जिसकी जड मे निराशा और पराजय थी। यह निराशा और पराजय की भावना भारतीय चेतना मे १६१८ ई० के बाद एक कारण से और भी बढ़ जाती है कि हमे प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के उपरान्त कुछ नही मिलता। इस समय देश के शासक अँग्रेज हमारी सम्पूर्ण परिस्थितियो को अपने दमन-चक्र मे डालकर स्वयं भावी प्रथम महायुद्ध की तैयारी मे लग चुके थे। इधर भारतीय राजनीति मे गाँधी जी का अभ्युदय हो गया और देश मे स्वाभिमान की लहर उठने लगी। लेकिन दूसरी ओर हमारी सामाजिक मान्यताएँ कठोर निश्चित तथा स्थिर हो चली थी और आर्थिक दृष्टि से भी हमारा पतन आरम्भ हो गया था, फलत. जीवन द्रुतगामी होने लगा था। अवकाश के क्षण सीमित हो चले थे और क्षणिक अवकाश मे ही मनोरजन के लिए कहानी की माँग बढ़ गई। इस माँग मे लेखको के स्वाभिमान और स्थितियो के प्रति असतोष ने अपूर्व सहयोग दिया। उस समय प्रयाग और काशी हिन्दी क्षेत्र के दो मुख्य केन्द्र रहे। प्रयाग मे 'सरस्वती' कहानी की इस बढ़ती हुई पिपासा को शान्त करने मे असमर्थ होने लगी, इसलिए 'सरस्वती' के अतिरिक्त काशी केन्द्र से 'इन्दु' (१६०६) का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस तरह सरस्वती और इन्दु, की सामूहिक प्रेरणा ने हिन्दी कहानी जगत् मे उस उज्ज्वल द्वार को खोला, जिस से प्रसाद (इन्दु) और गुलेरी (सरस्वती) का कहानी क्षेत्र मे आविर्भाव हुआ।

'इन्दु' का प्रकाशन

हिन्दी कहानी शिल्पविधि के आरम्भ और विकास की दृष्टि से 'सरस्वती' के उपरान्त 'इन्दु' का भी स्थान कहानी साहित्य के इतिहास मे महत्वपूर्ण रहेगा। इस के उज्ज्वल पृष्ठो से जहाँ एक ओर युग के एक प्रतिनिधि कहानीकार

प्रसादजी का आविर्भाव हुआ, वहाँ दूसरी ओर इस का विभिन्न 'किरणो' मे अनेकानेक बंगला कहानियाँ अनूदित होकर हिन्दी मे आई तथा कहानी के क्षेत्र मे इतने नये हिन्दी लेखको का आगमन हुआ कि 'इन्दु' की केवल पाँच वर्षो की ही 'किरणो' मे 'सरस्वती' के दस वर्षो की सख्याओ मे कुल आई हुई कहानियो से प्राय दुगुनी कहानियाँ आई होगी। प्रसाद की प्रथम कहानी 'गाँव'[1] इस के दूसरे ही वर्ष द्वितीय 'किरण' मे आई है। इनकी दूसरी कहानी 'चन्दा'[2] उसी वर्ष की अगली किरण मे आई। इस के उपरान्त प्रसाद की अन्य कहानियाँ जैसे 'गुलाम'[3] 'चित्तौर उद्धार'[4], आगे की कलाओ मे आई। वस्तुत: प्रसाद के कहानी साहित्य की प्रारम्भिक कहानियाँ, 'इन्दु', के प्रारम्भिक वर्षो मे आई है। प्रसाद के अतिरिक्त 'इन्दु' के इन प्रारम्भिक वर्षो मे हिन्दी के अन्य मौलिक कहानीकार प० विश्वम्भरनाथ जिज्जा का नाम उल्लेखनीय है। इन की प्रथम कहानी, 'विदीर्ण हृदय', इन्ही वर्षो के 'इन्दु' के पृष्ठो मे आई है।

इन्दु का अपार महत्व इस दिशा मे भी है कि इस के माध्यम से बगला की अनूदित कहानियाँ हिन्दी प्रदेश मे अपूर्व ढग से आई है। इन कहानियो से हिन्दी के उदीयमान कहानीकारो को अनेक प्रेरणाएँ मिली। बगला की ये कहानियाँ मुख्यत. वहाँ के सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'प्रवासी', से ली जाती थी। इस तरह, 'प्रवासी', का आभार, हिन्दी कहानी शिल्पविधि के विकास के इतिहास मे स्मरणीय हैं। 'इन्दु' से इन बगला कहानियो के अनुवादक मुख्यत. प० पारसनाथ त्रिपाठी थे। इन्होने बगला कहानियो के अनुवादो से' इन्दु' की किरणो को बार बार सुशोभित किया है। 'इन्दु' की छः वर्षो की किरणो मे त्रिपाठी जी ने अनेक बगला कहानियो को अनूदित किया। 'मन का दाग', 'चूँक को हूक', 'प्रेम पुस्तक', 'लज्जा', 'ललिता', 'प्रियम्बदा' बग महिला कृत, ''दुलाई तथा 'पोस्टकार्ड', 'मेघनाथ', और 'विमला की पाठशाला', आदि बगला कहानियाँ उल्लेखनीय है।

इस भाँति, 'इन्दु' की कहानी कला के विकास की प्रेरणा मे मौलिक हिन्दी

---

[1] इन्दु : कला २ किरण २ पृष्ठ ६१

[2] इन्दु : कला २ किरण ३ पृष्ठ ८२

[3] इन्दु : कला ५ किरण १ पृष्ठ ४

[4] इन्दु : कला ६ किरण १ पृष्ठ १६७

[5] 'इन्दु कला ६ किरण १ पृष्ठ ४४, ४८

कहानियो की अपेक्षा बंगला से अनूदित कहानिनों की प्राणशक्ति ने युग की उद्बुद्ध कहानी कला की चेतना को अपूर्व बल दिया। कहानियो की माँग, जनता तथा पाठको की ओर से और बढ गई तथा उदीयमान कहानी लेखको ने भी इधर अपनी क्षमता का पूर्णप्रदर्शन आरम्भ किया। काशी मे 'इन्दु' अतिरिक्त १६१८ ई० मे 'हिन्दी गल्प माला' के, प्रकाशन की नीव पडी और इस विशुद्ध कहानी मासिक ने कहानी जगत् मे अपनी कहानियो के विविध रूप विविध शैलियो और प्रयोगो से हलचल मचा दी।

'हिन्दी गल्प माला' का प्रकाशन

हिन्दी कहानियो की लोकप्रिय बनाने तथा इस की कला को विस्तार देने मे 'हिन्दी गल्प माला'[१], की बहुत बडी विशेषता है। इस के प्रथम भाग के द्वितीय अक मे श्री प्यारेलाल गुप्त कृत 'समालोचक' श्रीमती फूलमती कृत 'बडे की बेटी', रुद्रदत्त भट्ट कृत 'अजीबदास की जासूसी', और जी० पी० श्रीवास्तव कृत 'मै न बोलूगी' कुल चार कहानियाँ है। इन कहानियो मे जी० पी० श्रीवास्तव की 'मै न बोलूगी'[२] कहानी अध्ययन की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस मे कथावस्तु नाम जैसा कोई विशेष तत्त्व नही है, वल्कि समूची कहानी की सवेदना एक मनोवैज्ञानिक भाव विन्दु पर आधारित है। कोई मुग्धा नायिका अपने पति की अनुपस्थिति मे स्वयं अपने आप तय करती है कि मैं उन से न बोलूगी, उन के आने पर रूठी रहूँगी। लेकिन जैसे ही पति आ जाता है वह अपनी सहज निर्वलता के फलस्वरूप बिल्कुल नही रूठ पाती। शैली की दृष्टि से यह प्रथम पुरुष की शैली मे चिन्तन प्रणाली से निर्मित हुई है यह कहानी निश्चित रूप से मनोवैज्ञानिक कहानी है और इस की चरम सीमा विशुद्ध रूप से चरित्रात्मक है।

उसी वर्ष के अक चार मे जी० पी० श्रीवास्तव कृत अन्य कहानी 'झूठमूठ है'[३]। इस कहानियो का भी धरातल किंचित मनोविज्ञान है, कथामय इतिवृत्त

[१] हिन्दी गल्प माला, प्रवर्तिका, कौशल्या देवी, काशी आरम्भ तिथि अगस्त १६१८ ई०

[२] हिन्दी गल्प माला भाग १ अंक २, सितम्बर १६१८ ई० पृष्ठ ६२

[३] हिन्दी गल्प माला, भाग १ अंक ४ नवम्बर १६१८ पृष्ठ १५८

नही। दूँसरे वर्ग के आठवे अंक मे भावी हिन्दी कहानीकार श्री इलाचन्द्र जोशी कृत 'सजनवाँ'[१] नामक उनकी प्रथम कहानी का प्रकाशन हुआ। सजनवाँ, कहानी मे जोशी जी के भावी हिन्दी कहानीकार के व्यक्तित्व के सारे बीज विद्यमान है। जी० पी० श्रीवास्तव ने अपनी 'मै न बोलूगी', और 'झूठमूठ है', कहानी के माध्यम से जिस मनोवैज्ञानिक कहानी धारा का सूत्रपात किया उस मे 'सजनवाँ' द्वारा जोशी जी का तादात्म्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। 'सजनवाँ' द्वारा जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक प्रणाली को बल दिया तथा इस कहानी की चिन्तन शैली काफी सफलता के साथ आई। २'माला' के अगले वर्षो के अकों मे प्रसाद जी की कहानियाँ नियमित रूप से आने लगी जैसे, 'पत्थर की पुकार', 'करुणा की विजय', 'उस पार का योगी', 'खंडहर की लिपि', ''प्रतिभा', 'पाप की पराज्य' और 'दुखिया' आदि।

हिन्दी कहानी शिल्पविधि के प्रारम्भिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से 'इन्दु' द्वारा जयशकर प्रसाद, 'सरस्वती', द्वारा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी[२], और इधर मन्नन द्विवेदी द्वारा 'सप्त सरोज' की भूमिका से प्रेमचन्द[३] के 'अभ्युदय' ने समष्टि रूप से एक नया युग द्वार खोला। हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि की निश्चित प्रतिष्ठा इन्ही के द्वारा हुई तथा समूचा विकास-युग इन्ही तीनो के व्यक्तित्व से स्थिर हो सका। इस सत्य को हम यो भी कह सकते है कि 'गुलेरी', प्रेमचन्द और 'प्रसाद', का अभ्युदय हिन्दी कहानी की अनन्य साधना, जो पिछले पचास वर्षो से की जा रही थी, । उसी के फलस्वरूप है। इन के कहानी साहित्य तथा इन की शिल्पविधि मे एक ओर हिन्दी कहानी कला की स्वतत्र सत्ता उपस्थित हुई, दूसरी ओर हमे वह व्यापक भाव-भूमि मिली, जिस के आधार पर हम हिन्दी कहानियो के शिल्पविधि के विकास और उद्‌गम सूत्र का समुचित अध्ययन प्रस्तुत कर सके।

अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि की उत्पत्ति और विकास की जड मे किन-किन उद्‌गम-सूत्रो से इसे प्राणशक्ति मिली, तथा इस के

---

[१] वही, भाग २ अंक ८ मार्च १९२०, पृष्ठ ३५९

[२] सरस्वती, अक्टूबर १९१५

[३] प्रेमचन्द के सप्त सरोज की भूमिका, मन्नन द्विवेदी, चौथी बार ८, ६, १९१७ हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता।

विधान पर किन-किन प्रवृत्तियों के प्रभाव पड़े, इसका विवेचन सबसे प्रमुख है। इस विवेचन से हम यह खोजने का प्रयत्न करेंगे कि उन समस्त प्रेरणा शक्तियों के क्या-क्या रूप और स्तर हैं, जिन से हमारी इस कला का आविर्भाव और विकास हुआ।

विकास युग

हिंदी कहानी कला को ही यह सुयोग मिल सका है कि इस का आविर्भाव जिन साहित्यिक मनीषियो द्वारा हुआ, उन्ही की साहित्य साधना से इस का विकास भी हुआ। यह विकास इतना व्यापक और विस्तृत था कि इस ने अपने मे एक स्वतन्त्र युग की प्रतिष्ठा की। हिंदी कहानी कला के आविर्भाव मे प्रेमचन्द और 'प्रसाद' का व्यक्तित्व ही मुख्य था तथा इस के विकास की दिशा मे भी इन्ही की साधना फलीभूत हुई। इन दो महान् कथा शिल्पियो से दो पृथक् संस्थानो के निर्माण हुए, जिन के अतर्गत अनेकानेक कहानीकारो ने अपनी बहुमूल्य कला कृतियाँ दी। विकास-क्रम की दृष्टि से प्रेमचद और 'प्रसाद', के पहले चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का स्थान अपूर्व है। इन की केवल तीन कहानियाँ 'उसने कहा था',[1] 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काटा'[2] वस्तुतः हिंदी कहानी कला के विकास के प्रथम युग-द्वार है। लेकिन प्रेरणा और प्रभाव की दृष्टि से गुलेरी का स्थान अपने आप मे स्वतत्र है। इन से विकास युग को एक गति अवश्य मिली, लेकिन इन से यह युग प्रेरित न हो सका। इस का एक मात्र कारण यही था कि इन्होने कहानियाँ कम लिखी और खोजपूर्ण लेख अधिक। ऐसे युग मे प्रेमचद और प्रसाद के आविर्भाव ने भी इन्हे पृष्ठभूमि मे डाल दिया। अतएव हिंदी कहानियो की शिल्पविधि के विकास युग के केवल दो मुख्य चरण हैं : प्रेमचंद और प्रसाद, तथा समूचे विकास-युग का प्रतिनिधित्व इन की विभिन्न शिल्पविधियो और कलागत मान्यताओ ने किया।

प्रवृत्तियाँ

प्रेमचंद और 'प्रसाद' की कहानी कला इस युग मे दो विभिन्न प्रवृत्तियों के फलस्वरूप प्रतिष्ठित है। इन्ही दोनो प्रवृत्तियो का अनुसरण और प्रभाव

---

[1] सरस्वती, अक्टूबर १९१५

[2] 'सुखमय जीवन' शीर्षक कहानी सन् १९११ मे 'भारत मित्र' मे छपी थी, 'बुद्धू का काँटा' किस पत्र या पत्रिका मे छपी थी, यह मै निश्चित रूप से नहीं कह सकता हूँ। शायद यह सन् १९११-१५ के बीच मे लिखी गयी थी, गुलेरी जी की अमर कहानियाँ—सम्पादक शक्तिधर गुलेरी, वक्तव्य पृ० ३

समूचे विकास-युग पर हुआ। ये दोनो प्रवृत्तियाँ एक दूसरे से भिन्न थी। प्रेमचंद मूलत. आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा के प्रतीक थे। 'प्रसाद', भावमूलक परम्परा के अधिष्ठाता थे। तुलनात्मक दृष्टि से, प्रसाद की भावमूलक परपरा को अपेक्षाकृत कम कहानीकारो ने अपनाया और प्रेमचद की यथार्थवादी परपरा मे इस युग के अधिक से अधिक कहानीकार आए। व्यापक रूप मे विकास युग की समूची कहानी कला इन्ही दोनो की कलाओ के अनुसरण का फल है, अतएव इन की प्रवृत्तियाँ ही विकास-युग को वास्तविकत प्रवृत्तियाँ मानी जा सकती हैं, जिन्हे हम दो कोटियो मे बाँट कर देख सकते है।

(क) भावगत प्रवृत्तियाँ
(ख) शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

भावगत प्रवृत्तियाँ

'प्रसाद' के व्यक्तित्व पर बौद्ध दर्शन और भारतीय संस्कृत का प्रभाव बहुत अधिक था। यही कारण है कि इन की भाव धारा मे एक ओर बौद्ध दर्शन की करुणा, त्याग बलिदान था, और दूसरी ओर इन मे भारतीय सस्कृति की चारित्रिक उदारता और आदर्श का अपूर्व आग्रह था। इन दोनो आग्रहो से इन का जो जीवन-दर्शन बना, उस मे करुणा, प्रेम, आनन्द और आदर्श की भावना अत्यन्त तीव्र थी। इन के व्यक्तित्व मे अतीत की इतनी अद्भुत प्रेरणा और भारतीय सस्कृति का इतना आग्रह प्रतिफलित हुआ कि इस के फलस्वरूप इन्हे वर्तमान की अपेक्षा अतीत की ओर जाना पडा और यथार्थ परिस्थितियो की अपेक्षा काल्पनिक परिस्थितियो से होकर गुजरना पडा। प्रसाद की भावगत प्रवृत्तियो का रहस्य यही है, और इनका मूल धरातल समाज इतिहास और परिस्थित जन्य कल्पना है। कल्पना तत्व इन के समस्त काव्य रूपो का वह मूल स्रोत है, जहाँ से उन्हे सौदर्य और शिव की अनेक प्रेरणाएँ प्राप्त हुई हैं। यह भावगत वृत्ति इन के कहानी-साहित्य मे पूर्ण कलात्मक और उच्च शिखर पर स्थित है, यही कारण है कि इन की प्राय. समस्त कहानियाँ भावात्मक हो गई समाज, इतिहास और कल्पना तीनो धरातलो से निर्मित कहानियो के वर्ण्य विषय और भावो के अध्ययन से यह सत्य स्पष्ट है।

तत्कालीन समाज की गरीबी, निरीहता और शोषण को भी इन्होंने अपनी कहानियो मे स्थान दिया है। अपनी गतिशील सास्कृतिक आस्था मे, प्रसाद ने सामाजिक परिस्थितियो और मान्यताओ के प्रति विद्रोह और सुधार

भा लक्षित किया है। 'चूडी वाली' मे चूडीवाली एक वेश्वा की कथा है, लेकिन वह अपनी पवित्रता और सयम के साथ उस दुनियाँ से बाहर निकल कर एक प्रतिष्ठित व्यक्ति विजयकृष्ण के घर मे बघू बनकर रहना चाहती है और अत मे वह अपने इस संकल्प मे सफल भी होती है। 'नीरा' मे एक अन्य धनी और प्रतिष्ठित व्यक्ति, एक अकिंचन, अपाहिज ब्यक्ति की लडकी, नीरा, से विवाह कर लेता है और समाज की सारी मान्यताओ को ठुकरा देता है। इस तरह सामाजिक प्रवृत्तियो मे, प्रसाद, पूर्ण आदर्शवादी है। इन का यह आदर्शवाद मुख्यत प्रेम और विवाह की सवेदनाओ को लेकर चलता है। प्रेम-तत्व तथा प्रेम की स्थितियो मे प्रसाद, सदैव उन्मुक्त, स्वच्छद और अर्थनिरपेक्ष प्रेम-भाव को स्वीकार करते है। 'रसिया बालम', 'तानसेन', और 'सुनहरा साँप', मे इन्होने सर्वथा स्वतत्र तथा वासनारहित प्रेम को परम शाश्वत और महान सत्य स्वीकार किया है। वैवाहिक स्थितियो मे इन्होने प्रेम और सहज आकर्षण तत्व को बहुत प्रधानता दी है और इस दिशा मे इन्होने सामाजिक और आर्थिक मान्यताओ को कुछ भी स्थान नही दिया है।

ऐतिहासिक धरातल से प्रसाद ने जिन वर्ण्य विषयो और भाव-धाराओ को चुना है उन मे एक ओर विशुद्ध रूप से भारतीय सस्कृति की आदर्शवादिता और स्वर्ण युग की प्रतिष्ठा है, तथा दूसरी ओर उन्होने करुणा, बलिदान और उत्सर्ग की भावाभिव्यक्तियो से अतीत की धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक मान्यताओ को चुनौती भी दी है। प्रथम के उदाहरण मे, 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', और 'इन्द्रजाल' आदि कहानियो के भावपक्ष लिए जा सकते है और दूसरी दिशा मे 'सालवती', 'दवेरथ', 'आँधी', 'नूरी', आदि की भावगत प्रवृत्तियाँ उल्लेखनीय है। ये समस्त कहानिया जिन वेदनाओ और लक्ष्य विन्दुओ को लेकर लिखी गई है उन मे सर्वत्र करुणा, उत्सर्ग और मूक विद्रोह की प्रवृत्ति है। इन कहानियो की भावनाएँ अधिकाशतः प्रेमपूरक है, अर्थात् स्वच्छद प्रेम, उत्सर्गपूर्ण मिलन और आदर्शमय विच्छेद इन की भावपूरक इकाइयाँ हैं, जिन पर प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियो के प्रासाद की सृष्टि हुई है। वस्तुत कल्पना का धरातल इन की समस्त कहानियो मे किसी न किसी रूप मे विद्यमान मे। कही उन्होने कल्पना मे सामाजिक विद्रोह का रूप लिया है और कही दर्शन की गूढ़ और आदर्शवादी सृष्टि की है, जिसमे 'प्रलय' आदि कहानियाँ प्रमुख हैं।

साराशत:, प्रसाद की भावगत प्रवृत्तियो मे भारतीय संस्कृति और अतीत

की प्रेरणा मुख्य है, और इस मे कल्पना की तीव्रता सब से अधिक है। अतएव भाव-पक्ष की दृष्टि के प्रसाद को कहानियाँ आदर्शोन्मुखी और काल्पनिक हैं जिन के लक्ष्यबिंदु पर आनन्द और सौदर्य की अमिट आभा है।

विकास युग की दूसरी विशिष्ट प्रवृत्ति के प्रतीक है, प्रेमचन्द। जहाँ, प्रसाद, की प्रवृत्ति भावमूलक थी, वहाँ प्रेमचन्द यथार्थ निष्ठ आदर्श-मूलक हैं। प्रेमचन्द की यह विशेष यथार्थवादी परम्परा विकास युग की मूल आत्मा है। प्रसाद की भावमूलक परम्परा की अपेक्षा प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा का प्रभाव समूचे विकास-युग के कहानीकारो पर अधिक से अधिक कहानीकारो ने इस परम्परा को अपनाया। इसका मुख्य कारण यही था कि प्रेमचन्द को यथार्थवादी परम्परा मे उनका तत्कालीन युग उसकी समस्त मान्यताएँ, परिस्थितिया और युग-चेतना का पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ। तत्कालीन सामाजिक कुरीतियाँ और उन के सुधार के प्रति उत्कट आग्रह, दलित, शोषित, निर्धन किसान-मजदूर के साथ अपार सहानुभूति तथा राष्ट्रीय जागरण की प्रेरणा प्रेमचन्द के भावपक्ष की मुख्य इकाइयाँ थी। तुलनात्मक दृष्टि से जहाँ प्रसाद की भावमूलक प्रवृत्तियो का मूल धरातल इतिहास, अतीत और कल्पना पर आश्रित था, वहाँ प्रेमचन्द की यथार्थमूलक प्रवृत्तियो का मेरुदड, समाज, व्यक्ति और राष्ट्र की सवेदनाओ पर आधारित था। स्पष्ट शब्दो मे प्रेमचन्द और, प्रसाद, के कलागत दृष्टिकोणो मे अपार विभिन्नता थी। प्रसाद प्रेमचन्द की भाँति कहानी कला को समाज, व्यक्ति आदि की उपयोगिता और नैतिकता के आधार पर नही रखना चाहते। वे इस का सबध अपने नाटक और काव्य की भाँति मनुष्य की आत्मा के लोकोत्तर आनन्द और सौन्दर्यानुभूति से जोडते हैं, क्योकि प्रसाद प्रकृति के कवि हैं और वे आनन्द प्रेम को अपनी कला का वास्तविक लक्ष्य मानते है। प्रेमचन्द प्रकृति से समाज के आलोचक और सुधारक थे और वे अपनी इस कला को मानव जीवन की समस्याओ और अन्दोलनो की क्रान्ति-कारणी शक्ति मानते हैं। प्रेमचन्द के इस यथार्थवादी दृष्टिकोण मे इतनी विविधता और व्यापकता है कि मनुष्य का पूर्ण व्यक्तित्व अपनी समकालीन सामाजिकता के साथ चमक उठा है।

सामाजिक धरातल से प्रेमचन्द ने सर्व प्रथम समाज के रूढिग्रस्त रीति-रिवाज, जाति, धर्म और परम्परा को अपनी कला का विषय बनाया है, क्योकि

मूलत समाज की यही वे ऊँची दीवारें हैं, जिनमे मानवता कही अछूत के नाम से वहिष्कृत है, कही आर्थिक दासता के नाम पर बन्दी है और कही वेश्या तथा पतिता के नाम से अगाह्य है, कही पति की उच्छृङ्खलता से दाम्पत्य जीवन मे कलह की लपट उठी है, कही नारी ने अपने आत्मसम्मान की रक्षा और उत्सर्ग मे अपने बलि दे दी है। यथार्थवादी मनोविज्ञान ऐसी हृदयरजक स्थितियो से होकर वस्तुवादी जगत् मे अन्तरित हुआ है कि हमारे सामने जीवन का एक स्वस्थ दृष्टिकोण उपस्थित हो गया है। प्रेमचन्द ने अपने प्रेमजगत् को बहुत व्यापक रूप मे लिया है और व्यावहारिक आदर्श की पूर्ण प्रतिष्ठा की है। उन्होने पति-पत्नी, विधवा-विवाह, अन्तर्जातीय-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह से सम्बन्धित अनेक उत्कृष्ट कहानियो की सृष्टि की है, जिन मे समस्याओ और स्थितियो के प्रति सर्वत्र सुधार का आग्रह हे। कही-कही सुधार और परिवर्तन के आग्रह से उन्होने जीवन की करुणा को बहुत सफलता से जागरित किया है। समाज को दो प्रमुख इकाइयाँ घर और सस्था मे इन्होने क्रमशः सयुक्त परिवार समस्या और किसानी, मजदूरो, नौकरी तथा जमीदारी आदि सस्थाओ को लिया है। घरो की आर्थिक समस्याओ के साथ-साथ इन्होने सयुक्त परिवार परम्परा के खोखलेपन को सर्वत्र दिखाया है। मुख्यत. मध्यम वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग के घर ही इस दिशा मे प्रेमचन्द के विषय बन सके हैं। सस्थाओ से सबधित सवेदनाओ मे जमीदारी सस्था, पुलिस सस्था, न्यायालय सस्था आदि को उन्होने लिया है क्योकि ये सस्थाएँ सीधे किसान वर्ग से सम्बन्धित हैं।

व्यक्तिगत भाव धरातल पर प्रेमचन्द ने एक ओर व्यक्ति के चरित्र को लिया है, जहाँ सत्-असत् तथा नैतिकता और अनैतिकता का अध्ययन पूर्ण सफलता से हुआ है और दूसरी ओर व्यक्तिगत धरातल से प्रेमभाव को भी इन्होने अपनी कहानी कला मे विकसित किया है लेकिन इस का क्षत्र प्रेमचन्द के भाव जगत् मे अत्यन्त सीमित[१] है। सभवत. द्विवेदी युग की अति नैतिकता

---

[१]प्रेम से अभिप्राय यदि स्त्री-पुरुष के प्रेम से ले तो प्रेमचन्द मे इस से संबंध रखने वाली कहानियाँ उँगली पर गिनी जा सकेगी। नर-नारी प्रेम प्रेमचन्द जी का विषय ही नही रहा, उन्होने यौन-प्रेम को विषय नही बनाया प्रेम के दीवाने मात्र, दीवानो के विकृत मन सृष्टि शरत् की भाँति इन के कथानको की प्रेरणा नही बन पाई।

सत्येन्द्र . प्रेमचन्द उनकी कहानीकला

इस का एक कारण रही हो। प्रेम-भाव को इन्होने सर्वत्र स्वस्थ दृष्टिकोण से लिया है। उस मे कही भी छिछलापन अथवा वासना की दुर्गन्धि नही आ सकी है। प्रेम को उन्होंने चरित्र और उस की नैतिकता का मापदड माना है, और उस की चरम परिणति उन्होने विवाह माना है (व्यक्ति चरित्र की दिशा मे प्रेमचन्द ने मनोविज्ञान को लिया है, यह मनोविज्ञान एक ओर व्यक्ति चरित्र के अध्ययन और चित्रण मे पूर्ण निरपेक्ष रूप से आया है, जैसे 'बूढी काकी', 'आत्माराम', और 'कफन' आदि मे। दूसरी ओर यह मनोविज्ञान चरित्र की वाह्य परिस्थितियो और समस्याओ की सापेक्ष्यता मे चरितार्थ हुआ है। मनोविज्ञान की यह दूसरी विधि प्रेमचन्द की कहानी कला की दृढ आधार है।)

राष्ट्रीय भावधारा मे प्रेमचन्द मूलत गाधीवादी थे। अछूतोद्धार, दलित, निर्धन देहाती के साथ अपार समवेदना, सुधार तथा राष्ट्रीय भावना का जागरण इन की कहानी कला के भाव पक्ष का एक जबरदस्त मोर्चा है। इस मोर्चे से उन्होने गाधीवाद की प्रतिष्ठा और राष्ट्रीय जागरण का जोश दिलाया है तथा झूठे विश्वासघाती राष्ट्रसेवक, दम्भी नेताओ की व्यगात्मक आलोचना की है। प्रेमचन्द अपनी कहानी कला के उत्कर्ष-काल मे साम्यवाद से भी प्रेरित हुए तथा शोषण और श्रमविभाजन के भाव-पक्ष से कहानियाँ लिखी, 'कफन' इस का ज्वलत उदाहरण है। वस्तुत आर्थिक विषमता और इस के अनेक रूप प्रेमचन्द के भावपक्ष मे समाविष्ट हुए। इस विषमता को हल करने के लिए उन्होने कभी गाधीवाद का पक्ष लिया है और कभी साम्यवाद का, प्रश्न के साथ इसका उत्तर भी है।

ऐतिहासिक धरातल से लिखी हुई कहानियो के भाव पक्ष मे आदर्शवाद और प्राचीन मर्यादा की प्रतिष्ठा इन की कला की मूल प्रवृत्ति है। 'राजा हरदौल' 'मर्यादा की वेदी', 'जुगनू की चमक', और 'रानी सारधा' आदि कहानियो मे भारतीय इतिहास के राजपूत और सामतकाल के अनेक गौरवपूर्ण आदर्श चरित्र गुफित है। इस के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने भारतीय इतिहास की मुगलकालीन कथा-वस्तुओ को भी चित्रित किया है और विलास वभव तथा ऐश्वर्य के चित्रण के बीच उन्होने पतन की दिशा का सकेत कर हमे जागरूक और चैतन्य होने का सदेश दिया है। इस ऐतिहासिक प्रवृत्ति की पूर्ण और व्यापक सफलता आगे चलकर वृन्दावन लाल वर्मा की कहानी कला मे मिली[१]।

---

[१] 'शरणागत और कलाकार का दंड', वृन्दावन लाल वर्मा।

समग्र रूप मे विकास युग की भागवत प्रवृत्तियो के अन्तर्गत प्रसाद और प्रेमचन्द दोनो आदर्शवादी थे। इन दोनो प्रतिनिधि धाराओ मे सुधार का उत्कट आग्रह है। लेकिन दोनो धाराओ की अलग-अलग दिशाएँ है। प्रसाद की भावगत प्रवृत्तियो का उद्गम सूत्र अथवा धरातल इतिहास का अतीत वैभव और कल्पना का ससार है। प्रेमचन्द का वस्तुविन्यास जन-जीवन का सुखदान और उस से परे मानव कल्याण का विराट विश्व है। परिणामस्वरूप प्रेमचन्द की प्रवृत्तियाँ तत्कालीन समाज और उस की चेतना का प्रतिनिधित्व करती है।

शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

भागवत प्रवृत्तियो के समान 'प्रसाद' और प्रेमचन्द की शिल्पविधियो मे भी स्वभावत स्पष्ट अतर है। 'प्रसाद' अपनी भावगत प्रेरणा के फलस्वरूप कहानियो मे प्रेम सौन्दर्य और रहस्य भावना के कहानीकार है। भावनाओ से ओत-प्रोत कुछ विशुद्ध और सामाजिक और यथार्थवादी कहानियो को छोडकर शेष कहानियाँ प्रतीकात्मक और ऐतिहासिक कोटि मे रखी जा सकती है। प्रतीकात्मक कहानियो का मूल धरातल कल्पना और भावुकता है, अतएव ये कहानियाँ अपने शिल्प मे भावुकतापूर्ण रेखाचित्र और गद्यगीत के समीप आ गई हैं। इन के कथानक मे न तो इतिवृत्तात्मकता है, न संवेदना की क्रमबद्धता बल्कि उस मे भावनाओ का उमडता हुआ ज्वार है। समस्त कथा एक प्रसंग मे ही नही, केवल एक भाव के ऊपर एक पैर से खडी हो जाती है और उस की कला एक ही भाव के अनेक चित्रो के माध्यम से स्पष्ट होती है। अतः ऐसी कहानियो मे साकेतिकता और व्यंजना ही शैली के दो उपकरण माने जा सकते हैं।

ऐतिहासिक कहानियो मे एक सूत्रता तथा विकास के अंतर्गत आदि, मध्य और अत तीनो परिस्थितियाँ मिलती है। ऐसी कहानियाँ एक ओर पूर्ण विस्तृत और व्यापक होती है और दूसरी ओर इन की एकसूत्रता और इतिवृत्तात्मकता निश्चित होती है। 'आकाशदीप', 'स्वर्ग के खंडहर मे', 'पुरस्कार', 'देवरथ' और 'सालवती', आदि कहानियो के कथानक उदाहरणस्वरूप लिए जा सकते है। इन कथानको मे अनेक प्रकार की कल्पना रजित सूक्ष्म रेखाएं उभर उठी है, फिर भी उन मे भावो का तारतम्य और एक सूत्रता सर्वत्र स्पष्ट है। कथानको के आरम्भ, विकास और अत तीनो भागो मे घटनाओ की अवतारणा प्रसाद की कला की मूल विशेषता है। एकदम किसी घटना की अवतारणा से

कथानक का आरम्भ होता है, और इस के क्रमिक विकास के साथ साथ सम्पूर्ण कथानक विकसित होता है। इन्ही घटनाओ मे आरम्भ ही से कौतूहल और जिज्ञासा वृत्ति का सगुफन प्रसाद-कला की सब से बडी विशेषता है। घटनाओ मे पूर्व कथा, पूर्व सूत्र और भूमिका आदि बिल्कुल छिपा दी जाती है, और कथानक का आरम्भ एकाएक बहुत विकसित रूप मे होता है। कथावस्तु का नयन और सगुफन अलग-अलग कार्य खडो मे रखकर विभिन्न अनुक्रमो से इस तरह सँवारते हैं, जैसे कि वह अंत मे एक सम्पूर्ण जीवन का बहुरगी चित्रालेख हो। 'आकाश दीप' इस शिल्प का सुन्दरतम उदाहरण है। घटनाओ के साथ-साथ सयोग का सहारा लेने मे प्रसाद को कोई आपत्ति नही है।

चरित्र की दिशा मे प्रसाद का दृष्टिकोण बहुत ऊँचा है। यही कारण है कि उनकी कहानियो मे इतने ऊँचे ऊँचे व्यक्तित्व के चरित्र अवतरित हुए है कि उन की तुलना अन्यत्र नही की जा सकती। प्रसाद स्वभावत. भावुक और सौन्दर्य प्रेमी थे और इन के व्यक्तित्व पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव बहुत था, अतएव इन के चरित्रो की अवतारणा और चित्रण पर इन दोनो का प्रभाव परिलक्षित है। बौद्ध दर्शन के प्रभाव से इन के चरित्र अत्यन्त कारुणिक हो गए है। इन के चरित्र चित्रण मे बलिदान, उत्सर्ग और मूक करुणा ही मुख्य भूमिकाएँ बनी है। दूसरी ओर भावुकता के फलस्वरूप उन के चरित्र पूर्ण भावुक प्रेमी बने। प्रथम प्रभाव मे मूलत. प्रसाद के नारी चरित्र आते हैं, और द्वितीय मे पुरुष-चरित्र। नारी चरित्र और उन का विश्लेषण ही मुख्य रूप से प्रसाद की कला का केन्द्र विन्दु है। यही स्त्री चरित्र अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शों के प्रतीक है। नारी सामाजिक बधनो परम्पराओ और मान्यताओ के प्रति विद्रोह करती है। स्त्रियाँ सदैव अपने अप्रतिम रूप, आकर्षण और अनुपम व्यक्तित्व से कहानियो का सूत्र-संचालन करती हैं, और अपने मे घात-प्रतिघात, अंतर्द्वन्द्व, विद्रोह और उत्सर्ग के तत्व छिपाए रहती है। पुरुष पात्र प्रायः स्त्री पात्रो के ही व्यक्तित्व के परिधि मे घूमते रहते है, और उन के व्यक्तित्व का विश्लेषण स्त्री चरित्रो की अपेक्षा गौण और सक्षित हो गया है। पुरुष चरित्रो मे चारित्रिक दृढता, सवेदनशीलता और व्यक्तित्व की अतर्मुखी भावधारा उनको प्रमुख विशेषताएँ कही जा सकती है।

प्रसाद की कहानियो की शैली भारतीय नाटक प्रणाली की प्रेरणा के अंतर्गत आती है, अर्थात् इनके निर्माण मे बीज विकास और फलागम की प्रतिष्ठा देखी जा सकती है। यह सत्य प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियो मे पूर्ण सफलता

से स्पष्ट है। लेकिन उन की प्रतीकात्मक और गद्य गीत शैली मे लिखी हुई कहानियो मे यह सत्य अधिक विकसित नही हो पाया। प्रसाद की प्रतिनिधि कहानियो के आरम्भ मे बीज के अतर्गत कहानी के मुख्य पात्र, मूल द्वन्द्व अथवा समस्या का पूर्वाभास मिल जाता है। विकास भाग मे समस्या प्रवेश, पूर्व परिचय, द्वन्द्व का जन्म और घात-प्रतिघात अवस्था क्रमो की शृखला मिलती है। इन के विधान मे घटनाओ और कार्य-व्यापारो की अवतारणा बराबर होती चलती है। कहानी की चरम सीमा मे तीन विशेषताएँ स्पष्ट रूप से व्यजित हुई है। कही तो चरम सीमाएँ मनोवैज्ञानिक अनुभूति पर प्रतिष्ठित हुई है, कही चरम सीमाएँ घटनात्मक और सयोगात्मक है, अत मे कुछ और पक्तियाँ जोडकर, प्रसाद ने उन्हे पूर्ण नाटकीय बना दिया है, जैसे 'आकाश दीप', 'ममता', और 'स्वर्ग के खडहर मे', और कही चरम सीमाएँ व्यजात्मक और अस्पष्ट रूप मे हुई है। उदाहरण के लिए 'प्रतिध्वनि', 'प्रलय' और 'रमल' आदि कहानियो की चरम सीमाएँ ली जा सकती है।

प्रसाद की भावमूलक कहानी धारा मे शैली का सामान्य पक्ष अर्थात् भाषा और वर्णन चित्रण शैली सब अत्यन्त कलात्मक ढग से प्रस्तुत हुई है। भाषा शैली मे सस्कृत समासावली, तत्सम शब्दो का बाहुल्य और काव्यात्मकता इस की प्रमुख विशेषताएँ है। सौन्दर्य वर्णन और रूप वर्णन इस धारा की अनुपम देन है। प्रकृति-चित्रण और शोभा चित्रण इस धारा की शैली का प्राण है।

प्रेमचन्द यथार्थवादी परम्परा के कर्णधार है, अतएव इन की कहानियो मे वे समस्त शिल्पगत प्रवृत्तिया विद्यमान है, जो वस्तुतः कहानी कला की आधार शिलाएँ है। प्रेमचन्द को कहानी की शिल्पविधि पर असदिग्ध अधिकार था, लेकिन शिल्पगत विविधता उपस्थित करने मे इन की रुचि नही थी। इन्होने कहानी विधान के एक मर्यादित क्षेत्र और मान्यताओ के अतर्गत अनेकानेक कहानियो की सृष्टि की, और उन के माध्यम से समकालीन सामाजिक स्थितियो का वैषम्य, अत्याचारो का विरोध, शोषित, दलित, देहाती और निम्न, मध्यम वर्ग के प्रति अथाह सहानुभूति और राष्ट्रीय चेतना को सफल अभिव्यक्ति दी। शिल्पगत प्रवृत्तियो की दृष्टि से प्रेमचन्द सदैव कहानी कला के विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न कलाकार थे। इन के शिल्पविधान मे कथानक, चरित्र और शैली तीनो

दिशाओ मे आश्चर्य जनक सुगमता और कला का सहज आकर्षण मिलता है। कथानक सदैव इतिवृत्तात्मक होते है और इतिवृत्त का सर्वथा स्पष्ट और सुनिश्चित आकार होता है, क्योकि इन की कहानी कला का सब से बडी विशेषता यही है कि वह भाव-प्रधान न होकर वस्तु-प्रधान होती है। कथानक निर्माण मे घटना क्रम और सयोग की अवतारणा मुख्य है। मुख्यत: इनकी प्रारम्भिक और विकास काल की कहानियो मे बिना घटना क्रम और सयोग के कथानक की कल्पना करना कठिन है। वस्तुत: प्रेमचन्द की शिल्पगत प्रवृत्ति मे घटना का स्पष्ट और इतिवृत्त का सर्वसाधारण होना, आवश्यक है, यही कारण है कि प्रेमचन्द की कहानियो मे सर्व रुचि की आश्चर्यजनक शक्ति है।

चरित्र-कल्पना और चरित्र-चित्रण की दिशा मे प्रेमचन्द की शिल्पविधि अत्यन्त सुदृढ़ है। उन के पात्र निम्न वर्ग से लेकर मध्यम, उच्च और समस्त अधिकारी वर्ग तक फैले है। उन मे किसान, मजदूर, राजा, प्रजा, अफसर, गरीब, अमीर सब आ जाते है। उन मे भी सब उम्रो और सब स्तरो के पात्र आ जाते है, बालक से लेकर वृद्ध तक और अकिंचन एवं दुश्चरित्र से लेकर पूँजीपति और सच्चरित्र तक। यही नही, पशु[1] पक्षी[2] तक इन की चरित्र-सीमा मे आ गए है, लेकिन सवेदनात्मक दृष्टि से प्रेमचन्द मध्यमवर्गीय पात्रो के कहानीकार है और इन के समस्त चरित्र सहज और स्वाभाविक है। इनकी अवतारणा, और चरित्र-चित्रण मे अधिक से अधिक स्वाभाविकता लाने का आग्रह है। पात्रो मे व्यक्तित्व प्रतिष्ठा भी हुई है, लेकिन यहाँ यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि प्रेमचन्द के पात्रो ने कभी चरित्र को जटिलता उपस्थित नही की। उन के पात्र सहज गति से आगे बढते है, और परिस्थितियो को उलझाने वाली शृंखलाओ के पाश मे कभी आबद्ध नही होते। इस भाँति जीवन के तूफान मे ये पात्र दिशा-भ्रम मे नही पड़ते और हमारे सामने मानसिक गुत्थियाँ नही रखते, जिन मे जीवन को क्रिया और प्रतिक्रिया का विकट तुमुल आबद्ध रहता है।

प्रेमचन्द की पात्र परिधि और उन के चरित्र-चित्रण मे तत्कालीन समाज अपने अधिक से अधिक यथार्थ रूप मे चित्रित हुआ है। इस दिशा मे आज तक हिन्दी कहानी साहित्य मे और कोई कहानीकार उन से आगे नही बढ़ सका है। चरित्र की सत्-असत् वृत्तियो के आधार पर प्रेमचन्द के सारे पात्र

---

[1] 'पूस की रात' में, झबरा। [2] 'आत्माराम' में, तोता।

इन दो वर्गों मे बाँटे जा सकते है। सत्-असत् और आदर्श-निम्न. इन दो विरोधी वर्ग के चरित्रो को लेकर वस्तुतः प्रेमचन्द का सम्पूर्ण कहानी साहित्य प्रस्तुत हुआ है और सर्वत्र यथार्थ और आदर्श के द्वन्द्व के बीच आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को प्रतिष्ठा हुई है।

प्रेमचद को कहानियो की निर्माण शैली मे आरम्भ विकास और चरम सीमा, ये तीनो भाग पूर्णतः स्पष्ट और सुनिश्चित होते है। आरम्भ भाग प्राय. भूमिकात्मक और परिचय के साथ आता है। इन मे पात्र और कहानी की सवेदना की परिस्थिति का पूर्ण परिचय विद्यमान रहता है। बहुधा कहानी के यथासभव सभी तत्वो का समावेश भो रहता है। विकास भाग मे, अर्थात् कहानी आरम्भ और चरम सीमा के भाग के बीच मे प्रायः चार अवस्था क्रमो से होकर विकसित होती है।

(१) मुख्य घटना की तैयारी।
(२) मुख्य घटना की निष्पत्ति।
(३) व्याख्या और
(४) घात-प्रतिघात।

प्रसाद की भाँति प्रेमचद की चरम सीमा भाग भी फलागम तत्व के आधार पर निश्चित होता है। प्रेमचद मे अपेक्षाकृत चरम सीमा के नाम पर फलागम की प्रवृत्ति सब से अधिक सशक्त है। इस के मुख्यतः दो कारण है—प्रेमचद की कहानियाँ सर्वदा लक्ष्यात्मक होती है, उन मे एक निश्चित उद्देश्य होता है और उन के अंत पर आदर्श अथवा नीति की व्यजना होती है। यही कारण है कि प्रेमचद ने चरम सीमा के बाद कहानियो मे प्रायः उपसहार जोडा है, जिस से उन की कला की सोद्देश्यता पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाय। शैली के रूप-विधान की दिशा मे प्रेमचद ने अन्यान्य शैलियो मे कहानियाँ लिखी है, लेकिन इतिवृत्तात्मक अथवा वर्णनात्मक शैली ही उन की प्रतिनिधि शैली है।

शैली के सामान्य पक्ष मे प्रेमचद की भाषा उन की कला की मूल विशेषता है। जिस तरह प्रेमचंद यथार्थवादी धारा के कहानीकार थे, उन की भाषा शैली भी इस के अनुरूप सरल और पात्र परिस्थिति सापेक्ष है। इस मे विविध वर्ग के पात्रो के सहज स्वर है। बोलचाल की भाषा से लेकर ऊँचे स्तर के गद्य तक इन की भाषा, शैली का यहाँ विस्तार है। इस पर मुख्यतः उर्दू

भाषा का प्रभाव होते हुए भी शुद्ध हिंदी का प्रवाह है, और दोनो के समन्वय से इन की भाषा चुस्त, चुलबुली, मुहाविरेदार, और विषय-वस्तु के साथ-साथ चलने वाली हो गयी है। इस के फलस्वरूप प्रेमचंद के कथोपकथन मे अपूर्व स्वाभाविकता और शक्ति आ गई है। प्रेमचंद ने कहानियो की निर्माण-शैली मे अपने कथोपकथनो से अत्यधिक सहारा लिया है। देश, काल, परिस्थिति के वर्णन चित्रण मे प्रेमचद सदैव यथार्थवादी और सहज थे। रूप वर्णन तथा दृश्य-वर्णन मे भी इन का सयम और इन की व्यजना दोनो उल्लेखनीय है।

प्रसाद और प्रेमचद ही विकासयुग की दो मूल प्रवृत्तियो के दो विभिन्न प्रतीक हैं। इन की विभिन्न भावगत और शिल्पगत प्रवृत्तियो मे समूचा विकास युग आ जाता है, लेकिन प्रसाद की भावमूलक परम्परा को इस युग तथा आगे के कहानीकारो ने बहुत कम रूप मे अपनाया है और प्रेमचद की यथार्थवादी परम्परा समूचे विकास युग और उससे आगे भी बहुत जोरो से चली।

ऐतिहासिक दृष्टि से विकास युग मे, प्रसाद, और प्रेमचद की स्वतत्र धारा के पूर्व चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का स्थान अमर है, और इन की केवल तीन कहानियो का अध्ययन अपना अलग मूल्य रखता है।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी

गुलेरी का कहानी साहित्य केवल तीन कहानियो, 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा', और, 'उसने कहा था' से निर्मित है। संभव है कि उन्होने और भी कहानियाँ लिखी हो, लेकिन ये कभी हिन्दी जगत् के सामने नही आ सकी, बस केवल यही तीन कहानियाँ अपनी कलात्मक श्रेष्ठता के कारण गुलेरी जी को विकास-युग का प्रथम चरण सिद्ध कर गईं। इन तीनो कहानियों मे विकास की दृष्टि से 'सुखमय जीवन', उनकी कहानी कला का प्रारभिक रूप है। 'बुद्धू का काँटा' और 'उसने कहा था' क्रमश. उन की कला के विकास और चरम उत्कर्ष के उदाहरण है।

कथानक

तीनो सामजिक कहानियाँ हैं, लेकिन समस्त सामाजिक मान्यताओ और प्रश्नो के बीच इन कहानियो की सवेदनाएँ मुख्यतः प्रेम और कर्तव्य

को लेकर उभरी है। 'सुखमय जीवन' मे इस का रूप अपरिपक्व है फलत. कथानक की सृष्टि, रूप के आकर्षण और रोमास के माध्यम से हुई है, जिस मे प्रेम केवल अपने वाह्य रूप मे ही चित्रित हो सका है और कर्तव्य का जन्म मात्र होकर रह गया है। 'बुद्धू का काँटा' के कथानक मे प्रेम अपने अव्यक्त और असाधारण ढग मे पलता है। प्रेम तथा स्त्री सम्पर्क की दिशा मे नायक मे हीन-ग्रन्थि है, फलत नायिका को अग्रगण्यता लेनी पडती है। यही कारण है कि इस कहानी मे पहले कर्त्तव्य आता है, फिर प्रेम।

'उसने कहा था' की सवेदना प्रेम और कर्त्तव्य का उज्वलतम और अनन्य उदाहरण है। इस के कथानक का आरम्भ सहज कुमार आकर्षण और कर्त्तव्य से होता है। आकर्षण धीरे धीरे पवित्र प्रेम मे परिणत हो जाता है तथा दोनो ओर से भावो की दुनिया मे खो जाता है। कालान्तर मे सयोगवश इस का उदय फिर एक बार होता है, लेकिन वहाँ वह केवल विशुद्ध कर्त्तव्य बन जाता है तथा इस की चरम परिणति त्याग उत्सर्ग के सधि बिन्दु पर होती है। निर्माण की दृष्टि से इन तीनो कहानियो के कथानको का निर्माण घटनाओ और सयोगो से होता। मुख्यत इन का प्रारम्भ सयोगो से हुआ है। विकास, सयोगो और कार्यो से हुआ है तथा अत के निर्माण मे फिर घटना और सयोग का सहारा लिया गया है। उदाहरणार्थ, 'सुखमय जीवन' शीर्षक कहानी के कथानक का आरम्भ साइकिल की हवा निकल जाने के सयोग से होता है। इस के विकास मे कई और सयोगो का सहारा लिया गया है। रास्ते मे जयदेव शरण वर्मा की भेट एकाएक एक युवती कमला से होती है, जो उस के लिखे हुए ग्रथ, 'सुखमय जीवन की अनन्य पुजारिन थी। वह उन्हे अपने घर लाती है। उस के चाचा भी उन की बहुत श्रद्धा करते है। जयदेव शरण वर्मा और कमला मे सहज आकर्षण पैदा होता है, कमला को बगीचे मे अकेली पाकर वर्मा जी उससे प्रणय प्रस्ताव करते है और सारी परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जाती है। कमला क्रोधपूर्वक इन की उपेक्षा करती है। उस के चाचा से भी तिरस्कृत होते है अत मे झगडे के ही बीच, सयोगवश जयदेव शरण के मुख से निकल जाता है, भाड मे जाय सुखमय जीवन, उसी के मारे नाको दम है। सुखमय जीवन के कर्त्ता ने क्या यह शपथ खा ली है कि जन्म भर क्वाँरा रहे। क्वाँरा की स्थिति संयोग से सारी प्रतिकूल परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती है और जयदेव शरण शर्मा तथा कमला का मगलमय सयोग होता है।

'उसने कहा था' के कथानक निर्माण मे उक्त तत्त्व कलात्मक ढंग

से चरितार्थ हुए है। कथानक का आरम्भ बम्बू कार्ट वालो के बीच मे एक लडका और लडकी के सयोगवश मिल जाने से होता है। लडका अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और लडकी रसोई के लिए बडिया। दोनो इस तरह महीने भर कभी न कभी मिलते रहते हैं। दोनो मे सहज प्रेम और अनुराग पैदा होता हे तथा इस की पुष्टि केवल उन वाक्यो से हो जाती है, दो-तीन बार लडके ने फिर पूछा "तेरी कुडमाई हो गई" और उत्तर वही धत् मिला, एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी मे चिढाने के लिए उस से पूछा तब लड़की सभावना के विरुद्ध बोली हाँ हो गई। कल, देखते नही, यह रेशम स कढ़ा हुआ सालू : लडकी भाग गई लड़के ने घर की रह ली[१]"।

फिर कथानक का विकास इस सयोग के पच्चीस वर्ष के बाद होता है। लडका -लहना सिह न० ७७ राइफल जमादार होकर अग्रेजो की ओर से फ्रास के युद्धस्थल मे मोर्चे की खाइयो मे पडा हुआ है। पिछली बार वह अपने एक मुकदमे के सिलसिले मे भारत आया था और लाटते समय अपनी फौज के सूबेदार के घर गया था। वहाँ सयोगवश उसमे उसी लडकी से भेट होती है, जो इस की आदि प्रेयसी थी, लेकिन उस समय सूबेदारनी थी। इस दर्शन से प्रेम, कर्त्तव्य मे परिणत हो जाता हे। सूबेदारनी ने लहना सिह से कहा, "अब दोनो जाते है, मेरे भाग : तुम्हे याद है एक दिन टाँगेवाले का घोडा दही वाले की दूकान के पास बिगड गया था, तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे, आप घोडो की लातो मे चले गए थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खडा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनो (पति पुत्र) को बचाना यही मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ[२]।" लेकिन कथानक के इस विकास अग की सब से बडी कलात्मकता इस मे है कि यह विकास अग लहना सिह के उस स्मृति चित्र के माध्यय से सँजोया गया है, जब लहना अपने कर्त्तव्य की बलिवेदी पर सूबेदारनी के पति-पुत्र की रक्षा और आत्म वीरता मे मोर्चे पर घायल होकर मरणासन्न है।

कथानक के इस चरम विकास मे पूर्व चित्र स्मृति दृश्यो के माध्यम से

---

[१]गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृष्ठ ३९।

[२]गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृष्ठ ५१।

इस पूर्व विकास को इतनी कलात्मकता से सँजोना, उस समय गुलेरी जी की कहानी कला का चरमोत्कर्ष है। इसके आगे प्रेमचन्द और प्रसाद के कहानी-साहित्य मे ऐसा कोई उदाहरण नही मिल पाता। कथानक का चरम विकास, विविध घटनाओ से होता है, जैसे, बोधा का घायल होकर मोर्चे पर पडा रहना तथा उसके प्रति लहना का असीम प्यार और त्याग, लपटन साहब की मृत्यु और उनके वेश मे दुश्मन का लपटन बन कर आना, लहना सिंह को रहस्य का ज्ञान होना, लहना सिंह द्वारा उस की मृत्यु और स्वयं लहना सिंह का घायल होना, दुश्मनो का नया आक्रमण, लहना सिंह के सीने मे गोली लगना, लेकिन फिर भी सब को विदा करके स्वयं मोर्चे पर पीडा से विक्षिप्त हो जाना। इसी दिशा मे कथानक का आरम्भ, पूर्व विकास तथा जीवन से सबधित समस्त स्मृति चित्रो का सिमट जाना, तथा कथानक का भी अत उसकी मृत्यु घटना से ही हो जाना, कथा विधान के अति सयम और योजना के प्रति संकेत करता है। गुलेरी जी ने कथानक निर्माण मे सयोग और घटनाओ के अतिरिक्त जीवन तथा कर्मक्षेत्र का साधारण, वैयक्तिक तथा व्यापक रूप भी लिया है। 'सुखमय जीवन' का कथानक एक परिवार तथा मुख्यत. एक व्यक्ति की एक दिन की जीवन विवेचना है। 'बुद्धू का काँटा' का कथानक रघुनाथ और भगवन्ती के जीवन के प्रणय पक्ष की अनेक दिनो की विवेचना है। 'उसने कहा था', मे दो व्यक्तियो के प्रेम कर्त्तव्य का क्षेत्र इतने विशाल और व्यापक ढग से लिया गया है कि इस मे एक ओर जीवन के पच्चीस वर्ष चित्रित है, दूसरी ओर भारत से फ्रास की भूमि तक इसका चित्र फलक (कैनवेश) फैला हुआ है, अतएव तीनो कहानियो के कथानक इतिवृत्तात्मक और लम्बे भी हो गए है। लेकिन फिर भी इनमे वर्णनात्मकता का सहारा कम लिया गया है, वरन् विविध भाव-चित्रो और चिन्तन-शैली को इन मे स्थान मिला है।

चरित्र

गुलेरी जी के चरित्र मानवीय और यथार्थ है। इन की अवतारणा व्यक्ति, समाज और उस की मान्यताओ के धरातल पर हुई है। 'सुखमय जीवन' के जयदेव शरण वर्मा 'बुद्धू का काँटा', का रघुनाथ दोनो पुरुष चरित्रो से मानवीय पक्ष इतने सहज रूप मे आया है कि ये दोनो चरित्र पूर्ण वैयक्तिक होते हुए भी पूर्ण सामाजिक हो गए है।

दोनो चरित्र अपनी सहज दुर्बलता के कारण हमारे आकर्षण के पात्र हो गए है। जयदेव शरण मे कमला के प्रति आकर्षण और उस के

प्रेम-प्रस्ताव मे, जयदेव शरण का व्यवहार उच्छृङ्खलता तक पहुँच गया है, फलत' इस मे कुछ अस्वाभाविकता भी आ गई है। दूसरी ओर इन मे चरित्र की वह गंभीरता भी नहीं रह गई है जो 'बुद्धू के कॉटा' के रघुनाथ मे हैं। कमला का भी चरित्र बहुत दब गया है, तथा इस मे और भी अस्वाभाविकता आ गई है, क्योकि जो तरुणी जयदेव शरण को जीवन की प्रथम भेंट मे अनन्य श्रद्धा और प्रशसा देती है, स्वय उसे अपने घर लाती है वह कैसे जयदेव के प्रणय-प्रस्ताव पर इतनी निर्ममता से उपेक्षा कर सकती है? 'बुद्धू का काँटा' का रघुनाथ और भगवन्ती दोनो चरित्रो की अवतारणा अपेक्षाकृत अधिक चारित्रिक गभीरता और मानवीय धरातल से हुई है। यहाँ रघुनाथ एक ऐसा पुरुष चरित्र है जिस ने स्वभावत. स्त्री वर्ग के सन्मुख वह अपने मे हीन-ग्रन्थि पाता है ऐसा क्यो है? इसके लिए कहानी मे चरित्र-चित्रण और विश्लेषणो दोनो की विधि रखी गई है, पिता की कठोर शिक्षा का प्रभाव बालकपन से ही स्वभाव पर ऐसा पड गया था कि दो वर्ष प्रयाग मे स्वतत्र रह कर भी अपने चरित्र को केवल पुरुषो के समाज मे बैठ कर पवित्र रखता था। जो कोने में बैठकर उपन्यास बढ़ा करते हैं उन की अपेक्षा खुले मैदान मे खेलने वालो के विचार अधिक पवित्र होते है। इसलिए फुटवाल और हॉकी के खिलाडी रघुनाथ को कभी स्त्री विषयक कल्पना ही नही होती थी। वह मानवीय सृष्टि मे अपनी माता को छोड कर और स्त्रियो के होने वा न होने से अनभिज्ञ था।

फलत. इस चरित्र मे एक अजीब तरह की सौम्यता मिलती है, जिस मे यद्यपि स्त्री वर्ग की ओर से हीन-ग्रथि अवश्य है, लेकिन फिर भी इस में प्रेम विषयक भोलापन और बचपना के अतिरिक्त स्नेह और करुणा की तीव्रता भी है। रघुनाथ झुंझला कर भगवन्ती को उस की नाक पर एक मुक्का जमाता है, तथा रघुनाथ के दौडने से भगवन्ती के पैर के तलुये मे एक काँटा भी चुभ जाता है। वस्तुतः यो दोनो घटनाएँ रघुनाथ के भोलेपन की एक सीमा के उदाहरण हैं लेकिन दूसरी सीमा पर जब वह उस की नाक से लहू बहते देखता है, वह अपने को एकदम से भूल कर पश्चात्ताप और दुख के पाश मे फँस जाता है। उस का मुँह पसीना-पसीना हो जाता है। उसे इतनी ग्लानि हुई कि वह इन लहू के बूंदो के साथ धरती मे समा जाय। दूसरी ओर रघुनाथ ज्यो ही भगवन्ती के पैर के तलवे मे चुभे हुए कॉटो को देखता है और उसे पता चलता है कि यह सब उस के ही कारण हुआ, वह फौरन वही भगवन्ती के सामने घुटने टेक कर बैठ जाता है और उसके पैर को खीचकर, रूमाल से धूल झाडता हुआ काँटे को निकालने लगता

है। भगवन्ती का भी चरित्र अत्यन्त जीवन पूर्ण और मानवीय सवेदनाओ से अभिभूत है। 'सुखमय जीवन' की कमला को हम बहुत शीघ्र भूल सकते हैं, लेकिन, 'बुद्धू का काँटा' की भगवन्ती को हम कभी नही भूल सकते, क्योकि रघुनाथ के समान ही इस के चरित्र विश्लेषण के साथ इस के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है।

मानवीय चरित्रो की अवतारणा तथा उन मे सहज व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा का सुन्दरतम उदाहरण हमे 'उसने कहा था' मे मिलता है। सूबेदारनी और लहना सिह के माध्यम से जहाँ एक ओर सच्चे प्रेम और उत्सर्ग की भावना मिलती है, वहाँ इन दोनो आदर्श प्रतीको मे यथार्थ मानवीय भावनाओ का आदि से अंत तक सुन्दरतम विकास देखने को मिलता है। लहना सिंह के चरित्र के मुख्यत. चार अध्याय है—पहला उस के चरित्र का कुमार स्वरूप जब वह बारह वर्ष का है, अमृतसर मे मामा के यहाँ आया हुआ है, दही वाले के यहाँ, सब्जी वाले के यहाँ, हर कही उसे आठ वर्ष की लडकी मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुडमाई हो गई ? तब, धत्, कहकर वह भाग जाती है। इस पवित्रतम आकर्षण और प्रेम के साथ ही साथ उसमे कर्तव्य का भी जन्म होता है। एक दिन तागे वाले का घोडा दही वाले की दुकान के पास बिगड गया था, उस समय स्वयं घोडे की लातो से जाकर लहना ने उस का प्राण बचाया था। इस के चरित्र का दूसरा अध्याय उस समय निर्मित होता है जब एक दिन लहना ने उस से फिर पूछा कि तेरी कुडमाई हो गई, तब उस दिन उस ने कह दिया कि—हाँ, कल हो गई, देखते नही यह रेशम के फूलो वाला सालू। तीसरा अध्याय उस समय आरम्भ होता है, जब लहना सिह पूर्ण युवक है—न० ७७ का राइफल्स जमादार है और पच्चीस वर्षो के बाद वह अकस्मात् अपनी आदि प्रेमिका को अपनी फौज के ही सूबेदार की धर्मपत्नी के रूप मे देखता है—"मैं ने तेरे को आते ही पहचान लिया। अब एक काम कहती हूँ। मेरे सूबेदार और बेटा, दोनो को मैं तुम्हे सौपती हूँ। इन दोनो को बचाना, यह मेरी भिक्षा है तुम्हारे आगे मै आचल पसारती हूँ।" लहना सिंह के चरित्र का चौथा और अन्तिम अध्याय उस समय खुलता है, जब वह फ्रास मे युद्ध-मोर्चे की खाई मे पडा है। एक ओर वह अपने आराम सुख के उत्सर्ग पर घायल बोधा की सेवा सुश्रूषा करता है, दूसरी ओर वह अपूर्व चतुराई, बुद्धिमत्ता और वीरता के साथ दुश्मनो से लडता है। अंत मे सूबेदारनी की बात को पूर्ण करने मे अर्थात् सूबेदार और बोधा की रक्षा मे वह अपने आप को उत्सर्ग कर देता

है। वस्तुत लहना सिंह के इस तरह के आदर्शमय महान चरित्र की अवतारणा तथा इस मे परम मानवीय व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के ही कारण यह कहानी हिन्दी कहानी-साहित्य मे सर्वश्रेष्ठ कहानियो मे गिनी जाती हैं। इस मे चरित्र-विकास-चरित्र विश्लेषण तथा व्यक्तित्व प्रतिष्ठा तीनो पूर्ण कलात्मक ढंग से चरितार्थ हुए हैं।

शैली

शैली के व्यापक प्रकाश मे, गुलेरी जी अपनी कहानियो की निर्माण शैली मे आदि, मध्य और अत तीनो की योजनाओ मे बहुत से उदार हो गए हैं। तीनो कहानियो का आरम्भ, भूमिकाओ से होता है। ये भूमिकाएँ वस्तुतः कहानी की सवेदना के पृष्ठभूमि-निर्माण के लिए लाई गई है। 'उसने कहा था' का आदि भाग अर्थात् प्रारम्भ की भूमिका कहानी की पृष्ठभूमि के अतिरिक्त प्रारम्भ ही से आकर्षण और जिज्ञासा प्रकट करने के लिए आई है तथा यह आदि भाग दोनो प्रकाश मे प्राय. सफल हो है, लेकिन, 'सुखमय जीवन' और 'बुद्ध् का कॉटा', इन दोनो कहानियो की भूमिकाएँ कलात्मक दृष्टि से प्राय. असगत और विस्तृत हो गई हैं। 'बुद्ध् का कॉटा', कहानी का आरम्भ इस भूमिका से होता है—"राघुनाथ प् प् प्र सा द त् त् त्रिवेदी—या रु ग ना त प र्शाद् त्रिवेदी, यह क्या ? क्या करे, दुविधा मे जान हैं। एक ओर तो हिन्दी का यह गौरवपूर्ण दावा हे की इसमे जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा जाता है और जैसा लिखा जाता है वेसा बोला जाता है। दूसरी ओर हिन्दी के कर्णधारो का अविगत शिष्टाचार है कि जैसे धर्मोपदेशक कहते है कि हमारे कहने पर चलो हमारी करनी पर मन चलो, वेसे हिन्दी के आचार्य लिखे वैसे लिखो जैसे वे बोले, वैसे मत लिखो, शिष्टाचार भी कैसा ? हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति अपने व्याकरण कथापित कठ से कहे, पर्सोत्तम-दास, और हर्किसनलाल, और उनके पिट्ठू छापे ऐसी तरह कि पढा जाय—पुरुषोत्तम अ दास अ, और हरिकृष्ण लाल अ।"

वस्तुतः उक्त भूमिका से कहानी की सवेदना का कोई सबध नही है। कहानी की सवेदना एक हीन-ग्रन्थि प्रधान युवक और एक युवती की कहानी है और यह भूमिका हिन्दी मे आने वाले सस्कृत के तत्सम् शब्दो के ऊपर व्यग के रूप मे लिखी गई। किसी भी तरह भूमिका का सबध कहानी से नही है, लेकिन फिर भी कहानी का आरम्भ इसी शैली से हुआ

है। 'सुखमय जीवन' की भूमिका भी पूर्ण रुप से कहानी की सवेदना से संगत नही रखती, बस नायक की मन स्थिति की थोडी-सी भूमिका अवश्य कही जा सकती है। नायक परीक्षाफल के लिए बहुत उद्विग्न है, फलत: कहानी का आरम्भ इसी भूमिका से हुआ कि परीक्षा के उपरान्त परीक्षार्थी की क्या स्थिति होती है। 'उसने कहा था', की भूमिका सर्वथा कलात्मक और कहानी की सवेदना से तादात्म्य रखती है, उसमे शैली का आकर्षण है, कहानी मे आरम्भिक जिज्ञासा है और कहानी मे देश, काल, परिस्थिति का आशिक चित्रण हो जाता है।

इन कहानियो का मध्य भाग कलात्मक दृष्टि से इन का विकास भाग है। कथानक का विकास जहाँ गुलेरी जी ने मुख्यत सयोगो से किया है, वहाँ सम्पूर्ण कहानी का विकास विविध कार्यो तथा मुख्यत वर्णनो तथा विवेचनाओ के माध्यम से किया है। विकास क्रम अथवा विकास के इन प्रसाधनो मे जिज्ञासा और कौतूहल को बढाते रहना, इन की सब से बडी सफलता है। 'सुखमय जीवन', मे इस शैली को बहुत ही कम सफलता मिली है, शेष दोनो कहानियाँ इस के सुन्दरतम उदाहरण है। विकास क्रम मे एक सूत्रता की दृष्टि से, 'सुखमय जीवन', और 'उसने कहा था', परम सफल है। लेकिन, 'बुद्धू का काँटा' मे त्रुटि आ गई है। इस मे मोती के स्वामी इलाही की अवतारणा तथा उन का लम्बा-सा प्रवचन "बा छा मेरे हाल, मे आपका क्या जी लगेगा ? गरीबो का क्या हाल ! रब रोटी देता है ?" से प्रारम्भ होकर "आप जैसे साई लोगो की बन्दगी करता हूँ, सबका नाम बडा है" तक कहानी से बिल्कुल अलग की वस्तु है। इस का सबध किसी तरह कहानी के विकास भाग या विकास क्रम से नही है। 'उसने कहा था', का विकास भाग कहानी कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। विविध वर्णनो और अनुक्रमो के बीच से कार्यो-घटनाओ की योजना तथा इन सब के ऊपर स्मृति चित्रो के माध्यम से कहानी का पूर्ण विकास, आरम्भ भाग तथा व्यक्ति की मन स्थिति का सुन्दर विश्लेषण आदि सब तत्वो को एक मे अपूर्व कलात्मक ढङ्ग से बाँधा गया है।

इन कहानियो की चरम सीमाएं सयोगात्मक और घटनात्मक होती हुई भी मानव प्रकृति तथा मनोविज्ञान के प्रकाश मे चरितार्थ हुई है। 'सुखमय जीवन' की चरम सीमा यद्यपि कुछ आदर्श विन्दु पर स्थित है, फिर भी इस मे मनोभावो की तीव्रता विद्यमान है। "उन्होने मुस्कराकर कमला से कहा दोनो

मेरे पीछे-पीछे चले आओ। कमला! तेरी मा ही सच कहती थी वृद्ध बगले की ओर चलने लगे। उनकी पीठ फिरते ही कमला ने आखें मूदकर मेरे कंधे पर सिर रख दिया।" 'वृद्ध का काटा', की चरम सीमा मे मनोभावो की यह तीव्रता और भी अधिक है।

"घूँघट के भीतर जहाँ आँखे होनी चाहिए, वहाँ कुछ गीलापन दिखा।

रघुनाथ ने एक हाथ उसकी कमर मे डालकर उसे अपनी ओर खीचना चाहा मालूम पडा कि नदी के किनारे का किला, नीव के गल जाने से धीरे-धीरे धँस रहा है। भगवन्ती का बलवान शरीर, निस्सार होकर, रघुनाथ के। कधे पर झूल गया। कधा आँसुओ से गीला हो गया।"

मेरा ससूर मेरा गंवारपन मे उजड्ड मेरा अपराध मैंने क्या कह डा, डा आ घिग्गी बंध चली।

उस का मुँह बन्द करने का एक ही उपाय था। रघुनान ने वह किया[1]" कहानियो के अत भाग मे चरम सीमा के उपरान्त उपसहार बिल्कुल नही जोडा गया है, फलत कहानियो के अत मे प्रभविष्णुता आ गई है।'उसने कहा था' कहानी की अन्तिम पक्तियो मे "कुछ दिन पीछे लोगो ने अखबारो मे पढ़ा फ्रास और बेलजियम ६८ वीं सूची मैदान मे घावो से मरा नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहना सिंह[2]।' उपसहार का किंचित् मात्र स्पर्श अवश्य आ गया है लेकिन कहानी की प्रभाविष्णुता पर इसका बुरा प्रभाव नही पडता बल्कि कहानी की तीव्रता बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है।

शैली के सामान्य पक्ष मे भाषा-वर्णन और कथोपथन तीनो बहुत स्वाभाविक और कलात्मक ढग से प्रयुक्त हुए है।

भाषा और वर्णन शैली

इन कहानियो की भाषा अत्यन्त स्वाभाविक और जीवन पूर्ण है, क्योकि गुलेरी जी भाषाशास्त्र के स्वय बहुत बडे विद्वान् थे तथा जर्मन फ्रेंच के अतिरिक्त भारत की प्राय समस्त प्रादेशिक भाषाओ और बोलियो का उन्हे पूर्ण ज्ञान था। यही कारण है कि उन के वर्णनो मे अपूर्व ढग से स्वाभाविकता और प्रवाह दोनो तत्व आ गए है, जैसे अमृतसर मे बम्बूकार्ट वाले भाग का वर्णन "जब बडे-बडे शहरो की चौडी सडको पर घोड़े की पीठ से चाबुक धुनते

[1] **गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृष्ठ ३७ 'बुद्धू का काटा'**

[2] **गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, उसने कहा था, पृष्ठ ५१**

हुए इक्के वाले कभी घोडे की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते है, कभी राह चलते पैदलो की आखो के न होने पर तरस खाते है। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किमी को हटना पडे। यह बात नही कि उन की जीभ चलती ही नही, चलती है पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढिया बार-बार चितौनी देने पर लीक से नही हटती तो उन की बचनावली के ये नमूने है—"हट जा जीणो जोगिये, "हट जा करमा वालिये, हट जा पुत्ता प्यारिए, बच जा लम्बी वालिए[१]।" तीनो कहानियो मे सर्वत्र पात्र परिस्थिति अनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है और इस प्रयोग से वर्णनो ने सर्वत्र जीवन आ गया है।

कथोपकथन

भाषा और वर्णनो के ही अनुरूप, इ। कहानियो मे कथोपथथनो की भी सफल सृष्टि हुई है। भाषा की स्वाभाविकता तथा परिस्थिति के अनुकूल इस का प्रयोग, इन दोनो प्रमगो के सुन्दर उदाहरण हमे गुलेरी जो के कथोपकथनो मे मिलते है। जैसे 'उसने कहा था', मे—

"लहना सिह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ मे देकर कहा, अपनी बाडी के खरबूजो मे पानी दो। ऐसा खाद का पानी पजाब भर मे नही मिलेगा।"

हा देश क्या है, स्वर्ग है। मै तो लडाई के बाद सरकार स दस गुना जमीन यही माग लूँगा और फूलो के बूटे लगाऊँगा।"

लाडी होरा को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलाने वाली फिरगी मेम!

चुपकर। यहाँ वालो को शरम नही।

देस-देस की चाल है। आज तक मै उसे समझा न सका कि सिख, तमाकू नही पीते वह सिगरेट देने मे हठ करती है, ओठो मे लगाना चाहती है और मै पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नही[२]।"

कथोपकथन के प्राय समस्त रूप और शैलियाँ इन कहानियो मे प्रयुक्त है। अर्थात् कार्यो, व्यापारो के बीच से कार्यो, व्यापारो के सकेतो के साथ तथा बड़े-बड़े और अत्यन्त छोटे-छोटे स्वाभाविक कथोपकथनो के यहाँ दर्शन होते हैं। इन समस्त रूपो और शैलियो मे स्वाभाविकता ही इस की प्रमुख विशेषता

---

[१] वही, पृ० ३८

[२] गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, वही पृ० ४१

रही है। इस के अतिरिक्त इस मे सहज विनोद, व्यंग और जीवन के अन्य सहज तत्व मिलते है।

निम्नलिखित कथोपकथनो मे इन तत्वो के स्पष्ट उदाहरण मिलेगे—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

भगवन्ती।

रहती कहाँ हो ?

मामी के पास वही जिसने कुएँ पर पानी पिलाया था।

उस दिन का स्मरण आते ही रघुनाथ चुप हो गया। फिर कुछ देर ठहर कर बोला—तुम मेरे पीछे क्यो पडी हो ?

तुम्हे आदमी बनाने को, जो तुम्हे बुरा लगा हो, तो मैंने भी अपने किए का लहू बहाकर फल पा लिया, एक सलाह दे जाती हूँ।

क्या ?

कल से नदी मे नहाने मत आना।

क्यो ?

गोते खाओगे, तो कोई बचाने वाला नही मिलेगा।

रघुनाथ झेपा, पर सम्हल कर बोला, अब कोई मेरी जान बचाएगा तो पीछा नही करूगा, दो गाली भी सुन लूँगा।

इसलिए नही, मैं आज अपने बाप के यहाँ जाऊँगी।

तुम्हारा घर कहाँ है ?

जहाँ अतडियो के डूबने के लिए कोई नदी नही है।"[१]

लक्ष्य और अनुभूति

गुलेरी जी की तीनो कहानियाँ अनुभूति के धरातल से नही लिखी गई हैं बल्कि लक्ष्य के धरातल से लिखी गई हैं। इन की सृष्टि तथा निर्माण मे आदर्श लक्ष्य सब से बडी प्रेरणा थी और अनुभूतियाँ इन मे साधन तत्व के रूप मे आई हैं, प्रेरणा तत्व मे नही। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए हमारे पास दो सब से बडे प्रमाण है। वस्तुत- कहानीकार का दृष्टिकोण अपनी इन कहानियो के निर्माण मे लक्ष्यात्मक रहा है, फलतः समस्त कहानिया सयोग और घटना प्रधान हुई है। एक निश्चित आदर्श की प्रतिष्ठा के कारण ये कहानियाँ लम्बी और दो विरोधी शक्तियो के साथ निर्मित हुई है।

---

[१] **गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृष्ठ ३०।**

समीक्षा

ये कहानियाँ लक्ष्यात्मक होती हुई भी अनुभूतियो से ओत-प्रोत है। व्यक्ति, समाज और वर्ग तीनो के सुन्दरतम आदर्श इन कहानियो मे मिलते है। स्पष्टत', जीवन के प्रति गुलेरी जी का दृष्टिकोण सर्वथा स्वस्थ है। उन के साहित्य का आधार छायानुभूतिया नही है, जीवन की मासल अनुभूतिया है। "जीवन मे नीति और सदाचार को पूर्ण रूप से स्वीकार करते हुए भी वे सैक्स के नाम पर विदकने वाले आदमियो मे से नही थे।"[१] वस्तुतः सामाजिक चेतना इन की कहानियो का प्राण है। आदर्श प्रतिष्ठा तथा नीति सदाचार, जीवन के ऊँचे मान को स्थिर करना इन कहानियो की प्रेरणाएँ है। समाज की उभरी हुई समस्याएँ जैसे पर्दा की अस्वस्थ प्रथा, सभ्यता की अनुचित दासता और विवाह से सबधित दहेज मुहूर्त, प्रेम के व्यावसायिक स्वरूपो तथा समस्याओ के प्रति उन्होने उचित सकेत और व्यग दोनो किया है। इस व्यग मे गुलेरी जी का हास्य, इन कहानियो की सब से बडी विशेषता है। कहानियो मे बार-बार अनिरजना के कारण अप्रासगिकता आई है, लेकिन हास्य रस से सिक्त होने के कारण यह दोष अधिक नही खटकता। हास्य की सृष्टि इन्होने तीन शैलियो से की है—परिस्थिति-निर्माण, परिस्थिति-चित्रण और विनोद की अवतारणा से।

हिन्दी कहानी के उस शैशव काल मे कहानी को इतनी समुचित और कलात्मक भाषा, शैली और प्रवाह देना, गुलेरी जी के कहानीकार व्यक्तित्व की अपूर्व क्षमता है। जिस समय प्रेमचन्द और प्रसाद अपनी कहानी-कला के प्रारम्भिक काल मे कहानी लिख रहे थे, उस समय गुलेरी जी ने इन कहानियो की सृष्टि से कहानी कला के विद्यार्थी और पाठक दोनो के सामने आश्चर्य खडा कर दिया, यह अपने-आप मे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

---

[१] **विचार और अनुभूति, श्री नगेन्द्र, गुलेरी जी की कहानियाँ, पृष्ठ ४६। प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद १६४५।**

प्रेमचंद

प्रेमचद का कहानी-साहित्य इतना विशाल और विस्तृत है कि उसमे समूचा एक युग समा गया है । उन्होने बीसवी शदाब्दी के प्रथम चरण मे प्राय तीन दशाब्दियो के बीच मे लगभग चार सौ कहानियाँ लिखी है । एक तरह से वे अपने मे स्वय एक कहानी-युग थे, जिसमे हिन्दी कहानियो के सच्चे तत्त्व अकुरित हुए, विकसित हुए और उनसे भारतीय कहानी साहित्य मे सुगन्धि आई । प्रेमचद ने प्राचीन भारतोय चेतना से लेकर प्राय: समस्त आधुनिक पश्चिमी भाव-धाराओ का अपनी लेखनी मे सफल प्रयोग किया है । बगला कहानी साहित्य मे टैगोर की भाँति इन्होने हिन्दी कहानियो को प्रेरणा दी और उस के भावपक्ष के क्षेत्र को अधिक से अधिक सम्पन्न बनाया । अत: इतने बड़े कहानीकार के व्यक्तित्व के विश्लेषण और उन की लगभग चार सौ विभिन्न स्तरो की कहानियो की शिल्प-विधि के अध्ययन के लिए हमे कुछ कोटियाँ बनानी पडेगी, जिन से हम उन के विस्तृत और विशाल कहानी ससार को अध्ययन सीमा मे बाँध सके ।

प्रेमचद की कहानियों की रचना-परिस्थितियाँ

'सप्त सरोज' की कहानियो (१९१७) से लेकर 'मानसरोवर' प्रथम भाग (१९३६ ई०) की कहानियो को रचना विधान की दृष्टि से विविध राजनीतिक, सामाजिक व्यक्तिगत परिस्थितियो के बीच से गुजरना पडा है, और इन परिस्थितियो का मूल्य इन कहानियो के अध्ययन की दिशा मे बहुत महत्व-पूर्ण है । इन परिस्थितियो ने एक ओर उन्हे कहानियो के भावपक्ष मे प्रेरणा दी है, और दूसरी ओर इन्होने कहानीकार के लक्ष्य को और भी तीक्ष्ण बनाया है ।

राजनीतिक परिस्थितियाँ

प्रेमचद का कहानी-काल १९०७ ई० से लेकर १९३६ ई० तक है । वस्तुत: यह काल भारतवर्ष का सघर्ष काल और नये भारत का जन्म-काल है । १९०७ ई० के आसपास ही भारतवर्ष के इतिहास मे तीन महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई । १९०० ई० मे 'सरस्वती' के प्रकाशन से आधुनिक हिन्दी साहित्य मे

कहानी कला का आधुनिक रूप विकसित हुआ। सन् १९०१ मे महारानो विक्टोरिया की मृत्यु हुई और सप्तम एडवर्ड गद्दी पर बैठे। १९०१ ई० मे महात्मा गाँधी सब से पहले अफ्रीका के प्रश्न को लेकर महासभा मे बोले और इस के उपरान्त काग्रेस शक्ति-शाली होने लगी। भारतीय शासन लार्ड कर्जन के हाथ मे आया और उन्होने, 'बग भग' से भारत की राष्ट्रीय उत्तेजना को भडकाया। उस समय तक प्रेमचद ने उर्दू मे कई कहानियाँ लिखी, और पाँच कहानियो का सग्रह १९०१ ई० मे "सोजेवतन" के नाम से प्रकाशित किया। लेकिन सरकार ने उसे जब्त करके जलवा दिया। १९१२ ई० मे लार्ड हार्डिंज पर बम फेका गया, १९१३ से लेकर १९१५ ई० के बीच कराची काँग्रेस अधिवेशन मे भारतीय स्वतत्रता पर विचार हुआ। चपारन के जिले मे नील की खेती के प्रश्न पर अंग्रेजो का भारतीय किसानो पर अत्याचार बढा और महात्मा जी के सत्याग्रह ने उस का जबर्दस्त मुकाबिला किया। इन सब घटनाओ के फलस्वरूप प्रेमचद ने मजदूर और किसान प्रश्न को अपनी कहायियो का प्रमुख विषय बनाया। १९१८ ई० मे प्रथम महायुद्ध समाप्ति पर भारतवर्ष में शान्ति-दिवस मनाया गया। इस के आस-पास ही जालियानवाला बाग की दुर्घटना और १९२० ई० मे काग्रेस ने असहयोग के द्वारा सरकार से युद्ध ठान लिया। १९२२ ई० मे टैक्स न देने का आन्दोलन छिडा और सरकार भारत के प्रति कठोर हुई। इस के फलस्वरूप भारतीय जनता के निम्न मध्यम वर्ग और किसान मजदूरो की दशा बहुत शोचनीय हो उठी।

यह समस्त असतोष और विक्षोभ प्रेमचद की कहानियो मे अग्नि की चिनगारियाँ बनकर फूट पडा। १९३० ई० मे गाधीजी के नेतृत्व मे नमक-कानून को भग करने का आन्दालन चला। दारिद्रय और शोषण बढ़ता गया। लार्ड वेलिंगडन के कठोर शासन, अछूतो के बहिष्कार आदि प्रश्नो पर गाँधी जी ने अनशन किया। १९३५ ई० मे भारतीय शासन विधान तैयार हुआ, लेकिन भारत की आर्थिक स्थिति बहुत गिर गयी और उधर पश्चिम से मार्क्सवाद का प्रभाव पडने लगा। भारतीय उद्‌बुद्ध चेतना इस से बहुत प्रभावित होने लगी। इसी काल मे मार्क्सवादी राजनीति के साहित्यक रूप 'प्रगतिशील लेखक सघ' की स्थापना एक अन्तर्राष्ट्रीय सगठन के रूप मे हुई। अनेक देशो मे इस की शाखाएँ बनी। इस की स्थापना सन् १९३५ ई० मे अग्रेज लेखक ई० एम० फोस्टर के सभापतित्व मे हुई, जिस का पहला अधिवेशन 'पेरिस' मे हुआ। भारतवर्ष मे डा० मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के उद्योग से १९३६

ई० में इस की स्थापना हुई और इस के पहले अधिवेशन का सभापतित्व प्रेमचंद ने किया। उधर शुद्ध राजनीतिक क्षेत्र में १६३६ ई० का मंत्रिमंडल बनते-बनते प्रेमचंद जी का देहावसान हो गया।

सामाजिक परिस्थितियाँ

प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक परिस्थितियाँ ही मेरुदंड की भाँति हैं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत की सामाजिक परिस्थितियाँ सभी दिशाओं से जर्जरित थीं, और इस के पुनरुत्थान में तीन समाज सुधारक शक्तियाँ कार्य कर रही थीं। पहली शक्ति तो आर्यसमाज की थी, जो हमारे समाज के अंधविश्वास और अनैतिक रूढ़ियों को उखाड़ फेंकने में प्रयत्नशील थी। बाल विवाह, विधवा-विवाह, वृद्ध विवाह, बहु विवाह आदि सब सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध उस का तीव्र आन्दोलन था। दूसरी शक्ति काँग्रेस की वह समाज चेतना थी, जिस में अछूत समस्या, हरिजन समस्या, मद्यनिषेध आदि के विरुद्ध सत्याग्रह का प्रयोग था। तीसरी शक्ति ब्रह्मसमाजियों की परिष्करण नीति की थी, जो धर्म और समाज की आडंबरपूर्ण विकृतियाँ नहीं सहन कर सकती थीं। प्रेमचंद इन तीनों शक्तियों के पीछे अपनी बलवती लेखनी के माध्यम से किसी दयानन्द, किसी गांधी और किसी राममोहनराय से कम नहीं थे। इन की सभी सामाजिक कहानियाँ विशुद्ध सामाजिक धरातल पर लिखी गयी हैं जो हमारे तत्कालीन जर्जरित समाज की कुव्यवस्थाओं के प्रति अमोघ व्यंग हैं।

व्यक्तिगत परिस्थितियाँ

प्रेमचंद का जन्म बनारस में पाँडेपुर मौजा, उस का भी एक पुरवा लमही में हुआ था: अर्थात् ठेठ देहात तथा जन-जीवन से उन का संबंध सीधा और प्रत्यक्ष रूप में था। धरती का सम्पूर्ण जीवन और धरती के लाल, किसानों से इन का संबंध आत्मिक था, बौद्धिक नहीं। व्यक्तिगत जीवन-धारा अत्यन्त कारुणिक और असाधारण थी। सात ही वर्ष की अवस्था में माता का देहान्त हो गया, और इन्हें विमाता के कटु अनुभव प्राप्त हुए। सोलह ही वर्ष के लगभग पिता भी इन से दूर हो गए और इतनी ही छोटी उम्र में ये विवाह के बंधन में जकड़ दिए गए। विवाह भी अस्वाभाविक और उल्टा सिद्ध हुआ, जिस से असंतुष्ट होकर इन्हें विवशतः अपने जीवन में क्रान्ति उपस्थित करनी पड़ी। एक विधवा से विवाह किया। पारिवारिक जीवन की इतनी करुणा लिए हुए भी

इन्होने अपने आत्मबल पर मैट्रिक परीक्षा भी पास की। इस के उपरान्त इन्होने शिक्षा विभाग मे प्रवेश किया और इस क्षेत्र मे इन्हे पूर्ण अनुभव प्राप्त हुआ कि अपनी बात को स्थापित करने के लिए कैसी कला की आवश्यकता है, यही से इन्होने कहानियाँ लिखनी आरम्भ की। १९०७ ई० मे इन्होने सर्वप्रथम कहानी लिखी। १९०८ ई० मे डिप्टी इस्पेक्टर हुए और १९२० ई० तक इसी पद पर थे। इसके उपरान्त गाधी-दर्शन से पूर्ण प्रभावित होकर इन्होने सक्रिय रूप से गाधी के असहयोग आदोलन मे भाग लिया और जीवन की यथार्थतम अनुभूति और स्थितियो से गुजरते हुए इन्होने क्रमशः 'मर्यादा', 'माधुरी', 'जागरण' और 'हस' का सम्पादन किया। अन्त मे आर्थिक सकट के फलस्वरूप इन्हे फिल्म जगत् मे भी प्रवेश करना पडा। वहाँ से भी इन्हे निराश होकर १९३५ ई० मे काशी लौटना पडा। इस तरह से प्रेमचद यथार्थ जीवन के महामानव थे, जो सामाजिक, व्यक्तिगत, आर्थिक विष को पीकर मनुष्य रूप मे कालकूट शकरवत हो गए। उन्होने अपनी कहानी-कला मे राजनीति, समाज और व्यक्ति तीनो के सुदृढ धरातलो से कहानियाँ लिखी और सम्पूर्ण व्यक्तित्व मे एक राजनीतिज्ञ, एक समाज-सुधारक और एक निष्ठा सम्पन्न महापुरुष सिद्ध हुए।

प्रेमचंद का अवतरण

'जीवन सार' नामक आत्मकथा मे प्रेमचद ने स्वय अपने कहानीकार व्यक्तित्व और जन्म के विकास की थोडी-सी झलक दी है, "मैने पहले-पहल ११०७ ई० मे गल्प लिखना शुरू किया। डा० रवीन्द्रनाथ की कई गल्पे पढी थी और उन का उर्दू अनुवाद भी कई पत्रिकाओ मे छपवाया था। उपन्यास तो मैंने १९०१ ई० से लिखना शुरू कर दिया था, मेरा एक उपन्यास १९०२ ई० मे और दूसरा १९०४ ई० मे निकला, लेकिन गल्प १९०४ के पहले मैने एक भी न लिखी थी। मेरी पहली कहानी का नाम था, 'ससार का सबसे अनमोल रत्न।' वह १९०७ के 'ज़माना' उर्दू मे छपी। इसके बाद चार-पाँच कहानियाँ और लिखी। पाँच कहानियो का सग्रह १९०९ ई० मे 'सोजेवतन' के नाम से छपा। उस समय बग-भग का आन्दोलन हो रहा था। कांग्रेस मे गर्म दल की सृष्टि हो चुकी थी। इन पाँच कहानियो मे स्वदेश प्रेम की महिमा गायी गयी थी।"

उर्दू मे

कहानीकार प्रेमचद का अवतरण पहले-पहल उर्दू मे हुआ। 'सोजेवतन'

इस का प्रमाण है। यह पुस्तक अप्राप्य है क्योंकि सरकार ने इसे उसी समय जब्त करके जलवा दिया था। इस मे उन्होने नवाबराय के नाम से कहानियाँ लिखो थी। शायद इसी नाम से ये कहानीकार के रूप मे प्रसिद्ध होना चाहते थे लेकिन राजनीतिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप इन्होने इस नाम से आगे की कहानियाँ नही लिखी, और इस के बाद ही इन्होने प्रेमचद नाम स्वीकार किया। इस उपनाम से इनका पहला उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम पचीसी' है। सोज़ेवतन' और 'प्रेम पचीसी' के पश्चात् इन के और भी कहानी-सग्रह उर्दू मे निकले जैसे :—'खाके परवाना', 'प्रेम बत्तीसी', 'प्रेम चालीसा', 'फिरदेसए ख्याल', 'फिरजोदराह', 'दूध की कीमत', 'वारदात', 'पारवाज ख्याल', 'खाके ख्याल' और 'नजात'।

अत. कहानीकार प्रेमचद का उदय सर्व प्रथम उर्दू मे हुआ। इन्होंने जैसा कि 'ज़माना' की फाइलो से स्पष्ट है, १९०७ से लेकर १९१७ ई० तक उर्दू मे आठ-दस कहानियाँ लिखी है, जिन मे प्राय. ये कहानियाँ आती हैं : 'बडे घर की बेटी', 'रानी सारंधा', 'राजा हरदौल', 'जुगनू की चमक', 'गुनाह का अग्निकुड', 'नमक का दरोगा' आदि। इस तरह प्रेमचद की उर्दू कहानियाँ मुख्यत जमाना की फाइलो मे आई और आगे भी आती रही। सख्या करने से इन की कुल उर्दू कहानियाँ १७८ है लेकिन १९१७ ई० के उपरान्त प्रेमचंद हिन्दी संसार के कहानीकार हो गए।

उर्दू और हिन्दी का सधिकाल

उर्दू मे इन के उदय होते ही हिन्दी उन्नायको और समर्थकों ने इन के कहानीकार के उज्ज्वल भविष्य को देख लिया और उन्हे स्पष्ट हो गया कि उर्दू के माध्यम से लिखने वाला कथाकार निस्सदेह भारतीय जनता और नागरी का सच्चा प्रतिनिधि है। अतएव ८ जून १९१७ ई० को आजमगढ़ जिले के अहरौला निवासी मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने उन्हे निम्नलिखित भूमिका से हिन्दी-कहानी मदिर मे प्रतिष्ठित किया—"उर्दू ससार के हिन्दो महारथियो मे प्रेमचदजी का स्थान बहुत ऊँचा है। अनेक नामो से आप की पुस्तके उर्दू संसार की शोभा बढा रही हैं। उर्दू पत्रो ने आप की रचनाओ की मुक्तकठ से प्रशसा की है। हर्ष की बात यह है कि मातृभाषा हिन्दो ने कुछ दिनो से आप के चित्त को आकर्षित किया है। प्रेमचंद जी ने उसे पूजनार्थ नागरी मदिर मे प्रवेश किया और माता ने हृदय लगाकर अपने इस यशशाली प्रेम पुत्र को अपनाया है। × × ×

आपकी कहानियाँ हिंदी ससार मे अनूठी चीज़ है । हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ आपके लेखो के लिए लालायित रहती है। कुछ लोगो का विचार है कि आपकी गल्पे साहित्य मार्तण्ड रवीन्द्र बाबू की रचना से टक्कर लेती हैं । ऐसे विद्वान् और प्रसिद्ध लेखक के विषय मे विशेष लिखना अनावश्यक और अनुचित होगा[१] ।"

इस तरह सप्त सरोज की कहानियो के साथ प्रेमचद हिन्दी कहानीकार के रूप मे हमारे सामने आए । इस सग्रह की कहानियाँ है । १. 'बडे घर की बेटी', २. 'सौत' ३ 'सज्जनता का दड' ४ 'पच परमेश्वर' ५ 'नमक का दरोग़ा' ६. 'उपदेश' और ७ 'परीक्षा' ।

अध्ययन की दृष्टि से यही कहानियाँ प्रेमचद की आदि कहानियाँ है, चाहे इन का उदय उर्दू के माध्यम से हुआ हो चाहे हिन्दी के। 'सप्तसरोज' कहानी-सग्रह के बाद शीघ्र ही 'नवनिधि' कहानी-सग्रह हिन्दी जगत् के सामने आया। इन दोनो कहानी सग्रहो की अधिकाश कहानियाँ १९०७ से लेकर १९२० ई० तक का 'ज़माना' की फाइलो मे प्रकाशित है बिल्कुल इसी रूप मे, कम से कम जहाँ तक शिल्पविधि का सबध है। अन्तर केवल भाषा, शैली और एकाध कहानियो के शीर्षक-परिवर्तन तक ही सीमित है, जैसे, 'सप्तसरोज' की 'बडे घर की बेटी', 'ज़माना' की बडे घरकी बेटी, 'नवनिधि' का 'पाप का अग्नि-कुड' 'जमाना' का 'गुनाह का अग्निकुड' आदि ।

यह तो हुई केवल आरम्भ के इतिहास की बात, परन्तु प्रेमचद का कहानीकार व्यक्तित्व आगे बहुत व्यापक है। १९१७ से १९३६ ई० तक इन्होने विभिन्न स्तरो, विभिन्न मनोभावो, शिल्पविधियो के प्रयोगो से अनेक कहानियाँ लिखी है। इस विशाल कहानी-साहित्य की शिल्पविधि के अध्ययन मे हमे कुछ निश्चित दिशाएँ बनानी है, जिससे उन के क्रमिक अध्ययन को हम वैज्ञानिक रूप दे सके ।

ऐतिहासिक विशेषता

प्रेमचद के समूचे कहानी-साहित्य मे हमे क्रमिक विकास और अलग-अलग कलात्मक स्वर मिलते हैं, जो काल परिस्थिति साक्षेप है । हम ऐतिहासिक दृष्टि से इन की कहानियो को तीन भागो मे बाँट सकते है—

(क) प्रथम काल : १९१७ से १९२० ई० तक ।

---

[१] भूमिका, सप्तसरोज, चौथी बार. हिन्दी पुस्तक, एजेन्सी, कलकत्ता।

(ख) द्वितीय काल : १९२० से १९३० ई० तक।

(ग) तृतीय काल : १९३० से १९३६ ई० तक।

इन तीनो कालो की कहानियो मे क्रमश भावात्मक और कलात्मक अतर स्पष्ट है और यही प्रगतिशील कलाकार की पहचान है।

प्रथम काल

प्रथम काल मे प्रेमचद की 'सतसरोज' से लेकर 'नवनिधि' तथा 'प्रेमपचीसी' की प्रारंभिक कहानियाँ आती है। इन कहानियो का अपना स्वतत्र भावात्मक और कलात्मक स्तर है। इन सभी कहानियो का ध्येय, भावधाराएँ प्राय- एक-सी है। एक ही शिल्पविधि की प्रक्रिया के माध्यम से ये कहानियाँ निर्मित हुई है।

प्रथम काल की कहानियाँ अपने समग्र रूप मे कुछ मूलगत विशेषताओ के आधार पर खडी हैं। ये भावपक्ष की दृष्टि से पूर्ण आदर्शवादी और कलात्मक दृष्टि से पूर्ण कथात्मक और इतिवृत्तात्मक है। ऐसा क्यो है ? इस की चर्चा हम आगे भी करेगे लेकिन यहाँ इतना स्पष्ट कर देना अप्रासगिक न होगा कि प्रेमचंद ने कहानी आरम्भ करने के पूर्व दो बृहद् सामाजिक उपन्यास लिख डाला था और इस के उपरान्त ही जब वे छोटी कहानी लिखने बैठे तो समाज की लम्बी-लम्बी कथाएँ जो उन के सामने बिखरी थी वे एक-एक करके कहानीकार प्रेमचद के संवेद्य मस्तिष्क मे घर कर गयी, और वे अपनी विभिन्न इकाइयो, विभिन्न रसो के साथ इन की एक-एक कहानियो मे आने लगी। हिन्दी कहानी के उस प्रथम काल मे अगर कोई कुशल कहानीकार होता तो वह समाज की उन लम्बी-लम्बी, इतिवृत्तात्मक कथाओ से कोई छोटा-सा सारभूत प्रसंग या अंग छाँट कर उसी के धरातल पर कहानी की सृष्टि कर देता। परन्तु प्रेमचंद जिन के हृदय और मस्तिष्क मे तत्कालीन भारत की सामाजिक, राजनैतिक परि-स्थितियो से उत्पन्न जितनी समस्याएँ घनीभूत थी वे अधिक से अधिक रूप मे अपनी लम्बी-लम्बी कथाओ के साथ, अनेकानेक इकाइयो, अनुक्रमो को लिए हुए इस प्रथमकाल की कहानियो मे आई।

विशेषताएँ

प्रेमचद के प्रथमकाल की कहानियो के प्रभाव और उनकी विशेषताएँ बिल्कुल स्पष्ट हो गयी है, और इन मे किसी गूढ़ छान-बीन की आवश्यकता नही। समुचित रूप मे ये मूलगत विशेषताएँ निम्नलिखित है :

(क) कहानी की भावभूमि अति प्रशस्त है ।

(ख) इन मे कई रस अनेक चरित्र, कई घटनाओ और सवेदनाओ का समावेश हुआ है ।

(ग) इन मे व्याख्या का अश अधिक सवेदना का अश कम है ।

(घ) ये कहानियाँ प्राय. वर्णनात्मक शैली मे है । कथावाचक की भाँति कहानीकार ने सब कुछ अपनी ही तरफ से कहने का प्रयत्न किया है ।

(ङ) अत चरित्रो की केवल व्याख्या हुई है । उन के मनोभावो को व्यजित नही किया गया है ।

(च) कहानी का मूल्य, घटना विन्यास और आदर्श पालन मे है, स्वाभाविकता मे नही ।

(छ) प्राय. सभी कहानियाँ सयोगात्मक है ।

द्वितीय काल

द्वितीय काल मे आकर इन की कहानियो के रूप और शैली मे परिवर्तन हुए । कहानी के सबध मे स्वय प्रेमचद जी की धारणा प्रथम काल की धारणा से आगे बढ़ गयी । इस का उदाहरण हमे प्रेमचद की भूमिकाओ मे स्वय इन की वाणी के माध्यम से मिलने लगा । 'प्रेम प्रसून' और 'प्रेम द्वादशी' की भूमिकाओ मे इन्होने अपनी धारणा को निम्नलिखित शब्दो मे व्यक्त किया ।

"आज कल आख्यायिका का अर्थ बहुत व्यापक हो गया है । उस मे प्रेम की कहानियाँ, जासूसी किस्से, भ्रमण वृतान्त, अद्भुत घटना, विज्ञान की बाते, यहाँ तक कि मित्रो की गपशप सभी बाते शामिल कर दी जाती है[१] ।"

"हमारा विचार है कि आख्यायिका मे यह तीन गुण अवश्य होने चाहिए—

१ उस मे कोई आध्यात्मिक या नैतिक उपदेश हो ।

२. उस की भाषा अत्यत सरल हो ।

३. उस की वर्णन शैली स्वाभाविक हो और उन्ही सिद्धान्तो के अनुसार इन कहानियो की रचना की गयी हो[२] ।"

---

[१] प्रेम प्रसून की भूमिका, पृ० १ ।

[२] वही, पृ० ६ ।

अत द्वितीय काल की कहानियो का उद्देश्य मनोरजन के अतिरिक्त रसास्वादन भी कराना हो गया। इस काल मे गल्पो का आधार कोई न कोई नैतिक तत्व या सामाजिक विवेचना हुआ। इस काल मे आकर प्रेमचद ने स्वय अपनी कहानियो के परम लक्ष्य की ओर इगित करते हुए बताया कि "ऐसी कहानी जिसमे जीवन के किसी अग पर प्रकाश न पडता हो, जो मनुष्य मे सद्भावनाओ को दृढ न करे या जो मनुष्य मे कुतूहल का भाव न जागृत करे, कहानी नही [1]।"

इस काल की कहानियो का धरातल सत्य और सुन्दर दोनो के समन्वय पर आधारित है। प्रथम काल की कहानियो मे मुख्यत आदर्शवाद की प्रतिष्ठा हुई है, इस काल मे आकर वह आदर्शवाद पूर्णत यथार्थोन्मुख हुआ है। प्रेमचद के शब्दो मे इस काल की कहानियाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की दिशा मे है। "हमने इन कहानियो मे आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है।[2]"

वस्तुतः इस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के पीछे प्रेमचद का गाँधीवाद मुखरित है। द्वितीय काल मे ऐसी तमाम कहानियो का अन्त इसी बिन्दु पर हुआ है और इस का उदाहरण तो हमे कुछ कहानियो मे स्पष्ट रूप से मिल गया है। 'सत्याग्रह' मे उन्होने झूठे प्रपची सत्याग्रही का चित्रण करके सच्चे सत्याग्रही की कल्पना की है और उस का व्यक्तित्व निश्चिय किया है। 'ब्रह्मा का स्वाग' मे खोखले पति को दिखाकर जगती हुई स्वतत्र नारी भावना का स्वप्न देखा है। 'महातीर्थ' मे तीर्थ की अपेक्षा मानव सेवा श्रेष्ठ सिद्ध किया है। 'जेल' मे मृदुला के व्यक्तित्व मे असहयोग और गाधी सत्याग्रह की ओर सफल सकेत है। 'मैकू' मे मद्य-निषेध का सफलता से प्रतिपादन हुआ है और इन उपर्युक्त कहानियो की शिल्पविधि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पर आधारित है।

तृतीय काल

इस काल मे आकर कहानियो का धरातल और भी बदल गया। यहाँ इन का आधार मनोवैज्ञानिक विवेचन हो गया और ये जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना एक मात्र ध्येय समझने लगी। इन मे कल्पना कम, अनुभूतियो की मात्रा अधिक हो गयी, बल्कि अनुभूतियाँ रचनाशील

---

[1] प्रेम द्वादशी की भूमिका, पृ० ४

[2] प्रेम प्रसून, भूमिका की पृष्ठ ६

भावना से अनुरजित होकर कहानी बनने लगी। तृतीय काल मे प्रेमचद की कहानियाँ जीवन के बहुत निकट आ गयी। उस की ज़मीन, प्रथम, द्वितीय काल की अपेक्षा बहुत सकुचित हो गयी। उस मे कई घटनाओ, कई रसो और अनेक चरित्रो का समावेश रुक गया। अब इस काल की कहानियाँ स्वय प्रेमचद के शब्दो मे—"एक प्रसग का, आत्मा की एक झलक का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। इस तथ्य ने उस मे प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है। अब उस मे व्याख्या का अश कम सवेदना का अश अधिक रहता है। उसकी शैली प्रवाहमयी हो गयी है। लेखक को जो कुछ कहना है वह कम से कम शब्दो मे कह डालना चाहता है। वह अपने चरित्रो के मनोभावो की व्याख्या करने नही बैठता, केवल उसकी तरफ इशारा कर देता है।[१]"

अत तृतीय काल मे आकर कहानियाँ अपने समग्र रूप मे अधिक कलात्मक और ऊँचे धरातल पर पहुँची हैं। यहाँ आकर कहानियो की घटनाओ की कोई स्वतत्र विशेषता नही रह गयी है। यहाँ की कहानियाँ घटना के चक्र पर नही घूमती वरन् पात्रो के मनोभावों के फलस्वरूप घटनाओ की सृष्टि स्वतः होती चलती है। इस तरह यहाँ की कहानियाँ पूर्णतः यथार्थ धारातल पर आकर अपने मूल्य को उत्कृष्ट बना देती हैं। यहाँ यथार्थ धरातल और यथार्थ भाव-भूमि के पीछे आर्थिक समस्या मुख्य हो गयी है। एक तरह से यहाँ की यथार्थवादिता, मुख्यतः आर्थिक धरातल से बोल रही है, सामाजिक धरातल से नही, क्योकि प्रेमचद ने स्पष्ट रूप से देख लिया था, अनुभव कर लिया था कि हमारे जीवन की सारी समस्याओ के पीछे आर्थिक व्यवस्था का मुख्य हाथ है। प्रेमचंद के इस दृष्टिकोण के पीछे किसी भी तरह से मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की प्रेरणा नही थी, बल्कि यह प्रेमचद का स्वय का अनुभव था। वे स्वय इस के बहुत बडे शिकार बने रहे और ग्रामीणो तथा मजदूरो के बीच तथा मध्य एव निम्नवर्ग के बीच मे रहकर उन्होने इस की कटुता भी देखी थी।

अत इस काल की कहानियाँ छोटी और व्यजात्मक है और उक्त समस्या के विभिन्न प्रसगो और छोटी-छोटी साकेतिक सवेदनाओ को समेटती हुई चली हैं।

---

[१] **मानसरोवर, प्रथम भाग भूमिका, प्रथम संस्करण पृष्ठ ८**

प्रेमचंद की कहानियों की शिल्प-विधि

ऊपर हम ने मोटे रूप मे प्रेमचंद की कहानियो का काल विभाजन करके उन का परिचयात्मक अध्ययन किया है। हम ने यह भी देखा है कि प्रथम काल मे कैसी कहानियाँ थी, मोटे ढग मे उन का क्या रूप था, फिर द्वितीय काल मे, प्रथमकाल की कहानियो की अपेक्षा उन मे विकास हुआ और तृतीय काल मे कहानियाँ अपने उत्कर्ष पर पहुँच गयी।

अत प्रेमचद की तीनो काल की कहानियो की शिल्पविधि के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए हम उपयुक्त तीनो कालो को निम्नलिखित कोटियो मे रख सकते है।

(क) आरम्भिक काल (ख) विकास काल (ग) उत्कर्ष काल

काल-विभाजन

यहाँ उक्त कोटि-विभाजन, काल-विभाजन के आधार पर हुआ है। लेकिन यह कोई ऐतिहासिक या गणित-विभाजन नही कि एक काल और दूसरे काल मे कहानी कोटि की कोई निश्चित रेखा खीच दी जा सके। वस्तुतः काल या कोटि का निर्धारण कहानी की शिल्पविधि, कहानी के रूपो और रचना पद्धतियो के आधार पर किया गया है। इस मे ऐतिहासिक तथ्य ढूँढना ठीक नही, उदाहरण के लिए 'सप्त सरोज', 'नवनिधि' और 'प्रेमपचीसी' की कुछ कहानियो का रूप, उन का ढर्रा, उन की समूची शिल्पविधि प्रायः एक-सी है। अतः इन कहानियो को क्रमशः आरम्भिक काल मे रख दिया गया है। इस के बाद की कहानियो मे कलागत, भावगत अन्तर और दोनो स्पष्ट है, अर्थात् यहाँ कहानियो का कलात्मक आधार आरम्भिक कहानियो से नितात विकसित और भिन्न है और इन से भी आगे आने वाली कहानियाँ धीरे-धीरे क्रमशः कलागत, भावगत विकास करती हुई अपने समग्र रूप मे उत्कर्ष पर पहुँच गयी हैं। लेकिन यहाँ एक बात यह भी ध्यान मे रखने की है कि अपवाद स्वरूप हर एक काल विशेष मे एकाध कहानी ऐसी भी मिलेगी जो काल-निरपेक्ष है, जैसे 'सप्तसरोज' की 'पंचपरमेश्वर' कहानी, 'नवनिधि' की 'अमावश्या की रात्रि' नामक कहानी। यद्यपि प्रेमचद की कहानियो के आरम्भिक काल मे लिखी गयी है लेकिन उन का व्यक्तित्व विकासकाल की कहानियो के अनुरूप है। इसी तरह विकास काल की कहानियाँ जैसे, 'बूढी काकी', 'आत्माराम', 'मुक्ति का मार्ग' अपने कल ञ. [उत्कृष्ट हैं। दूसरी ओर विकास काल और उत्कर्ष काल

मे अपवाद स्वरूप कुछ कहानियाँ ऐसी भी मिलेगी जिन का कलात्मक स्तर बिल्कुल नीचे उतरा हुआ दिखाई देता है। वस्तुत: ये कलाकर की सृष्टि के अपवाद है, स्तर के अपवाद नही, क्योकि ये कृतियाँ विशिष्ट मनोवृत्ति, चित्तवृत्ति और परिस्थिति सापेक्ष हैं। काव्य सृष्टियाँ कोई रासायनिक तत्व की प्रक्रिया नही कि अमुक-अमुक वस्तुओ को मिलाया जाय और हमेशा एक-सी चीज निकलती रहे। अत: उपर्युक्त काल निर्धारण और कोटि-निर्धारण का धरातल कहानियो के शिल्पविधिगत अलग-अलग विशेषताएँ और मान्यताएँ है, जो प्राय· एक काल मे विशिष्ट रूप से कहानियो के आधारभूत तत्व रही है।

आरंभिक काल

जैसा कि विषय-प्रवेश मे स्पष्ट किया गया है, कहानी की शिल्पविधि का केवल एक सधि-विन्दु या पकड है—लक्ष्य और अनुभूति। कहानी की सृष्टि के पीछे केवल यही एक प्रेरणा हो सकती है कि या तो कहानी मे किसी निश्चित लक्ष्य या उद्देश्य का प्रतिपादन हो या किसी अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति। इसी के चारो ओर कहानी-शिल्पविधि के समस्त ताने-बाने बुने जाते हैं, जैसे, कथानक, चरित्र और शैली आदि।

उपर्युक्त तत्वो की समष्टि से, तथा उन के सुगठित व्यापार और कलात्मक सयोग से जो कृतित्व निकलती है, वही कहानी है, और उन विभिन्न तत्वो साधन-प्रसाधन के कलात्मक व्यापारो की प्रक्रिया को उस (कहानी) की टेकनीक या शिल्पविधि कहेगे।

कथानक

कलात्मक दृष्टि से कहानी का कथानक बहुत छोटा, जीवन मे प्रतिदिन घटने वाली समस्याओ, घटनाओ के एक प्रसग, एक छोटा-सा टुकड़ा होना चाहिए। कहानी द्वारा जिस की पकड से उस दिशा की समूची समस्या पर थोडी-सी विद्युतगति की झलक पड सके। लेकिन कथानक की यह कलात्मक कसौटी कहानी कला के चरम उत्कर्ष पर ही मिल सकती है, आरम्भिक काल की स्थिति मे नही।

कथानक की दिशा मे प्रेमचद की प्रारम्भिक कहानियाँ बहुत लम्बी, इतिवृत्तात्मक और कभी-कभी दो-दो कथाओ को साथ लेकर आयी है।

लम्बे कथानक

'सप्तसरोज', 'नवनिधि' और 'प्रेम पचीसी' की कुछ कहानियो को देखने

से स्पष्ट है कि 'सौत', 'पचपरमेश्वर', 'नमक का दरोगा', 'बडे घर की बेटी', 'रानी सारंधा', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुड', 'ममता' और 'अमावश्या की रात्रि' के कथानक कितने लम्बे है। इन कहानियो के कथानक की लम्बाई और विस्तार पर आज आसानी से उपन्यास लिखे जा सकते है। उदाहरण के लिए हम 'पचपरमेश्वर' के कथानक को देख सकते है कि इस के कथानक का विस्तार कितने मोडो को छूते हुए कहानी मे बिखरा है। जुम्मन शेख और अलगू चौधरी मे गाढी मित्रता के परिचय की कहानी का एक मोड, अर्थात् यह मित्रता दोनो मे कैसे पनपी, उसका क्या रूप है, कितनी गाढी है। दूसरा मोड, जुम्मन-शेख की बूढी खाला की जायदाद की समस्या, जिस को खाला ने जुम्मन के नाम हिब्बा कर दिया था, उसका परिचयात्मक कथा-वर्णन। तीसरा मोड, जुम्मन और बूढ़ी खाला मे द्वन्द्व और असतोष तथा पचायत मे समस्या रखने की पूरी तैयारी। चौथा मोड, अलगू और खाला का परिचय और खाला अलगू को पचायत मे सत्य बोलने के लिए आमन्त्रित करती है। पाँचवा मोड है, अलगू का खाला के पक्ष मे अपने दोस्त जुम्मन के विरुद्ध मुकदमा फैसला करना। छठा मोड है, जुम्मन और अलगू की प्रतिद्वन्द्विता और आपसी बैर। सातवाँ मोड, चौधरी और बटेसर साहु मे बैल के लेन देन की कहानी और उन का आपसी झगडा, जहाँ बटेसर सरासर अलगू के प्रति बेइमानी कर रहा है। फिर कथानक मे आठवाँ मोड आता है, बटेसर साहु और अलगू चौधरी मे पचायत का होना। नवाँ मोड, अलगू की पचायत मे उस से पुरानी दुश्मनी का बदला लेने के लिए जुम्मन शेख का सरपच बनना और अन्त मे इतने लम्बे कथानक के बाद अन्तिम और दसवाँ मोड इस बिदु पर आकर समाप्त होता है कि जुम्मन मे भी सहसा ईमानदारी, न्यायप्रियता की भावना जगती है और वह अलगू के पक्ष मे अपना सही न्याय देता है और दोनो मित्र आपस मे मिल जाते है।

'नवनिधि' की ऐतिहासिक कहानियो के कथानको की अवतारणा और भी लम्बी, व्यापक और विस्तृत हुई है। एक-एक कथानक के निर्माण और विकास मे कम से कम बीसो मोड तैयार किये गए है। 'रानी सारधा' कहानी के कथानक का विस्तार ठीक उन ग्राम कथाओ-जैसे, सारगा-सदावृक्ष, बाबा लखन्दर या राजा भरथरी और रानी अनबोलती आदि की तरह है जिसे पूरा का पूरा सुनाने मे सारी रात से भोर हो जाता है।

इस तरह प्रेमचद की प्रारभिक कहानियो के कथानक की लम्बाई, विस्तृत भावभूमि का खाका स्पष्ट है। जैसा कि पहले कहा गया है, इन

प्रारम्भिक कहानियो के इतने लम्बे-लम्बे कथानको के पीछे निश्चित रूप से दो प्रेरणाएँ कार्य कर रही थी। प्रेमचद की इन कहानियो मे भावपक्ष, विषय या इन की सवेदनाएं किसी इकाई या एक भाव-विन्दु पर नही आधारित थी बल्कि इन का धरातल, विषय के एक प्रसग के स्थान पर पूरा विषय होता था, जिस मे न जाने कितनी अन्य सवेदनाएँ, इकाइयाँ आ जाती थी, अत: कहानी का विस्तार और उस के कथानक स्वभावत लम्बे और विस्तृत हो जाते थे क्योकि इन के माध्यम से उन्हे एक परिवार, एक वश या व्यक्ति के जीवन का पूरा भाग उस मे समेटना पडता था। दूसरी प्रेरणा थी नितान्त शिल्पविधि से सबधित—पहले, कथानको के प्रति प्रेमचन्द की धारणा इन विकास-क्रमो के साथ चलती थी—जैसे भूमिका, कहानी की समस्या का आरम्भ, द्वन्द्व, आरोह, कौतूहल, चरमसीमा और उपसहार। प्रेमचन्द के प्रारम्भिक कथानक किसी समस्या के भाव-विन्दु को आधार मानकर, उसी एक विन्दु से नही विकसित होते थे, वरन् इन के कथानक इन रेखाओ से विकसित है—
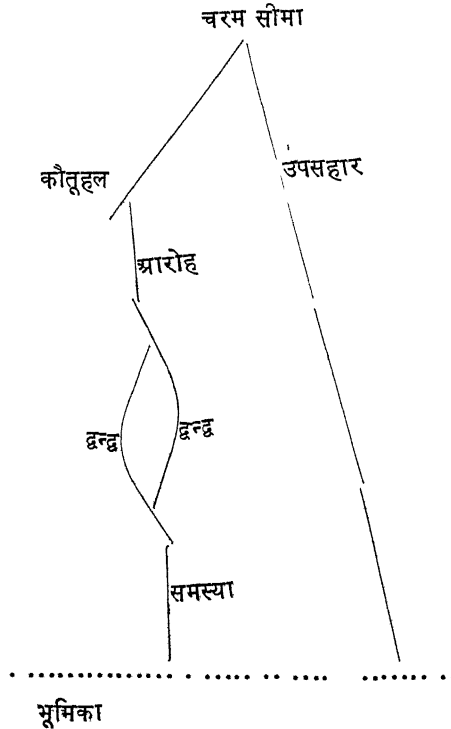
इतिवृत्तात्मकता

कलात्मक दृष्टि से कहानी का धर्म किसी समस्या की प्रस्तावना से लेकर उपसंहार तक की व्याख्या नही है, और न उस समस्या की सारी मान्यताओ को कहानी के अन्दर गूँथकर उसे इतिवृत्तात्मक स्वरूप देने ही मे है, वरन् इस का धर्म है, समस्या पर थोडा-सा विद्युत आलोक और पाठक के मनोभावो का स्पर्श, जिस से कहानी-पाठक क्षण भर के लिए आश्चर्य चकित रह जाय—जैसे 'चेखोब' और 'मोपाँसा' की कहानियो मे स्पष्ट है। लेकिन प्रेमचद ने अपनी आरम्भिक कहानियो मे समस्या की भाव-भूमि विस्तृत ली है और कई इकाइयो को एक सूत्र मे पिरोने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप उन्हे इतिवृत्तात्मक हो जाना पडा है तथा इस के पीछे दूसरी प्रेरणा यह भी थी कि वे पूरी समस्या को कथावाचक के रूप मे वर्णन करते थे तथा आदि से अत तक उस का पूर्ण निर्वाह करते थे, और पाठको के सोचने के लिए कुछ नही छोडते थे।

प्रेमचद की यह इतिवृत्तात्मकता दो रूपो मे चरितार्थ हुई है। मुख्यतः उन्होने जब कभी भी किसी समस्या की अपनी कहानी मे बाँधना चाहा है, उस समस्या को आदि से लेकर अत तक बाँधने की चेष्टा की है। कथानक के आदि अत दोनो सिरो के बीच मे भी, उस समस्या से सबधित अधिक से अधिक व्यवस्थाएँ दी है। उदाहरण के लिए, 'बडे घर की बेटी' मे कहानी का आरम्भ गौरीपुर मे गाँव के जमीन्दार बेनीमाधव के घर से होता है। यहाँ आरंभ मे ही हमे बेनीमाधव सिह के समूचे परिवार की पूरी कथा मिलती है। इन के दो बेटो-श्री कठ सिह, और लाल बिहारी सिह की अवस्था, स्थिति और मनोवृत्तियो का पूरा-पूरा व्योरा मिलता है। श्रीकठ सिह की धर्मपत्नी आनन्दी की कथा मिलती है। यह बडे घर की बेटी है और इस की सारी स्थिति और मनोभाव इसी के अनुकूल है। लालबिहारी द्वारा शिकार से घर मे चिडिया आती है और उस के बनाने मे तथा घी की समस्या पर परिवार मे द्वन्द्व की अवतारणा होती है। भाई-भाई से मनमुटाव होता है और उस का पूरा क्रमिक विकास इतिवृत्ति ढङ्ग से दिखाया जाता है। लालबिहारी घर छोडकर कही भाग जाने को तय करता है। लेकिन इसी बीच मे आनन्दी के मन मे देवत्व जगता है। वह लाल बिहारी को क्षमा करती है, स्नेहमयी हो जाती है और अन्त मे दोनो भाइयो मे प्रेम हो जाता है। फलत बडे घर की बेटी कहानी की इतिवृत्ति मे समूचे परिवार की कहानी गई है। इस मे आनन्दी, बेनीमाधव सिह, श्रीकठ सिह और लाल

बिहारी सिंह सब की कहानियाँ सब का चारित्रिक अध्ययन आदि से अत तक गूंथा गया है। कहानी के आरंभ मे हम जहाँ से चले थे अत मे हम वही पहुँच जाते है अर्थात् बेनी माधवसिंह के शात परिवार से हम कहानी के आरभ मे चले थे और कहानी की इतिवृत्ति के साथ-साथ हम फिर उसी शान्तिपूर्ण परिवार मे आ जाते है। वस्तुतः इस इतिवृत्तात्मकता के पीछे द्विवेदी युग की प्रवृत्ति भी काम करती थी, अर्थात् जिस विवाद या समस्या को काव्य का भावपक्ष बनाया जाय उस का इतिवृत्तात्मक, विस्तृत और समूचा वर्णन उसमे अपेक्षित था।

सहायक कथानक

कही-कही इन प्रारभिक कहानियो के कथानक मे सहायक कथाओ की भी अवतारणा हुई है जिन के दो रूप हमे मिलते हैं। कही-कही सहायक कथानक नाटक मे प्रकरी की भाति मूल कथा के साथ थोडी दूर तक जाकर रुक गया है। कहीं-कही यह सहायक कथानक पताका की भाँति मूल कथा के साथ आदि से अन्त तक चला है। पहले के उदाहरण मे हम 'पाप का अग्नि-कुण्ड' ले सकते हैं। इस मे मूल-कथा के विकास की दौडान मे एक और कथा आ जाती है। राजनन्दिनी कहानी की नायिका से एक स्त्री स्वतत्र कहानी कहती है। शिल्प-विधि की दृष्टि से यह कथानक मूल-कथानक के बीच मे स्वतत्र रूप से सयोगवश चल पडती है और इस का भी रूप बिल्कुल मूल कथानक की भाँति हो जाता है। अतएव ऐसे स्थानो पर हमे अरबी, फारसी तथा संस्कृत से उर्दू, हिंदी मे अनूदित क्रमशः 'हजारदास्ता' और 'कथासरित्सागर' की याद आती है जहाँ मूल कथानक के बीच से सहसा कोई कहानी प्रसगवश निकल आती है और मूल कथानक फिर आगे बढ़ता है। दूसरे ढग के सहायक कथानक की अवतारणा हम 'मर्यादा की वेदी' मे पाते हैं। इस मे मूल कथानक राजकुमारी प्रभा और मदार के राजकुमार को लेकर चलता है और सहायक कथानक चित्तौर के राजा भोजराज, राजकुमारी प्रभा और मीरा को लेकर।

कथानक निर्माण के विभिन्न ढङ्ग

कथानक-निर्माण की दिशा मे यहाँ प्रेमचद के कुछ विशिष्ट ढग हैं। जिन के आधार पर उन्होने अपनी कहानियो की सृष्टि की है :

(क) कथासूत्र आरंभ होकर सीधे शातरूप से आगे बढ रहा है, एकाएक बीच मे एक घटना घटती है और कथासूत्र दो विरोधी धाराओ मे बंट जाता

है, और वे दोनो विरोधो सूत्र एक दूसरे से सघर्ष लेते हुए टूट जाने को होते है। लेकिन सहसा एक ऐसी परिस्थिति के आने से जिस मे मनोभावो की घनीभूत रेखाएँ रहती है, वे दोनो टूटते हुए सूत्र फिर एक मे मिल जाते है और दोनो पूर्व स्थिति को प्राप्त होते है, जैसे—'बडे घर की बेटी' और 'पचपरमेश्वर'।

(ख) कथानक का आरभ एक सूत्र को लेकर होता है । वही मूल सूत्र अपने स्वाभाविक रूप मे आगे बढना चाहता है लेकिन परिस्थिति के आग्रह से उस मे एक नयी समस्या का प्रवेश होता है जिस के फलस्वरूप मूल सूत्र स्वत. विकृत हो जाता है और अत मे वह सूत्र कारुणिक विंदु पर समाप्त होता है। 'सौत' मे गोदावरी स्वय अपने पति को विवश करके स्वेच्छा से सौत को बुलाती है और उस के सयोग तथा प्रतिक्रिया से गोदावरी का जीवन कारुणिक अन्त पर समाप्त होता है।

(ग) कथानक का आरम्भ दो विरोधी सूत्रो के साथ होता है। दोनो का मानसिक सघर्ष एक दूसरे की प्रतिक्रिया मे बढ़ता है । एकाएक एक सूत्र दूसरे से समझौते के लिए अपने को पूर्णत बदल देता है, लेकिन इस परिवर्तन के विकास से दूसरा विरोधी सूत्र और भी विरक्त होने लगता है। लेकिन पहला सूत्र फिर भी सयोग के लिए आशान्वित रहता है—जैसे 'ब्रह्म का स्वाग' मे वृन्दा और उस का विरोधी पति इन दोनो सूत्रो के प्रतिनिधि है।

(घ) आदर्श भावभूमि से एक कथा सूत्र आगे बढता है । सूत्र मे दो प्रेरणाएँ एक मे मिली रहती है, एक कुछ यथार्थवाद का पुट लिए हुए, समझौते की प्रवृत्ति के साथ, लेकिन उस मे मिली हुई दूसरी प्रेरणा विशुद्ध आदर्शवादो, मर्यादावादी रहती है। दोनो शक्तियॉ आपस मे मिली हुई, अनेक विरोधी परिस्थितियो, सघर्षो का सामना करती है और अन्त मे मर्यादा की बलिबेदी पर दोनो का सर्वस्व त्याग होता है, जैसे—'रानी सारधा' 'मर्यादा की वेदो' और 'विस्मृति'।

(ङ) एक सीधे-साधे मार्ग से कथा का सूत्र आगे बढता है। सूत्र का नायक विरोधी शक्तियो के रहते भ अपने सत्य मार्ग पर आरूढ रहता है। परिणामत उस का कभी अहित होता है, जैसे 'सज्जनता का दड' और कभी विरोधो शक्ति ही उसके सूत्र से परिमार्जित होती है और नायक को पुरस्कृत करती है, जैसे, 'नमक का दरोगा'।

प्रायः इन्ही उपर्युक्त कथानको के निर्माण के ढगो पर प्रेमचद ने अपनी प्रारम्भिक कहानियो की सृष्टि की है।

चरित्र

कहानी मे चरित्र के सम्पूर्ण अध्ययन के लिए हमे उस के दोनो रूपो को देखना पडता है—मूर्त रूप और अमूर्त रूप । मूर्त रूप मे –जैसे स्त्री-पुरुष और उस के अमूर्त रूप को हम उन के मनोभावो आचरणो आदि के माध्यम से देख सकते है । वस्तुत. चरित्र के इसी दूसरे, अमूर्त रूप की प्रतिष्ठा से कहानी मे उत्कृष्टता आती है ।

स्त्री

प्रेमचद की प्रारम्भिक कहानियो के स्त्री पात्र के प्रतिनिधि चरित्र है— 'बडे घर की बेटी' को 'आनन्दी' 'सौत' की 'गोदावरी', 'पचपरमेश्वर' की 'खाला', 'रानी सारधा' को 'सरधा', 'मर्यादा की वेदी' की 'प्रभा', 'पाप का अग्निकुंड' की 'राजनन्दिनी', 'अमावश्या की रात्रि' की 'गिरजा' और 'ममता' की 'माँ' । ये स्त्री-चरित्र यथार्थ भाव-भूमि और यथार्थ परिस्थितियो पर खडे है लेकिन सब का सामूहिक चरित्र आदर्शवादी और मर्यादावादी है । 'मर्यादा की वेदी' की 'प्रभा' को मर्यादा इन स्त्रियो की वह परम्परागत दीवार है जहाँ ये चरित्र अपनी पिछली मान्यताओ और लोकनिन्दा से सहमे हुए पीछे खडे है । "ससार मे अपनी सब आशाएँ पूरी नही होती जिस तरह यहाँ अपना जीवन काट रही हूँ वह मै ही जानती हूँ किन्तु लोकनिन्दा भी तो कोई चीज है । ससार की दृष्टि मे मैं चित्तौड की रानी हो चुकी अब राणा जिस भाँति रक्खे उसी भाति रहूँगी । मै अन्त समय तक उनसे जलूँगी, घृणा करूगी, कुढूंगी, जब जलन बढ ही जायगी विष खा लूँगी या छाती मे कटार मार कर मर जाऊंगी । लेकिन इसी भवन मे । इस घर से बाहर कदापि पैर न रक्खूँगी ।"[१] यहाँ स्त्री चरित्र का जीवन कितनी विपत्ति और कितनी क्रान्तियो से ओत-प्रोत है लेकिन स्त्री चरित्र कितना आदर्शवादी है कि वह इन सब के बदले मे अपने को ही नष्ट करना चाहती है, जर्जर समाज और उस की मान्यताओ को नही । वह अपने बन्दी भवन से किसी मूल्य पर बाहर कदम नही रखना चाहती क्योकि लोकनिन्दा की सब से बडी चिन्ता है अतः यहाँ स्त्री केवल अपनी मर्यादा—आदर्श और स्त्री लोकनिन्दा के विषय मे जागरुक है, अपनी बन्दी आत्मा के लिए नही । 'बड़े घर की बेटी' की 'आनन्दी' कितने विरोधी परिवार मे पडी है । यहाँ उस के

---

[१] **नवनिधि—'मर्यादा की वेदी', पृष्ठ ६०, ६१ ।**

सारे सस्कार मारे जा रहे है। विषाक्त वातावरण से उसका दम घुटा जा रहा है और इस के ऊपर वह अपने देवर के हाथो पिट भी जाती है लेकिन वह स्त्री मर्यादा और अपने परिवार तथा बडे घराने की इज्जत के सामने कितना झुक जाती है, किस तरह समझौता कर लेती है, क्योकि उसे अपने नाम कमाने का मोह है—"बडे घर की बेटियाँ ऐसी ही होती है बिगडा हुआ काम बना लेती हैं।"[1]

'सौत' की 'गोदावरी' की आत्मा मे हिन्दू स्त्री की सच्ची मर्यादा है। उस का ध्येय है कि किसी भी मूल्य पर पति की प्रसन्नता मिलनी चाहिए अतः वह स्वय अपनी छाती पर सौत बुलाती हैं। "तुम्हारे लिए मै सौत से छाती पर मूग दलवाने के लिए तैयार हूँ।" सौत घर मे आ जाती है, परिस्थितियाँ भावना-लोक से यथार्थ भूमि पर उतरती है। गोदावरी का जीवन विषाक्त हो जाता है और वह उन की प्रसन्नता की बलिवेदी पर आत्म हत्या कर लेती है। फिर भी मर्यादा की साँसो के बीच कहती रहती है "स्वामी! ससार मे सिवा आप के मेरा कोई नही था। मैने अपना सर्वस्य आप के सुख की भेट कर दिया है। आपका सुख इसी मे है कि मै इस ससार से लोप हो जाऊँ। इसलिये ये प्राण भी आप की भेट है। मुझ से जो कुछ अपराध हो, क्षमा कीजिएगा। ईश्वर आप को सदा सुखी रक्खे"।[2]

उपयुक्त पत्र जैसे प्रेमचद के नारी पात्र की खुली हुई आत्मा है और जैसे इस पत्र की प्रत्येक पक्ति उस के स्वरूप, मर्यादा, आदर्श के घोषणापत्र है, जिस के प्रकाश मे प्रेमचद को प्रारम्भिक कहानियो को सारी स्त्रियाँ खडो है। ऐसा लगता है कि यहाँ स्त्री-चरित्र का इन मान्यताओ के पीछे प्रेमचद की इतनी धारणाए थी—भारतीय आर्य ललनाओ, पत्नियो का आदर्श सयुक्त परिवार मे आस्था और स्त्री-चरित्र के पीछे शिव सुन्दरम् की भावना।

पुरुष

पुरुष चरित्र भी स्त्री चरित्र के दूसरे पहलू है। भावना और कर्त्तव्य दोनो रूपो मे ये अपेक्षाकृत आदर्शवादी है तथा अपनी यथार्थ परिस्थितियो पर मरते-मिटते हुए भी सदैव अपने विरोधी शक्तियो से समझौता करने के लिए

---

[1] सप्तसरोज—'बडे घर की बेटी', पृष्ठ १४।

[2] सप्तसरोज, सौत, पृष्ठ १६

तत्पर है। 'बडे घर की बेटी' मे श्रीकठ सिह और उनके छोटे भाई लालबिहारी सिह में सर्वथा विरोध है। "लालबिहारी सिह दोहरे बदन का सजीला जवान था। मुखडा भरा हुआ चौडी छाती, भैस का दो सेर ताजा दूध वह उठा सवेरे पी जाता था। श्रीकठ सिह की दशा उसके बिलकुल विपरीत थी। इन नेत्र-प्रिय गुणो को उन्होने इन्ही दो अक्षरो पर निछावर कर दिया था"।[१] यह तो हुई स्वभाव की बात, लालबिहारी श्रीकठ की धर्मपत्नी को पीट भी बैठता है लेकिन फिर भी लोक-लाज मर्यादा की बलिवेदी पर वह अपने भाई को गला लगाए फिरता है। 'नमक का दरोगा' मे वशीधर कितने आदर्श दरोगा है। उन के सामने दो यथार्थ परिस्थितियाँ आती है। एक ओर नौकरी पर जाने के पहले ही पिता द्वारा उपदेश, दूसरी ओर प० अलोपीदीन की तरफ से चालीस हजार रुपये का घूस। परन्तु दरोगा जी अपने सत्य, आदर्श और मर्यादा पर स्थिर है। अत मे यह आदर्श पुरस्कृत भी होता है। ठीक यही सच्चाई और कर्त्तव्य भावना 'परीक्षा' मे भी पुरस्कृत होती है। यह तो हुई केवल ऊँचे पुरुष चरित्रो की बात, जो आरम्भ से अत तक ऊँचे ही रहे। कुछ ऐसे भी पुरुष पात्र आए है जो अपने मूल रूप मे नीच, प्रवचक और धोखेबाज़ है। लेकिन वे भी कहानी के अत तक सच्चे, आदर्श और पुनीत हो जाते है। 'उपदेश' मे 'शर्मा जी', 'बडे घर की बेटी' मे 'लालबिहारी' और 'पचपरमेश्वर' के 'जुम्मन खाँ' आदि इस के ज्वलत उदाहरण है।

वस्तुत ऐसे पुरुष चरित्रो के भी पीछे प्रेमचद की मान्यताएँ वही थी जो उन के स्त्री पात्रो के पीछे थी। दोनो के मूल भाव-भूमि मे केवल इतना ही अन्तर है कि स्त्री-चरित्र मे असतोष क्रान्ति की भावना, पुरुष की अपेक्षा अधिक है। लेकिन स्त्रियाँ अपेक्षाकृत आदर्शवादी हैं और पुरुष यथार्थवादी, यद्यपि इन की प्रगतिशीलता पगु है।

चरित्र की अपेक्षा आचरण

यहाँ की कहानियो के पात्र आचरण प्रधान है, चरित्र प्रधान नही अर्थात् इन प्रारभिक कहानियो के पढने से हमारे सामने पात्रो के आचरण का इतिहास और उस की व्यवस्था ही आती है। पात्रो के चरित्र-चित्रण या चरित्र विश्लेषण यहाँ नही हुआ है। 'रानी सारधा' कहानी पढने के बाद हमे

---

[१] **सप्तसरोज—'बड़े घर की बेटी', पृष्ठ १, २**

रानी सारधा के आचरण का ब्योरा ही थोडे समय के लिये याद आता है। उस के चरित्र का आन्तरिक पक्ष हमे कही नही मिलता, इस दिशा मे हमे जो कुछ मिलता है वह उस के चरित्र का बाह्य पक्ष ही है। 'परीक्षा' मे जानकी नाथ का चरित्र नही दिखाया गया है, बल्कि उन का केवल एक आचरण मात्र दिखा कर यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है, कि जो व्यक्ति स्वय घायल होकर नाले मे फँसी हुई गाडी को बाहर निकालता है, वह कितना बहादुर है।

'सज्जनता का दंड' और 'नमक का दरोगा' मे जहाँ सरदार और वशीधर के कुछ चरित्र-चित्रण की सम्भावना भी उत्पन्न हुई है, वहाँ उन के आदर्शवाद की आँधियाँ जाती है। उन के सहज मन की गुत्थियाँ परोक्ष मे छिपा दी जाती हैं। इस प्रवृत्ति के भी पीछे प्रेमचद की आदर्शवादिता ही है, जहाँ वे इन पात्रो के आचरण के माध्यम से उसे चरितार्थ करते रहते थे। इन प्रारम्भिक कहानियो के पात्र जैसे—गोदावरी, सरदार, जुम्मन शेख, गिरजा, माँ आदि अपने बाह्य जगत् मे अधिक स्पष्ट और अधिक मनोरजक है। इसी तरह इन के मनोभाव-जगत् भी होंगे, लेकिन प्रेमचद ने इन के अध्ययन को इन के कृत्यो और आचरणो मे ही सीमित कर दिया है कि इन के आन्तरिक पक्ष मे जाकर मनोभावो की अभिव्यक्ति बिलकुल नही हुई है। अत: पात्रो की मानवीय पूर्णता नही प्रकट हो सका है। पात्रो का व्यक्तित्व अस्पष्ट रह गया है, और विभिन्न चरित्रो का निजत्व नही स्थिर हो सका है।

शैली

यहाँ शैली का अभिप्राय दो पक्षो मे लिया गया है: व्यापक और सामान्यपक्ष। जैसा कि विषय-प्रवेश मे स्पष्ट कर दिया गया है, शिल्पविधि के अध्ययन मे शैली का महत्व बहुत है, क्योकि इसी के माध्यम से हम कहानी के रूप, उस के आरम्भ, विकास आदि का अध्ययन कर सकते है। कहानी मे दृश्य, विधान, वस्तु-विधान, और व्यापार-विधान, किन-किन आधारो और शैलियो पर हुआ है, ये सब बातें शैली के व्यापक पक्ष मे आती है और कहानी मे वर्णन, कथोपकथन, व्याख्या आदि का क्या ढग है, ये बाते शैली के सामान्य पक्ष में आती है। इस दिशा मे हम पहले शैली के व्यापक पक्ष के अंतर्गत कहानी के रूप को लेते है, अर्थात् कहानी के आरम्भ, विकास और चरम सीमा को।

आरम्भ

प्रेमचद की कहानियो का आरम्भ परिचयात्मक शैली के अन्तर्गत आता है। उस मे उन्होने दो स्थितियाँ रखी है। पहली स्थिति में पात्रो का पूर्ण परिचय और दूसरी मे परिस्थिति का पूर्ण परिचय। वस्तुत कहानी के आरम्भ की यह शैली प्रेमचद की अपनी विशेष शैली है, लेकिन इस का अकलात्मक रूप इन की प्रारम्भिक कहानियो मे विशेष रूप से है। यहाँ उन्होने इस सबध मे लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ बाँधी है, जिस के फलस्वरूप कही भी पाठक की ओर से कुछ सोचनें का प्रश्न ही नही उठता।

भूमिका सहित पात्रो के पूर्ण परिचय

इस के उदाहरण मे हम 'सप्तसरोज' और 'नवनिधि' की कोई भी कहानी ले सकते है। 'पचपरमेश्वर' का आरम्भ—: "जुम्मन शेख और अलगू चौधरी मे गाढी मित्रता थी, साझे मे खेती होती थी, कुछ लेन-देन मे भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था जुम्मन जब हज करने गए थे तब अपना घर अलगू को सौप कर गए थे और अलगू जब कभी बाहर जाते, जुम्मन पर अपना घर छोड देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूल मत्र भी यही है[1]"।

उपर्युक्त विवरण मे दोनो मित्रो का परिचय पर्याप्त है, दोनो पात्रो का आरम्भ पूर्ण है। लेकिन प्रेमचद ने आगे बढकर इस की एक और भी भूमिका बाँधी है—"इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ जब दोनो मित्र बालक ही थे और जुम्मन के पूज्य पिता, जुमराती उन्हे शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरू जी की बहुत सेवा की। खूब रिकाबियाँ माँजी, खूब प्याले धोये उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था क्योकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घटे तक किताबो से मुक्त कर देती थी अलगू के पिता पुराने विचारो के मनुष्य थे शिक्षा की अपेक्षा उन्हे गुरू की सेवा-सुश्रुषा पर अधिक विश्वास था[2]"।

उक्त दोनो अवतरणो मे अलगू और जुम्मन दोनो पात्रो का पूर्ण परिचय हमें स्पष्ट है, हमे अपनी ओर से उन के विषय मे कुछ सोचना शेष नही है। ठीक यही स्थिति 'सौत', 'उपदेश' 'मर्यादा की वेदी' 'पाप का अग्निकुण्ड' आदि कहानियो के पात्रो के परिचय के संबंध मे है।

---

[1] पंच परमेश्वर : सप्त सरोज [2] वही पृ० ४४

भूमिका पूर्ण परिस्थिति का चित्रण

'सप्त सरोज' और 'नवनिधि' को प्राय. समस्त कहानियो में यह सत्य स्पष्ट है। इन मे अपवाद स्वरूप दो-एक ही कहानी ऐसी मिलेंगी जिस मे परिस्थिति चित्रण भूमिका के साथ न हो लेकिन परिस्थिति का पूर्ण चित्रण फिर भी मिलेगा। भूमिका पूर्ण परिस्थिति के चित्रण के संबध मे प्रेमचद की प्रारभिक काल मे यह धारणा थी कि कहानी के आरम्भ मे कहानी की परिस्थिति का पूर्ण परिचय होना चाहिये, जिस से कहानी का भावपक्ष और कहानी की पीठिका पाठक को पूर्ण स्पष्ट रहे। 'नमक का दरोगा' नामक कहानी इस सत्य का साक्षी है "जब नमक का नया विभाग बना और एक ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी-छिपे उस का व्यापार करने लपे। अनेक प्रकार के छल प्रपचो का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था तो कोई चालाकी से' अधिकारियो के पौ-बारह थे, पटवारगिरी का सर्वसन्मानित पद छोड-छोड कर लोग इस विभाग की वकरदाजी करते थे। इस के दारोगा पद के लिय तो वकीलो का भी जी ललचता था। यह वह समय था जब अग्रेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और शृङ्गार रस के काव्य पढकर फारसीदा लोग सर्वोच्च पदो पर नियुक्त हो जाया करते थे। मुशी बशीधर भी जुलेखा कि विरह-कथा समाप्त करके मजनू और फरहाद के प्रेम-वृतान्त को नल और नील लडाई तथा अमरिका के आविष्कार से अधिक महत्व की बाते सकझते हुए रोजगार की खोज मे निकले।"[१]

यहाँ कहानी की मुख्य समवेदना की सारी परिस्थिति स्पष्ट हो गई है। यहाँ वह सारा वातावरण चित्रित हुआ है जिस के धरातल पर कहानी का निर्माण हुआ।

कहानी के सभी तत्त्वों का समावेश

ऐसे आरभो मे एक विशेषता यह भी कि इन मे कहानी के सभी आवश्यक तत्वो—कथानक, पात्र, समस्या, द्वन्द्वादि का समावेश मिलता है, साथ ही साथ उनके परिचय पर थोडा-सा प्रकाश भी। शिल्पविधि के सबंध मे प्रेमचद के ऐसे आरभ प्रसाद के नाटको मे प्रथम अक की याद दिलाते है।

---

[१] सप्त सरोज, 'नमक का दरोगा', पृ० ६१

अध्ययन की दृष्टि से प्रेमचंद की प्रारभिक कहानियो के ग्रारभ विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। क्योकि उन मे समूची कहानी के सारे तत्व बीजरूप से विद्यमान रहते है । उदाहरण के लिए 'सौत' कहानी का ग्रारभ—"पण्डित देवदत्त का विवाह हुए बहुत दिन हुए। पर उन के कोई सतान न हुई। जब तक उन के माँ, बाप जीवित थे तब तक वे उन से दूसरे विवाह करने के लिए ग्राग्रह किया करते थे पर वे राजी न हुए। उन्होने ग्रपनी पत्नी गोदावरी से ग्रटल प्रेम था सतान से होने वाले सुख के निमित्त वे ग्रपना वर्तमान पारिवारिक सुख नष्ट नही करना चाहते थे। इस के ग्रतिरिक्त वे कुछ नये विचार के मनुष्य थे वे कहा करते थे कि संतान होने से माँ-बाप की जिम्मेदारियाँ बढ जाती है जब तक मनुष्यो मे यह सामर्थ्य न हो कि वह उस का भलीप्रकार पालन-पोषरण ग्रौर शिक्षरण ग्रादि कर सके, तब तक उसकी सन्तान से देश जाति ग्रौर निज का कुछ भी कल्यारण नही हो सकता। पहले तो कभी-कभी बालको हँसते-खेलते देखकर उन के हृदय पर चोट भी लगती थी, परन्तु ग्रपने ग्रनेक देश भाइयो की तरह वे भो शारीरिक व्याधियो से ग्रस्त रहने लगे। ग्रब किस्से कहानियो के बदले धार्मिक ग्रथो से उन का ग्रधिक मनोरञ्जन होता था। ग्रब सतान का ख्याल करते ही उन्हे भय-सा लगता था पर गोदावारी इतनी जल्दी निराश होने वाली न थी पहले तो वह देवी-देवता, गड-ताबीज ग्रौर यत्र-मत्र ग्रादि की शरण लेती थी, परतु जब उस ने देखा कि मै ग्रौषधियाँ कुछ काम नही करती तो वह एक महोषधि की फिक्र मे लगी जो कायाकल्प से कम नही थी उस ने महीनो-बरसो इसी चिन्ता सागर मे गोते लगाते काटे। उस ने दिल को बहुत समझाया परतु मन मे जो बात समा गयी थी वह किसी तरह न निकली। उसे बडा भारी ग्रात्मत्याग करना पडेगा। शायद पति-प्रेम के सदृश्य ग्रनमोल रत्न भी उसके हाथ से निकल जायगा पर क्या वैसा हो सकता है? पन्द्रह वर्ष तक लगातार जिस प्रेम के वृक्ष की उस ने सेवा की है क्या वह हवा का एक झोका भी न सह सकेगा? गोदावरी ने ग्रन्त मे ग्रपने प्रबल विचारो के ग्रागे सिर झुका ही दिया। ग्रब सौत का शुभागमन करने के लिये वह तैयार हो गई थी,।"[१]

उक्त ग्रध्याय 'सौत' कहानी का ग्रारम्भ है। इस मे समूची कहानी के तत्व, बीजरूप मे विद्यमान है। कथानक का बीज इस मे है कि गोदावरी पडित देवदत्त की पत्नी है विवाह हुए पद्रह बर्ष बीत गये, उसे कोई बच्चा न हुग्रा ग्रौर वह सब उपायो से हार कर ग्रपनी ही छाती पर पति के सुख के लिये 'सौत'

[१] सप्त सरोज : सौत पृष्ठ १५-१६

बुला रही है। कहानी के सभी पात्रो का प्रवेश और परिचय बीजरूप मे मिल जाता है तथा उन के मनोभावो पर भी प्रकाश पड गया। कहानी की मुख्य समस्या सौत और पत्नी की समस्या है, यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है। अतएव प्रेमचद की प्रारम्भिक कहानियो के आरम्भ भाग अत्यन्त सश्लिष्ट ढग के है। उन मे एक साथ उक्त सारी विशेषताएँ मिलती है। लेकिन तात्विक दृष्टि से कहानियो के ऐसे आरम्भ कलात्मक नही कहा जा सकते। ऐसे आरम्भो मे शिल्पविधिगत तीन त्रुटियाँ आ जाती है वस्तुतः कहानी का आरम्भ ही पाठको को अपनी ओर आकर्षित करता है और जब कहानी का आरम्भ लम्बे परिचय लम्बी भूमिका मे उलझा होगा, कहानी का पाठक उस से प्रारम्भ ही मे ऊब जायगा। परिचयात्मक आरम्भ अथवा वर्णनात्मक भूमिका शैली कहानी की मुख्य समवेदना की प्रवाह-शक्ति को कुठित कर देती है कहानी की आत्मा मे विकास के बदले पूर्व प्रकाश आ जाता है और कहानी मे कौतूहल वृति का कभी-कभी सत्यानाश हो जाता है।

विकास

यहाँ प्रेमचद ने अपनी कहानियो के कलात्मक विकास मे जिन अवस्था-क्रमो को लिया है वे 'सप्त सरोज', 'नवनिधि' और 'प्रेमपचीसी' का प्रारम्भिक कहानियो मे अत्यत स्पष्ट है। 'आरम्भ और चरम सीमा' के बीच में हमे निम्नलिखित चार अवस्था-क्रम मिलते है जिन से प्रेमचद ने अपनी कहानियो का विकास किया है

(१) मुख्य घटना की तैयारी

(२) मुख्य घटना की निष्पत्ति

(३) व्याख्या

(४) घात-प्रतिघात

'आरम्भ' अध्ययन के सम्बध मे हमने देखा है कि 'नमक का दरोगा' का आरम्भ या परिचयात्मक भाग वहाँ समाप्त होता है जहाँ अनुभवी पिता नौकरी ढूंढने के लिए जाते हुए वंशीधर को सासारिकता का पूर्ण उपदेश देकर समाप्त करते हैं—"इस उपदेश के बाद पिता जी ने आशीर्वाद दिया, वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बाते ध्यान से सुनी और तब घर से चल खड़े हुए। जाते ही जाते नमक विभाग के दरोगा पद पर प्रतिष्ठित हो गए। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो कुछ ठिकाना ही न था।"[१]

---

[१] **सप्त सरोज, नमक का दरोगा, पृष्ठ ६२**

मुख्य घटना की तैयारी

उक्त परिचय मे जहाँ एक ओर परिस्थितियो का स्पष्टीकरण है, वहाँ दूसरी ओर समस्या का आरम्भ भी हो जाता है तथा इस आरम्भ का सूत्र आगे बढ कर कहानी मे मुख्य रूप से आने वाली घटना की तैयारी करने लगता है—
"जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त पड़े थे। मुशी वशीधर को यहाँ आए अभी छः महीनो से अधिक न हुए थे, आचरण से अफसरो को मोहित कर लिया था अफसर लोग उन पर बहुत विश्वास करने लगे। नमक के दफ्तर से एक मील पूरब की ओर जमुना बहती थी उस पर एक बम्बो का पुल बना हुआ था। दरोगा जी किवाड बन्द किए मीठी नीद सोते थे। अचानक आँख खुली तो नदी के प्रवाह की जगह गाडियों की गडगडाहट तथा मल्लाहो का कोलाहल सुनाई दिया। उठ बैठे। इतनी रात गए गाडियाँ क्यो नदी के पार जाती है? अवश्य कुछ न कुछ गोलमाल है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वर्दी पहनी, तमंचा जेब मे लिया और बात की बात मे घोडा बढ़ाए हुए पुल पर आ पहुँचे। गाडियो की एक लम्बी कतार पुल से पार जाते देखी। डॉटकर पूछा, किसकी गाडियाँ है? थोडी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियो मे कुछ कानाफूसी हुई तब आगे वाले गाडीवान ने कहा, पडित अलोपीदीन की।

कौन पडित अलोपीदीन?

दातागज के।

मुशी वंशीधर चौके। पडित अलोपीदीन इस इलाके के सब से बडे और प्रतिष्ठित जमीन्दार थे। लाखो रुपये का लेन-देन करते थे।......पंडित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार, कुछ सोते कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाडी वालो ने घबराए हुए आकर जगाया और बोले, महाराज, दरोगा ने गाड़ियाँ रोक दी है और घाट पर खड़े आप को बुलाते है।"[१]

उक्त अवतरण के आगे आने वाली घटना की पूरी तैयारी स्पष्ट है। एक ओर ईमानदार, अफसरो के विश्वासपात्र नमक के दरोगा वंशीधर है, जिन्होंने रंगे हाथ इतनी रात को अलोपीदीन की नमक की चोरी पकडी है, दूसरी ओर पंडित अलोपीदीन हैं, जिन्हे अपने धन, घूस पर विश्वास है।

---

[१] **सप्त सरोज, नमक का दरोगा, पृष्ठ ६३, ६४**

जिन की धारणा है कि 'ससार का तो कहना ही क्या, और नीति सब लक्ष्मी का ही राज्य है—न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं। और उधर वशीधर एक ऐसा सच्चरित्र व्यक्ति है जिस पर ऐश्वर्य की मोहनी का कुछ प्रभाव ही नही पडता, उस मे ईमानदारी की नई उमग है।" इस तरह से उपर्युक्त गद्याश मे आगे आने वाली घटना की पूरी तैयारी कर ली गयी है।

मुख्य घटना की निष्पत्ति

"पडित जी की अपनी पूँजी पर पूरा विश्वास था। वे गाडी से चलकर दरोगा जी के पास पहुँचे तो उन्हे पूर्ण विश्वास था कि मिनट भर मे रुपये के जोर से सारी समस्या सुलझ जायगी। लेकिग जैसे ही पडित जी दरोया जी के पास पहुचे और उन्होने घूस देने की बात चलाई, दरोगा ने कडक कर कहा, "हम उन नमकहरामो मे नही है जो कौडियो पर अपना ईमान बेचते फिरते है। आप इस समय हिरासत मे है। सबेरे आपका कायदे के साथ चालान होगा। बस, मुझे बहुत बातो की फुर्सत नही है। जमादार बदलूसिह ! तुम इन्हे हिरासत मे ले लो, मै हुक्म देता हूँ।

प० अलोपीदीन स्तभित हो गए। गाडीवानो मे हलचल हो गयी। किन्तु अभी तक धन की साख्यिक शक्ति का (उन्हे) पूरा भरोसा था। अपने मुख्तार से बोले, "लाला जी एक हजार का नोट बाबू साहब को भेट करो, आप इस समय भूखे सिह हो रहे है। वशीधर ने गरम होकर कहा 'एक हजार नही, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से नही हटा सकता। अब दोनो शक्तियो मे सग्राम होने लगा। धन से उछल-उछल कर आक्रमण करने प्रारंभ किए। एक से पाच, पाच से दस, दस से पन्द्रह और पन्द्रह से बीच हजार तक नौबत पहुँची, किन्तु वीरता के साथ इस वहुसख्कक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की तरह अटल, अविचलित खडा था। पडित जी घबराकर दो तीन कदम पीछे हट गए। अत्यन्त दीनता से बोले, वाह साहब ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए। मे पच्चीस हजार पर निपटारा करने को तैयार हूँ।

"असंभव बात है"

"तीस हजार पर"

"किसी तरह भी सभव नही"

"क्या चालीस हजार पर भी नही"

"चालीस हजार नही, चालीस लाख पर भी असभव है।"

हृष्ट-पुष्ट मनुष्य को हथकडियॉ लिए हुए अपनी तरफ आते देखा। चारो ओर निराश कातर दृष्टि से देखने लगे इस के बाद एकाएक मूर्च्छित होकर गिर पडे।"[१]

उपर्युक्त अवतरण मे कहानी की मुख्य घटना की सारी उत्तेजना आ गई है। पंडितजी के तरकश मे जितने बाण थे उन्होने अपनी रक्षा के लिए, सब छोडा, लेकिन सफलता नही मिली। मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि पण्डित जी के मस्तिष्क मे दरोगा जी के इस कठिन व्यवहार की प्रतिक्रिया होगी।

व्याख्या

ऐसी उत्तेजक घटना के बाद कहानी का पाठक स्वभावत आगे घटना का विकास और सत्-असत् का घात-प्रतिघात देखना पसन्द करेगा, क्योकि घटना की ऐसी उत्तेजना पर आकर पाठक की कौतूहल वृत्ति मे अजीब-तनाव आ जाती है और वह दुनिया की सारी चीजें भूलकर घटना का अगला पहलू जल्द से जल्द देखना चाहता है। लेकिन प्रेमचद ऐसे अवसर पर घटना का अगला पक्ष दिखाना स्थगित कर वस्तुस्थिति पर लम्बी-सी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं—"दुनिया सोती थी, दुनिया की जीभ जागती थी। सबेरे ही देखिए तो बालक वृद्ध सब के मुँह से यही बात सुनाई देती थी। जिसे देखिए वही पण्डितजी के इस व्यवहार पर टीका टिप्पणी कर रहा था, निंदा की बौछारे हो रही थी मानो ससार के अब पाप कट गया। पानी को दूध के नाम पर बेचने वाला ग्वाला कल्पित रोजनामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल मे बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनाने वाले सेठ और साहूकार, यह सबके सब देवताओ की भॉति गर्दनें चला रहे थे।"[२]

घटना-उत्तेजना के बाद, यह व्याख्या वस्तुस्थिति पर चाहे जितना प्रकाश डाल रही हो लेकिन इस व्याख्याश से कहानी के प्रवाह मे थोडी-सी स्थिरता आ गयी है, अत. भावपक्ष की दृष्टि वे ऐसी व्याख्याएँ घटना प्रवाह मे चाहे जो मूल्य ला सके लेकिन शैली की दृष्टि से ठीक नही।

---

[१] **सप्त सरोज : नमक का दरोगा, पृष्ठ ६५, ६६, ६७**

[२] **सप्त सरोज : नमक का दरोगा पृष्ठ ६७**

घात-प्रतिघात

व्याख्या के उपरान्त घात-प्रतिघात का क्रम आता है। यहाँ आकर याख्या से पूर्व की उत्तेजित घटना फिर आगे बढती है और इसके विकास मे हमे कहानी का घात-प्रतिघात या कहानी का द्वन्द्व मिलता है। वही पिछली सत्-असत् शक्तियाँ स्पष्ट रूप से एक दूसरे को पराजित करने मे तत्पर मिलती है। सत के पास अपनी ईमानदारी का भरोसा है, लेकिन असत् फिर अपनी तरकश मे वही बाण ढ ँढती है और इस बार असत् की सत् पर विजय हुई। दरोगा द्वारा चलाया हुआ मुकदमा खारिज हो गया। पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिए गए प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक सिद्ध हुए, तथा एक ही सप्ताह के बाद दरोगा जी की मुअत्तली भी हो गयी।

लेकिन इस घात—प्रतिघात का प्रभाव दोनो पक्षो मे है। दरोगा के पक्ष मे उनके वृद्ध पिता और दरोगा, दोनो इस घटना से घायल हो गए, और पडित जी के पक्ष मे इस सत्य ने उन्हे उचित मार्ग पर ला खडा कर दिया। क्योकि घात-प्रतिघात क्रमश सत् असत् का था, सामान्य तत्त्व का नही।

इसके उपरान्त कहानी के विकास मे एक मुख्य विन्दु आता है, जिसे हम कहानो की चरम सीमा, या चरम विन्दु कहते है।

चरम सीमा

चरमसीमा की दिशा मे, प्रेमचद की प्रारम्भिक कहानियो मे दो क्रम मिलते है, चरमसीमा और उपसहार। चरमसीमा के अन्तर्गत प्रायः हमे दो सत्य मिलते है। कही-कही चरमसीमा आदर्शवाद पर टिकी मिलती है और कही-कही घटना या सयोग पर। दोनो सत्यों के उदाहरण हमे 'सप्तसरोज' और 'नवनिधि' की कहानियो की चरमसीमाओ मे मिलती हैं। नमक का दरोगा कहानी की चरमसीमा आदर्शवाद पर प्रतिष्ठित है। पडित अलोपीदीन बशीधर के दरवाजे पर आते है और उन्हे अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियुक्त करते है—छ हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोडे, रहने के लिए बंगला नौकर चाकर मुफ्त। इसी तरह 'बडे घर की बेटी', 'पच 'रमेश्वर', 'उपदेश', 'जुगुनू की चमक', 'ममता', आदि कहानियो की चरम सीमाएँ आदर्शवाद पर टिकी हुई है। 'पचपरमेश्वर' मे अलगू के प्रति जुम्मन का न्याय सगत होना, इतनी ऊँचाई पर जाकर निष्पक्ष न्याय देना, 'बडे घर की बेटी', मे आनन्दी का बिगडते हुए परिवार के प्रति इतनी उदारता और

प्रेम दिखाना, उपदेश मे इतने ढोगी, प्रपची शर्मा जी का एकाएक ऊँचा होना, आदि बाते आदर्शवाद के स्पष्ट उदाहरण है। वस्तुत ऐसी चरम सीमाएँ कहानी कला की दृष्टि से उत्कृष्ट नही कही जा सकती, क्योकि न इस मे स्वाभाविकता ही रह जाती है और न हमारे हृदय-मस्तिष्क पर इन का प्रभाव ही पडता है। घटना या संयोग की भूमिका पर चरम सीमा का चरितार्थ करना, प्रेमचंद की अन्य विशेषता है। इस के उदाहरण मे 'परीक्षा,, 'मर्यादा की वेदी', 'धोखा' और कहानियो की चरम सीमाएँ ली जा सकती है। 'परीक्षा' मे सयोग से जानकी नाथ के पैर मे हॉकी से चोट लग जाना और सब से पीछे छुटकर नाले मे फँसी हुई गाडी को बाहर निकालना, 'मर्यादा की वेदी' मे राजकुमार ने ऐंठ कर राणा पर तलवार चलाई, इतने मे प्रभा एकाएक बिजली की तरह झपटकर राजकुमार के सामने खडी हो गयी, और प्रभा का इस तरह एकाएक मर जाना, आदि ऐसी घटनाओ पर चरम सीमा का स्थिर होना, उक्त सत्य के उदाहरण है।

ऐसी चरम सीमाओ का प्रभाव हृदय पर स्थायी नही पडता, वस्तुत ऐसी चरम सीमाएँ कथानक प्रधान, या घटना प्रधान कहानियो मे चरितार्थ होती है, जो कहानी कला की दृष्टि से बहुत निम्नकोटि की समझी जाती है।

उपसंहार

चरम सीमा के बाद कहानी बिल्कुल स्पष्ट हो जाती। इस के भी उपरान्त कुछ कहना तात्विक और व्यावहारिक, दोनो ढंग से कहानी शिल्प-विधि के विरुद्ध है। क्योकि पाठक कहानी के प्रारम्भ से जिस सवेदना को पकडे हुए उस के अन्त तक पहुँच गया, वह आगे क्यो दौडा जाय ? उस की जिज्ञासा वृत्ति चरम सीमा पर ही समाप्त हो गयी। लेकिन प्रेमचद ने अपनी समस्त प्रारम्भिक कहानियो मे चरम सीमा के उपरान्त हमेशा कुछ न कुछ उपसहार जोडा है, जैसे—

(क) "दोनो भाइयो के गले मिलते देखकर (बेनीमाधव) आनन्द से पुलकित हो गए, बोल उठे, बडे घर की बेटियाँ ऐसी ही होती है। बिगडता हुआ काम बना लेती है। गाँव मे जिसने यह वृत्तान्त सुना उसी ने इन शब्दो मे आनन्दी की उदारता को सराहा, "बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती है।"

[बडे घर की बेटी]

(ख) "अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनो के दिल का मैल धुल गया। मित्रता की मुर्झायी हुई लता फिर हरी हो गयी।" [पच परमेश्वर]

(ग) "हाँ, प्रेम के रहस्य निराले हैं, अभी एक क्षण पहले राजकुमार प्रभा पर तलवार लेकर झपटा। प्रभा उसके साथ चलने पर राजी न थी। किन्तु वह प्रेम के बंधन को तोड न सकी। दोनो उस घर ही से नही संसार से एक साथ सिधारे।" [मर्यादा की वेदी]

(घ) "इस घटना को भारतीय इतिहास की अँधेरी रात मे 'जुगुनू की चमक' कहानी चाहिए।" [जुगुनू की चमक]

(ङ) "यह सब हो गया, किन्तु वह बात जो अब होनी थी वह न हुई। रामरक्षा की माँ अब भी अयोध्या रहती है और अपनी पुत्रवधू की सूरत नही देखना चाहती।" [ममता]

शैली का सामान्य पक्ष

पिछले पृष्ठो मे हमने शैली के अन्तर्गत कहानी की व्यापक शैली अर्थात् रचना शैली का अध्ययन किया है, जहाँ हमने कहानी के तीन भागो को रचना-विधान की दृष्टि से अध्ययन किया है। यहाँ हम शैली के सामान्य पक्ष के अन्तर्गत प्रेमचद की प्रारम्भिक कहानियो मे, चित्रण शैली, शोभा दृश्य वर्णन, कथोपकथन आदि को देख सकते है।

चित्रण-शैली के अन्तर्गत, देश-काल परिस्थिति का चित्रण मुख्य है। यहाँ देश काल का चित्रण केवल परिचयात्मक ढग से हुआ है, और कही-कहीं तो प्रेमचन्द केवल नाम लेकर आगे बढ़ गए है। परिस्थिति-चित्रण मे अवस्था चित्रण कही-कही बहुत जोरदार और व्यंजनात्मक शब्दो मे हुआ है। 'परीक्षा' मे दीवान-पद के लिए आए हुए उम्मेदवारो की स्थिति और अवस्था-वर्णन श्लाध्य है, मि० 'अ' नौ बजे दिन तक सोया करते थे, आजकल वे बगीचे मे टहलते हुए ऊषा का वर्णन करते थे। मि० ब को हुक्का पीने की लत थी, पर आज कल बहुत रात गए किवाड बन्द करके अधेरे मे सिगार पीते थे। मिस्टर द, स और ज से उन के घरो पर नौकरो के नाक मे दम था, लेकिन वे सज्जन आजकल आप जनाब के बगैर नौकरो से बातचीत नही करते थे। महाशय नास्तिक थे, हौसले के उपासक थे, मगर आजकल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मन्दिर के पुजारी को पद-च्युत हो जाने की शका लगी रहती थी। मिस्टर ल को किताबो से घृणा थी, परन्तु आज कल वे बडे-बडे ग्रन्थ खोले पढने मे डूबे रहते थे। जिस से बात कीजिए, वह नम्रता और सदाचार का देवता बना मालूम होता था। शर्मा जी घडी रात ही से वेद मत्र पढने लगते थे और मौलवी

साहब को तो नमाज और पालागन के सिवा और कोई काम न था। लोग समझाते थे कि एक महीने का झझट है, किसी तरह काट ले, कही कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।''[1]

यहाँ परिस्थिति और अवस्था चित्रण कितना मार्मिक और व्यजना लिए हुए है। एक ओर वास्तविक वस्तुस्थिति पर व्यंग है और दूसरी ओर सत्य का उद्घाटन हुआ है। कहानी के चित्रण और वर्णन-शैली मे इस शैली का बहुत महत्व है।

शोभा-वर्णन के माध्यम से यहाँ कही-कही बहुत अच्छे ढंग से वातावरण प्रस्तुत किया गया है। 'मर्यादा की वेदी' मे राजकुमारी प्रभा के विवाह मे मडप-शोभा कितने अच्छे वैवाहिक-वातावरण का सूचक है—

"रनिवास मे डोमनियाँ आनन्दोत्सव के गीत गा रही थी। कही सुन्दरियो के हाव-भाव थे, कही आभूषणो की चमक-दमक, कही हास-परिहास की बहार। नाइन बात-बात पर तेज हो रही थी। मालिन गर्व से फूली न समाती थी। धोबिन आँखे दिखाती थी। कुम्हारिन मटके के सदृश्य फूली हुई थी। मंडप के नीचे पुरोहित जी बात-बात पर स्वर्ण-मुद्राओ के लिए ढुलकते थे। रानी सिर के बाल खोले भूखी-प्यासी चारो ओर दौड रही थी। सबकी बौछारे सहती थी और अपने भाग्य को सराहती थी। आज प्रभा का विवाह है, बडे भाग्य से ऐसी बाते सुनने मे आती है।''[2]

शोभा-वर्णन जहाँ कही निरपेक्ष ढग से किया गया है, वहाँ और भी उत्कृष्ट हुआ है, जैसे गाँव की शोभा —"फागुन का महीना था। आमो के बौर से महकती हुई मन्द-मन्द वायु चल रही थी। कभी-कभी कोयल की सुरीली तान सुनाई दे जाती थी। खलिहानो मे किसान आनन्द से उन्मत्त हो होकर फाग गा रहे थे।" इस तरह से गाँव खलिहान पंचायत, बैठक, खेत आदि की शोभा का वर्णन बहुत ही चित्रात्मकता से किया है।

प्रेमचद की प्रारम्भिक कहानियो मे प्राकृतिक दृश्य वर्णन, स्वतत्र रूप से बहुत कम मिलते हैं, और यही सत्य वस्तुत. इन की समस्त कहानियो पर लागू हो सकता है। प्राकृतिक दृश्य-वर्णन जहाँ-कही भी आया है वह मानव-व्यापार के साथ आया है, उसे अपना धरातल बनाकर आया है—मध्याह्न काल था। सूर्य्यनारायण सिर पर आकर अग्नि की वर्षा कर रहे थे। शरीर को झुलसाने

---

[1] **सप्त सरोज, परीक्षा, पृष्ठ १०६**

[2] **नवनिधि, मर्यादा की वेदी, पृष्ठ ४४**

वाली प्रचड, प्रखर वायु वन और पवतो मे आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था मानो अग्निदेव की समस्त सेना गरजती हुई चली जा रही है। गगन मडल इस भय से काप रहा था। रानी सारधा घोडे पर सवार, चम्पतराय को लिए पच्छिम की तरफ चली जाती थी ....तालू सूखा जाता था, किसी वृक्ष को छाह और कुएँ की तलाश मे आखे चारो ओर दौड रही थी।''[1]

आकार-प्रकार के वर्णन मे प्रेमचद बहुत दूर तक नही जाते थे। जितने से कहानी के विकास मे उस का सहयोग होता था, उतना ही वर्णन वे देने का प्रयत्न करते थे, और वह भी बहुत सूक्ष्म और साकेतिक शैली मे—''थोडी देर मे रागिया भीतर आया। सुन्दर सजीले बदन का नौजवान था। नगे पैर, नगे सिर, कधे पर एक मृग-चर्म, शरीर पर एक गेरुआ वस्त्र, हाथो मे एक सितार। मुखारविन्द से तेज छिटक रहा था।''[2]

कथोपकथन

प्रेमचद की प्रारम्भिक कहानियो मे कथनोपकथन के तीन रूप मिलते है और तीनो रूपो में सर्वथ तीन विकास-क्रम का आभास है। पहले प्रकार के आरम्भिक कथोपकथन वे है—जहाँ बीच-बीच मे नाटकीय सकेत दिये गए है। जैसे—

धर्मसिह . हाँ संभव है कि वह तुम्हारा कोई नातेदार हो।

पृथ्वीसिह : (जोश मे) कोई हो यदि वह मेरा भाई ही हो तो भी जीता चुनवा दूँ।

धर्म सिह : तेगा खीचो।

पृथ्वी सिह . मैंने उसे नही देखा।

धर्म सिह : वह तुम्हारे सामने खडा है। वह दुष्ट कुकर्मी धर्मसिह ही है।

पृथ्वी सिह : (घबराकर) ये तुम.. मै.. ।[3]

यहाँ कथोपकथन मे नाटकीयता स्पष्ट है। वस्तुत कहानी मे ऐसे कथोपकथन बहुत निम्नकोटि के समझे जाते है। 'जोश' मे 'घबराकर' आदि निर्देशनो का प्रयोग कहानी के कथनोपकथनो मे सर्वथा अकलात्मक है क्योकि कहानी पाठन-पठन की चीज है, अभिनय की नही। विकास-क्रम मे दूसरे प्रकार के कथोपकथन निम्नलिखित है—

---

[1] नवनिधि, रानी सारंधा, पृष्ठ ३८

[2] नवनिधि, 'धोखा' पृष्ठ ६४ [3] नवनिधि, पृष्ठ ७६

"रामरक्षा—मूर्ख नही है ।"
"क्या खाया है ?"
"मन की मिठाई ?"
"और क्या खाया है ?"
"मार !"
"किसने मारा ?"
"गिरधारी लाल ने"[1]

और इस विकास-क्रम मे तीसरे प्रकार के कथोपकथन ये है—

वे तलवार खीचकर राणा पर झपटे । उन्होने वार बचा लिया और प्रभा से कहा, राजकुमारी, हमारे साथ चलोगी ? प्रभा सिर झुकाए राणा के सामने आकर बोली—हा, चलूंगी । राव साहब को कई आदमियो ने पकड लिया था वे तडप कर बोले—प्रभा तुम राजपूत की कन्या हो ।

प्रभा की आखे सजल हो गयी । बोली—राणा भी तो राजपूती के कुल तिलक है । राव साहब ने आवेश मे आकर कहा—निर्लज्जा ।"[2]

विकास-क्रम का तीसरे ढग का यह कथोपकथन पूर्ण कलात्मक और आधुनिक है । इस मे एक साथ कथोपकथन मनोभावो, का चित्रण तथा कार्य कलाप और मुद्राओ का सकेत है । अत कथोपकथन के सबध मे प्रेमचद यही से पूर्ण सफल है ।

लक्ष्य और अनुभूति

(प्रेमचंद की प्रारभिक कहानियाँ आदर्श को लक्ष्य-विन्दु मानकर लिखी गयी है) अर्थात् कहानीकार के सृष्टि-जगत् मे पहले कोई समस्या आयी और उस की प्रतिक्रियास्वरूप उस मे उस के लिए एक आदर्श भावना जमी और उसी को लक्ष्य मानकर वह कहानी लिखने बैठ गया । इस भावना को चरितार्थ करने के लिए प्रेमचद ने प्राय अपनी समस्त प्रारम्भिक बल्कि विकास और कुछ-कुछ उत्कर्ष काल तक हानियो मे सत-असत् दो विरोधी तत्वो को स्थान दिया । और प्राय. हमेशा असत् पर सत् की विजय दिखाकर आदर्श की प्रतिष्ठा की इस लक्ष्य-विन्दु को लेकर इस काल की

---

[1] नवनिधि, पृ० १२३ [2] नवनिधि, पृ० ३४६

सभी प्रतिनिधि कहानियाँ जैसे, 'बड़े घर की बेटी' 'पच-परमेश्वर' 'नामक का दरोगा', 'उपदेश', 'परीक्षा', 'अमावस्या की रात्रि', 'पछतावा' आदि लिखी गयी हैं ।

अनुभूति मात्र के सृष्टि विन्दु से इस काल मे प्राय. कोई भी कहानी नही लिखो गयी है । अनुभूति के धरातल से लिखी हुई कहानियाँ सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ सिद्ध होती हैं, लेकिन कहानियो की यह सृष्टि-प्रेरणा कहानीकार की कला के उत्कर्ष काल मे मिलती है । यहाँ प्रेमचद ने अपनी कहानियो के विषय-मे "घर और सस्था" इन दोनो से विषय और समस्याएँ ली है । इन का स्वतत्र अध्ययन हम भाव-पक्ष के प्रसग मे आगे करेगे । लेकिन यहाँ शिल्पविधि की निश्चित सीमा मे कहानियाँ प्राय आदर्श भावना को लक्ष्य बनाकर लिखी गयी है, अनुभूति को नही ।

प्रेमचद की प्रारम्भिक कहानियाँ आदेश और परामर्श की कहानियाँ है । ये कहानियाँ हमे ऊँचे आदर्श के साथ कर्तव्य-पालन के कितने उदाहरण प्रस्तुत करती है । फलत: इन कहानियो मे एक साथ कई रस, कई इकाइयाँ आ गयी हैं । इन मे हमारी घरेलू और सस्था जैसे जमीन्दारी, किसानी, नौकरी राजनीति आदि की समस्याएँ दी गयी हैं, लेकिन इन समस्याओ के प्रदर्शन के रहते यहाँ गुणो की ओर बढने क लिए जबर्दस्त आग्रह है । इन कहानियो के अन्त मे हमे कुछ देर के लिए अपनी परम्परा, अपनी भारतीयता के प्रति अनुराग, मोह उत्पन्न होता है । इस दिशा मे हमे भारतेन्दु कालीन मुख्य उपन्यास 'हिन्दू महात्म्य' और 'परीक्षा गुरु' याद आते है । इन उपन्यासो मे भी इसी तरह परम्परा के प्रति मोह और आदर्शो के ग्रहण करने के परामर्श हैं तथा इन उपन्यासो मे भी प्रेमचद की प्रारभिक कहानियो की भाँति ऐन्द्रिक प्रेम को जान-बूझकर छोड दिया गया है । वस्तुत यह रीतिकाल की उत्तर काल पर काव्यात्मक प्रतिक्रिया थी जो समूचे द्विवेदी युग पर थी । फलत ये कहानियाँ चरित्र प्रधान न होकर आचरण प्रधान हो गयो है । इस के फलस्वरूप इन कहानियो की समस्याएँ भी आचरण की सीमाओ मे सीमित हैं । यही कारण है कि ये कहानियाँ परिस्थितियो के वर्णन, चित्रण और उनके हल की कहानियाँ हैं । इन समस्त कहानियो का धरातल नैतिक है, जिन मे वर्णन, व्याख्या अधिक है, व्यग, चोट आदि कम । फिर भी ये कहानियाँ जन-जागृति और गाँधीवादी धारा के प्रथम चरण की कहानियाँ है । इन का मूल्य इन के भावपक्ष मे अधिक है, स्वतत्र शिल्पविधि मे कम ।

विकास-काल

आरम्भिक काल से विकास-काल तक आते-आते कहानी शैली और इसके रूप विधान के सबध मे प्रेमचद की धारणा स्वय बदल गयी। उन के इस परवर्ती-दृष्टिकोण का उदाहरण हमे विकास-काल की कहानियो मे मिलने लगा और विकास-काल के दो कहानी सग्रह 'प्रेम प्रसून' और 'प्रेम द्वादशी' की भूमिकाओ मे प्रेमचद ने अपनी कहानी-कला की धारणा के सबंध मे थोडा-सा प्रकाश डाला है : "आजकल आख्यायिका का अर्थ बहुत व्यापक हो गया हे। उसमे प्रेम की कहानियाँ, जासूसी किस्से, भ्रमण वृत्तान्त, अद्भुत घटना, विज्ञान की बाते, यहाँ तक की मित्रो की गप-सप सभी शामिल कर दी जाती है।"

(प्रेम प्रसून की भूमिका, पृष्ठ १)

इसी भाँति 'प्रेम द्वादशी' को भी भूमिका मे उन्होने विकास अवस्था की कहानियो के बारे मे कहा है—"वर्तमान आख्यायिका का मुख्य उद्देश्य साहित्यिक रसास्वादन करना है और जो कहानी इस उद्देश्य से जितनी दूर जा गिरती है, उतनी ही दूषित समझी जाती है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नही कि वर्तमान गल्प-लेखक कोरी गल्पे लिखता है। जैसे 'दास्ताने ख्याल' या 'तिलस्म होशेरुबा' है। नही, इसका उद्देश्य चाहे उपदेश करना न हो, पर गल्पो का आधार कोई न कोई दार्शनिक तत्व या सामाजिक विवेचन अवश्य होता है। ऐसी कहानी, जिसमे जीवन के किसी अग पर प्रकाश न पडता हो, कुतूहल का भाव न जागृत करे, कहानी नही।...... यूरुप और भारतवर्ष की आत्मा मे बहुत अन्तर है। योरुप की दृष्टि सुन्दर पर पडती है पर भारत की सत्य पर।"

उपर्युक्त अवतरणो मे विकास काल की कहानियों की शिल्पविधि के सम्बन्ध मे कुछ नही कहा गया है, न कहानी—कला के सम्बन्ध मे विशेष प्रकाश पडा है। वस्तुत: शिल्पविधि कहानी के अन्तर्गत नितान्त अमूर्त तत्व है। यह एक प्रेरणा है, और कहानीकार स्वय इसे अपनी व्याख्या मे नही ला सकता। फिर तो प्रेमचद कहानी के भाव पक्ष पर अधिक बल देते थे, कला-पक्ष पर कम। फलत: शिल्पविधि कहानी का एक आदर्श रूप है जो कहानीकार के अवचेतन, कभी-कभी चेतन जगत् मे प्रेरणा स्वरूप विद्यमान होता है और इस के फलस्वरूप कहानी की सृष्टि होती है। इसलिये शिल्पविधि के अध्ययन के लिए हमे फिर कहानियो की ही शरण मे जाना पडता है, क्योकि अमूर्त शिल्पविधि का मूर्त रूप कहानी ही है।

कथानक

आरम्भकाल की कहानियो मे हमने देखा है कि वहाँ के कथानक लम्बे इतिवृत्तात्मक, और द्विपक्षता लिए आये है । इस दिशा मे यहाँ विकास हुआ है । बाते पिछली ही है लेकिन उन मे कलागत सुधार और काँट-छाँट स्पष्ट है । कथानक अपने समग्र रूप मे कहानी के अनुरूप और कलात्मक वृत्ति को सतोष देने लगे है । वस्तुत: यहाँ आकर स्वयं प्रेमचद ने कहानी की लम्बाई इतिवृत्ति और घटनाबाहुल्य के विरोध मे कहा है—"अख्यायिका मे इस बाहुल्य की गुंजाइश नही । बल्कि कई सुविज्ञजनो की सम्मति तो यह है कि उसमे केवल एक ही घटना या चरित्र का उल्लेख होना चाहिए ।"[१]

उपर्युक्त प्रकाश मे प्रेमचद ने यहाँ अपनी कहानियो के विस्तार और इतिवृत्ति मे सुधार की चेष्टा की है तथा लम्बे कथानक से छोटे कथानको की ओर जाने का प्रयत्न स्पष्ट है । 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम चतुर्थी', 'प्रेम प्रसून', 'प्रेम पचीसी' की कहानियो तथा 'स्त्री-पुरुष', 'माता का हृदय', 'मैकू' 'मुक्ति का मार्ग' 'डिग्री के रुपये', 'वज्रपात' और 'शतरज के खिलाडी' आदि कहानियो के कथानको के सम्बन्ध मे उपर्युक्त सत्य सफलता से चरितार्थ होता है । यहाँ के कथानको मे गठन और संयम दोनो निश्चित है । प्राय. यहाँ के कहानियो मे उतना ही कथानक लिया गया है जितने से कहानी की मूल सवेदना सम्बन्धित है । अतएव यही कहानी मे विस्तृत व्यापार और घटनाओ की कमी हुई है । अब कथानक अधिक से अधिक पाँच-छ. मोडो के साथ कहानी मे चरितार्थ होने लगे है । 'बूढी काकी' के कथानक मे कुल पाँच मोड है, जैसे, इस का आरम्भ, जहाँ बूढी काकी का परिचयात्मक अश कथानक के आदि मे जुडा हुआ है । दूसरा मोड है, बुद्धिराम के बड़े लडके सुखराम का तिलक समारोह और इस अवसर पर प्रीति भोज की व्याख्या । तीसरा मोड है भूखी बूढी काकी का स्वत. भडारे मे आ घुसना और उसकी उपेक्षा । चौथा मोड है, भूखी उपेक्षिता काकी का रात मे मेहमानो की जुठी पत्तले खाना और रूपा घर की मालकिन को उसे देख लेना, तथा कथानक का पाँचवा और अन्तिम मोड है, रूपा का सब सामग्रियो के साथ थाली सजाना और बूढ़ी काकी को खिलाना ।

प्रारम्भिक काल मे ऐतिहासिक कहानियो के कथानक बहुत विस्तृत और अधिक मोडो के हो गए । लेकिन इस काल मे भी प्रेमचद ने ऐतिहासिक

---

[१] **प्रेम प्रसून, भूमिका, पृ० ४**

कहानियाँ लिखी हैं, जैसे :—'शतरज के खिलाडी' का कथानक—सामाजिक कहानियो के कथानको की भाँति क्रमश छोटे हो गए है। 'शतरज के खिलाडी' का कथानक केवल पाँच-छ मोडो मे समाप्त हो गया-है। मीर साहब और मिर्जा साहब का शतरज के खेलने की लत से कथानक का पहला मोड आरम्भ होता है। मिर्जा साहब की इस आदत से उन की बेगम का तीखा विरोध और उस के फलस्वरूप खेल का स्थान मिर्जा साहब के यहाँ से मीर साहब के यहाँ बदल जाना, कथानक का दूसरा मोड है। तीसरा मोड है, बादशाही फौज के एक अफसर का मीर साहब को ढूँढ़ते हुए आना और इस डर से अब शतरंज का नकशा गौमती पार एक मस्जिद के खडहर मे जमने लगता है। चौथा मोड वहाँ है जहाँ से वे शतरंज के खिलाडी खडहर मे छिपे हुए अपने बादाशह नवाब वाजिद अली शाह को देखते हैं जो अग्रेजो से बन्दी बना हुआ शहर के बाहर जा रहा है लेकिन उन्हे कोई फिक्र नही—ये अपने शतरज मे लगे हुए है। इस कथानक का पाँचवा अंतिम मोड यह है कि दोनो मित्रो मे खेल ही खेल मे वादविवाद होता है और दोनो तलवार निकालते है, लड जाते हैं, और वही मस्जिद के खडहर मे मौत के घाट उतर जाते हैं।

यहाँ हम देखते है कि कथानक अपेक्षाकृत अपने रूप-विस्तार मे कितने छोटे हो गये हैं। इसके पीछे तीन प्रेरणाएं स्पष्ट है। यहाँ आकर प्रेमचंद ने अपनी कहानियो मे इकाई की ओर ध्यान दिया है। यहाँ उन्होने कहानियो की भाव-भूमि तथा उस के विस्तार का 'कैनवेस' अपेक्षाकृत्त छोटा किया है और यहाँ आकर प्रेमचद ने आधार शिला, आदर्श व्याख्या तथा उपदेश के स्थान पर भाव या समस्या को प्रसग बनाया है।

इतिवृत्तात्मकता की दिशा मे इस काल की कहानियो पर उस का प्रभाव स्पष्ट है। प्रायः यहाँ भी कहानी का आरम्भ परिचय के साथ होता है और समस्या प्रवेश, द्वन्द्व, द्वन्द्वके विकास, अवरोह के साथ चरम सीमा और उस के बाद भी उपसहार पर कहानी का समाप्त होना यह भी स्पष्ट है। एक तरह से कथा-नक के विकास-क्रम की शिल्पविधि वही है लेकिन उस के रूप मे, उस के मोड़ो में कुछ परिवर्तन हुए हैं और सब से बडी विशेषता हमे यहाँ आकर मिलने लगती है कि कहानी पढ़ लेने के बाद पाठक गण को सोचने के लिए कुछ बाते रह जाती हैं वैसे इतिवृतात्मक यहाँ भी है, उदाहरण के लिए 'शखनाद' कहानी है यहाँ आरम्भ मे भानु चौधरी के समूचे परिवार का पूरा परिचय है उन के तीनो लडकों की विभिन्न प्रवृत्तियो और मनो भावो की पूर्ण विवेचना है। वितान

बड़े लडके बडे अनुभवी बड़े मर्मज्ञ, मँझले ज्ञान चौधरी कृषि विभाग के अधिकारी थे, सब से छोटे सुमान बडे रसिक और उदंड थे, कैसे इन तीनो भाइयों मे इन की स्त्रियो द्वारा वैमनस्य बढता है कैसे विकास होता है यहाँ हमे इन का पूर्ण परिचय मिलता है और अत मे कैसे गुमान के एकाएक सुधार हो जाता है इस का भी संकेत है और इसके भी बाद गुमान के मुख से यह भी कहला दिया जाता है। तुमने मुझे आज सदा के लिए इस तरह जगा दिया मानो मेरे कानो में शखनाद का कर्मपथ मे प्रवेश करने का उपदेश दिया हो। इसी तरह 'आत्माराम', 'बूढ़ी काकी' आदि इस काल की उत्कृष्ट कहानियो मे भी पूर्ण इतिवृत्तात्मक है, लेकिन पहले की उपेक्षा इस मे गठन और सक्षिप्तीकरण का सफल प्रयास है।

पिछली कहानियो के कथानको मे प्राय हम ने सहायक कथानको को देखा था इस काल मे यह द्विपक्षता की प्रवृत्ति बिलकुल नष्ट हो गई है। यहाँ उस के स्थान पर प्रेमचद ने सकेतो, व्याख्याओ, वर्णनो से काम लिया है। 'वज्रपात' और 'शतरंज के खिलाडी' पिछले खेवे के ऐतिहासिक कहानियाँ— 'रानी सारधा' और 'मर्यादा की वेदी' से बिल्कुल भिन्न है। भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष दोनो दिशाओ मे इनमे सफलता से इकाई एक समवेदना है, अतः अन्त तक कथानक की एकसूत्रता भी यहाँ है। कहानी की भाव-भूमि, प्रतिपाद्य विषय और आलोच्य सामग्री सब अपेक्षाकृत सीमित और निश्चित हुई है। यहाँ भाव-पक्ष और कलापक्ष दोनो मे और सुगठन और कला की ओर जाने का प्रयत्न है।

कथानक-निर्माण मे विभिन्न ढंग

प्रेमचद की कहानियो का विकास काल उन की कहानी-कला का विस्तार काल है। इस काल मे, प्रेमचंद ने कम से कम सौ कहानियाँ लिखी और उन मे से भी निम्नलिखित कहानियाँ अपने प्रतिनिधि रूपो मे आई हैं और सब कला वैचित्र्य और प्रयोगो मे स्वतंत्र हैं, जैसे 'शंखनाद', 'शान्ति', 'नैराश्य लीला', 'डिगरी के रुपये' 'शिकारी राज कुमार', 'लाल फीता', 'बैंक का दिवाला, 'नागपूजा', 'प्रारब्ध', 'पूर्व सस्कार', 'गुप्त धन', 'बलिदान' 'मूठ', 'गरीब की हाय', 'बूढी काकी', 'आत्माराम', 'विध्वस', 'दुर्गा का मन्दिर', 'गृहदाह', 'सफेद खून', 'आदर्श', 'विरोध', 'वज्रपात', 'बौड़म', 'दफ्तरी', 'महातीर्थ', 'सेवा ग्राम', 'ज्वालामुखी', 'आभूषण', 'धर्म-सकट', 'मुक्तिमार्ग' और 'शतरज के खिलाडी'।

उपर्युक्त सारी प्रतिनिधि कहानियाँ अपने कथानक निर्माण मे अलग-अलग है। लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से अगर देखा जाय तो इतने विभिन्न कथानक

निर्माण मे कुछ ऐसे कलात्मक सत्य मिलेंगे, उनमे कुछ ऐसे मूलगत ढङ्ग या पद्धतियाँ मिलेंगी, जिन के आधार पर उक्त कहानियो के निर्माण हुए है।

(क) कथानक का आरम्भ एक सूत्र से होता है और उस सूत्र मे अपनी वर्तमान प्रेरणा होती है इस मे न किसी सहायक शक्ति की आवश्यकता है न किसी विरोधी शक्ति की प्रतिक्रिया वरन् यह सूत्र स्वतः स्वाभाविक गति से आगे बढता है और विविध मनोभावो अन्यान्य कार्य-व्यापारो के बीच से आगे बढता है लेकिन सब मे एक क्षमता और शृङ्खला रहती है और अत मे यह कथानक उसी स्वाभाविक दृष्टि मे एक हो जाता है, लगता है, जैसे इस कथानक-निर्माण मे चरम सीमा की कोई अवस्था नही है, न कोई व्यवस्था है, न उस की कोई अपेक्षा ही है, जैसे, 'नैराश्य लीला', 'शान्ति', 'शिकारी राजकुमार'।

(ख) कथानक-सूत्र आरम्भ ही से अपने मे एक समस्या लेकर चलता है आगे बढते ही उस मे दो विरोधी सवेदनाएँ जुडती है और दोनो स्वतत्र रूप से विकास पाती है। फिर दोनो सवेदनाओ की मूल शक्तियाँ सहायक शक्तियो को छोडकर उन से क्रमश अलग हो जाती है और अत मे दोनो बिछुडी हुई अपनी अपनी सवेदनाओ पर लौटती है लेकिन एक संवेदना की लौटी हुई शक्ति सदा के लिए टूट जाती है और दूसरी से सदा के लिए अलग हो जाती है, जैसे 'आभूषण'।

(ग) कथानक का आरम्भ विस्तृत पृष्ठभूमि से होता है और कथानक की मुख्य संवेदना एक साधारण-सी बात पर आधारित रहती है जो कथानक की प्राथमिक समस्या भी रहती है। इस प्राथमिक समस्या के सुलझते एक अन्य सयोग के साथ अन्य संवेदना जुडती है और दोनो की चरम सीमाएं घटनात्मक होती हैं लेकिन कथानक अपने उत्तर भाग मे वस्तुत. विकसित होता है, जैसे, 'आत्माराम'।

(घ) कथानक सूत्र का जन्म अंधविश्वास से होता है और इस का विकास तथा चरम परिणति सब अन्ततोगत्वा उसी अधविश्वास परपरा पालन और विवेक शून्यता मे होता है, जैसे, 'नागपूजा', 'मूठ', 'प्रारब्ध', 'पूर्व-सस्कार।'

(ङ) कथानक का आरंभ किसी व्यक्ति के आत्म-कथात्मक कथा वर्णन से होता है। वह ग्राम कहानियो की भाँति उसके आत्म-वर्णन से एकसूत्रता लिए आगे बढता है और अत्यन्त स्वाभाविक गति से, बिना कथानक मे किसी प्रकार की कलात्मक संश्लिष्टता उत्पन्न किए चरम सीमा पर

पहुँच जाता है, जैसे, 'ब्रह्म का स्वांग', 'बौड़म', 'हार की जीत', 'शाप', 'यह मेरी मातृभूमि है', 'ज्वाला मुखी' आदि ।

(च) इस ढंग में वे सारी छोटी कथात्मक कहानियाँ आती हैं जिन के कथानकों का आरंभ कहानीकार द्वारा स्थिति वर्णन और समस्या उद्घाटन में होता है । कथानक समस्या लेकर आगे बढ़ता है, उस में घात-प्रतिघातों संघर्षों की चोटें लगती हैं और उन के फलस्वरूप कथानक तुरन्त अपनी स्वाभाविक चरम सीमा पर पहुँच जाता है अर्थात् कथानक अपने विकास और चरम सीमा पहुँचने के लिए किसी भी तरह आदर्श या सिद्धांत को न मानते हुए पूर्ण स्वाभाविक यथार्थ गति से चरम सीमा पर पहुँच जाता है और उस में किसी भी तरह का विस्तार व्याख्या या अप्रासंगिक फैलाव नहीं रहता; जैसे, 'बूढ़ी काकी', 'शतरंज के खिलाड़ीं', 'वज्रपात', 'बौड़म', 'दफ़्तरी', 'लालफीता', 'बलिदान', विध्वंश' 'धर्मसंकट', 'मुक्ति का मार्ग' आदि ।

इस तरह प्रेमचंद के विकास-काल की कहानियों में कथानक-निर्माण के प्रायः उपर्युक्त ढर्रे है । इन्हीं ढर्रों के किनारे कुछ काट-छाँट करके प्रेमचंद ने विकास काल की अपनी सारी कहानियों के कथानकों को गढ़ा है, लेकिन यहाँ एक सत्य पहले की अपेक्षा बहुत उभरा हुआ है । यहाँ उन कहानियों के कथानकों का निर्माण और विकास अत्यन्त स्वाभाविक और मानव मनोविज्ञान के अनुरूप है । इन के निर्माण और विकास में पहले की अपेक्षा संयोग और घटनाओं का सहारा कम लिया गया है ।

चरित्र

आरम्भकाल की कहानियों के मुख्य चरित्र थे किसान, जमींदार, नौकर, और घर की बहुएँ, माताएँ तथा बूढ़ी खाला जैसी औरतें । इसी प्रकार के चरित्र इस काल में भी हमें मिलते हैं । लेकिन वहाँ इन की संख्या और इन के टाइप बहुत सीमित थे तथा स्त्री चरित्र तो बिल्कुल उभर ही नहीं सका था । जैसे वे घर की चहारदीवारी और अपनी दासता में बुरी तरह जकड़े थे , लेकिन यहाँ पुरुष और स्त्री चरित्रों की सीमा और विस्तार दोनों में अन्तर आ गया है । स्त्री पुरुष का अपना अपना व्यक्तित्व निखर कर निश्चित हो गया तथा इन का मनोविज्ञान-मनोभाव अधिक उभर कर स्पष्ट हो गया । पिछले खेवे की कहानियों में चरित्रों का अमूर्त रूप हम ने उनके आचरणों कृत्यों के माध्यम से देखा था, लेकिन यहाँ पात्रों का वह रूप उन के मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण

के माध्यम से अध्ययन किया जा सकता है। चरित्र की दिशा मे यही दूसरा विकास, इस काल के चरित्रो की पहचान है और यही उन की विशेषता है।

स्त्री

आरम्भ काल की कहानियो मे स्त्री पात्रो का स्थान बहुत सकुचित रूप में मिला था। उन का रूप उन का व्यक्तित्व बहुत ही अस्पष्ट था। स्त्रियाँ प्राय: यथार्थ की भाव-भूमि पर खडी रहकर सदैव आदर्शवादी और मर्यादावादी थी। एक तरह से वे अपनी समस्याओ के सबध मे पगु थी। उन की जागरूकता उन की मर्यादा मे सो गयी थी। लेकिन यहाँ स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक मुखरित और स्पष्टवादिनी हुई है। उन्हे स्थान-स्थान पर कहानी का नायकत्व मिला है और उनके व्यक्तित्व के किनारे-किनारे कहानी की घटनाएं तथा अन्य पात्र घूमते हुए दृष्टिगोचर हुए है। यहाँ उन का जीवन-दर्शन बहुत ही परिवर्तित और क्रान्तिकारी है उन मे विद्रोह की सफल चेतना आ गयी है। 'शखनाद' में स्त्री ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया' 'अब समझाने-बुझाने से काम नही चलेगा सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया।' 'आभूषण' मे स्त्री ने ईश्वर को भी ललकार दिया कि ईश्वर के दरबार मे पूछूंगी कि तुमने मुझे सुन्दरता क्यो नही दी, बदसूरत क्यो बनाया' यहाँ आकर स्त्री का व्यक्तित्व पुरुष की बराबरी मे आ गया है और पुरुष के अत्याचार शोषण और उस की निरंकुशता से ऊब कर स्त्री ने क्रान्ति स्वर मे अपने स्वतत्र व्यक्तित्व और निजत्व की घोषणा की है: 'मुझमे जीव है, चेतना है, जड क्योकर बन जाऊं, मुझ से यड नही हो सकता कि अपने को अभागिनी दुखिया समझूं और एक टुकडा रोटी खाकर पड़ी रहूँ ऐसा क्यों करूं संसार मुझे जो चाहे समझे मैं अपने को अभागिनी नही समझती। मैं अपने आत्मसम्मान की रक्षा कर सकती हूँ। मैं इसे अपना घोर अपमान समझती हूँ कि पग-पग पर मुझ पर शंका की जाय नित्त कोई चरवाहे की भाँति मेरे पीछे लाठी लिये घूमता रहे। यह दशा मेरे लिये असह्य है। पुरुष क्यों स्त्री का भाग्य विधाता है स्त्री क्यो नित्य पुरुषो का आश्रय चाहे क्यों उनका मुंह ताके'।[१]

अत: यहाँ आकर स्त्री, पुरुष की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील और जीवन-पूर्ण हो गयी है। पुरुष जहाँ अवसरवादी है, अपने में द्विपक्षता रखता है, कपटी और प्रतिक्रियावादी है वहाँ स्त्री बिल्कुल साफ, सीधी और स्पष्ट है वह जो सोचती

---

१ प्रेमपचीसी, नैराश्य लीला पृष्ठ ३६२, ३६३

है वही करती है और वही कहती भी है। 'ब्रह्म के स्वाग' नामक कहानी की बृन्दा इतनी सरल और भोली-भाली है कि उस की मर्यादावादिता और आदर्शपने पर उस के साम्यवादी पति खीझते हुए सदैव दुखी रहते हैं, लेकिन जब बृन्दा एकाएक सच्चे रूप मे साम्यवादी बन जाती है, तब भी पति महोदय और जल भुन उठते है फिर बृन्दा सोचती है कि अब वह क्या करे? अन्त मे वह पुरुष के इस खोखलेपन पर कुपित होकर सोचती है, "यह घर अब मुझे कारागार लगता है किन्तु मैं निराश नही हूँ।"[१]

स्त्री अब यथार्थ पक्ष मे यथार्थ कदम उठाती है उसी की पिछली झूठी मान्यताएँ टूट जाती हैं और यह अपने वर्गसंघर्ष मे पूर्णत: जागरूक हो गई है। 'ईश्वरी न्याय' मे विधवा भानु कुमारी को प्रपंची और दुश्चरित सत्य-नारायण से लडना पडा है और उस ने अपने विध्वंश होते हुए गॉव को बसाया है। 'विध्वश' कहानी मे विधवा, वृद्धा सतानहोन भुनगी नामक गोडिन अपने शोषक जमीदार से अपने सघर्ष में प्राण दे देती है लेकिन कहती रहती है—"क्यों छोडकर निकल जायँ बारह साल खेत जोतने से असामी भी काश्तकार हो जाता मैं तो इस झोपडी मे बूढी हो गई मेरे सास ससुर और उनके बापदादे इसी झोपडी मे रहे अब इसे जमराज को छोडकर और कोई मुझसे नही ले सकता।"[२] दूसरी ओर यहॉ स्त्रियो ने अपने पथभ्रष्ट पतियो को कर्म, मार्ग पर ला खडा किया है अपने उजडते हुए घरो को भी बचाया है तथा अपने ऊँचे चरित्र से बार-बार पुरुषो को आकर्षित किया है।

इस तरह विकास काल मे स्त्री चरित्रो का रूप बहुत निखर आया है ये भारतीय ललनाएं अवश्य है, लेकिन अब यथार्थ भाव-भूमि पर खडी होकर अपने सत् रूप को भी पहचान रही हैं।

पुरुष

यहॉ आकर पुरुष चरित्रो मे भी भेद-प्रभेद होकर उन के विभिन्न रूपों मे विस्तार आ गया है। समाज का ऐसा कोई प्रमुख या साधारण पुरुष चरित्र नही, जो इस अवस्था की कहानियो मे न आया हो। चमार, धोबी, माली, ओझा से लेकर तालुकेदार, बादशाह, नवाव और अंगरेज तक आ गये हैं।

---

[१]प्रेम पचीसी, ब्रह्म का स्वांग, पृष्ठ ६८। [२] प्रेम पचीसी, विध्वंश, पृ० २००

दूसरी ओर नौकरी पेशा के लोगो मे दफ्तरी, करिदा कानेस्टिबिल गाँव का अध्यापक, सियाहनवीस और पेशकार से लेकर थानेदार, डाक्टर, जज, बैरिस्टर तथा वाइसराय के कार्यकारिणी के सदस्य तक आ गये है। इस के अतिरिक्त देश सेवक, पंडित, शास्त्री और आचार्य लोग भी यहाँ आये है, लेकिन इन पुरुषो मे व्यक्तित्व का विकास चाहे, जितना हुआ हो, उन की आत्मा अभी पिछली तरह की है। उन मे मानवता का किंचित् मात्र भी विकास नही हुआ है। हाँ, यहाँ वे अधिक वाचाल, अधिक प्रभावोत्पादक, अधिक आकर्षण भले ही बन गये हो। करिंदे और पुलिस उसी तरह से अत्याचारी है, जज, वकील, बैरिस्टर उसी तरह से धन लोलुप और शोषक है। गरीब जनता, छोटे नौकर, सेवक और मजदूर पहले से ज्यादा निःस्सहाय और शोषित है। पिछली कहानियो मे प्राय. पुरुष-चरित्र के पेशे से सम्बन्धित समस्याएँ खडी हुई थी और उन्होने उसी दशा मे आचरण भी दिखाए थे। लेकिन यहाँ पेशे को छोडकर व्यक्ति और उस का जीवन अधिक उभरा है, उस की आन्तरिकता हमारे सामने अधिक स्पष्ट है। उदाहरण के लिए पिछली कहानियाँ जैसे, 'नमक का दरोगा', और सरदार साहब के आचरण मूलत उनको नोकरी से सम्बन्धित है, लेकिन यहाँ 'लाल फीता', 'ईश्वरी न्याय', और 'बैक का दिवाला', आदि कहानियो मे क्रमश. हरिविलास, सत्यनारायण, लाला साईदास, आदि के आचरण मूलत उन के चरित्रो से सम्बन्धित है, उन की नौकरी से नही। नौकरी तो बस प्रयोजन मात्र है। 'आत्माराम', मे नायक सुनार है, उसका पेशा आभूषण बनाना है, लेकिन इस पेशे से उस के तोते तथा चोरो से धन पाने का सबंध बिल्कुल नही है। आत्माराम् किसी भी पेशे का व्यक्ति हो सकता था, अतएव यहाँ पुरुष चरित्र अपने मूर्त रूप मे व्यक्तित्व और निजत्व प्रधान हो गए है। अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ और अपनी यथार्थतम समस्याओ को लिए हुए हमारे सामने आये है। लेकिन यहाँ अब भी मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग के चरित्र अपनी पिछली मर्यादा, अधविश्वास और लोकमत के झूठे सम्मान से प्रेरित है। वे अपने मे, अपनी समस्याओ मे दफ्तरी, भाई-भाई, बौडम, मैकू आदि के रूपो मे अवश्य लड रहे है लेकिन उन मे निश्चित रूप से वर्ग सघर्ष की चेतना उभर चुकी है।

आचरण की अपेक्षा चरित्र-चित्रण की ओर

यहाँ जब हम स्त्री-पुरुष के व्यापक चरित्र की दिशा मे अध्ययन करने लगते हैं, तब हमे यहाँ जो वस्तु सब से अधिक प्रभावित करती है, वह है—

यहाँ के पात्रो का चरित्र और उन के व्यक्तित्व का निखरा हुआ स्वरूप। यह चरित्र-विश्लेषण अथवा व्यक्तित्व प्रतिष्ठा आचरण के धरातल से ही नहीं हुआ है, बल्कि इन की आधारशिला है—व्यक्ति, व्यक्ति की दुर्बलताएँ और व्यक्ति की आन्तरिकता। 'शतरज के खिलाडी' मे कही भी हमे मीर साहब और मिर्जा साहब का कोई भी आचरण नही मिलता, वरन् वे कितने सच्चे है, कितने यथार्थ मानव है, वे आचरण इसी के सबूत में आए हैं। यहाँ आचरण चरित्र-विश्लेषण और व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के साधन मात्र है साध्य नही। 'शतरज के खिलाडी' मे मीर साहब और मिर्जा साहब की खेल की लत उस का नशा उन के दिल-दिमाग मे इतनी गहराई से पैठा हुआ है कि वे दोनो इस के लिए संसार की सब मान्यताओ, सुखो, मर्यादाओ की बलि कर देते है और मस्जिद के खडहरों मे छिपे हुए शतरज खेलते है, सन के सामने से शहर मे अग्रेज प्रवेश करते है और उन के बादशाह को बन्दी बनाकर ले जाते है लेकिन खेल के आगे उन पर जूँ तक नही रेगती है। आगे, अगर वे तलवार भी निकालते है, तो अपने शतरंज के ऊपर और अगर मरते है तो भी अपने खेल की ही शान पर। अर्थात् यहाँ आकर हमे चरित्र साफ मिलने लगते हैं, उन पर झूठी मर्यादा, आदर्श का झीना परदा फटने लगा है और स्त्री-पुरुप दोनो चरित्र, बूढी काकी, सुभागी, कैलाश, बौडम, दफ्तरी आत्माराम, मीर साहब, मैकू, आदि चरित्रो मे बहुत स्पष्ट हो गई हैं। यहाँ उन के द्वन्द्व-संघर्ष और उन की समस्त अच्छाइयाँ-बुराइयाँ हमारे सामने आ जाती हैं।

हम यहाँ उन के कृत्यो की ओर से अधिक उन के मनोभावो की ओर गए हैं। 'बूढ़ी काकी', मे हमे बूढी काकी का कोई कृत्य कोई क्रिया-कलाप उतना नही याद रहता बल्कि हमे स्पष्ट रूप से बूढी काकी के वे स्वाभाविक-मनोवैज्ञानिक इच्छा और भूक के भाव चित्रण और उनकी व्यंजनायें सदा स्मरण रहती है। यहाँ वह अकेले अपने कमरे मे सोचती फिरती है—"अब लाल-लाल, फूली-फूली नरम पूडियाँ होगी। रूपा ने भलीभाँति मोयन दिया होगा। कचौरियो मे अजवाइन और इलायची की महक आ रही होगी। एक पूरी मिलती तो जरा हाथ मे लेकर देखती। क्यो न चलकर कडाह के पास सामने ही न बैठूँ। पूडियाँ छन-छन कर तैरती होगी। कडाह से गरम-गरम निकाल कर थाल मे रक्खी जाती होगी।"[१]

एक स्थान पर पात्र यहाँ अपनी खामोशी मे आए हैं और बिना कुछ बोले, कुछ क्रिया-कलाप किए लौट गए है। लेकिन वे अपने मनोभावो का

---

[१] प्रेम पचीसी: बूढ़ी काकी पृष्ठ १३३

पूरा नकशा हमे दे गए है—"दफ्तरी ने सलाम किया और उलटे पॉव लौटा। उसके चेहरे पर ऐसी दीनता और बेकसी छायी हुई थी कि मुझे उस पर दया आ गयी। उसका इस भॉति बिना कुछ कहे-सुने लौटना कितना सार पूर्ण था इसमें लज्जा थी, सतोष था, पछतावा था, उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला लेकिन उसका चेहरा कह रहा था, मुझे विश्वास है कि आप यही उत्तर देगे, इसमे मुझे जरा भी सन्देह न था।"[1]

इस काल की कई कहानियो मे स्त्री और पुरुष चुपचाप बैठे हुए स्वयं अपने-अपने मन भावो का विश्लेषण हमे दे जाते है। 'ब्रह्म का स्वॉग' मे स्त्री अपने मनोभाव स्पष्ट करती है "सुपात्र ब्राह्मण की कन्या हूँ जिसकी व्यवस्था बड़े-बडे गहन धार्मिक विषयो पर सर्वमान्य समझी जाती है। अब मुझे धैर्य नहीं है। आज मैं इस अवस्था का अन्त कर देना चाहती हूँ। मैं इस आसुरिक भ्रष्ट जाल से निकल जाऊँगी मैंने अपने पिता की शरण जाने का निश्चय कर लिया"।[2] पुरुष दूसरी ओर अपना सच्चा मनोभाव स्पष्ट करता है "मैं भी राष्ट्रीय ऐक्य का अनुरागी हूँ। समस्त शिक्षित समुदाय राष्ट्रीय करण पर जान देता है। किन्तु कोई स्वप्न मे भी कल्पना नही करता कि हम मजदूरो या सेवावृत्ति धारियो को समता का स्थान देगे, हम उनमे शिक्षा का प्रचार करना चाहते हैं, उनको दीनावस्था से उठाना चाहते है, और इसका मर्म क्या है, यह दिल में सभी समझते है'।"[3]

अतः यहॉ आकर चरित्र की इस व्यावस्था मे चरित्र अवतारणा ने दो प्रभाव डाला है। यहाँ पात्रो की मानवीय पूर्णता प्रकट हो गयी है। क्योंकि 'बूढी काकी', 'आत्माराम', 'मुक्तिमार्ग', 'शतरज के खिलाडी' मे चरित्रो की सृष्टि उन के आन्तरिक और बाह्य दोनो जगत् के मिलन-बिन्दु के धरातल पर हुई है। इन चरित्रो मे इन के अलग-अलग निजत्व स्थापित हुए है, अतः इन चरित्रो मे हम अधिक सजीवता और मानवीय तत्व पाते है।

शैली

शैली के अन्तर्गत, इस के व्यापक पक्ष मे कहानी के ,तीन भाग आरम्भ विकास और चरम सीमा का रूप हमे यहाँ निश्चित और वैज्ञानिक ढंग से

---

[1]प्रेम पचीसी : दफ्तरी पृष्ठ १६३। [2] वही, ब्रह्म का स्वाँग, पृष्ठ ५८-५९
[3] वही, ब्रह्म का स्वाँग, पृष्ठ ६४

मिलने लगे हैं। इन के अलग-अलग अध्ययन मे यहाँ की कहानी की शिल्पविधि पूर्णतः स्पष्ट हो जायगी।

आरम्भ

विकास काल प्रेमचंद की कहानी कला का विस्तार काल है। यहाँ उन्होंने कहानियो मे विभिन्न प्रयोग किए है, फलतः कुछ कहानियो का आरम्भ पिछले खेवे की कहानियो की भाँति है और कुछ का नितान्त नवीन है। तथा कुछ पहले से विकसित होकर कलात्मक स्तर पर आई है। अतः विकास काल में प्रेमचद की कहानियो मे तीन प्रकार के आरम्भ मिलते हैं—

(क) पहले की भाँति, भूमिका सहित-पात्रो और परिस्थितियो के पूर्ण परिचय के साथ—जैसे, 'आत्माराम', 'लोकमत का सम्मान' और नैराश्य लीला' आदि।

(ख) भूमिका रहित पात्रो—परिस्थितियो के यथावश्यक परिचय के साथ—जैसे 'दफ्तरी', 'नागपूजा', 'शंखनाद', 'विध्वश', 'शतरंज के खिलाडी' आदि।

(ग) नितान्त, नवीन ढग के आरम्भ—सीधे एकाएक कहानी की समस्या के साथ कहानी के आरम्भ, बिना किसी प्रकार के परिचय के साथ—जैसे 'शान्ति', 'मैकू', 'बैर का अन्त' आदि।

पहले और दूसरी तरह के आरम्भ का अध्ययन हमने पिछले खेवे की कहानियो के आरम्भ के साथ किया है। तीसरे प्रकार का आरम्भ, विकास काल की नयी शैली है। इस के संबध मे प्रेमचद ने अपनी भूमिका मे सुन्दरता से एक व्याख्यात्मक भूमिका दी है। "आख्यायिका-साधारण जनता के लिए लिखी जाती है, जिसके पास न धन है न समय। यहाँ तो सरलता मे सरलता पैदा कीजिए, यही कमाल है। कहानी वह ध्रुपद की तान है जिसमे गायक महफिल शुरू होते ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दिखा देता है—एक क्षण मे चित्त को इतने माधुर्य से परिपूरित कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नही हो सकता।"[१]

तीसरे प्रकार के आरम्भ का यही आकर्षण है। कहानी आरम्भ होते ही एकाएक ध्रुपद की तान की भाति पाठको के हृदय पर स्थान पा जाती है। यही

---

[१] प्रेम प्रसून : भूमिका, पृष्ठ ४

शैली पूर्णत विकसित होकर आगे उत्कृष्टता पर पहुंची है। वस्तुतः कहानी-कला और शिल्पविधि के प्रकाश मे प्रेमचद की श्रेष्ट कहानियो का आरम्भ इसी कोटि मे होता है। जैसे 'मैकू', कहानी का आरम्भ "कादिर और मैकू ताडीखाने के सामने पहुचे तो वहाँ कॉग्रेस के वालण्टियर भडा लिए खडे नजर आए। दरवाजे के इधर-उधर हजारो दर्शक खडे थे। शाम का वक्त था इस वक्त गली मे पियक्कडो के सिवा और कोई न था।" इसी तरह 'शान्ति' का आरम्भ—"जब मै ससुराल आई तो बिल्कुल फूहड थी। न पहनने-ओढने का सऊर, न बातचीत करने का ढग, सिर उठाकर किसी से बातचीत भी न कर सकती थी आँखे अपने आप झपक जाती थी।"[१]

परन्तु विकास काल की अधिकाश कहानियो का आरम्भ, दूसरे ही ढग पर है—भूमिका रहित पात्रो—परिस्थितियो के यथावश्यक परिचय के साथ। आरम्भ की यह कोई नवीन शैली नही है, फिर भी पिछले खेवे की कहानियो के ऐसे आरम्भो मे और यहाँ के ऐसे आरम्भो मे अन्तर है। अन्तर केवल कलात्मक सघठन और प्रवाह का है, सामग्री और विषय का नही।

आरम्भ भाग मे ही कहानी के सभी तत्वो का यथासम्भव समावेश करने की भी शैली यहाँ पीछे छूट गयी है। कहानियाँ आरम्भ भाग से ही सपाट न होकर नुकीली होती गयी है और उन मे शिल्पविधिगत कुशलता आ गयी है।

विकास

आरम्भिक कहानियो के विकास के अध्ययन मे हमने देखा है कि प्रेमचंद ने अपनी कहानियो के विकास मे चार अवस्था-क्रम रखा था—घटना की तैयारी, उत्तेजक घटना, व्याख्या और घात-प्रतिघात।

इस काल की भी कहानियो मे प्रेमचद ने उन के विकास मे उपर्युक्त अवस्था-क्रमो का रखा है, 'आत्माराम', उस का स्पष्ट उदाहरण है। लेकिन इस काल के कहानियो के विकास मे उन्होंने और भी कलात्मक प्रयोग किया है, तथा विकास के इन नवीन अवस्था-क्रमो पर आधारित कहानियाँ इस काल की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। यह नवीन और विकसित अवस्था-क्रम निम्नलिखित हैं—

(क) समस्या प्रवेश की तैयारी
(ख) समस्या प्रवेश और द्वन्द्व का जन्म
(ग) द्वन्द्व—उत्तेजना

[१] प्रेम चतुर्थी : शान्ति, पृष्ठ ८०

विकास के इन अवस्था-क्रमो मे कहानी कला का संगुफन और सगठन आ गया है। यहाँ न भूमिका क्रम का स्थान है न व्याख्या का। कहानी मे घटना के स्थान पर समस्या और मनोभाव आ गया है। व्याख्या और भूमिका की जिम्मेदारी पाठको के ऊपर छोड दी गयी है। इन अवस्था-क्रमो को हम 'शतरंज के खिलाडी', 'मैकू', 'विध्वश' आदि किसी भी कहानी मे देख सकते है। उदाहरणार्थ हम 'शतरज के खिलाडी' कहानी की रचना प्रक्रिया को लेते है।

(क) समस्या की तैयारी—"सभी की आँखो मे विलासिता का मद छाया हुआ था। ससार मे क्या हो रहा है, इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड रहे है। तीतरो की लडाई के लिए पाली बदी जा रही है। कही चौसर बिछी है, पौ-बारह का शोर हुआ है। कही शतरज का घोर सग्राम छिडा हुआ है। राज से लेकर रंक तक इसी धुन मे मस्त थे। यहाँ तक कि फकीरो को भी पैसे मिलती तो वे रोटियाँ न लेकर अफीम खाते या मदक पीते। शतरंज, ताश, गंजीफा खेलने से बुद्धि तीव्र होती विचारशक्ति का विश्वास होता है, पेचीदा मसलो को सुलझाने की आदत पडती है। ये दलीले जोरो के साथ पेश की जाती थी। इसीलिए मिर्जा सज्जादअली और मीर रौशन अली अपना अधिकाश समय बुद्धि तीव्र करने मे व्यतीत करते थे, सो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी ? दोनो के पास मौरूसी जागीरे थी जीविका की कोई चिन्ता न थी, घर मे बैठे चखौनियाँ करते थे। आखिर और करते ही क्या ?"[१]

(ख) समस्या प्रवेश और द्वन्द्व का जन्म—"प्रात.काल दोनो मित्र (मिर्जा-मीर) नाश्ता करके आसन बिछाकर बैठ जाते, और लडाने के दाव-पेंच होने लगते। इधर राज्य मे हाहाकार मचा था। प्रजा दिन-दहाडे लूटी जाती थी। कोई फरियाद सुनने वाला न था। एक दिन दोनो मित्र बैठे हुए शतरज की दलदल मे गोते खा रहे थे कि इतने मे घोडे पर सवार एक बादशाही फौजी मीर साहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीर साहब के होश उड गए। यह क्या बला सिर पर आई। यह तलबी किसलिए हुई है। अब खैरियत नजर नही आई। घर के दरवाजे बन्द कर लिए। नौकरो से बोले—कह दो घर मे नही है।"[२]

(ग) द्वन्द्व उत्तेजना—"बादशाह को लिए हुए सेना सामने से निकल

---

[१] **मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी, पृ० २५५।**

[२] **मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी, पृ० २५५, २५६, २६०**

गयी। उनके जाते ही मिरजा ने फिर बाजी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा—आइए नवाब साहब के मातम मे हम मर्सियाँ कह डाले। लेकिन मिर्जा की राज्यभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे। खेल होने लगी। झुँझलाहट बढ़ती गयी। तकरार बढ़ने लगी। दोनो अपनी-अपनी टेक पर अडे थे। न यह दबता था न वह। अप्रासगिक बाते होने लगी। मिरजा बोले—किसी ने खान्दान मे शतरंज खेली होती, तब तो इसके कायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किये। आप शतरंज क्या खेलियेगा। रियासत और ही चीज है। जागीर मिल जाने से ही कोई रईस नही हो जाता। मीर—जबान सभालिए, वरना बुरा होगा। मै ऐसी बाते सुनने का आदी नही हूँ यहाँ तो किसी ने आँखे दिखायी तो उसकी आँखे निकाली। है हौसला। मिर्जा—आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर, आइए आज दो-दो हाथ हो जाय, इधर या उधर। मीर—तो यहाँ तुमसे दबने वाला कौन है ?"[1]

चरम सीमा

प्रारम्भिक कहानियो मे हमे इस सम्बन्ध मे दो क्रम मिले थे, चरम सीमा और उपसहार। चरम सीमा की दिशा मे यह क्रम यहाँ भी मिलता है लेकिन यहाँ कलात्मक अंतर हो गया है। पहले चरम सीमा के लम्बा-सा, कम से कम एक पृष्ठ का उपसहार जुडा रहता था या अन्त मे कोई उपदेशात्मक अवतरण या कहानी शीर्षक को चरितार्थ करने वाले दो तीन वाक्य जुड़े रहते थे। लेकिन यहाँ चरम सीमा मे कलात्मक विकास हुआ है। उपसहार को पुरानी प्रथा प्रायः यहाँ खत्म-सी हो गई है, वैसे प्रेमचद ने यहाँ भी चरम सीमा के बाद हमेशा दो-तीन वाक्य जोड़ा है, अधिक नही। उदाहरणार्थ—'शतरज के खिलाडी' की चरम सीमा है। दोनो दोस्तो ने कमर से तलवार निकाल ली। नवाबी जमाना था। दोनो विलासी थे, पर कायर न थे। दोनो ने पैतरे बदले। तलवारे चमकी छपछप की आवाजे आई। दोनो जख्म खाकर गिरे और दोनो ने वही तडप-कर जाने दे दी। अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखो से एक बूँद भी आँसू न निकला, उन्ही दोनो प्राणियो मे शतरंज के वजीर की रक्षा मे प्राण दे दिए"।[2]

---

[1] **मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी पृ० २६३, २६४, २६५**

[2] **वही**

उपसहार के नाम पर—"चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था। खडहर की टूटी हुई महराबे, गिरी हुई दीवारे और धूल धूसरित दीवारे इन लाशो को देखती और सिर धुनती।"[१]

वस्तुतः ये पक्तियाँ चरम सीमा की नोक को और नुकीली और तेज करती हैं। ये उपसहार की पक्तियाँ नही है, क्योकि पिछली कहानी के उपसहार की तरह न कोई उपदेश है, न कोई आदर्श समर्थन, न कहानी शीर्षक को चरितार्थ करने की चेष्टा ही है।

हमने विकास काल को प्रेमचद की कहानियो का प्रयोग काल माना है। यहाँ उन्होने अनेक ढंग से कहानियो को लिखी है, जिन मे कुछ विशिष्ट कहानी शैलियाँ स्पष्ट हो गई है, जैसे—

(क) आत्मकथात्मक शैली की कहानी—जैसे 'यह मेरी मातृ भूमि है' 'हार की जीत', 'बौडम', 'शाप',
(ख) आत्मविश्लेषणात्मक शैली की कहानी—जैसे, 'ब्रह्म का स्वाँग'।
(ग) भाषण शैली की कहानी—जैसे, 'आभूषण'
(घ) नाटकीय शैली की कहानी—जैसे, 'दुराशा'।
(ङ) रूपकात्मक शैली की कहानी—जैसे 'ज्वाला', 'सेवापथ' आदि।
(च) लघुकथात्मक शैली—जैसे 'बौडम', 'विध्वश', 'मुक्ति का मार्ग'।
(छ) कथोपकथानात्मक शैली—विलक्षण आरम्भ वाली कहानियाँ—जैसे, 'धर्म सकट'।

इन समस्त कहानी शैलियो मे प्रेमचद को सफलता मिली है और ये कहानियाँ शैली की दृष्टि से प्रेमचद की उत्तम कहानियाँ सिद्ध हुई है।

शैली का सामान्य पक्ष

देश-काल-परिस्थिति-चित्रण मे यहाँ पहले की अपेक्षा शैली मे अधिक व्यंजना अधिक प्रभाविष्णुता और अधिक गम्भीरता आ गयी है। इन के चित्रणो मे जहाँ एक ओर समूची परिस्थिति की सारी तस्वीरे मिलती है वहाँ व्यग के माध्यम से हमे एक चुनौती भी मिलती है। यहाँ इन चित्रणो मे कल्पना के साथ-साथ वस्तुस्थिति मे अधिक पैठ हुई है। फलतः देश-काल-परिस्थिति के

---

[१] मानसरोवर : भाग ३ शतरंज के खिलाड़ी, पृ० ३६५

चित्रण मे प्रेमचंद का स्थूलता से सूक्ष्मता और गहराई की ओर जाने का प्रयत्न है। 'शतरज के खिलाडी' मे देश-काल-परिस्थिति तीनो का चित्रण एक ही साथ अपनी समस्त विशेषताओ के साथ हुआ है। वाजिदअली शाह का समय था लखनऊ विलासिता के रग मे डूबा हुआ था। छोटे बडे अमीर गरीब सभी विलासिता मे डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था जीवन के प्रत्येक विभाग मे आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन विभाग मे, साहित्य क्षेत्र मे, सामाजिक व्यावस्था मे, कला कौशल मे, उद्योग धधो मे आहार व्यवहार मे सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राज्य कमचारी विषय-वासना मे कविगण प्रेम और विरह के वर्णन मे कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने मे व्यवसायी सुरमे, इत्र, मीसी और उपटन का रोजगार करने मे लिप्त थे।"[१]

प्राकृतिक शोभा और दृश्य वर्णनो मे यहा पूर्णरूप से चित्रात्मकता आ गयी है। कल्पना और निरीक्षण प्रवृत्ति के संयोग से इन तत्वो के वर्णन मे अधिक सजीवता और गहराई का समावेश हुआ है।

कथोपकथन

आरम्भिक काल की ही कहानियो मे साधारण, मध्यम और उत्तम ढंग के कथोपकथन मिलने लगे है यहाँ उन तीनो प्रकार के कथोपकथनो मे अधिक तेजी, अधिक बुद्धिमत्ता, अधिक हाजिर जवाबी आ गयी है। साथ ही उसमे चोट करने व्यंग वाण चलाने की क्षमता आ गई है। 'शतरंज के खिलाडी' मे तीखे कथोपकथन करते-करते ही दोनो बहादुर खिलाडी आपस मे लड जाते है।

"मिरजा बोले—किसी ने खानदान मे शतरंज खेली होती तो इसके कायदे जानते वे तो हमेशा घास छीला किए, आप शतरंज क्या खेलिएगा।

मीर—क्या ? घास आपके अब्बाजन छीलते होगे। यहा पीढ़ियो से शतरंज खेलते चले आ रहे है।

मिरजा—अजी जाइए भी। गाजीउद्दीन हैदर के यहाँ बाबरची का काम करते करते उम्र गुजर गई। आज रईस बनने चले हो। रईस बनना कोई दिल्लगी नही है।

---

[१] **मानसरोवर : भाग ३ शतरंज के खिलाड़ी, पृ० २५५**

मीर—क्यो अपने बुजुर्गो के मुँह मे कालिख लगाते हो।

मिरजा—अरे चल चरकटे, बहुत बढ बढ कर बाते मत कर।

मीर—जबान सँभालिए वरना बुरा होगा। मैं ऐसी बाते सुनने का आदी नही हूँ। यहाँ तो किसी ने आखे दिखाई कि उसकी आँखे निकली। है हौसला ?

मिरजा—आप मेरा हौसला देखना चाहते है ? तो फिर आइये आज दो-दो हाथ हो जाँय। इधर या उधर।

मीर—तो यहाँ तुमसे दबने वाला कौन है।"[१]

लक्ष्य और अनुभूति

विकास काल की कहानियो के लक्ष्य विन्दु को बताते हुए प्रेमचंद ने स्वय 'प्रेमप्रसून' की भूमिका मे कहा है—"हमने इन कहानियो मे आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है। हम कहाँ तक सफल हुए है इसका निर्णय पाठक ही कर सकते है।[२]

पिछली कहानियो का लक्ष्य-विन्दु नि स्सन्देह आदर्श की प्रतिष्ठा थी। क्या कुटुम्ब, क्या व्यक्ति और क्या नौकरी पेशा से प्राय: सर्वत्र कहानियाँ मर्यादावाद और आदर्शवाद के लक्ष्य से लिखी गई थी। यहाँ आकर कहानियो का लक्ष्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद हो गया है। लेकिन इस काल मे कुछ ऐसी कहानियाँ अवश्य मिलने लगती हैं जिन की आधारशिला प्रारभ से अत तक यथार्थ है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद लक्ष्य की भी कहानियो का धरातल पूर्ण यथार्थ है लेकिन उन मे कहानीकार ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ढङ्ग से कहानी के अत को आदर्श पर स्थिर किया है, जैसे, 'ईश्वरी न्याय', 'महातीर्थ' 'धर्म सकट', 'बौडम', 'वैर का अत', 'सुहाग की साडी', 'मूट', 'लालफीता', 'आत्माराम' आदि कहानियाँ। इन समस्त कहानियो की भाव-शिला पूर्णत: यथार्थ और मनोवैज्ञानिक सत्य पर अधारित है, लेकिन इन सब का अत किसी न किसी तरह आदर्श पर टिकाया गया है। मनोवैज्ञानिक सत्य के अत पर नही। 'सुहाग की साडी' मे रतनसिंह एक विशुद्ध कांग्रेसी है। वे सैद्धान्तिक दृष्टि से विदेशी वस्त्रो के विरोधी है। गौरा उन की पत्नी साधारण ढग की स्त्री है जो अपना सब विदेशी वस्त्र पति के मागने पर जलाने के लिए दे देती है लेकिन अपनी सुहाग की

---

[१] मानसरोवर . भाग तीसरा शतरंज के खिलाड़ी, पृष्ठ २६५

[२] प्रेम प्रसून : भूमिका, पृष्ठ ६

साडी को छिपा लेती है। गौरा का यह निर्णय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है। इस के पीछे नारीत्व और पत्नीत्व दोनो की प्रेरणा है। लेकिन इस कहानी की इस सवेदना का अत इस पर होता है कि अत मे गौरा आदर्श मे आकर अपनी सुहाग की साडी को भी जलाने को दे देती है।'ईश्वरी न्याय' मे मुंशी सत्यनाराण आदि से अत तक भानुकुंवरि के साथ बेइमानी करते है, उसे बर्बाद करते की सब चाले चली है लेकिन अत मे वे पूर्ण आदर्शवादी और सच्चे निकलते है। इस के पीछे कहानीकार किसी तरह का मनोवैज्ञानिक समर्थन वा चारित्रिक कारण नही दिखाता, बल्कि सपूर्ण कहानी एकाएक आदर्श पर टिक जाती है

इस काल की कुछ कहानियो का धरातल केवल मनोवैज्ञानिक अनुभूति है। कहानीकार ने जैसा ससार मे देखा और जैसा देख रहा है। 'बूढी काकी', 'शतरंज के खिलाडी', 'विध्वंस', 'नैराश्य लीला', 'वज्रपात', 'शाति', 'दफ्तरी', आदि इन समस्त कहानियो की प्रेरणा और भावभूमि मे कहानिकार की अनुभूतियाॅ स्पष्ट है। ये कहानियाॅ पूर्ण मनोवैज्ञानिक सत्य और यथार्थ पर टिकी है और विकास काल की ये कहानियाॅ शिल्पिविधि की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियाॅ है।

निष्कर्ष रूप मे, विकास काल की कहानियाॅ अपने स्वाभाविक रूप मे पहले से बहुत आगे बढ़ आई है। यह विकास आचरण की प्रधानता से चरित्र की प्रधानता की ओर है और चरित्र के भी अतर्गत हमे यहाॅ पात्रो के आन्तरिक जगत् का दर्शन होता है। यहाॅ कई कहानियो मे मनोभावो की झाकियाॅ और मानसिक द्वन्द्व देखने को मिला है। प्रारभिक कहानियो का धरातल प्रायः नैतिक था, वहाँ आकर कहानियो का धरातल आर्थिक ओर मनोवैज्ञानिक हो गया है। यहाँ प्रेमचद का दृष्टिकोण भाव-जगत् की दिशा मे बहुत विस्तृत मिलने लगा है। उन्होने मनुष्य को लेकर उसके लिए अपनी कहानियो मे सामाजिक, राजनीतिक वैयक्तिक मोरचा खडा किया है और उन्होने मानव-कल्याण का सच्चा स्वप्न देखा है।

यहाँ शिल्पविधि की सफलता के फलस्वरूप, कुछ कहानियो मे रस-परिपाक अपूर्व ढंग से हुआ है। 'बूढ़ी काकी', 'शतरंज के खिलाडी', 'मुक्तिमार्ग', ये सब कहानियाँ प्रेमचद की कहानी कला के विकास-क्रम की सुन्दर सीढ़ियाॅ हैं। यहाँ की कहानियो मे कही-कही सविधानात्मक सफलता और शिल्पविधि का सौन्दर्य अपनी उत्कृष्टता पर है। कहानियो मे कथानक को केवल पृष्ठभूमि या साधनमात्र बनाने की सफल चेष्टा हुई है। चरित्र, मनोभाव, कला की

कही-कही सफल संयोजना हुई है। अधिकाश कहानियो मे केद्र का तीखापन, लक्ष्य की प्रभविष्णुता और शैली का आकर्षण अपूर्व है।

विकास काल मे प्रेमचंद ने कहानी की विभिन्न शैलियो मे बहुत प्रयोग किया है। रूपकात्मक शैली की कहानी केवल इसी काल मे लिखी गई है, आगे फिर कभी नही। इस तरह से प्रेमचद की कहानियो का यह काल उनकी कहानी शिल्पविधि का सक्राति काल है, जहाँ वे एक ओर उत्कृष्टता पर पहुँच गये है और दूसरी ओर केवल प्रयोग के संधि-बिंदु पर खडे मिलते है।

उत्कर्ष काल

इस काल मे आकर प्रेमचद ने अपनी कहानियो के सबंध मे यह दृष्टिकोण बनाया कि "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ, स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती हैं। उस मे कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियो की मात्रा अधिक रहती है, बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरजित होकर कहानी बन जाती हैं। मगर यह समझना भूल होगी कि कहानी जीवन का यथार्थ चित्र है। यथार्थ जीवन का चित्र मनुष्य स्वय हो सकता है, परन्तु कहानी के पात्रो के सुख-दुख से हम जितना प्रभावित होते है उतना यथार्थ जीवन से नही होते, जब तक यह निजत्व की परिधि मे न आ जाय। अगर हम यथार्थ को हूबहू खीचकर रख दे, तो उसमे कला कहाँ है। कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नही है। कला दीखती तो यथार्थ है, पर यथार्थ होती नही। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो।"[१]

वस्तुत शिल्पविधि की दृष्टि से प्रेमचद की कहानियो का विकास काल उन की कला का प्रयोगकाल था, फलत. उस काल मे शिल्पविधि का जो प्रदर्शन हुआ है, वह इस काल मे नही। इस काल से प्रेमचंद की कहानियो की शिल्पविधि निश्चित हो गई। उन की कला रेखाएँ सजीव होकर स्वयं बोलने लगी और उन मे कहानी का यथार्थ धरातल तथा मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ उभर आई। यहाँ प्रेमचद कहानी की आत्मा की ओर अधिक झुके, शिल्पविधि की ओर कम। विकास काल मे वे जागरूक-चेतन शिल्पी थे, इस काल मे वे जागरूक और चेतन मानव द्रष्टा है। जीवन के गहन विश्लेषणो के महापडित

---

[१] मानसरोवर : प्रथम भाग भूमिका, पृष्ठ २-३

हैं। उन का शिल्पी व्यक्तित्व उन के अवचेतन जगत् मे छिपकर सजीव रेखाओ से कहानी-कला को सँवारता जाता है। उन का चेतन मन उन रेखाओ मे जीवन दर्शन, जीवन के विभिन्न प्रसगो की अवतारणा करता चला है। जो मनोविज्ञान जो मानव दर्शन, जैसी रेखाओ मे बँधने लायक है, उस के लिए प्रेमचद ने वैसी ही शिल्पविधि का प्रयोग किया है। अतएव उन के पिछले दोनो शिल्पी-व्यक्तित्व का यहाँ चरम उत्कर्ष हुआ है।

कथानक

यहाँ प्राय तीन धरातलो से कथानक का निर्माण हुआ है—

(क) किसी व्यक्ति या समस्या के केवल एक पक्ष को धरातल मानकर, कथानक का निर्माण करना जैसे—'कुसुम', 'गुल्लीडडा', 'घासवाली', 'मिस पद्मा' आदि। इन धरातल पर खडी हुई कहानियाँ प्राय मध्यम श्रेणी की है तथा इन मे सवेदना की इकाई और कथानक की एकसूत्रता अपूर्व हैं।

(ख) किसी व्यक्ति के जीवन के लम्बे भाग को लेकर उस पर कहानी की सृष्टि करना, जैसे—'दो कब्रे', 'अलग्योझा', 'नया विवाह' आदि।

(ग) मनोविज्ञान की अनुभूति के धरातल पर खडी कहानियाँ, जैसे—'कफन', 'मनोवृत्ति', 'पूस की रात', 'नशा' और 'जादू' आदि। ऐसी कहानियो के कथानक बहुत छोटे और अपने मे अत्यन्त गठित हैं—जैसे कोई मनोवैज्ञानिक विन्दु ही कहानी भर मे, कथानक के नाम पर सूक्ष्म रेखा बन गयी हो।

प्रेमचद की प्रारम्भिक कहानियो के लम्बे कथानक की भाँति यहाँ हम लम्बे कथानक पाते है, विकास काल के मध्यम श्रेणी के कथानको की भाँति यहाँ हम मध्यम श्रेणी के कथानक पाते है, लेकिन कलात्मक दृष्टि से इन दोनो प्रकार के कथानको का यहाँ चरम उत्कर्ष हुआ है। कथानको को एक सरलता, सवेदना की सफल इकाई तथा कथानक के साथ आने वाले समस्त सकेतो के सामूहिक प्रभाव ने कहानी की आत्मा को उत्कृष्टता पर पहुँचा दिया।

आरम्भिक कहानियो मे जीवन के लम्बे भाग को लेकर जो कथानक तैयार किये जाते थे, उन मे इतिवृत्तात्मकता के साथ ही साथ भूमिका और उपसहार की प्रवृत्ति थी। वह इतिवृत्तात्मकता नष्ट होकर प्रासगिकता और एक-सूत्रता मे बदल गयी। उत्कर्ष काल मे आकर जीवन स्वयं अपने विभिन्न प्रसगो मे कथानक बन गया। ये कथानक लम्बे इस कारण से हुए कि प्रतिपाद्य जीवन-दर्शन, जीवन के प्रसंगो को बिना दूर तक लिए हुए चरितार्थ नही होता था।

अतः यहाँ कहानी की दृष्टि मे लम्बे कथानको का कोई महत्व नही रह गया। और इन लम्बे कथानको की यहाँ मुख्य विशेषताएँ इन मे थी कि उस में अब कई रसो, कई चरित्रो और कई घटनाओ के लिए कोई स्थान नही रहा। वह अब एक प्रसग का, आत्मा की एक झलक का सजीव स्पर्श चित्रण रह गया तथा कथानक इन विशेषताओ के साधन मात्र रह गए, साध्य नही। इन कथानको का महत्व केवल पात्रों के मनोभावो और प्रतिपाद्य जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति में है तथा कथानक मे गुथी हुई घटनाओ का भी अपना कोई स्वतंत्र महत्व नही रह गया है।

यहाँ आकर प्रेमचद ने साफ शब्दो मे कहा है, अब हम कहानी का मूल्य उस के घटना-विन्यास से नही लगाते। हम चाहते हैं कि पात्रो की मनोगति स्वयं घटनाओ की सृष्टि करे। 'अलग्योझा' मे पन्ना और रग्घू के जीवन के प्रायः तेरह वर्षो के लम्बे भाग पर कथानक फैला हुआ है। इस कथानक का विस्तार इतने मोडो से है: रग्घू और उस की विमाता पन्ना मे स्वाभाविक द्वेष है, और यह द्वेष पन्ना की ओर से है। आठ वर्ष बाद पन्ना विधवा होती है और रग्घू अपने ऊँचे चरित्र के आग्रह से पन्ना और उस के बच्चो को अपना समझ लेता है। इस तरह दोनो फिर से प्यार-स्नेह मे बँध जाते है। इस के बाद ही रग्घू की शादी होती है तथा उस की पत्नी मुलिया आती है और यह पन्ना से ईर्ष्या करने लगती है। इस के फलस्वरूप एक दिन पन्ना इन से अलग हो जाती है। उस की पीड़ा और प्रतिक्रिया से रग्घू बीमारी के बाद ही मर जाता है और अन्त मे विधवा पन्ना विधवा मुलिया एक मे मिल जाती है। वस्तुतः इस लम्बे कथानक के पीछे एक निश्चित जीवन-दर्शन की प्रेरणा है। यह कथानक इस बात को दिखाने और सिद्ध करने के लिए इतना लम्बा खीचा गया है कि यह चरितार्थ करके दिखा दिया जा सके कि अलग्योझा स्वार्थ पर आधारित रहता है। जहाँ यह नही है, आपस मे त्याग और प्रेम की भावना है वहाँ परिवार टूट कर भी बार-बार मिलते रहते है। इस कथानक के विस्तार मे घटने वाली घटनाएँ जैसे—भोला महतो का मर जाना, रग्घू का लडाकू मुलिया से विवाह होना, रग्घू और पन्ना मे अलग्योझा होना, इस के परिताप और शोक से रग्घू का मर जाना आदि घटनाओ का अपना कोई स्वतत्र मूल्य नही है वरन् इन का मूल्य इन के इस साध्य प्रदर्शन मे है कि मनुष्य परिस्थितियो का कितना बडा दास है। लेकिन वह परिस्थितियो से बहुत महान् भी है। अन्त मे इन लम्बे कथानको की एक विशेषता यह भी है कि इन की चरम सीमा प्रायः सदैव घटना से दूर हटकर मनोवैज्ञानिक उत्कर्ष पर प्रतिष्ठित होने लगी।

एक पक्ष और प्रसंग के कथानक

विकास काल की कितनी ही कहानियो का धरातल जीवन के एक पक्ष पर आधारित है, लेकिन प्राय उन के कथानको के निर्माण मे दो शैलियाँ आई है। कथानको का विकास प्राय. घटनाओ की पारस्परिक शृखला से हुआ है। उन की चरम सीमा पर तथा कहानी के प्रतिपाद्य विषय पर प्राय व्याख्या और उपसहार जोडे गए हैं—'दफ्तरी' और 'मैकू' कहानियाँ इस के उदाहरण है। यहाँ जीवन के एक पक्ष से निर्मित कथानको मे इन्ही दोनो दिशाओ ने कलात्मक विकास हुए है। यहाँ न तो कथानको का विकास घटनाओ के बीच से हुआ है, न कहानी के अन्त मे व्याख्या या उपसहार ही जोडे गए है। कथानक का आरम्भ एकाएक विद्युत गति से हुआ है और निश्चित एकसूत्रता के साथ स्वाभाविक ढग से चरम सीमा पर खत्म हो गया। इस की एकसूत्रता मे पूर्ण सफलता से एक तथ्यता आई है तथा इस एकतथ्यता ने उस मे प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है। उदाहरण स्वरूप—'मिस पद्मा' मे एक स्वतत्र युवती के जीवन का वैवाहिक पक्ष लिया गया है। इस के कथानक मे उपर्युक्त सारी विशेषताएँ स्पष्ट है। इस का आरम्भ वर्णन के चटपटे ढग से हुआ है। आरम्भ ही मे कथानक, कहानी की समस्या को अपनी गति मे लिए हुए और कहानी की संवेदना की सारी एक तथ्यता, कहानी की सारी तीव्रता, तीखे व्यग को लिए हुए चरम सीमा पर एकाएक समाप्त हो जाता है। यहाँ कहानी मे ऐसे कथानको का रूप ठीक उसी तरह है, जैसे, पत्थर की कसौटी पर जीवन के एक पक्ष प्रसग रूपी खरे सोने की एक लकीर, जो आरम्भ से अत तक सीधी है, निश्चित है, और उस मे अपनी सच्चाई के तत्व भी है।

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के कथानक

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के धरातल पर खडे हुए कथानक इस काल के उत्कृष्ट कथानक है। इन कथानको का मूल्य कथानको के प्रकाश मे बहुत ही कम है। यहाँ मनोभावो की रेखा ही स्वत. कहानी के रूप से निर्मित हो गयी है और मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही समूची कहानी की शिल्पविधि के पीछे तीव्र प्रेरणा बन गयी है। ऐसे कथानको का अब अपना कोई निजत्व नही है, फिर इन्हे अध्ययन की सीमा मे बाँधना बहुत कठिन है। 'कफन', 'मनोवृत्ति', 'नशा' और 'जादू' आदि कहानियो के कथानक अपने मे कुछ नही है। इन कथानको का पूरा धरातल क्रमशः इन कहानियो के चरित्रो के मनोभावो के ऊपर चला

गया है तथा इन कथानको मे कोई कथापन नही पकड में आता। ये कथानक कोई स्थूल कथानक नही है बस सूक्ष्मता से साधन मात्र हैं, या दूसरे शब्दो मे मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ ही कथानक-सी लगने लगती है।

उदाहरणार्थ, 'कफन' कहानी की मूल आत्मा यह है कि आधुनिक आर्थिक व्यवस्था मे सर्वहारा कितना पतित हो सकता है। यही आत्मा इस कहानी की मनोवैज्ञानिक अनुभूति है और यही अनूभूतियाँ कहानी भर मे रेखाओ के रूप मे फैली हुई है। 'मनोवृत्ति' मे ये रेखाएँ और भी सूक्ष्म और बारीक हैं, उदाहरण स्वरूप, 'मनोवृत्ति' मे एक सुन्दर युवती प्रात काल गाधी पार्क मे बिल्लौर के बेंच ऊपर गहरी नीद मे सोयी पडी है। उस पार्क मे सुबह विभिन्न प्रकार के पात्र घूमने आते हैं और सब पात्र अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुसार उस युवती के बारे मे सोचते जाते हैं। फलत यहाँ आकर कथानक निर्माण मे मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ प्रधान हो गयी है और इस सबध मे प्रेमचद जी का अपना विश्लेषण पूर्णत सही उतरा है। "गल्प का आधार अब घटना नही, मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नही बैठता। उसका उद्देश्य स्थूल सौंदर्य नही वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है, जिसमे सोदर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओ को स्पर्श कर सके।"[1]

कथानक-निर्माण के विशिष्ट ढग

विकास काल के प्रकाश मे प्रेमचद ने यहाँ आकर कथानक-निर्माण के कुछ और नये ढग प्रस्तुत किए है। ये ढग पिछले कालो की भाँति जागरूक होकर नही निकाले गए हैं, वरन् जब कहानीकार को मानव जीवन के बाह्य से उस के अन्तर्लोक मे जाना पडा और वहाँ से सवेदनाओ को ढूँढ़ना पडा, तब उसे कथानक निर्माण मे और भी कुछ सश्लिष्टात्मक ढर्रो को अपनाना पडा।

(क) कथानक सूत्र एक व्यक्ति के मनोभाव से प्रारम्भ होता है और विविध छोटी-छोटी घटनाओ के बीच से विकसित होता है और अत मे उस कथानक का अन्त भी उस के मनोभावो मे हो जाता, जैसे—'नशा'।

(ख) कहानी सूत्र का जन्म एक कारुणिक समस्या से होता है लेकिन उस का विकास उस समस्या के अन्त से होता हुआ चरित्रो के मनोवृत्ति के तादात्म्य से जीवन के एक भयानक व्यग पर समाप्त हो जाता है, जैसे, 'कफन'।

---

[1] **मानसरोवर : भाग प्रथम, भूमिका, पृष्ठ ६।**

(ग) कथानक का धरातल एक स्थूल व्यक्ति होता है लेकिन इस का विकास उस स्थूल व्यक्ति को देखने वाले विभिन्न पात्रो के हृदयो मे उन की मनोवृत्तियो के माध्यम से होता है। जैसे—'मनोवृत्ति'।

(घ) कथानक का मूल सूत्र बिलकुल परीक्षा मे छिपा रहता है। उस का परिचय अन्य दो व्यक्ति आपसी बातो मे दे देते है। फिर विभिन्न पात्रो के माध्यम से वह परीक्षा मूल सूत्र सामने आता है और अन्त मे उसकी परिसमाप्ति मूल सूत्र से संबधित पात्रो के मनोभावो मे होती है, जैसे, 'कुसुम'।

(ङ) कथानक का आरम्भ, विकास और अन्त दो व्यक्तियो के कथोपकथन से होता है। यह ढग नाटकीय ढग से भी आगे है क्योकि यहाँ घटना की न कोई व्याख्या है न घटना की अवतारणा, बस दो व्यक्तियो के कथोपकथनो मे उस की परिसमाप्ति हुई है जैसे, 'जादू'।

(च) कथानक का जन्म, विकास और अन्त तीनो पात्रो के माध्यम से होता है बीच मे कोई स्थूल पात्र नही आता, जैसे 'दो सखिया'।

(छ) कथानक का आरम्भ वर्णन से, समस्याओ का सूत्र पात्रो के प्रवेश से और विकास विभिन्न घटनाओ से चरितार्थ होता है तथा अन्त मुख्य चरित्र के मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर होता है। कथानक-निर्माण का यह ढंग जीवन के लम्बे भाग के आधार पर विकसित किए हुए कथानको के सबध मे हुआ है, जैमे, 'दो कब्रे', 'लैला', 'अलग्योझा', 'तीतर', 'नया विवाह', 'बेटो वाली बिधवा', 'गुल्ली डडा', 'शाति', 'ईदगाह', 'दिल की रानी' और 'नेउर', आदि।

चरित्र

विकास काल मे ही स्त्री-पुरुष दोनो का चरित्र अपने-अपने रूप मे निश्चित हो चुका था। दोनो स्पष्ट रूप मे अपनी निर्बलताओ और महानताओ के समय हमारे सामने आ गए थे। यहाँ आकर दोनो चरित्रो मे और भी कधिक विकास हुआ है। स्त्री चरित्र अपने दोनो रूपो मे आए है—अति आधुनिक भी और मर्यादावादी भी, लेकिन दोनो का धरातल पहले से भी यथार्थतम हो गया है। पुरुष चरित्र के सबध मे वह सत्य पूर्णतः चरितार्थ हुआ है।

स्त्री

विकास काल की कहानियाँ जैसे—'नैराश्य लीला', 'शखनाद' और 'शान्ति' मे स्त्री-चरित्र का नितान्त क्रान्तिकारी रूप सामने आया है। ये सब स्त्री-चरित्र

बिल्कुल सीधे और स्पष्ट है। इन मे स्त्री सुलभ चरित्र का लोच नही है। उत्कर्ष काल मे आकर स्त्री के दोनो रूप समान मिलते है। 'मिस पद्मा' मे स्त्री चरित्र अति आधुनिक दृष्टिकोण से आया है। स्त्रियाँ सश्लिष्टात्मक मनोभावो और चरित्रो की अधिक हो गयी है, लेकिन प्रेमचंद ने सर्वत्र उन का मनोविश्लेषण किया है। उन की वास्तविकता भी देखी है। मिस पद्मा एम० ए० एल० एल० बी० पास होकर स्वतत्र जीवन व्यतीत करती हुई वकालत कर रही हैं। इन मे रूप है, यौवन है और धन भी है। पद्मा को विकास से तो घृणा थी नही, घृणा थी पराधीनता से, विवाह को जीवन का व्यवसाय बनाने से, क्योकि इन के जीवन का दृष्टिकोण था कि भोग मे कोई नैतिक बाधा नही, इसे वह देह की एक मूक व्यथा समझती थी। यह व्यथा की किसी भी साफ-सुथरी दूकान से शान्त किया जा सकता है। यह तो हुआ मिस पद्मा के चरित्र का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण। लेकिन इस व्यक्तित्व की स्पष्टता और स्वाभाविकता इस मे है कि यह प्रसाद नामक एक युवक से अपनी सारी कमजोरियो के साथ लिप्त हो जाती है और इसे वहाँ अपने सारे सिद्धान्त, सारे कानून भूल जाते है, वह फिर स्त्री बनकर पुरुष से पराजित होती है। उस का बहुत बुरा परिणाम होता है फलत: यहाँ आधुनिक चरित्र भी अपने पूर्ण स्वाभाविक और यथार्थ रूप मे आया है।

दूसरी ओर 'कुसुम' मे कुसुम, एक अत्यन्त परम्परावादी, आदर्श पत्नी है, लेकिन उस का पति उस से घृणा करता है, और पति-उपेक्षिता कुसुम का दृष्टिकोण है—"मेरे देवता आप है, मेरे गुरु आप है, मेरे राजा आप है। मुझे अपने चरणो से न हटाइए, मुझे ठुकराइए नही। मै सेवा और फूल के लिए कर्तव्य और व्रत की भेट अचल मे सजाए आप की सेवा मे आयी हूँ।"[१] लेकिन जब पति अन्त तक उस की उपेक्षा ही करता है, तब इस स्त्री मे व्यावहारिकता का दूसरा दृष्टिकोण आता है, जो प्रतिक्रिया स्वरूप नितान्त स्वाभाविक और यथार्थ है। वह क्रोधित होकर कह डालती है, "ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा है। जो आदमी इतना स्वार्थी इतना दभी इतना नीच है उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा"।[२] इस तरह उत्कर्ष काल मे आकर प्रेमचंद के स्त्री चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक और अत्यन्त यथार्थ है, तथा मानव सुलभ तमाम चढाव-उतार, परिस्थितियो, मनोभावो से अनुप्राणित है। आरम्भिक काल

[१] **मानसरोवर भाग २, कुसुम, पृष्ठ १२**

[२] **मानसरोवर भाग २, कुसुम, पृष्ठ २४**

के स्त्री चरित्र जहाँ पूर्ण आदर्शवादी थे विकास काल मे वे ही एक पक्षीय हो जाते है। अर्थात् अगर वे क्रान्तिकारी है, तो अन्त तक क्रान्तिकारी हैं, प्रतिक्रिया-वादी या आदर्शवादी है, तो अन्त तक ये उसी रूप मे रहेगे। वे सीधे थे तने हुए, उनमे मानव सुलभ लोच कम था, लेकिन यहाँ स्त्री चरित्र, विशुद्ध स्त्री मनोभाव-मनोविज्ञान के प्रतिनिधि है।

पुरुष

चरित्र का यही पूरा चित्र पुरुष चरित्र पर भी चरितार्थ होता है। इन के चरित्र मे वही उत्कर्ष है। आरम्भ की कहानियो मे पुरुष चरित्र सपाट था, एकागी था, विकास काल मे वह यथार्थ की ओर झुका उस मे अपने आदर्श का मोह था, अत वह सच्चे रूप मे हमारे सामने नही आ सका। जैसे 'आत्माराम' आदि से लेकर विकास तक यथार्थ है, लेकिन अन्त मे वह आदर्शवादी के परदे मे छिप जाता है। इस चरित्र का विकास हमे 'शतरज के खिलाडी' के पुरुष मे अवश्य मिला। इन चरित्रो का बहुत कुछ भाग हमारे सामने अवश्य आया, लेकिन अन्त मे उन की ऐतिहासिक मर्यादा उन्हे हमारे जीवन से बहुत दूर भगा ले जाती हैं। 'मुक्ति-मार्ग' के भी पुरुष पात्र बहुत यथार्थ और हम से बहुत नजदीक थे लेकिन उन का भी अन्त आदर्शवाद के परदे मे होता है। वस्तुत. यहाँ प्रेमचद का दृष्टिकोण ही जिम्मेदार था, लेकिन उत्कर्ष काल मे वही पुरुष, वही निम्न वर्ग का सर्वहारा चरित्र 'कफन' मे आकर अपनी मृतक पतोहू और पत्नी के कफन के लिए चदे मे मिले हुए पैसो से शराब पी डालता है, मजे उडा डालता है, और अन्त मे अपने निम्नतम चरित्र के धरातल पर खडा होकर कहने लगता है—"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढकने का चिथडा भी न मिले, उसे मरने पर क्या, कफन चाहिए, कफन तो लाश के साथ जल ही जाता है।"[१]

पुरुष चरित्र की यह स्वाभाविकता, यह सच्चापन, प्राय: सब वर्गों के चरित्रो मे मिलता है, 'गुल्ली डडा' के इजीनियर मे भी, 'एक आच की कसर', के उच्चकोटि के नेता मे भी, 'पूस की रात' मे हलकू किसान और 'खुचड' के कुन्दन लाल मे भी। ये सब पुरुष पात्र अपने सच्चे मनोवैज्ञानिक रूप मे हमारे सामने उपस्थित हुए है, इन मे हम अपनापन पाते हैं। लगता है कि उत्कर्ष

[१] कफ़न और शेष रचनाएं, कफ़न पृष्ठ, १०

काल के ये पुरुष चरित्र हमारे व्यक्तित्व के दर्पण है। हम ही वे चरित्र है जो इस काल की कहानियो का प्रतिनिधित्व कर रहे है।

चरित्र चित्रण और मनोवैज्ञानिक अनुभूति

ऐसे समूचे चरित्र की अवतारणा के पीछे प्रेमचद की कला की केवल एक प्रेरणा कार्य कर रही है। उन्होने जहाँ अपने आरम्भिक काल की कहानियो मे व्यक्तित्व को अपेक्षा आचार को लिया था, वहाँ विकास काल को कहानियो मे आचरण की अपेक्षा चरित्रो को लिया तथा उन के मनोभावो की दुनिया मे प्रवेश किया था। वहाँ, उत्कर्ष काल मे आकर वे चरित्रो के स्थान पर उन की मनोवैज्ञानिक अनुभूतियो पर उतर आए। चरित्र विकास की दिशा मे प्रेमचंद की प्रगति बाह्य जगत् से अन्तर्जगत की ओर थी और वे क्रमशः स्थूलता से मनोभावो की सूक्ष्मता की ओर गए। यही कारण है कि उन के चरित्र आरम्भ से यहाँ अपने सच्चे यथार्थ रूप मे हमारे सामने आ गए। इन चरित्रो को न अपने परिचय की आवश्यकता थी, न व्यवस्था की इन की आवश्यकता पूर्व काल मे हुआ करती थी, जब चरित्र अपने सामने परदा रख कर हमारे सामने आते थे। यहाँ तो ये स्वय अपने यथार्थतम रूप मे हमारे सामने खडे हो गए है। भूखे पात्र, कफन के चदे के रुपये से शराब पीने लगे, गोश्त खाने लगे। 'पूस की रात' मे वस्त्रहीन हलकू किसान जाड़े से काँपता हुआ अपने कुत्ते को अपने अक मे लेकर सो गया। यहाँ चरित्रो की आदर्शवादी मान्यताएँ सब बहुत पीछे छूट गयी, क्योकि वे सब झूठी थी, उपदेशात्मक थी। यहाँ के चरित्र कहानी के चरित्रो की भाति अपने सच्चे रूप मे आये।

इस तरह उत्कर्ष काल मे आकर समूचे स्त्री-पुरुष चरित्र, सच्चे मानव हृदय, मानव विज्ञान के दर्पण हो गए है। वे पूर्णत. सफल रूप से हमारी मनोवैज्ञानिक अनुभूतियो का प्रतिनिधित्व करने लगे। उन मे स्वाभाविक मानव चरित्र का-सा आरोह-अवरोह आ गया। वे हमारी सारी निर्बलताओ, कुठाओ के चित्र बन गए। यही कारण है कि उत्कर्ष काल की कहानियाँ प्राय चरित्र प्रधान हुई है। इस प्रधानता मे जहाँ एक ओर प्रेमचद मानव समाज, मानव व्यक्तित्व के महान कहानीकार हुए है वहाँ उनके चरित्र भी सजीव और अमर हुए।

शैली

इस काल की प्रतिनिधि कहानियो मे हमे तात्विक दृष्टि से पहले की भाँति, कहानी के तीनो भाग अलग-अलग नही मिलते। वैसे तो हर वस्तु का

आरम्भ, विकास और अन्त होता ही है, लेकिन शिल्पविधि की दृष्टि से इन कहानियो मे इन का निरूपण कठिन हो गया है। ये कहानियाँ एक चित्र की भाँति हो गयी हैं, जिन मे उन का आरम्भ विकास, अन्त तीनो एक होकर आपस मे मिल गए हैं।

पहले की भाँति का आरम्भ भाग यहाँ कहानियो मे विकास भाग से अलग नही है एक मे मिला हुआ है। वरन् आरम्भ ही यहाँ विकास के गर्भ मे बोलने लगा, क्योकि यहाँ प्रेमचद के शब्दो मे अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरजित होकर कहानी बन गयी। वस्तुतः अनुभूति या मनोवैज्ञानिक सत्य का कोई आरम्भ या उस का कोई भी रूप पकड मे नही आ सका, फलत इस काल की प्रतिनिधि कहानियो मे कोई अलग आरम्भ ढूँढना कठिन है। यहाँ कहानी अपनी शिल्पविधि मे बहुत सयम और अत्यन्त गठन के साथ आई है तथा कला के सयम मे उस के सारे अग एक दूसरे से तादात्म्य स्थापित करके एकात्म स्तर पर पहुँच गए है।

वैसे अध्ययन की दृष्टि से अगर हम यहाँ की कहानियो के बाह्य पक्ष को लें, तो हमे विकास काल की कहानियो की भाँति यहाँ भी आरम्भ मिलेंगे—परिचय के साथ कहानियो का आरम्भ जैसे-'अलग्योझा', 'प्रेरणा', 'ईदगाह', 'दिल की रानी' और 'घर जमाई' आदि। भूमिका रहित पात्रो और परिस्थितियो के आवश्यक परिचय के साथ-जैसे 'मिस पद्मा', 'खूचड', 'पूस की रात', 'नशा' और 'गुल्ली-डडा', यहाँ एक नवीनतम ढग का आरम्भ मिलता है—पत्रो और डायरी के पृष्ठो से कहानी के आरम्भ जैसे-क्रमश 'जादू', 'दो सखियाँ' और 'पडित मोटे राम की डायरी' आदि।

विशुद्ध रचना प्रक्रिया की दृष्टि से आरम्भ काल मे कहानियो के आरम्भ भाग को छोड़कर हमने उन के विकास मे पाँच अवस्था-क्रमो को देखा था—१ : परिचय : २ : घटना की तैयारी : ३ : उत्तेजक घटना : ४ : व्याख्या : ५ · घात-प्रतिघात। वस्तुत उत्कर्ष काल की कहानियो मे कलात्मक ढंग से सम्पूर्ण कहानी अपने मे एक समूचा विकास क्रम है। अतएव यहाँ विकास के अवस्था-क्रम अपेक्षाकृत संकुचित हो गए हैं, जैसे, १ : परिचय और घटना की तैयारी : २ : उत्तेजक घटना : ३ : घात-प्रतिघात। यहाँ की प्रतिनिधि कहानियों मे विकास क्रम की व्याख्या की आवश्यकता अब नही रही। इस के स्थान पर कहानी मे व्यजना आ गयी है, जो कहानी मे सर्वत्र व्याप्त मिलेगी। उदा-

हरण के लिए हम विकास के इन अवस्था-क्रमो को 'कफन' नामक कहानी मे देख सकते है।

(१) परिचय और घटना की तैयारी : "झोपडी के द्वार पर बाप और बेटा दोनो एक बुझे अलाव के सामने चुपचाप बैठे है और अन्दर बेटे की जवान बीबी बुधिया प्रसव-पीडा से पछाड खा रही थी। . .घीसू ने कहा—मालूम होता है वैरी नही। सारा दिन दौडते हो गया, जा देख आ माधव चिढ़कर बोला—मरना ही है तो जल्दी मर क्यो नही जाती ? देख कर क्या करूँ ?

चमारो का कुनवा था और सारे गाँव मे बदनाम घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम। माधव इतना काम कामचोर था कि आध घटे काम करता तो घटे भर चिलम पीता। इसी लिए उन्हे कही मजदूरी नहीं मिलती थी।[१]"

(२) उत्तेजक घटना : "सबेरे माधव ने कोठरी मे जाकर देखा तो उसकी स्त्री ठडी हो गयी थी। माधव दौडा हुआ घीसू के पास आया, फिर दोनो जोर-जोर से हाय-हाय करने और छाती पीटने लगे। मगर ज्यादा रोने-पीटने का अवसर न था। कफन और लकडी की फिक्र करनी थी। एक घटे मे घीसू के पास पाँच रुपये की अच्छी रकम जमा हो गयी। कही से अनाज मिला, कही से लकडी। और दोपहर को घीसू बाजार से कफन लाने चला इधर लोग बाँस काटने लगे[२]।"

(३) घात-प्रतिघात "बाजार मे पहुँचकर बीच मे बोला—लकडी तो उसे जलाने भर को मिल गयी है—क्यो माधव ?

माधव बोला—हाँ लकडी तो बहुत है, अब कफन चाहिए। तो चलो कोई हलका-सा कफन ले ले हाँ और क्या ? लाश उठाते-उठाते रात हो जायगी। रात को कफन कौन देखता है।

कैसा बुरा रिवाज है कि जीते जी तन ढाकने को चिथडा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।

कफन लाश के साथ जल ही तो जाता है। और क्या रखा रहता है ? यही पाँच रुपये पहले मिले होते तो कुछ दवा-दारू कर लेते। दोनो एक दूसरे के मन की बात ताड रहे थे। बाजार मे इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बजाज

---

[१] **कफन और शेष रचनाएँ, कफन, पृ० १, २**

[२] **कफन और शेष रचनाएँ, कफन, पृ० ८, ९**

की दूकान पर गए कभी उस दूकान पर । तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे मगर कुछ जँचा नही । यहाँ तक कि शाम हो गयी ।''[१]

चरम सीमा

इस सबध मे इस काल की प्रतिनिधि कहानियो मे दो विशेषताएँ स्पष्ट है । मूलतः यहाँ की कहानियो की चरम सीमाएँ मनोवैज्ञानिक अनुभूति के सत्य पर प्रतिष्ठित हुई हैं । फलतः ये चरम सीमाएँ नितान्त कलात्मक हुई है इन मे किसी भी तरह का उपसहार या उपदेश नही जोडा गया है । कफन की चरम सीमा इस का स्पष्ट उदाहरण है ।

''तब दोनो न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुँचे और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गए । वहाँ जरा देर तक दोनो असमजस मे खडे रहे । फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा—साहु जी, एक बोतल हमे भी दे देना । इसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछलियाँ आयी और दोनो बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे । कई कुजियाँ ताबडतोड पीने के बाद दोनो सरूर मे आ गए ।

घीसू बोला—कफन लाने से क्या मिलता ? आखिर जर ही तो जाता । कुछ बहू के साथ तो न जाता । लेकिन लोगो को जवाब क्या दोगे । लोग पूछेगे नही ? कफन कहाँ है ?

घीसू हँसा—अबे कह देगे कि रुपये कमर से खिसक गए । बहुत ढूँढ़ा मिले नही । लोगो को विश्वास तो न आएगा लेकिन फिर वही रुपये देगे । और दोनो खडे होकर गाने लगे ।

'ठगिनी क्यो नैना झमकाए । .ठगिनी. .

फिर दोनो नाचने लगे । उछले भी कूदे भी । गिरे भी मटके भी । भाव भी बनाए । अभिनय भी किए । और आखिर नशे मे मदमस्त होकर वही गिर पडे ।'

उपर्युक्त चरम सीमा का आधार न कोई घटना है न कोई सयोग, बल्कि यह चरम सीमा मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है । फलतः ऐसी चरम सीमाओ का विस्तार इतना फैल जाता है, नही तो एक पक्ति मे चरम सीमा प्रतिष्ठित हो जाती ।

शैली के सामान्य पक्ष की दिशा मे यहाँ और भी विकास हुआ है ।

---

[१] **कफन और शेष रचनाएँ, कफन, पृ० १०**

विकास काल मे प्रायः छ प्रकार की विभिन्न शैलियो की कहानियाँ मिली हैं उत्कर्ष काल मे आकर उन छ. के अतिरिक्त और भी कुछ नयी शैलियो की कहानियाँ आयी है।

(क) डायरी शैली मे लिखी हुई—जैसे, 'पडित मोटेराम की डायरी'।

(ख) पत्रात्मक शैली मे लिखी हुई—जैसे, 'दो सखियाँ'।

(ग) चिन्तन और पत्रो के सयोग से—जैसे, 'कुसुम'।

कहानी की इन शैलियो के अतिरिक्त उत्कर्ष काल की प्रतिनिधि कहानियो मे परिस्थिति चित्रण और अवस्था वर्णन का स्तर बहुत कलात्मक हो गया है। शैली मे व्यंजना, वातावरण प्रस्तुत करने वाले वर्णन तथा चित्रण की रेखाएँ काफी साफ हो गयी है। वे सीधी तिर्छी टेढी होकर परिस्थितियो के अन्तराल मे बैठकर वर्णन उपस्थित करने लगी है। फलतः तमाम वर्णनो और चित्रणो मे प्रभविष्णुता आ गयी है। अवस्था वर्णनो मे बाह्य जगत् के चित्रण के साथ वस्तुस्थिति की आन्तरिक अभिव्यक्ति बिल्कुल साफ हो आयी है जैसे 'पिसनहारी का कुवाँ', मे एक बालिका का अवस्था चित्रण इतना सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक है, "बालिका की वह भोली दीन, याचनामय सतृष्ण छवि देखकर उसका मातृ हृदय मानो सहस्र नेत्रो से रुदन करने लगा था। उसके हृदय की सारी शुभेच्छाएँ सारी आशीर्वाद, सारी विभूति सारा अनुराग मानो उसकी आखो से निकल कर उस बालिका को उसी भाँति रंजित कर देता था जैसे, इदु का प्रकाश पुष्प को रंजित कर देता है। पर उस बालिका के भाग्य मे मातृ-प्रेमके सुख न बदे थे।[1]"

दृश्य और छवि वर्णनो मे प्रेमचद ने विकास काल ही मे बहुत सफलता प्राप्त कर ली थी। उन मे इस दृष्टि से चित्रात्मकता तथा अत्यन्त सूक्ष्मता से तथ्यो की अभिव्यक्ति मे कमाल हासिल हो गया था। यहाँ उन की लेखनी मे और तीव्रता—जोर और विश्वास आ गया है। अब उन के वर्णनो मे रूपक प्रतीक और उपमाओ के सहज सयोग होने लगे हैं। इन रेखाओ मे सुदर उभार आ गया है, और उस पर कल्पना तथा भिन्न रगो के सयोग का सुदर अनुपात आ गया है। इसके उदाहरण हमे इस काल की सब प्रतिनिधि कहानियो मे मिलेगे। 'लैला' नामक कहानी मे लैला के रूप, छवि का वर्णन "लैला के रूप लालित्य की कल्पना करनी हो तो उषा की प्रफुल्ल लालिमा की कल्पना

---

[1] मानसरोवर भाग ५, पिसनहारी का कुआं, पृष्ठ २००

कीजिए जब नील गगन स्वर्ण प्रकाश से रजित हो जाता है । बहार की कल्पना कीजिए जब बाग मे रंग-रग के फूल खिलते है और बुलबुले गाती है। लैला के स्वर लालित्य की कल्पना करनी हो तो—घटो की अनवरत ध्वनि की कल्पना कीजिए जो निशा की निस्तब्धता मे ऊँटो की गर्दनो मे बजती हुई सुनाई देती है।[१]" यहाँ छवि वर्णन अभिधात्मक शैली मे न होकर पूर्णत ध्वन्यात्मक और व्यजनात्मक शैली मे हुआ है। यहाँ की रेखाएँ उपमा कल्पना व्यजना और विभिन्न रगो मे डूबकर सम्पूर्ण चित्र को उभार रही है । यही उत्कर्ष काल की कहानियो की विशेषता और पहचान है ।

दृश्य वर्णनो मे भी कल्पना संकेत और व्यजना से ही उन की रेखाएँ उभारी गयी हैं जैसे, "सामने चद्रमा के मलिन प्रकाश मे ऊची पर्वत मालाएँ अनन्त के स्वप्न की भाँति गभीर रहस्यमय सगीतमय मनोहर मालूम होती है। इन पहाडियो के नीचे जलधारा की एक रेखा ऐसी मालूम होती थी मानो उन पर्वतो का समस्त सगीत, समस्त गाभीर्य सम्पूर्ण रहस्य इसी उज्वल प्रवाह मे लीन हो गया।[२]"

कथोपकथन

कथोपकथन की दिशा मे विकास काल की प्रतिनिधि कहानियो मे उत्कृष्ट ढग के कथोपकथन के उदाहरण मिले है। फलत: शैली की दृष्टि से उस मे और विशेषता लाना और क्या हो सकता है। यह बात और है कि यहाँ प्रेमचन्द के कथानको मे अधिक व्यग वाक्पटुता सूक्ष्मता और इमानदारी आ गयी है। कथोपकथन से कथोपकथन का निकलना एक वाक्य का दूसरे वाक्य का पृष्ठभूमि बन जाना यहाँ के कथोपकथनो की विशेषता है । इस काल की प्रतिनिधि कहानियाँ,जैसे—'कफन', 'गुल्लीडंडा', 'पूस की रात','मिस पद्मा', 'नशा','कामना तरु', 'लैला', 'कुसुम' आदि मे ऐसे उदाहरण भरे पडे हैं। जैसे, कफन मे—

"घीसू बोला—कफन लगाने से क्या मिलता है ? आखिर जल ही तो जाता है। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला—मानो देवताओ को अपनी निस्पृहता का साक्षी बना रहा हो। दुनिया का दस्तूर है नही तो लोग बाभनो को

---

[१] मानसरोवर भाग ३, लैला, पृष्ठ १४८

[२] मानसरोवर भाग ५, सुहाग का शव, पृष्ठ २०३

हजारो रुपये क्यो दे देते। कौन देखता है, परलोक मे मिलता है कि नही। बडे आदमियो के पास धन है फूँके। हमारे पास फूँकने को क्या है?

लेकिन लोगो को जवाब क्या दोगे? लोग पूछेगे नही। कफन कहाँ है।

घीसू हँसा—अबे कह देगे कि रुपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूँढा मिले नही। लोगो को विश्वास तो न आएगा लेकिन वही देगे रुपये[१]।"

वैसे इस काल की एकाध कहानी ऐसी भी है जो विशुद्ध ढग से कथोपकथनात्मक है उन का प्रारम्भ, विकास, अन्त तीनो कथोपकथनो से ही हुआ है जैसे—'जादू' आदि मे।

लक्ष्य और अनुभूति

विकास काल मे प्रेमचद ने अपनी कहानियो के लक्ष्य के संबध मे कहा था—"हमने इन कहानियो मे आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है। क्योकि—कुछ देर के लिए तो हमे इन कुत्सित व्यवहारो से अलग रहना चाहिए नही तो साहित्य का मुख्य उद्देश्य ही गायब हो जाता है[२]।"

उत्कर्ष काल मे आकर उन की कहानियो के लक्ष्य मे आमूल परिवर्तन हो गया—"वहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नही वरन् उसके चरित्र का एक अग दिखाना है। यह परमावश्यक है कि हमारी कहानी के जो परिणाम या तत्व निकले वह सर्वमान्य हो और उसमे बारीकी हो।"[३]

अतएव अपने-अपने लक्ष्यो के कारण क्रमश विकास काल की कहानियो को प्राय. घटना सयोग, तथा द्विपक्षता की ओर बढना पडा और उत्कर्ष काल की कहानियो को मनोवैज्ञानिक अनुभूतियो की ओर। 'कफन', 'नशा, 'पूस की रात', 'मिस पद्मा', कुसुम आदि कहानियाँ मनोवैज्ञानिक यथार्थ पर लिखी गयी है। प्रेमचद को गरीबी, शोषण और पूस की रात की ठंडक की अनुभूति थी। उन्होने उसी अनुभूति की प्रेरणा से 'कफन' और 'पूस की रात' के कथासूत्र को गढा और उस मे उन्ही सच्ची अनुभूतियो को वाणी दे दी अथवा अनुभूतियाँ ही घनीभूति होकर कहानी की रेखाओ मे अभिव्यक्त हो गयी। और इन कहा-

[१] **कफन और शेष रचनाएँ, पृष्ठ ११ प्रारम्भ, संस्करण १६३७**

[२] **प्रेमप्रसून—भूमिका, पृष्ठ ६**

[३] **मानसरोवर प्रथम भाग, भूमिका, पृष्ठ ६**

नियो के माध्यम से प्रेमचद ने मानवता के शाश्वत प्रश्नो को उठाया है। यहाँ इन कहानियों मे न कोई बलवती घटना है न संयोग, बल्कि यहाॅ प्रेमचंद ने मानववाद और मानवता के चिरंतन सघर्षों और प्रतिक्रियाओ को मुखरित किया है। अतः यहाॅ की कहानियो का लक्ष्य यथार्थ चित्रण और मानव हृदय का विश्लेषण है। जो भावनाएँ जो सघर्ष जो कुठाएं मनुष्य के मन मे तैर रही हैं उन्ही की अभिव्यक्ति इन कहानियो की आत्मा है।

यहाॅ प्रेमचद की व्याख्या स्वयं सिद्ध हो जाती है: कहानी मे कई रसो, कई चरित्रो, और कई घटनाओ के लिए स्थान नही रहा। वह अब केवल एक आत्मा का, आत्मा की एक झलक का सजीव स्पर्शी चित्रण है। गल्प का आधार अब घटना नही मनोविज्ञान की अनुभूति है और सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर होता है।

समग्र रूप मे यहाॅ आकर हमे प्रेमचंद की कहानियो मे वह अन्त, वह वाणी मिलने लगी जो हमारे यथार्थ जीवन का अन्त और वाणी है और इस वाणी तथा अन्त के पीछे वर्तमान आर्थिक, सामाजिक मान्यताओ के प्रति उन की विद्रोही भावना कार्य कर रही है। इस विद्रोह की चेतना को उन्होने कभी हलकू के मुख से कहलवाया हे, "तकदीर की खूबी है मजूरी हम करे मजा दूसरे लूटें" और कभी घीसू के मुख से, "वह न बैकुण्ठ जायगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे जो गरीबो को दोनो हाथ से लूटते हैं, अपने पाप को धोने के लिए गगा मे नहाते हैं और मदिरो मे जल चढ़ाते हैं।" प्रेमचद ने यहाँ जिन समस्याओ को लिया है उन को मुख्यतः आर्थिक धरातल पर चढ़ाकर देखा है। यहाँ आकर प्रेमचंद ने सिद्ध करके यह देख लिया था कि हमारे जीवन की सारी समस्याओ के पीछे आर्थिक व्याख्या का मुख्य हाथ है। समस्या के भी प्रसगो मे प्रेमचद ने यहाॅ किसान, मजदूर, सेवक, प्रोफेसर आदि की समस्याओ को लिया है और सब के पीछे आर्थिक कुव्यवस्था के प्रश्नो को मुख्य रूप से उठाया है। विशुद्ध सामाजिक समस्याओ के प्रसग मे उन्होने मुख्यतः विवाह और प्रेम की समस्याएँ ली हैं जिन पर 'मिस पद्मा', 'कुसुम', 'दो कब्रें', 'अलग्योझा' ऐसी अमर कहानियो की सृष्टि हुई है।

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के आधार पर खडी हुई कहानियाँ इस काल की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं, क्योकि इन का संबध घटना या संयोग से न होकर मानवता से है, मानवता के चिर प्रश्नों और शाश्वत संवेदनाओं से है।

प्रेमचंद की कहानियाँ : एक मूल्याँकन

पिछले पृष्ठो मे प्रेमचद को कहानियो की शिल्पविधि के अध्ययन में, स्वतत्र रूप से कहानी के दो पक्ष, १ भाव पक्ष २. भाषा पक्ष पर प्रकाश नही पड़ सका है। वस्तुतः कहानी के रूप निर्माण मे भाव पक्ष और भाषा पक्ष ही का सब हाथ है। एक उस की आत्मा है, दूसरा उस का शरीर या अस्तित्व। इन दोनो का संबध भी बहुत अन्योन्याश्रित है। भाव, भाषा के ही माध्यम से व्यक्त होता है और भाषा का अमूर्त्त रूप भाव है, और दोनो का कलात्मक समन्वय कहानी या कविता है।

भाव पक्ष

प्रेमचद की कहानी मे भाव पक्ष की जितनी विविधता और गहनता है, उतनी हिन्दी के और किसी कहानीकार मे नही है, मोटे रूप से इन का भाव पक्ष ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, व्यक्तिगत स्तरो मे फैला हुआ है।

ऐतिहासिक भाव क्षेत्र मे प्रेमचद जी बहुत सीमित थे। वस्तुत. उन की कहानियो के भाव पक्ष का मुख्य धरातल समाज और व्यक्ति था, इतिहास नही। प्रेमचद ने अपने प्रारम्भिक काल मे 'रानी सारधा', 'राजा हरदौल', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुण्ड', 'जुगनू की चमक' और 'धोखा' कहानियाँ ऐतिहासिक सामग्री और संवेदनाओ से लिखी थी। इन कहानियो के भाव पक्ष मे ऐतिहासिक तथ्य ढूँढ़ना बिल्कुल अवैज्ञानिक है। 'रानी सारंधा' की सृष्टि तो निश्चित रूप से इतिहास, कल्पना और लोककथा, के सयोग से हुई है। 'राजा हरदौल', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुण्ड', 'जुगनू की चमक', और 'धोखा' का भावपक्ष इतिहास के राजपूत और सामत काल से संबधित है। यहाँ इतिहास के गौरव पूर्ण सवेदनाओ को लेकर उन पर अपनी कल्पना और मर्यादा के पुट से प्रेमचद ने इन कहानियो मे आदर्शवाद की प्रतिष्ठा पूर्ण सफलता से की है। अतीत के भावो मे जहाँ उत्साह और जीवन मिलता है वहाँ स्वर्ण पृष्ठो से हमे फिर एक बार चैतन्य और जागरूक होना पडता है। इस के अनन्तर प्रेमचद ने इतिहास के मुसलमान काल के वैभव ऐश्वर्य और पतन के भाव पक्ष से 'शतरज के खिलाडी', 'बज्रपात', 'दिल की रानी' और 'लैला' कहानियो की सृष्टि की। इन कहानियो मे ऐतिहासिक मनोभावों और मर्यादाओ को व्यंग से अधिक प्रतिष्ठित किया गया है, कथा वर्णन और प्रसशा से कम। इन ऐतिहासिक कहानियो मे पहले की अपेक्षा

कलात्मकता अधिक है, भावो का ऐतिहासिक तथ्य कम, अर्थात् इन कहानियो मे, कहानी का कला पक्ष अधिक प्रधान और सबल है, भाव पक्ष कम।

राष्ट्रीय भाव धारा पर लिखी हुई कहानियाँ, प्रेमचद की सुन्दर और कलात्मक कहानियाँ है। प्रेमचद काल मे राष्ट्रीय भाव पक्ष का मूल स्रोत काग्रेस और गाँधीवाद था। राष्ट्रीय भाव के इसी केन्द्र विन्दु पर, 'सुहाग की साडी', 'सत्याग्रह', 'तावान', 'विचित्र होली', 'अनुभव', 'होली का उपहार' 'भाडे का टट्टू', 'ब्रह्मा का स्वाग', 'पडित मोटेराम शास्त्री' और 'एक आँच की कसर', आदि कहानियाँ लिखी गई है। इन कहानियो मे राष्ट्रीय भावो का समर्थन व्यंगात्मक शैली से हुआ है। प्रेमचद ने जहा एक ओर पात्रो के मनोभावो मे पैठकर विदेशी वस्त्र का वहिष्कार, नशा खोरी की खिलाफत, खादी और चर्खे का समर्थन, और सत्य अहिसा की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की है, वहाँ झूठे राष्ट्रवादियो की पोल खोल कर सुन्दर और व्यगात्मक ढग से मानव चरित्र की गभीरता, निष्कपटता और सत्य का पाठ पढाया है।

इस दिशा मे अछूतोद्धार की भी समस्या को प्रेमचद ने बहुत कलात्मक ढग के उठाया है। 'ठाकुर का कुँआँ', 'दूध का दाम', 'सद्गति', और 'मदिर' आदि कहानियाँ ऐसे ही भाव पक्ष पर लिखी हुई कहानियाँ हैं, जहाँ प्रेमचद ने अत्यन्त समवेदना और व्यग से अछूतोद्धार की आवाज उठाई है, तथा अपनी समस्त राष्ट्रीय भावधारा की कहानियो मे गाँधीवाद का समर्थन किया है। ऐसा लगता है, अपने जीवन के अतिम समय मे उन का दृष्टिकोण गाँधीवाद से हट-कर अति यथार्थवाद की ओर उन्मुख हो गया था, और आर्थिक पराधीनता के युद्ध को ही उन्होने राष्ट्रीय मोर्चा माना था, 'कफन' इस भावपक्ष का ज्वलत उदाहरण है।

भाव पक्ष का सामाजिक धरातल ही प्रेमचद की कहानियो का मुख्य धरातल है। इस धरातल से प्रेमचद ने समकालीन समाज की प्राय: समस्त इकाइयो और समस्त समस्याओ को लिया है। सामाजिक रीति-रिवाज मे जाति धर्म और परम्परा वह ऊँची दीवार है जहाँ मानवता सदियो से बदी है। कोई अछूत के नाम पर बहिष्कृत है और कोई वेश्या या पतित के नाम से। इन भावों के ऊपर प्रेमचन्द की 'सद्गति', 'दुर्गा का मदिर', 'सफेद खून', वेश्या', 'दो कब्रे', 'आगा पीछा', 'ठाकूर का कुँआँ', 'दूध का दाम', और 'मदिर' आदि सर्वोत्कृष्ट व्यंगात्मक और संर्वेदनात्मक कहानियाँ हैं। इन धरातलो से और कभी-कभी आर्थिक और वस्तुवादी धरातलो से भी हमारे समाज मे कीचड उछाला जा रहा है। कहीं स्त्री-पत्नी का त्याग भटकने के कारण हो रहा है, कही दहेज और स्वार्थ

के कारण; इन भाव पक्षो पर प्रेमचद की, 'बहिष्कार', 'निर्वासन', 'कुसुम', 'दहेज', और 'मिस पद्मा' आदि उत्कृष्ट कहानियाँ हैं।

वैवाहिक भाव पक्ष के धरातल से प्रेमचंद ने पति-पत्नी, विधवा विवाह अतर्जातीय विवाह, वृद्ध विवाह, बहु विवाह से संबधित क्रमशः 'शान्ति', 'धिक्कार' 'बालक', 'कायर', 'नरक का मार्ग' और 'सौत' कहानियाँ लिखी है। अध विश्वास, पडा और साधु समस्या के विरोध मे उन्होने 'सुभागी', 'केसर', 'भूत', 'मनुष्य का परम धर्म', 'गुरु मत्र' और 'बाबा जी का भोग' कहानियाँ पूर्ण व्यंगात्मक शैली मे लिखी हैं।

इस के अतिरिक्त प्रेमचद ने सामाजिक भाव पक्ष मे समाज की व्यापक समस्याओ को लिया है। इन के दो वर्ग हैं, घर और सस्था। घर मे इन्होंने संयुक्त परिवार की समस्या को बहुत प्रमुखता दी है और सस्था के अतर्गत किसानी, मजदूरी, पेशा, नौकरी, आदि सस्थाओ को लिया है।

घर के अंतर्गत प्रेमचंद ने केवल छोटे-छोटे टूटते हुए जमीदारो के घर गरीब किसान नौकर आदि, निम्न मध्यम वर्ग के घरो को लिया है। इन घरो मे संयुक्त परिवार का आर्थिक धरातल डॉवाडोल है। आपस मे स्नेह-सौहार्द नही है, केवल मर्यादा के नाम पर ये टिके है।

निम्न कोटि के नौकर-चाकर, गरीब किसान के घरो की स्थिति इतनी चिन्त्य है—"उनके भी कुटुम्ब परिवार है, शादी-गमी, तिथि त्योहार यह सब उनके साथ लगे हुए है। बताओ उनका गुजर कैसे हो। अभी रामदीन चपरासी के घर वाली आई थी, रोते-रोते आँचल भीगा था लडकी सयानी हो गई है अबकी उसका व्याह करना पडेगा, ब्राह्मण की जाति हजारो का खर्च बताओ उसके आँसू किसके सर पडेगे[१] !"

घर-घर मे झगडा, कलह, द्वन्द्व चल रहे है, कही बड़े घर की बेटी को लेकर कही सौत को लेकर और कही बूढ़ी खाला बी सपत्ति को लेकर, घर की दो इकाई पति और पत्नी मे प्रेम बलिदान की कमी आ गई है। पत्नी पति से रुपया चाहती है। उसे पति से सम्मान से कोई आकर्षण नही। सज्जनता के दड मे, पत्नी पति की असफलता तनज्जुली को सुनकर निर्ममता से व्यंग वाण चलाती है। नमक का दरोगा मे पति की हार के उपरान्त पत्नी ने कई दिन तक सीधे मुँह से बात नही की।

---

[१] सप्त सरोज, सज्जनता का दंड, पृ० ३४

विकास और उत्कर्ष काल की कहानियो से ऐसे भाव पक्ष की दिशा मे पूर्ण सच्चाई आ गई है। वहाँ 'शंखनाद' आदि कहानियो मे सयुक्त परिवार टूट चुके है। गृह दम्पति की समस्या मे आर्थिक समस्या सब से ज्यादा उभर आई है।

संस्थाओ से संबधित समस्याओ मे जमीदारी सस्था, पुलिस सस्था, न्यायालय संस्था, पटवारी और कानून गो सस्था को प्रेमचद ने मूख्य रूप से लिया है, अर्थात् प्रेमचद ने उन संस्थाओ को लिया है जिन का संबध सीधे धरती और गाँव से है। ये समस्याएँ कितनी पतनोन्मुख, अनैतिक और जर्जरित है इन का चित्रण प्रेमचद ने अपूर्व सफलता से किया है। आरम्भिक काल की कहानियो के भाव पक्ष मे इस सबध मे प्रेमचद ने अहलकारो की ओर से आदर्शवाद भी लादा था। लेकिन आगे की कहानियो मे रिश्वतखोरी, शोषण, अत्याचार, बिल्कुल खुल्लम-खुल्ला बढ गया है। क्या जमीदार क्या न्यायाधीश क्या कोई भी अहलकार, सब शोषक हो गए है और किसान मजदूर सर्वहारा वर्ग बुरी तरह पिस रहा है। वहाँ न कही नमक का दरोगा ऐसा ईमानदार अहलकार है न सज्जनता का दड, ऐसा ऊँचा सरदार है, बल्कि सब का पतन हुआ है।

भाव पक्ष की सामाजिक दिशा मे ही भाव पक्ष का व्यक्तिगत स्वरूप भी पैदा होता है। यहाँ व्यक्तिगत भाव पक्ष की दिशा मे नैतिकता और प्रेम दो समस्याओ को विशेष ढग से उठाया गया है। 'विश्वास', 'उद्धार', 'रियासत का दीवान', 'परीक्षा', 'दीक्षा', 'मुक्तिमार्ग', 'सभ्यता का रहस्य', 'समस्या', 'दो बहने', 'दुर्गा का मदिर', 'गरीब की हाय', 'सच्चाई का उपहार', 'रामलीला', 'मत्र', 'ममता', आदि कहानियो का भाव पक्ष व्यक्तिगत नैतिकता के धरातल से लिया गया है। यहाँ विभिन्न पहलुओ से नैतिकता, और सच्चाई की परीक्षाएँ दी गई हैं।

व्यक्तित्व धरातल पर प्रेम विभिन्न स्तर से आया है फलतः प्रेम की कितनी कोटियाँ बन गई हैं और सर्वत्र व्यक्ति की परीक्षा हुई है तथा प्रेम के रूपों का निरूपण हुआ है जैसे, 'कामना' मे, रोमास के साथ प्रेम, 'सेवा मार्ग' में प्रेम की अपेक्षा और सेवा में ही सात्विक प्रेम को देखना, 'धर्म संकट' मे स्त्री प्रेम के प्रति विश्वास घात, 'अभिलाषा' मे, प्रेम के स्थान पर रोमास की चाह, भाग्य द्वारा प्रेम का सयोग 'सौभाग्य के कोड़े' 'कैदी' मे प्रेम और विश्वासघात, 'मिस पद्मा' में पाश्चात्य प्रणाली का जीवन और स्वतत्र प्रेम, 'घास वाली', 'शिकार', 'दिल की रानी' मे प्रेम मनुष्य के चरित्र को गंभीर बना देता है, ये दृष्टि बिन्दु लिए गए हैं।

इस तरह प्रेमचंद की कहानियो के भाव पक्ष में ऐतिहासिक, राष्ट्रीय,

सामाजिक और व्यक्तिगत भाव धाराएँ अपने अपूर्व विस्तार और विभिन्नता मे यहाँ फैली हुई हैं, इन के धरातलो पर प्रतिष्ठित प्रेमचंद की कहानियाँ उन भावो के सत्य रूप है ।

भाषा पक्ष

प्रेमचद अपनी कहानियो मे भाव पक्ष के इतने विस्तार और प्रसार मे जाने से क्यो और कैसे समर्थ हुए ? इस का एक ही उत्तर है, प्रेमचद भाव और अनुभूति के साथ ही साथ भाषा के भी बहुत बडे बादशाह थे । उनके भाषा पक्ष मे अरबी, फारसी फिर इन के सयोग से उर्दू, दूसरी ओर हिन्दी, स्टैण्डर्ड हिन्दी, फिर बोल-चाल की हिन्दी और फिर उर्दू और हिन्दी के सुन्दर समन्वय से हिन्दुस्तानी, ये तीन दिशाएँ अपूर्व है । प्रेमचंद का भाषा पक्ष इतना समृद्ध और विशाल था कि उस मे पडित भी अपने अनुकूल भाषा पा जाता था, मौलवी भी, जज वकील भी, और गॉव के गरीब किसान मजदूर भी । अतः प्रेमचद की कहानी की भाषा मे कही ठेठ उर्दू, कही फारसी मिश्रित उर्दू, कही हिन्दी मिश्रित उर्दू, कही हिन्दुस्तानी, कही सस्कृत गर्भित हिन्दी कही प्रान्तीय और प्रादेशिक शब्दो के सुन्दर समन्वय से भाषा मिलती है अर्थात् प्रेमचद वातावरण और पात्र के अनुसार भाषा का प्रयोग करते है ।

'दिल की रानी' मे उर्दू भाषा का रूप—"तुम कहते हो, खुदा ने तुम्हे ऐश करने के लिए पैदा किया है । मैं कहता हूँ यह कुफ्र है खुदा ने इंसान को बन्दगी के लिए पैदा किया है और इसके खिलाफ जो कोई कुछ कहता है वह काफिर है, जहन्नुमी है । रसूले पाक, हमारी जिन्दगी को पाक करने के लिए, हमे सच्चा इसान बनाने के लिए थे, आए थे, हमे हराम की तालीम देने के लिए नही तैमूर दुनिया को इस कुफ्र पाक कर देने का बीडा उठा चुका हैं । रसूले पाक के कदमो की कसम, मै बेरहम नही हूँ ज़ालिम नही हूँ, खूँखार नही हूँ, लेकिन कुफ्र की सज़ा मेरे ईमान मे मौत के सिवा कुछ नही है ।"

'रसिक सपादक' मे, हिन्दी भाषा का रूप—"और कविताएँ तो हृदय की हिलोरें, विश्व वीणा की अमर तान, अनन्त की मधुर वेदना, निशा का नीरव गान होते थे । प्रशसा के साथ दर्शनी उत्कृष्ट अभिलाषा भी प्रकट की जाती थी । यदि कभी आप इधर से गुजरे तो मुझे न भूलिएगा जिसने ऐसी कविता की सृष्टि की है, उसके दर्शनो का सौभाग्य मुझको मिला तो, अपने धन्य मानूँगा ।"

'बेटो वाली विधवा' मे, हिन्दुस्तानी भाषा का स्वरूप—"पर ज्यो-ज्यो

समय बीतने लगा, उस पर हकीकत खुलने लगी, इस घर मे उसकी हैसियत नही रही जो दस बारह दिन पहले थी। सबधियो के यहाँ से न्योते मे शक्कर, मिठाई, दही, अँचार आदि आ रहे थे बडी बहू इन वस्तुओ को स्वामिनी भाव से सँभाल-सँभाल कर रख रही थी। कोई उससे पूछने नही आता।"

इस तरह प्रेमचद भाषा के बहुत बडे धनी थे। जैसी आवश्यकता होती स्वाभाविकता लाने के लिए वे उसी तरह की भाषा का प्रयोग करते, वैसे प्रेमचद की भाषा, हिन्दुस्तानी है—स्वाभाविक बोल-चाल की भाषा, पर इस भाषा मे प्रेमचंद ने भाषा की चुस्ती, मुहावरो की सजावट, कहावतो और सूक्तियो के अपूर्व समन्वय से अपना व्यक्तित्व डाल दिया है और इस अनोखी भाषा को लोगो ने 'प्रेमचदी भाषा' की सज्ञा दी है।

प्रेमचंद और आदर्शवाद

प्रेमचद के तीनो कहानी काल मे आदर्शवाद के तीन पहलू मिलते हैं। अपने प्रारम्भिक काल मे वे पूर्णत: आदर्शवादी थे। प्रेमचद की यह आदर्शवादिता यहाँ कर्त्तव्य, त्याग, प्रेम, न्याय, मित्रता, देश सेवा, आदि कई दिशाओ मे प्रतिष्ठित हुई है। अत. आदर्शवादिता की इन्ही विभिन्न इकाइयो विभिन्न भाव-भूमियो पर प्रारम्भिक काल की कहानियाँ खडी की गई है, सप्त सरोज, नव निधि, और प्रेम पचीसी, सग्रह की कहानियाँ इसके उदाहरण है। इस आदर्श भावना को चरितार्थ करने के लिए प्रेमचद ने कहानियो मे द्विपक्षता-सत् और असत् दो विरोधी पक्षो को प्रतिष्ठित किया है तथा हमेशा असत् पर सत् की जीत दिखाकर आदर्श की प्रतिष्ठा दिखाई है। इसी सत्य के धरातल पर बडे घर की बेटी, पच परमेश्वर, नमक का दरोगा, उपदेश, परीक्षा, अमावस्या की रात्रि और पछतावा, आदि कहानियाँ निर्मित हुई है तथा यहाँ सर्वत्र, किसी न किसी तरह असत् पर, सत् , की विजय दिखाई गई है।

विकास काल मे आकर प्रेमचद का आदर्शवाद यथार्थ की ओर झुक गया और दोनो के समन्वय से उन की कहानियो मे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई। विकास काल की कहानियो के लक्ष्य विन्दु को बताते हुए प्रेमचंद ने स्वयं 'प्रेम प्रसून,' की भूमिका मे कहा हैं, "हमने इन कहानियो मे आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है।" 'ईश्वरी न्याय', 'महातीर्थ', 'धर्म संकट', 'बौडम',

'वैर का अंत', 'सुहाग की साडी', 'मूढ़', 'लाल फीता', 'आत्माराम' आदि कहानियो की भाषा शैली पूर्णतः मनोवैज्ञानिक लक्ष्य लिये हुए यथार्थ पर आधारित हैं। लेकिन इन सब कहानियो के अत किसी न किसी तरह आदर्शोन्मुख है या पूर्ण आदर्श पर प्रतिष्ठित हुआ। 'सुहाग की साडी' मे रतन सिंह एक विशुद्ध ढग के काग्रेसी है, वे सैद्धान्तिक रूप से विदेशी वस्त्रो के विरोधी है। गौरा उन की धर्म पत्नी साधारण ढग की मर्यादावादी कुलवधू है, जो अपने सब विदेशी वस्त्र पति के मॉगने पर जलाने को दे देती है लेकिन अपनी सुहाग की साडी छिपा लेती है। गौरा का यह निर्णय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है, क्योकि इस के पीछे भारतीय नारीत्व और पत्नीत्व दोनो की प्रेरणा और परपरा की शक्ति है। लेकिन अत मे गौरा आदर्श मे आकर अपनी सुहाग की साडी की भी जलाने के लिये दे देती है। 'ईश्वरी न्याय' मे मुशी सत्य नारायन आदि से अत तक नाम कुवरि के निरोध मे बेइमानी और नीचता करते है। लेकिन अत मे वे पूर्ण आदर्शवादी ही निकलते है इन के पीछे कहानीकार न कोई मनोवैज्ञानिक समर्थन ही देता है न चारित्रिक अतर्द्वन्द्व ही, बस एकाएक चरित्र आदर्श पर प्रतिष्ठित हो जाता है। वस्तुत्तः इस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के पीछे गाधीवाद की निश्चित प्रेरणा है। प्रेमचद ने जितनी कहानियॉ गाधीवाद समवेदना को लेकर लिखी है वे सब इस के अंतर्गत आती है सत्यग्रह मे उन्हो ने झूठे सत्याग्रही का चित्रण करके सच्चे सत्याग्रही की कल्पना की है। 'ब्रह्म का स्वाग', मे खोखले पति के व्यक्तित्व विश्लेषण से जगती हुई नारी स्वतत्रता की भावना का उन्हो ने स्वप्न देखा है। 'महातीर्थ, मे तीर्थो अपेक्षा मानव सेवा को महान दिखाया है। 'जेल' मे मृदुला के व्यक्तित्व मे असहयोग और गाधी सत्याग्रह की ओर सफल सकेत है, 'मैकू', मे शराब ताडी आदि नशीली वस्तुओ के परित्याग की ओर आग्रह है।

लेकिन इस काल की कुछ कहानियॉ विशुद्ध यथार्थवाद पर लिखी गई हैं कहानीकार ने जैसा ससार मे देखा जैसा हो रहा है उस का वैसा ही चित्रण उस ने अपनी कहानियो मे किया है, 'बूढी काकी', 'शतरंज के खिलाडी', 'बज्रपात' 'शान्ति', 'दफ्तरी' आदि कहानियॉ यथार्थवाद के विशुद्ध प्रतीक हैं।

उत्कर्ष काल मे आकर प्रेमचंद का यह यथार्थवादि दृष्टिकोण और भी स्पष्ट हो गया है, 'कफन', 'नशा', 'पूस की रात', 'मिस पद्मा', 'कुसुम', आदि कहानियो के यथार्थता की प्रेरणा तीव्रतम हुई। 'कफन' मे जीवन का नग्नतम यथार्थ अट्टहास कर उठा है। न जाने कब के सूखे पिपासित आशान्वित, और

दुखी माधव और घीसू जब बुधिया के लिए चदे से बाजार मे पाँच रुपये का कफन लेने जाते है वहाँ एकाएक अपनी सारी झूठी मर्यादाओ मान्यताओ को भूल कर अपनी आत्मा की यथार्थतम भूमि पर उतर पडते है ।

इस तरह कहानीकार प्रेमचद अपनी कहानियो के आरम्भ मे विशुद्ध आदर्शवाद लेकर चले थे उन के विकास काल मे वही आदर्शवाद यथार्थोन्मुख हो गया और उत्कर्ष काल मे प्रेमचद पूर्ण यथार्थवादी हो गए। इस भाँति किसी एक कहानीकार मे आदर्श यथार्थ का सुन्दर समन्वय और इन दोनो से एकाएक दूर हट कर यथार्थ की प्रतिष्ठा देखना हिन्दी कहानी-साहित्य मे एक अनोखी घटना है ।

उपसंहार

प्रेमचद के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को एक दृष्टि मे देखने से हमे प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी कहानी-साहित्य मे सब से बडे और कृती व्यक्ति लगते है । उन से हम एक ही विन्दु पर कल्पना आदर्श, यथार्थ और लोक मगल भावना का सुन्दरतम समन्वय पाते है ।

उन के कहानीकार व्यक्तित्व निर्माण मे पश्चिम और पूर्व, प्राचीन और आधुनिक कहानी कला के समन्वय का सुन्दरतम प्राणप्रतिष्ठा हुई । पश्चिम के प्रतिनिधि कहानीकार जोला, मोपासा चेखव, टालस्टाय, हार्डी, स्टीवेंसन, वाल्जाक, गार्ल्सवर्दी, वेनेट, और हेनरी आदि की कहानियो को उन्हो ने पढ़ा था और उन से कहानी-कला सीखी थी तथा उस कहानी-कला मे भारतीय आत्म भाव और युगमन को इतनी सफलता से पिरोया की आश्चर्य होता है। फ्रास का यथार्थवाद और टालस्टाय का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद इन के व्यक्तित्व निर्माण के विशिष्ट तत्त्व थे ।

भारत का प्राचीन कथा साहित्य पचतन्त्र और कथा सरित्सागर के अतिरिक्त उन्हो ने अरबी, फ़ासी से 'दास्ताने अमीर हाम्जा' और 'बुस्ताने ख्याल' को खूब पढा था और इन से प्राचीन परम्परा की कथा-शैली और कहानी-शिल्प को देखता था। पूरब की आधुनिक कहानी-कला की दिशा मे टैगोर और आशिक रूप मे प्रभातकुमार जैसे कहानिकारों से प्रभावित हुए थे और उन की कला से भी कुछ सीखा था। लेकिन अध्ययन की इन सारी श्रेणियो से प्रेमचद अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व मे सब से महान और सब से अलग थे, उन्हो ने अपनी कहानियो में जिस निजत्व की प्रतिष्ठा की है वह हिन्दी कहानी-साहित्य की अमूल्य निधि है ।

प्रेमचंद संस्थान के कहानीकार

पिछले पृष्ठों में प्रेमचंद की कहानी-कला के अध्ययन से स्पष्ट है कि इन की शिल्पविधि कुछ मूलगत विशेषताओं से निर्मित हुई है। इस शिल्पगत विशेषताओं में इतनी सहज स्वाभाविक कलात्मक प्रेरणा और प्राणशक्ति रही है कि प्रेमचंद की धारा में प्रायः उन का समूचा युग प्रवाहित हुआ है। विकास युग के अधिकांश कहानीकार निश्चित रूप से इसी शिल्पविधि के ही प्रकाश में कहानी-साहित्य की सृष्टि करते रहे। वस्तुतः प्रेमचंद की कहानी-शिल्पविधि की वे मूलगत विशेषताएँ यथाक्रम यों गिनाई जा सकती हैं—कथानक निर्माण में क्रमबद्धता, इतिवृत्तात्मकता तथा संयोग घटनाओं की प्रेरणा, चरित्र अवतारणा में प्रायः यथार्थ और विरोधी तत्वों का समावेश, व्यक्तिगत प्रतिष्ठा में मनोवैज्ञानिकता, इन का मुख्य धरातल रहा है। शैली के व्यापक प्रकाश में प्रेमचंद की कहानियों का प्रारम्भ, विकास और चरम सीमा का निर्माण क्रमशः भूमिकात्मक और परिचयात्मक, घटनात्मक तथा वर्णनात्मक होता है। चरम सोमा सोद्देश्यता तथा संयोग घटनाओं के धरातल में आती है। लेकिन इन की स्वाभाविकता पर प्रायः शंका नहीं उपस्थित की जा सकती।

शैली की सामान्य दिशा में प्रेमचंद की कहानियाँ प्रायः वर्णनात्मक कथात्मक ही हैं। यद्यपि उन्होंने अन्यान्य शैलियों को भी अपनाया है। प्रेमचंद के समूचे कहानी-साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि उन्होंने कभी भी जागरूक होकर कहानी-शिल्पविधि को उतना महत्व नहीं दिया है, जितना कि इस के भाव पक्ष को। अर्थात् विशुद्ध शैली की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियाँ और उन की शिल्पविधि उस राजपथ की भाँति हैं जिस से कोई भी बेखटक सहज रूप से लक्ष्य तक पहुँच सकता है। लक्ष्य और अनुभूति की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियों की सृष्टि सदैव एक निश्चित लक्ष्य और सोद्देश्यता को लेकर हुई है। अनुभूति, वस्तुतः प्रेरणा तत्त्व में न आकर चरित्र-चित्रण तथा चरित्र निर्माण में प्रयुक्त हुई है। अतएव शिल्पविधि के इन तत्त्वों और अंगों से प्रेमचंद की कहानी-कला के एक स्वतंत्र संस्थान की प्रतिष्ठा हुई है, और इस संस्थान में, प्रभाव, प्रेरणा आदि की दृष्टि से हिन्दी के अधिकांश कहानीकारों को शिल्पगत दिशा और अभिव्यक्ति का माध्यम मिला है।

विश्वम्भर नाथ जिज्जा

भाव पक्ष की दृष्टि से जिज्जा की कहानियाँ 'प्रसाद' संस्थान में आती हैं। लेकिन विशुद्ध शिल्प की दृष्टि से इन की कहानियाँ प्रेमचंद संस्थान में ही आती

हैं। इन की प्रारम्भिक कहानियो मे 'विदीर्ण[1] हृदय' तथा विकास की कहानियो मे 'परदेशी[2]' आदि कहानियाँ ली जा सकती हैं। 'विदीर्ण हृदय' को कथा वस्तु का निर्माण दो सखियो के सयोगात्मक मिलन से होता है। न जाने कब की बिछडी हुई सखी अपनी बीती हुई करुण कहानी कहती है, और अंत मे विश्राम करके मर जाती है, तथा अपनी सखी को विदीर्ण हृदया के रूप मे तडपती छोड जाती है। 'परदेशी' मे, विधवा जमुना के दरवाजे पर सयोग वश एक परदेशी, काशी सूर्य ग्रहण स्नान के सबंध मे आकर टिकता है। जमुमा भाववश उसे अपना हृदय दे डालती है, लेकिन एक दिन परदेशी एकाएक न जाने कहाँ चला जाता है, फिर कभी नही लौटता, इस तरह ये दोनो कहानियाँ वर्णनात्मक ढंग से कही गई है। इन के विकास-क्रम पर सयोग घटना के तत्त्व स्पष्ट है तथा इन की सोद्देश्यता भी उभरी हुई है।

जी० पी० श्रीवास्तव

हिन्दी मे हास्यरस के कहानीकार, जी० पी० श्रीवास्तव की कहानियाँ 'इन्दु' और 'गल्पमाला' के माध्यम से आई। 'इन्दु' की 'पिकनिक' कहानी इनकी प्रारम्भिक कला के उदाहरण मे रखी जा सकती है, जिस मे इन्होने वर्णनात्मकता, घटनाओ, सयोगो द्वारा रोचकता और हास्य लाने का प्रयत्न किया है। 'गल्प-माला', की दो कहानियाँ, 'मैं न बोलूँगी[3]' और 'झूठमूठ[4]' मे केवल घटनाक्रमो के सहारे हास्य की निष्पत्ति हुई है। ये दोनो कहानियाँ इन की -विकसित कला के उदाहरण हैं। आगे चलकर 'लबी दाढ़ी', कहानी सग्रह मे इन की कला का पूर्ण प्रतिनिधित्व हो गया है। लेकिन इन समस्त कहानियो मे सर्वथा सयोगो, विविध विरोधी परिस्थितियो के निर्माण मे अवाछनीय कटाक्ष और अतिरजित वर्णनो, प्रसगो की अवतारणा हुई है। फलत इन की कला का स्तर कुछ गिर गया है। शिष्ट हास्य का सर्वथा अभाव रह गया है। इस का सबसे बडा कारण, इन की चरित्र-चित्रण कला का दोष है। इन्होने प्राय. टाइप चरित्रो अप्रासगिक और अस्वाभाविक प्रसंगो, परिस्थितियो मे चल कर कहानी मे हास्य, विनोद लाने का

---

[1] इन्दु, १९१५ ई० कला ६, खंड २ किरण १

[2] मधुकरी, प्रथम खंड

[3] हिन्दी गल्पमाला, भाग १ अंक २

[4] हिन्दी गल्पमाला, भाग १ अंक ४

प्रयत्न किया है । यही कारण है कि इन के चरित्रो से हमारा न तो साधारणी-करण हो पाता है, न हम मे उस के प्रति सवेदना या सहानुभूति ही उत्पन्न हो पाती है । इस दिशा मे प्रेमचन्द की कुछ हास्य प्रधान कहानियाँ, जैसे, 'बूढी काकी', और 'मोटेराम शास्त्री', आदि बहुत सफल कहानियाँ है ।

राजा राधिकारमण सिह

भाषा, शैली और वर्णन, प्रणाली मे राजा राधिकारमण सिह मे बहुत प्रवाह है । शिल्पविधान मे इन की कहानियाँ प्रेमचंद की कला से बहुत प्रभावित है । ये प्रेमचद के आरम्भ काल से आज तक बराबर कहानियाँ लिखते आ रहे है, लेकिन कहानियाँ अपनी शिल्पविधि मे प्रेमचन्द सस्थान से बाहर नही जा सकी है । इस के उदाहरण मे 'गाँधी टोपी', और 'कुसुमाजलि' कहानी सग्रह से कहानियाँ ली जा सकती है । कथा-वस्तु के निर्माण मे इन्हो ने घटनाओ और इतिवृत्तात्मकता का बहुत सहारा लिया है । फलत. इन की कहानियाँ बहुत लंबी, विस्तृत हो गई है, जैसे 'गाँधी टोपी' कहानी, ४५ पृष्ठो की कहानी है । इन की कहानियो की सोद्देश्यता और आदर्शवादिता सर्वत्र स्पष्ट है । 'दरिद्र नारायण,' 'इस हाथ से दे उस हाथ से ले', 'विजली', 'मरीचिका' आदि कहानियाँ उस के उदाहरण है । निर्माण-शैली मे, कहानियो मे बार-बार घटना-चक्रो का सहारा लिया गया है । इन की कहानियो की प्रेरणा विन्दु प्रायः सामयिक समस्याएँ तथा सामाजिक स्थितियाँ रही है । इन्ही की सवेदना से इन की कहानियो का निर्माण होता है, जिन मे स्वभावत वर्णनात्मकता, घटना-क्रमो को मुख्य साधन बनाना पडा है ।

विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'

कौशिक जी की कहानी-कला मे पूर्ण रूप से प्रेमचद कला का प्रति-निधित्व हुआ है । इस का अध्ययन हमे इन के दो प्रतिनिधि कहानियो 'वह प्रतिमा' और 'ताई', कहानियो के शिल्पविधान मे मिल सकता है । 'वह प्रतिमा' और 'ताई' दोनो कहानियो की सवेदनाएँ पारिवारिक धरातल से ली गई हैं । इन में पति-पत्नी, दो चरित्रो को लिया गया है, लेकिन 'वह प्रतिमा' मे जहाँ पति पत्नी के सहज प्रेमनिष्ठा की समस्या है, वहाँ 'ताई' मे पति-पत्नी दूसरे के बच्चे के प्रति स्नेह वात्सल्य की समस्या है । 'वह प्रतिमा' मे कथानक निर्माण चमेली और उस के पति के वैवाहिक जीवन को लेकर कथासूत्र के रूप मे आरम्भ होता है, कथानक का विकास उन के गृहस्थी के विविध क्षेत्रो मे होकर

अंत में चमेली की मृत्यु पर जाकर समाप्त होता है। शैली के व्यापक रूप में कहानी की निर्माण-शैली दोनो मे दो तरह की हैं। 'वह प्रतिमा' में प्रथम पुरुष में कहानी की अभिव्यक्ति हुई है तथा 'ताई, अन्य पुरुष शैली मे' लेकिन दोनो कहानियाँ सर्वथा वर्णित और कथित हैं, व्यंजित नही। 'ताई' कहानी की समस्या अपेक्षाकृत मनोवैज्ञानिक समस्या है। रामजी दास अपने भतीजे मनोहर को शिशुवत् और पुत्रवत् प्यार देते हैं। इस से उन की पत्नी रामेश्वरी को स्पर्द्धा होती है। यद्यपि वह भी अपने अवचेतन रूप मे उसे मातृत्व और स्नेह की भावना देती रहती है लेकिन इस पर ईर्ष्या जलन की भावना एक मोटा पर्दा डाले रहती है। फलत संपूर्ण कहानी मे स्पर्द्धा और सहज स्नेह का अंतर्द्वन्द्व होता रहता है। लेकिन शैली के सामान्य पक्ष मे इस मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वन्द्व की भी अभिव्यक्ति वर्णनो द्वारा हुई है अर्थात् कहानी के विकास और निर्माण के लिये सब कुछ कहानीकार को ही कहना पडा है। वस्तुतः दोनो कहानियों मे यथार्थ और आदर्श का सघर्ष सफलता से व्यक्त हुआ है और इन दोनो कहानियो के अत मे आदर्शवाद की प्रतिष्ठा भी स्पष्ट है। अतएव ये कहानियाँ एक और इतिवृत्तात्मक हुई हैं, दूसरी ओर इन का विकास सयोगो और कार्यो के माध्यम से हुआ है। कहानी का विकास भाग और चरम सीमा के उपरान्त भी सोद्देश्यता भूमिका और उपसहार के रूप मे बार-बार उभर आई है। 'वह प्रतिमा' और 'ताई', दोनो मे दो विरोधी भाव धारा के चरित्रो को अत मे आदर्शवादी दिखाया गया है। दोनो का आपस मे समन्वय सिद्ध किया गया हे। वस्तुत. इसी सोद्देश्यता की प्रेरणा से इन की कहानी कला में उपर्युक्त सभी तत्त्व आए हैं।

पंडित ज्वालादत्त शर्मा

पडित ज्वालादत्त शर्मा, की कहानियो मे इन का कथा शिल्पी व्यक्तित्व समाज सुधारक और जीवन सघर्षो के चित्रीकरण मे स्पष्ट है। इन की समस्त कहानियाँ मुख्यतः वर्णनात्मकता के माध्यम से आई हैं जिसे हम शैली की दृष्टि से ऐतिहासिक शैली कह सकते हैं।

कहानियो के विकास तथा चरम सीमा मे सयोगो और दैवी घटनाओं का उपयोग अप्रत्याशित ढंग से हुआ है। इन दोनो तत्वो के सहारे इन्हो ने अपनी कहानियो मे यथार्थ सघर्ष और मामाजिक परिस्थितियो, रूढियों के सम्मुख आदर्श की प्रतिष्ठा की है। 'विधवा', 'अनाथ' बालिका' और 'दर्शन' आदि इन की प्रतिनिधि कहानियाँ इस के उदाहरण है।

गोविन्दवल्लभ पन्त

गोविन्दवल्लभ पन्त अपने भावात्मक पक्ष मे, वस्तुत: प्रसाद के व्यक्तित्व के समीप हैं। 'जूठा आम', और 'मिलन मुहूर्त्त' शीर्षक कहानियो मे पन्त जी की कवित्वपूर्ण शैली और भावुकता-प्रदर्शन से वातावरण बहुत काव्यमय हो गया है। लेकिन शिल्पविधि की दृष्टि से पंत जी की कहानियाँ प्रेमचद संस्थान के अंतर्गत आती हैं : 'जूठा आम', मे कहानी के कथानक का विकास दैवगत संयोग से होता है। माया और कहानी के 'मैं' मे सच्चा आकर्षण है, एक तरह से वे दोनो अव्यक्त ढंग से एक दूसरे से प्रेम कर रहे हैं। एक दिन माया आम चूस रही थी, अचानक उसके मुँह से आम चूसते-चूसते उसकी गुठली मुह से फिसल गई। माया को एकाएक यह ध्यान हुआ कि वह गुठली मैं, के चौके मे गिरेगी। फलत. माया उसे पकडने के लिए दौडती है और गुठली के साथ वह भी चौके मे गिर कर मर जाती है। मैं, उस गुठली को माया के प्रेम का प्रतीक मानकर, अपने जीवन से वैराग्य ले लेता है। कालान्तर मे उसी गुठली द्वारा एक पेड़ खडा होता है और वह उसकी छाया तथा फल के संतोष से अपना जीवन व्यतीत करता है। कहानी सोद्देश्य लिखी गई है और कहानी के निर्माण मे आदर्श-वादिता का भी पुट स्पष्ट है। 'मिलन मुहूर्त' की संवेदना ऐतिहासिक है। इस मे उपगुप्त और वासव दत्ता को लेकर प्रेम की सवेदना को पूर्ण इतिवृत्तात्मक ढग से कहानी अभिव्यक्त हुई है। 'तैमूर लंग', 'सबसे बडा रत्न,' आदि कहानियाँ भी इन की कहानी कला की प्रतिनिधि कहानियाँ है।

सुदर्शन

प्रेमचद सस्थान मे सुदर्शन वस्तुतः प्रमुख प्रतिनिधि कहानीकार है। प्रेमचद की भाँति इन का भी उदय उर्दू से हुआ है। फलत. इन की भी कला मे स्वाभाविक भाषा शैली, यथार्थ चरित्र चित्रण और कहानी मे वर्णनात्मकता के साथ ही विश्लेषण तत्त्व भी सफलता से चरितार्थ हुए है। इन की कहानी के धरातल मे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और चरित्रो मे व्यक्तित्व प्रतिष्ठा, दोनो विशिष्ठ ढंग से प्रतिफलित हुए है। यही कारण है कि प्रेमचंद सस्थान मे प्रेमचद के बाद, सुदर्शन को सब से अधिक लोकप्रियता मिली। इतना ही नही, बल्कि इन्हो ने प्रेमचद जी को कहानी-कला की धारा मे अपनी ओर से प्राणशक्ति भी दी है। शिल्पविधि के प्रकाश मे इन्हो ने कई ढंगो से कहानियाँ लिखी। इन की कुछ कहानियाँ मुख्यतः आदर्श प्रतिष्ठा के धरातल से लिखी गई है,

जिन मे कथानक यथार्थ जीवन के पहलुओ को छूता हुआ आगे बढता है, आदर्श से परस्पर द्वन्द्व होता हे तथा अत मे आदर्श की स्थापना होती है। इस मे दो विरोधी भावधारा के चरित्रो का विश्लेषण, इस की सब से बडी विशेषता है। 'हार की जीत', इस वर्ग को कहानियों की प्रतिनिधि कहानी है। कुछ कहानियाँ ऐतिहासिक संवेदना को लेकर निर्मित हुई है, जिन मे एक ओर राजा महाराजा सम्राट आदि चरित्रो की कहानी मिलती है, दूसरी ओर उन के प्रकाश मे सामान्य चरित्रो की विशिष्ट कहानियाँ मिलती है। पहली प्रकार की कहानियाँ अपने निर्माण और विकास मे बहुत लम्बी कहानियाँ हो गई हैं। इन्हे विभिन्न प्रकरणो मे विकसित लघु उपन्यास कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी, जैसे, 'पत्थरो का सौदागर', 'फरऊन का प्रेम', ये दोनो कहानियाँ क्रमश. १८ १२ अनुच्छेदो मे समाप्त हुई है। ऐसी कहानियो की वर्णनात्मकता ही इन की कलात्मक विशेषता है तथा मानव हृदय की चिरतन सत्यता के चित्र इन के भावात्मक आकर्षण है। 'एथेन्स का सत्यार्थी' इसका सुन्दर उदाहरण है। सुदर्शन की अधिकाश कहानियाँ दैनिक जीवन की विविध इकाइकों के धरातल से लिखी गई है। ऐसी कहानियो मे व्यक्ति और समाज की सामान्य से सामान्य, नगण्य घटनाओ, समस्याओ तथा जीवन की विरोधी परिस्थितियो को अभिव्यक्ति मिलती है। वस्तुत इन धरातलो से लिखी हुई कहानियाँ अपेक्षाकृत छोटी और सूक्ष्म मनोविश्लेषण की ओर अग्रसर हुई है। इन मे कथावस्तु, चरित्र और उद्देश्य तीनो का सुन्दर तादात्म्य हुआ है। 'सूरदास', 'मास्टर', 'आत्माराम', 'सन्यासी' और 'हेर फेर', इस वर्ग की प्रतिनिधि कहानियाँ है। प्रेमचद सस्थान के विकास मे इन्हो ने कुछ नये शिल्पगत प्रयोग भी किए है। विभिन्न पात्रो के मुख से आत्म-कथन करा कर तथा कहानी की विभिन्न घटनाओ, विकास-क्रमो के आत्म-वर्णनो से सम्पूर्ण कहानी गठित निर्मित होती है। इस कहानी शिल्प मे चरित्रो का आत्म-विश्लेषण, कथानक की सूक्ष्मता, कहानी की समस्या मे द्वन्द्व का प्राधान्य आदि कलात्मक विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। 'कवि की स्त्री' और 'दो मित्र' ये इस शिल्पविधान की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

वृन्दावन लाल वर्मा

प्रेमचंद ने अपनी 'नव निधि' की ऐतिहासिक कहानियो द्वारा जिस शिल्पविधान और आदर्शवादिता की प्रतिष्ठा की थी, उस का पूर्ण विकास वृन्दावन लाल वर्मा की कहानी कला द्वारा हुआ। वर्मा जी की प्रारम्भिक कहानियाँ

'राखी बंद भाई[१]' तथा 'तातार और एक वीर राजपूत' 'सरस्वती' के माध्यम से विशुद्ध द्विवेदी युगीन कहानियाँ है। इन कहानियो की कला, पूर्ण रूप से प्रेमचद की ऐतिहासिक कहानियो 'राजा हरदौल', 'रानी सारधा' और 'मर्यादा की वेदी' आदि से मिलती है। वस्तुतः इसी कला का विकास उत्तरोत्तर वर्मा जी की ऐतिहासिक कहानियो मे होता गया तथा इस का चरम विकास आगे चल कर वर्मा जी के 'कलाकार का दड', 'जैनावादी बेगम', 'शेरशाह का न्याय', 'सौन्दर्य प्रतियोगिता', और 'खजुराहो की दो मूर्तियाँ' आदि ऐतिहासिक कहानियो मे मिलता है। इन समस्त कहानियो की शिल्पविधि पूर्ण रूप से प्रेमचंद सस्थान के अतर्गत है अर्थात् वही वर्णनात्मकता, वही इतिवृत्तात्मकता, वही विरोधी चरित्रो की अवतारणा जन्य द्वन्द्व और अत मे आदर्श की प्रतिष्ठा।

यहाँ यह अवश्य उल्लेखनीय है कि वर्मा जी ने अपन। इन ऐतिहासिक कहाँनियो मे प्रेमचद से बहुत आगे बढ कर ऐतिहासिक तथ्य और उसकी वस्तु निष्ठा का प्रतिपालन अपूर्व ढग से किया है। इन कहानियो मे 'प्रसाद' की भाँति ऐतिहासिक वातावरण, केवल कल्पना भावुकता और कवित्व पूर्ण शैली से नही किया गया है, वल्कि इस के वातावरण के पीछे कहानीकार ने सर्वत्र ऐतिहासिक तथ्य, खोज और स्वाभाविकता को अपनी कला का साधन बनाया है। अतएव इन कहानियो की कला मे ऐतिहासिक सवेदनशीलता पूर्ण सफलता से व्यक्त हुई है। इधर वर्मा जी ने सामयिक समस्याओ तथा जीवन के प्रति दिन की सवेदनाओ को लेकर सफल सामाजिक कहानियाँ लिखी है। 'शरणागत', 'कटा फटा झडा', 'तिरगे वाली राखी', 'हमीदा', 'मालिश', 'कौडी' और 'अपनी बीती', आदि कहानियाँ इस के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन कहानियो का शिल्पविधान ऐतिहासिक कहानियो से बिलकुल भिन्न है। इन मे कथानक का न वह विस्तार हे, न इतिवृत्तात्मकता। चरित्रो के मनोविश्लेषण की ओर सफल प्रयत्न हुआ है, तथा ये कहानियाँ निश्चित रूप से चरित्र प्रधान हो गई हैं। कहानियो की निर्माण शैली मे वर्णनो, घटनाओ की अपेक्षा कथोपकथनो, व्यजनाओ तथा मनोवैज्ञानिक आरोह-अवरोह को साधन बनाया गया है। चरम सीमा भी सयोग घटनाओ से हट कर प्राय. स्वाभाविक स्थितियो पर आधारित हुई है, लेकिन इन कहानियो मे भी वर्मा जी की आदर्शवादिता, चरित्र के प्रति महान् निष्ठा, तथा मानवता की विराट भावना सर्वत्र व्यजित है। इन कहानियो की भी सृष्टि मे निश्चित रूप से सोद्देश्यता और आदर्शवादिता दो मुख्य प्रेरणाएँ है।

---

[१] सरस्वती भाग १० सितम्बर १९०९ संख्या ९

प्रेमचद की कहानी कला की विकास कालीन धारा मे, आगे चल-कर हिन्दी मे, अनेक कहानीकार आए जिन की कहानीकला के मुख्य धरातल मे व्यक्तिगत, सामाजिक समस्या अथवा घटना विशेष, मानसिक प्रवृत्ति विशेष, आदि इकाइयाँ मूल रूप से आती है। इन कहानीकारो मे भगवती प्रसाद वाजपेयी, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', ऋषभ चरण जैन, सत्य जीवन वर्मा, श्रीराम शर्मा 'राम', अन्नपूर्णा नन्द, तथा परिपूर्णानद वर्मा, कृष्णानद, मोहन-लाल महतो 'वियोगी' तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार मुख्य रूप से आते है। इन मे से भी भगवती प्रसाद वाजपेयी, श्रीराम शर्मा 'राम' और चन्द्र-गुप्त विद्या-लंकार वर्तमान काल मे अपनी इस कला के और प्रतिनिधि कहानीकार है। वाजपेयी जी और 'मस्त जी' की कहानी कला इस के उदाहरण मे सदैव रखी जा सकती है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी

वाजपेयी जी की कहानी कला उक्त सत्य के प्रकाश मे सब से पहले आती है। इन की प्रारम्भिक और आज की कहानियो को पढ़ कर निश्चित रूप से लगता है कि इन के व्यक्तित्व का निर्माण एक ओर शरद्चन्द्र तथा दूसरी ओर प्रेमचद के व्यक्तित्व के सुन्दर सामजस्य से हुआ है। इन्हो ने हास्योन्मुख जीवन की विविध इकाइयो को अपनी उच्च कला मे सजो कर अपूर्व ढग से मानव सवेदना को स्पर्श किया है। 'खाली बोतल', 'अँधेरी रात', 'मैना', 'हार जीत', 'ट्रेन पर', 'इन्द्रजाल', आदि कहानियो की सवेदनाएँ हमारे सामाजिक क्षेत्र तथा उस की विशिष्ट स्थितियो से चुनी गई है। यही कारण है कि इन सवेद-नाओ से निर्मित कहानियाँ भावोद्रेक और लक्ष्य की तीव्रता के फलस्वरूप कही-कही प्रतीकात्मक हो गई है, जैसे 'खाली बोतल'। यह कहानी समाप्त होते हुए सामतशाही दृष्टिकोण और मनोभावो का प्रतीक है। वाजपेयी जी की शिल्पविधि इन कहानियो मे अत्यन्त पुष्ट और पूर्ण है, अपनी सोद्देश्यता मे इन कहानियो के शिल्पविधान पूर्ण सफल है।[१]

---

[१] उनकी कहानियों की तुलना मुक्तक काव्य से की गई है जिस में सोने की तौल जैसी सफाई और राई रत्ती तुली हुई डाँड़ी होती है। आवश्यकता से अधिक एक शब्द नहीं होता। :: खाली बोतल को भूमिका, वाजपेयी जी की कहानियाँ, लेखक, श्री नंददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ५

'इन्द्रजाल', 'मैना', की कहानियो मे शिल्पविधि को सूक्ष्म और व्यंजनात्मक बनाने का प्रयत्न हुआ है। वाजपेयी जी की कहानियाँ प्रेरणा और निर्माण कला दोनो मे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से विशेष रूप से प्रेरित है। अधेरी रात कहानी का निर्माण, वेश्या कजली के यथार्थ जीवन को मानव सवेदनशीलता के प्रकाश मे देखा गया है और ह्रासोन्मुख समाज को बहुत कारुणिक और भयानक चुनौती दी गई है। 'मैना', 'हार जीत', ट्रेन पर', आदि कहानियो के निर्माण के पीछे वही सवेदनाशीलता आदर्श भावना के रूप मे स्पष्ट हो गई है वाजपेयी जी अपनी इधर की कहानियो मे अपेक्षा कृत और मनोविश्लेषण चारित्रिक अंतर्द्वन्द्व के धरातल पर स्थिर होकर अपनी शिल्पविधि के सुन्दरतम उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है।

अन्य कहानीकार

सामाजिक परिस्थिति तथा मानसिक स्थिति विशेष ही देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' की कहानियो का मूल धरातल है। 'अतर ज्वाला', और 'उलट फेर' की कहानियाँ शिल्पविधि विकास की दृष्टि से क्रमश. प्रारम्भ और विकास की कहानियाँ हैं। इन कहानियो मे शिल्पविधान, सयोग और कथात्मक वर्णन के ही माध्यम से चरितार्थ हुआ है। 'उलझन' की कथावस्तु मे सयोग और इतिवृत्तात्मक दोनो तत्व सफलता से व्यक्त हुए हैं।

शैली मे कथोपकथन तत्व को बहुत विशेषता दी गई है। फलत: मस्त जी की कहानी कला मे कही-कही सुन्दर नाटकीयता आ गई है। मानसिक अंतर्द्वन्द्व के स्फुट चित्र, 'धूमिल स्मृति', 'घरोदा', 'उपेक्षिता', आदि कहानियो मे सफलता से मिलते है।

शिल्पविधान वर्ग के मुख्य कहानीकार श्रीराम शर्मा 'राम', और चन्द्रगुप्त विद्यालकार भी है। श्रीराम शर्मा 'राम', शिल्पविधि मे प्रेमचद के विकास-कालीन कहानियो के आगे नही बढ सके है, यद्यपि उन्होने हिन्दी कहानी साहित्य की अपार सेवा की है। चद्रगुप्त विद्यालकार इस वर्ग के समस्त कहानीकारो मे अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक प्रतिभा के कहानीकार है। इन्होने प्रेमचद सस्थान में सुदर्शन की भाँति अपनी मौलिक प्रतिभा का सहयोग दिया है।

वस्तुत: प्रेमचद सस्थान मे आने वाले मुख्यत उक्त कहानीकारो मे अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा और सीमाएँ भी है। उन्होने अपनी स्वतंत्र प्रेरणाओ

से भी कहानियाँ लिखी है। यही कारण है कि इन मे भावात्मक विभिन्नता और प्रसार दृष्टिगत है, लेकिन शिल्पविधान की सीमा मे उक्त सभी कहानीकार किसी न किसी रूप मे प्रेमचद सस्थान मे है, तथा यह हिन्दी कहानी शिल्पविधि के विकास और उन्नति का गौरव पूर्ण सस्थान है।

जयशंकर 'प्रसाद'

'प्रसाद' का बचपन भारतेन्दु की कीर्ति और उन के गौरवपूर्ण साहित्य की छाया मे बीता। भारतेन्दु की मृत्यु के चार ही वर्ष बाद प्रसाद का जन्म हुआ। बारह वर्ष की अवस्था मे, पिता के देहान्त के उपरान्त उन्हे स्कूल की पढाई छोड देनी पडी और घर ही पर उन्हे दीनबन्धु ब्रह्मचारी द्वारा सस्कृत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त उन्हे वेद, उपनिषद् और सस्कृत महाकाव्यो के पढ़ने की सर्व सुलभ परिस्थिति मिली। अतएव इन के हृदय मे भारतीय संस्कृति की गरिमा और पुरातन की मर्यादा दोनो तत्वो ने अपूर्व स्थान प्राप्त किया। इन मनोभावो का सम्पर्क जब इन की काव्य-प्रतिभा से हुआ, तो इन का काव्यात्मक दृष्टिकोण बहुत ऊँचे स्तर पर स्थापित हुआ।

प्रसाद के साहित्यिक सस्कार

काव्य के सबंध मे इन की अपनी अलग कसौटी बन गई, जिस मे इन के एक ओर साहित्यिक और शिक्षा के सस्कार कार्य कर रहे थे, तथा दूसरी ओर इन की काव्य प्रतिभा कार्य कर रही थी। इन दोनो ने इनमे एक अलग साहित्यिक संस्कार का जन्म दिया, जिस की मान्यता बहुत ऊँचे स्तर की थी, "काव्य आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति है, जिस का संबध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नही है, वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान धारा है। विश्लेषणात्मक तर्को से और विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन क्रिया जो वाङ्मय रूप मे अभिव्यक्त होती है, वह नि सन्देह प्राणमय और सत्य के उभय लक्षण प्रेय और श्रेय दोनो से परिपूर्ण होती है, इसी कारण हमारे साहित्य का आरम्भ काव्यमय है, वह एक द्रष्टा कवि का सुन्दर है दर्शन है"[1] इस तरह प्रसाद के ऊँचे साहित्यिक संस्कार ने उन मे काव्य की परिष्कृत भावनाओ को जन्म दिया। साहित्य की समस्त विधाओ, नाटक, कहानी, काव्य, खडकाव्य और महाकाव्य मे इन का दृष्टिकोण विशुद्ध रसात्मक और दार्शनिक हो गया, क्योकि इन के साहित्यिक सस्कारो ने इस सत्य से इन को अभिभूत कर दिया था।

यह सत्य प्रसाद के मन मे निश्चित हो गया था कि काव्य आत्मा की

---

१ काव्य और कला तथा अन्य निबंध—प्रसाद, पृष्ठ १७, १८

कल्पात्मक अनुभूति है और साहित्य का आरम्भ काव्य मय है, और काव्य द्रष्टा कवि का सुन्दर दर्शन है। काव्य की इन्ही परिष्कृत भावनाओ मे प्रसाद की कहानियो का उद्गम होता है, अतएव इन की कहानियाँ आज की कहानी कला या उन की शिल्पविधि पर सफलता से नही कसी जा सकती। इन का संस्कार बिल्कुल स्वतत्र और अपना है। इन का समूचा भावपक्ष काव्यात्मक है। इन कहानियो के पीछे जो प्रेरणा और भावविन्दु है, वह एक ओर गीत काव्य के समीप है, और दूसरी ओर नाटक के समीप। जो कहानियाँ छोटी हैं, उन सब के पीछे प्रसाद के गीत तत्व की प्रेरणा कार्य कर रही है। ऐसी छोटी कहानियाँ प्राय. कहानियाँ न होकर शिल्पविधि की दृष्टि से गद्यगीत और' प्रतिध्वनि', 'प्रलय', 'कला', और 'प्रतिमा' आदि विशुद्धभाव पक्ष की दृष्टि से प्रायः रहस्यवादी और रुपकात्मक भी हुई हैं।

प्रसाद की बडी कहानियाँ भाव विन्दु से प्रेरित न होकर विचार विन्दु या कार्य विन्दु से अकुरित हुई हैं। 'इन्द्रजाल', 'स्वर्ग के खडहर' मे, जैसी कहानियाँ एक विशिष्ट इतिवृत्त लिए हुए हैं। इन कहानियो के पीछे गीतकाव्य से आगे खडकाव्य और महाकाव्य की प्रेरणा है।

दूसरी ओर प्रसाद की जितनी ऐतिहासिक कहानियाँ हैं, प्रायः उन सब के पीछे कही न कही नाटकीय प्रेरणा है। यही कारण है कि, 'आकाश दीप,' 'आँधी', 'सालवती', 'देवरथ', 'पुरस्कार', और 'नूरी' आदि कहानियाँ पढ़ते समय नाटक अधिक लगती हैं। इन कहानियो का एकात प्रभाव भी हमारे ऊपर पूर्ण नाटक सा पडता है, क्योकि इन कहानियो की सारी सवेदनाएँ, सारी परिस्थितियाँ नाटकीय हैं। प्रसाद की जीवन तिथियो को लेकर हम उक्त कहानियो से रचना स्रोत ढूँढे तो हमे स्पष्ट हो जायगा कि इन का सबध क्रमश. प्रसाद के गीत, महाकाव्य और नाटक रचना की प्रेरणा और उनके रचना काल से है, जैसे १९३६ ई० मे कामायिनी महाकाव्य की सृष्टि और उसी समय, 'इन्द्रजाल', कहानी की रचना। १९३१ ई० मे 'चद्रगुप्त' नाटक और 'आँधी', 'पुरस्कार', कहानियो की सृष्टि। १९२९ ई० मे 'एक घूँट', एकाकी नाटक की रचना तथा 'आकाश दीप', कहानी का निर्माण, १९१३ ई० मे, 'कानन कुसुम' तथा 'प्रेम पथिक' गीतकाव्यो की रचना तथा उसी समय 'प्रतिध्वनि', 'प्रतिमा', 'प्रलय', 'प्रसाद', कहानियो की सृष्टि।

इस तरह प्रसाद की कहानियो की सृष्टि और उन का उद्गम, काव्य और नाटक की परिष्कृत भावनाओ मे हुआ है, कहानी कला की सामान्य सीमा मे

नही। प्रसाद की कहानियो की शिल्पविधि के अध्ययन में हमे निश्चय ही इस तथ्य को ध्यान मे रखना होगा।

साहित्यिक परिस्थितियाँ

१९१० ई० तक हिन्दी मासिक पत्र-प्रकाशन अपने आरम्भिक काल मे था। १९०० ई० से पूर्व के हिन्दी पत्रो जैसे 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', और 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' मे प्रायः किसी न किसी स्तर से निकलती थी, परन्तु उन में स्वाभाविक जीवन से निकट सबध रखने वाली कहानी जैसी कोई कलात्मक वस्तु नही प्रकाशित हो रही थी, वस्तुतः तब तक न कोई हिन्दी मे मौलिक कहानीकार था और न तब तक हिन्दी मे कहानी का कोई निश्चित विकास ही हो सका था। १९०० ई० से 'सरस्वती' का प्रकाशन आरम्भ हुआ और इसी मे सब से पहले हिन्दी कहानियो का सूत्रपात हुआ। यह सूत्रपात, चाहे शेक्स-पियर के नाटको की आख्यायिकाओ के रूप मे हुआ, चाहे सस्कृत नाटक के कथानको के आधार पर, परन्तु यह सिद्ध है कि सबसे पहले कहानी कला का विकास 'सरस्वती' द्वारा हुआ। इस भाँति १९०० ई० से सतत आगे इस का प्रकाशन होने लगा और हिन्दी मासिक पत्रो मे एक मात्र 'सरस्वती' का स्थान विशिष्ट हो गया।

सरस्वती-सम्पादक आचार्य द्विवेदी और प्रसाद मे मतभेद होने के कारण सरस्वती द्वारा प्रसाद को उतना प्रोत्साहन और सम्मान नही मिलता था जितना मैथिली शरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय और 'सनेही' को। इस की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रसाद ने अपने स्वतत्र मासिक पत्र 'इन्दु' का प्रकाशन आरम्भ किया। १९०९ ई० मे इस का प्रथम अक प्रकाशित हुआ और एक ही वर्ष बाद 'इन्दु', उच्चकोटि का साहित्यिक मासिक घोषित हुआ। प्रसाद इस मे बराबर लिखने लगे। उन की कविता, लेख और कहानियाँ उसमे आने लगी। प्रसाद की सर्व प्रथम कहानी 'ग्राम', इसी मे १९११ मे प्रकाशित हुई। इस के अतिरिक्त प्रसाद, 'हिन्दी गल्प माला' (१९१८ ई०) के जन्म काल से ही उस के लेखक और समर्थक भी रहे तथा उन की कहानियाँ बराबर, 'इन्दु', 'हिन्दी गल्प माला', और 'माधुरी' के माध्यम से आने लगी।

'प्रसाद' की समन्वयात्मक भावना

प्रसाद के व्यक्तित्त्व का मूल धरातल समन्वय है। कल्पना वृत्ति ही प्रसाद के समस्त काव्य रूपो का मूल स्रोत है जहाँ भाव पक्ष और शैली

पक्ष का सगम है। कल्पना की आधार भूमि पर जब आदर्श तत्व के साथ सगीत का सयोग होता है तब प्रसाद की काव्य सृष्टि होती है। और जब उस कल्पना मे दर्शन और अतीत का सयोग होता है, तब नाटक की सृष्टि होती है, तथा जब उसमे कौतुक और मनोविज्ञान का सयोग होता है, तब कहानी की सृष्टि होती है। प्रसाद का साहित्य-—कल्पना, आदर्श, परिष्करण, सगीत, दर्शन, अतीत और मनोविज्ञान के समन्वयात्मक धरातल पर स्थिर है। इस तरह हम देखते है कि प्रसाद के समस्त काव्य रूपो के आधार तत्व एक से हैं। केवल उनके सामान्य पक्षो और रूपो मे विभिन्नता है। यही कारण है कि प्रसाद की कहानियाँ कही उनके गीत तत्व से अधिक प्रेरित होकर गद्य गीत हो गई है, कही नाटको के अधिक तत्व लेकर नाटकीय शैली मे उतर आई है। वस्तुत इन सब के पीछे प्रसाद की उदार साहित्यिक चेतना और उन की समन्वयात्मक भावना कार्य कर रही है।

गीत मे कल्पना और अनुभूति, खडकाव्य अथवा महाकाव्य मे कल्पना, अनुभूति और व्यापकता का तादात्म्य सर्वथा अपेक्षित है। लेकिन कहानी मे कल्पना का प्राणविन्दु कहा तक उत्कृष्ट कहानी की सृष्टि मे साथ देगा, यह चिन्त्य है। तभी प्रसाद की प्राय: समस्त कहानियाँ भावात्मक हो गई है और कहानी का सर्वथा भावात्मक होना कहानी से दूर हट कर काव्य के पास पहुँचने वाली बात हो जाती है। इस दिशा मे भावात्मक कहानियो को कहानी शिल्पविधि की कसौटी कसना उन्हे कहानी कला के माध्यम से देखना, कठिन हो जाता है, क्योकि इस तरह शिल्पविधि का रूप और अधिक अमूर्त्त और सवेद्य हो जाता है। दूसरी ओर, यह सत्य है कि भावात्मक कहानियाँ अपेक्षा कृत समस्या को मूलाधार बनाकर नही लिखी जाती, बल्कि ऐसी कहानियाँ विशेष वृत्ति या चितवृत्ति मे लिखी जाती है, सामान्य स्थिति मे, किसी भौतिक या यथार्थ समस्या को लेकर कम। सत्य तो यह है कि व्यावहारिक ढग से भावात्मक कहानी मे भावुक उत्तेजना, सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा कहानीकार मे काव्योद्गार की लहरे पैदा करती है और इसी के प्रकट प्रवाह मे कहानी का आरम्भ होता है, बाद मे अन्य तत्व जैसे कथानक, पात्र आदि साधन स्वरूप स्वय धीरे-धीरे आ जाते हैं और कहानी के निर्माण मे अपना योग दे जाते है। वैसे सम्पूर्ण कहानी की अतर्चेतना मे यही काव्योद्गार और सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा कार्य करती रहती है। इसलिए प्रसाद की समस्त कहानियो का आरम्भ केवल दो ढगो से होता है या तो (१) सौन्दर्यानुभूति मे डूब कर प्रकृति चित्रण के साथ, (२) दो पात्रो के कवित्व पूर्ण कथोपकथनो के साथ। शैली की यही विशेषता प्रसाद की समस्त कहानियो के विकास क्रमो मे मिलती जाती है।

कहानियों की शिल्प-विधि का अध्ययन

प्रसाद का कहानी काल १९११ ई० से आरम्भ होकर १९३७ ई० तक फैला हुआ है। इस छब्बीस वर्ष की लम्बी साहित्य-साधना मे उन्होने कुल उनहत्तर कहानियाँ लिखी है, जो क्रमश, 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाश-दीप', 'आधी', और 'इन्द्रजाल', कहानी सग्रहो मे सगृहीत है। अध्ययन की दृष्टि से उन्हे हम तीन कालो मे बाँट सकते है—

(१) प्रथम काल १९११ से १९२२ ई० तक
(२) द्वितीय काल १९२३ से १९२९ ई० तक
(३) तृतीय काल १९३० से १९३७ तक

इन तीनो कालो मे कहानियो का धरातल क्रमश· बदलता गया है और सापेक्षिक दृष्टि से इन कहानियो मे प्रसाद की कहानी कला का आरम्भ, विकास और उत्कर्ष भी स्पष्ट है। प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' से लेकर उनकी अतिम कहानी 'सालवती', तक कहानियो की शिल्पविधि मे वस्तुत उतने मोड नही हैं जितने उनके भाव पक्ष मे। सच तो यह है कि प्रसाद जी कहानियाँ अपेक्षाकृत शिल्पविधि प्रधान नही हैं भाव प्रधान है और हिन्दी कहानी साहित्य मे केवल प्रसाद जी एक ऐसे कहनीकार हैं जिन की कहानी भावो की अनुवर्तिनी रही है शिल्पविधि की अनुवर्तिनी नही।

प्रथम काल

प्रथम काल मे प्रसाद की 'छाया', और 'प्रतिध्वनि', कहानी सग्रहो की कहानियाँ आती हैं। ये सब कहानियाँ छब्बीस है तथा शैली की दृष्टि से एक ओर जहाँ वर्णनात्मक, प्रतीकात्मक और ऐतिहासिक हैं, वहाँ दूसरी ओर विषय की दृष्टि से प्रेम, सौन्दर्य और रहस्य भावना, को लिए हुए हैं। कहानियो का यही रूप क्रमशः इन के द्वितीय और तृतीय काल की कहानियो मे मिलता है लेकिन तीनो कालो की कहानियो मे स्तरगत अतर है।

कथानक

'छाया', और 'प्रतिध्वनि', की कुछ कहानियाँ ऐतिहासिक हैं तथा कुछ काल्पनिक, और दोनो तरह की कहानियो का धरातल भावुकता पूर्ण है। फलतः काल्पनिक कहानियाँ रेखाचित्र और गद्यगीत के समीप आ गई हैं। भावुकता के प्राधान्य से कथानक इतिवृत्त मात्र बन कर रह गया है। यदि हम इतिवृत का

अध्ययन करे तो हमे तीन तथ्य मिलेगे—(१) रेखाचित्र-सी कहानियो के इतिवृत्त केवल प्रसग के रूप मे आते हैं और प्रसगो मे भी एक भाव ही उस का प्राण होता है, स्थूल समस्या नही, जैसे 'प्रतिध्वनि', मे भावना ही कहानी की आत्मा है, (२) कहानियो के कथानक अत्यन्त सूक्ष्म हुए हैं क्योकि वे विभिन्न भावचित्रो के माध्यम से ही चरितार्थ होते हैं। अत. इन मे सकेत और व्यजना प्रमुख है। 'अघोरो का मोह', 'गुदडी मे लाल', और 'करुणा की विजय', आदि कहानियो के कथानको मे यह सत्य पूर्णत स्पष्ट है। इन कहानियो के कथानक जीवन के अलग-अलग प्रसग हैं और उन प्रसगो मे भी एक विशिष्ट भावना की प्रधानता है, घटना का नही। फिर भी व्यजना के माध्यम से इन कहानियो की संवेदनाएँ स्पष्ट हो जाती है और उन मे गुँथे हुए भाव-चित्र भी सार्थक प्रतीत होते हैं। कहानी के इतिवृत्त मे गद्य गीत की शैली प्रभाव डालने वाली बन जाती हे। (३) गद्यगीत के उदाहरण मे, 'प्रलय', 'प्रतिमा', 'दुखिया' 'कलावती की शिक्षा', आदि कहानियाँ आती है।

इन के कथानको को अध्ययन की रेखाओ मे बाँधना बहुत कठिन हो जाता है क्योकि ये पूर्णत. दोनो तथ्यो की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म हैं। 'कलावती की शिक्षा' मे कथानक के नाम पर केवल इतना ही है · श्यामसुन्दर और कला एक ही टेबुल पर पढ़ रहे हैं। श्यामसुन्दर अपना उपन्यास लिखने मे निमग्न हो जाता है और कला पलग पर बैठ कर एक चीनी पुतली लेकर स्वगत कथन करने लगती है, "और कृतज्ञ होना दासत्व है। चतुरो ने अपना कार्य प्रधान करने का इसे अस्त्र बनाया है। इसीलिए इस की ऐसी प्रशसा की है कि लोग इस की ओर आकर्षित हो जाते हैं किन्तु है यह दासत्व। यह शरीर का नही किन्तु अतरात्मा का दासत्व है। इस कारण कभी-कभी लोग बुरी-बुरी बातो का भी समर्थन करते हैं, प्रगल्भता आज जो बडी बाढ़ पर है, बडी अच्छी वस्तु है, उस के बल से मूर्ख भी पडित समझे जाते हैं, इस का अच्छा अभ्यास करना, जिस मे तुम को कोई मूर्ख न कह सके, कहने का साहस ही नहीं। पुतली, तुमने रूप का परिवर्तन भी छोड दिया है, यह और भी बुरा है। सोने के कोर की साडी तुम्हारे मस्तक को भी अभी ढके है, तनिक इस मे खिसका दो। बालो को लहरा दो। लोग लगे पैर चूमने, प्यारी पुतली, समझी न !"
इस के बाद श्यामसुन्दर और कला दोनो प्रेम से गले मिल जाते हैं।

वस्तुत. यह गद्यगीत है और कहने के लिए ढाई पृष्ठो की कहानी, जिस में हमे यही कला का स्वगत कथन मिलता है, शेष कुछ नही। ज्ञात होता है कि

प्रसाद के मन मे एक सूक्ष्म भाव उठा, उसे उन्होने कला के मुख से उस मे स्वगत कथन मे अभिव्यक्त कर दिया और उसे कहानी के नाम पर एक अन्य स्थिर चरित्र श्यामसुन्दर से जोड दिया। इस वर्ग की कुछ लम्बी कहानी जैसे, 'प्रलय', मे कथानक अनेक भाव-चित्रो के माध्यम से आगे बढ़ा हुआ है वहाँ कथानक और भी दुर्बोध हो गया है, क्योकि प्रसाद ने इसे सश्लिष्ट बना कर अपने दर्शन और रहस्यवाद को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। 'प्रलय' का कथानक इतने भाव-चित्रो के अतराल मे चलता है (क) हिमावृत चोटियो की श्रेणी, अनन्त आकाश के नीचे क्षुब्ध समुद्र : उपत्यका की कन्दरा मे, प्राकृतिक उद्यान मे खडे हुए एक युवक और एक युवती (ख) सूर्य का अलात चक्र के समस्त शून्य मे भ्रमण और उस के विस्तार का अग्नि स्फुलिंग वर्षा करते हुए आश्चर्य सकोच : हिमटीलो का नवीन महानदो के रूप मे पलटना, भयानक ताप से शेष प्राणियो का कलटना महाकापालिक के चिताग्नि साधन का वीभत्स दृश्य: प्रचड आलोक और उन का अधकार (ग) भयानक शीत, दूसरे क्षण असह्य ताप, वायु के प्रचड झोको मे एक के बाद दूसरे की अद्‌भुत परम्परा, घोर गर्जन, ऊपर कुहासा और वृष्टि, नीचे महर्णव के रूप मे अनन्त द्रवराशि, पवन, उच्छ्वासो गतियो से समग्र पच महाभूतो को आलोडित कर उन्हे तरल परमाणुओ के रूप मे एक बट वृक्ष केवल एक नुकीले शृंग के सहारे स्थित है। प्रभंजन के प्रचड आघातो से सब अदृश्य हैं। एक डाल पर वही युवक और युवती। (घ) युवती के मुखमडल का स्पष्ट प्रतिबिम्ब मात्र रह जाना और युवक का एक रमणीय तेज पुज बनना उपर्युक्त भाव-चित्रो के अतराल मे चला हुआ कथानक कितना अमूर्त्त है

इस के विषय मे हम इतना ही कह सकते है कि पुरुष, जो ब्रह्म का रूपक है, और युवती माया का प्रतीक है, दोनो एक स्थान पर खड़े है। ब्रह्म सृष्टि के लिए प्रलय लाता है और इस प्रलय के उपरान्त ब्रह्म और माया एकात्म रूप हो जाते है। वस्तुत भाव चित्रो से निर्मित इन गद्यगीतो को कहानी कहना ही अवैज्ञानिक है। इन का मूल्य और इन की कला के पीछे भाव की प्रधानता है, घटनाओ की तारतम्यता की नही।

ऐतिहासिक कहानियो के कथानक के उदाहरण मे हम, 'छाया' की कहानियाँ जैसे, 'सिकदर की शपथ', 'जहाँनारा', 'अशोक', 'गुलाम', और 'चित्तौर उद्धार' आदि को ले सकते है। इन कहानियो के कथानको मे एकसूत्रता तथा इन के विकास का आदि, मध्य, अत तीनो भाग मिलते है। 'सिकदर की शपथ' मे

कथानक का विकास कई मोडो से हुआ है। इस मे कथा-प्रवाह और एकसूत्रता दोनो का समन्वय इन मोडो से स्पष्ट हो जायगा (क) सिकदर भारतीय वीरो के साथ अफगानिस्तान के एक दुर्ग को घेरे हुए पडा है (ख) रात को दुर्ग के नीचे एक प्रहरी सरदार टहल रहा था, सिकदर ने उसे मार डाला और दुर्ग से नीचे गिराई हुई एक डोर के सहारे वह दुर्ग पर चढ जाता है और वह सरदार के पत्नी के प्रकोष्ठ मे पहुँच जाता है (ग) अपने पति के मृत्यु से पत्नी का दुखी होना लेकिन शीघ्र ही दोनो मे प्रेम-सधि हो जाती है। सधि मे सिकदर इस बात की शपथ लेता है कि भारतीय सैनिक अपने देश लौट जॉय। (घ) लेकिन सिकदर अपनी शपथ के विरुद्ध उन भारतीय सैनिको को कही छोड़ता और उन्हे मृत्यु के घाट उतार देता है।

यहाँ कथानक की रेखाएँ बहुत ही स्पष्ट है। इस की एकसूत्रता और इतिवृत्त दोनो निश्चित है। प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियो मे जितनी कहानियाँ समस्या के साथ केवल भावो को आधार मानकर लिखी गई है उन के कथानक छोटे और साकेतिक होते हुए भी गद्यगीतो के कथानको की अपेक्षा स्पष्ट है और उन की निश्चित कथा—इकाई और उन की संवेदना भी स्पष्ट है : जैसे, 'अघोरी का मोह', और, 'करुणा की विजय', आदि के कथानक। परन्तु जो कहानियाँ केवल भाव-दर्शन के धरातल पर भाव-चित्रो के माध्यम से लिखी गई है, उनके कथानक अमूर्त्त अस्पष्ट, और संश्लिष्ठ हुए है, जैसे 'प्रलय' का कथानक। जो ऐतिहासिक या सामाजिक कहानियाँ किसी निश्चित सवेदना और विषय को लेकर लिखी गई है, उन के कथानक सब से अच्छे ढग से निर्मित हुए हैं। उन मे एकसूत्रता,प्रवाह आदि तत्व पूर्ण सफलता से आ गए है, जैसे, 'जहाँनारा', 'अशोक', 'चन्दा', और 'ग्राम', आदि कहानियो के कथानक।

चरित्र

प्रसाद को कहानियो का धरातल बहुत ही ऊँचा है, और इस धरातल की ऊँचाई मुख्यतः उन के चरित्रो के व्यक्तित्व की ऊँचाई है। इस व्यक्तित्व की ऊँचाई मे हमे जहाँ उत्तम कोटि के चरित्रो के दर्शन होते है, वहाँ सब से बडी बात उन के चरित्रो मे यह है कि प्रसाद जी इन के माध्यम से मानव तत्व के चिर प्रश्नो की अवतारणा कर देते है यही प्रसाद की कहानियो का धरातल बहुत ऊँचा उठ जाता है।

प्रसाद के व्यक्तित्व पर सबसे गहरा प्रभाव बौद्ध दर्शन का था और वे

स्वयं स्वभावतः भावुक, सौन्दिर्यनिष्ठ और प्रेमी थे, फलत. इन के चरित्र बोध पर क्रमश' दो प्रभाव पडे। एक ओर बौद्ध दर्शन के प्रभाव से इन के चरित्र अत्यन्त कारुणिक हो गए, और दूसरी ओर भावुक और प्रेमी। पहला प्रभाव मुख्यत स्त्री चरित्र पर है और दूसरे प्रभाव के अतर्गत प्राय: पुरुष पात्र आते है। समग्र रूप मे प्रसाद की कहानियो के चरित्र, प्रेम करुणा आदर्श, बलिदान विद्रोह, क्षमा आदि रेखाओ से निर्मित हैं। वस्तुतः यह सत्य प्रसाद के समूचे कहानी-साहित्य के चरित्रो के सबध मे है। वैसे हम तीनो कालो के चरित्रो के विकास क्रम को अलग-अलग देखेगे और उन मे हम मूल्य-स्तर की विभिन्नता पाएँगे।

स्त्री

प्रसाद की कहानियो मे स्त्री चरित्र की तीन दिशाएँ हैं। पहली दिशा मे वे स्त्री पात्र आते हैं, जो हमारे अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शो के प्रतीक है। दूसरी दिशा के स्त्री पात्र वे हैं जो आधुनिक परिस्थितियो के जीते-जागते उदाहरण हैं और जिन के हृदय मे सामाजिक बधनो और मान्यताओ के प्रति तीव्र विद्रोह है। तीसरी दिशा मे वे स्त्री पात्र आते है जो प्रेमाख्यान के विस्तार से प्रेम के नशे मे सदा डूबे रहते हैं। इस के अतिरिक्त प्रसाद के स्त्री चरित्रो की दो मूलगत विशेषताएँ हैं। प्राय. स्त्रियाँ रूप और यौवन के आदर्श की अनुगामिनी होती है तथा अपने रूप की मादकता से सर्वत्र जादू डालती चलती हैं। वे स्वभावतः त्याग, बलिदान प्रिय होती हैं और अपने अतर मे सर्वदा प्रेम, करुणा, वेदना की मौन कराह लिए रहती है।

कलात्मक दृष्टि से प्रसाद के स्त्री चरित्रो के सबध मे सब से बडी विशेषता यह है कि उन के नाटको तथा काव्यो की भाँति स्त्रियाँ ही यहाँ की प्रतिनिधि कहानियो की नियामिका और सचालिका हैं। यहाँ वे मुख्यत पुरुषो की अपेक्षा अधिक जागृत और जीवन पूर्ण हैं। प्रायः इन के व्यक्तित्व की परिधि मे पुरुष पात्र ही गतिमान हैं, लेकिन ये स्त्री शक्तियाँ कभी पुरुष को पतन की ओर नही ले जाती, वरन् पुरुषो को सर्वथा कर्त्तव्य का ज्ञान कराती हुई उन मे जीवन फूँकती चलती हैं।

प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियो मे स्त्री चरित्र की उपर्युक्त विशेषताएँ अपने बीज रूप मे मिलती हैं। 'जहॅनारा', की जहॉनारा, 'अशोक', की

तिष्यरक्षिता, 'चित्तौर उद्धार' की राजकुमारी आदि स्त्रियाँ हमारे अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शो प्रतीक हैं । इन मे चरित्र का उत्कर्ष और बलिदान दोनो क्षमताएँ स्पष्ट हैं । यहाँ सर्व प्रथम, हमे अपनी परिस्थितियो से विद्रोह करने वाली स्त्री चन्दा मिलती है । नारी के कोमल हृदय मे इस तरह कठोरता और क्रान्ति की ज्वाला का दर्शन होता है चन्दा ने कहा—"हाँ लो मै मरती हूँ । इसी छूरे से तूने हमारे सामने हीरा को मारा था, यह वही छूरा है, यह तुझे दुख से निष्चय छुडाएगा । इतना कह कर चन्दा ने रामू के बगल मे छुरा उतार दिया वह छटपटाया, इतने ही मे शेर का मौका मिला, वह रामू पर टूट पडा और उस की इति कर आप भी वही गिर पडा[१] ।" भावुक स्त्रियो के प्रेम के नशे मे झूमती हुई प्रेमी के गले मे बाँहे डालती हैं—"अभिमान ही तो प्रयास करके तुम से क्यो मिलती । जाने दो, तुम मेरे सर्वस्व हो । तुम से अब यह माँगती हूँ कि अब कुछ न माँगू, चाहे इस के बदले मेरी समस्त कामना ले लो," युवती ने गले मे हाथ डालकर कहा ।

समस्त कहानियो की स्त्रिया युवती हैं और अपने रूप-यौवन से पुरुषो को आकर्षित कर रही हैं, जैसे 'तानसेन', की सौसन, 'चन्दा', की चन्दा, 'ग्राम', की ग्राम बालिका, 'रसिया बालम', की सुमुखि, 'पाप की पराजय', की नीला, ये सब स्त्रियाँ अपूर्व सुन्दरी और नव यौवना हैं । ये इन्द्रनील की पुतली फूलो से सजी हुई झरने के उस पार पहाडी से उतर कर बैठी हैं . उन के सहज कुंचित केश से वन्य कुरुवक की कलियाँ कूद-कूद कर जल लहरियो से क्रीडा कर रही हैं । यद्यपि रंग कचन के समान नही फिर भी गठन साँचे मे ढली हुई हैं, आकर्षक विस्तृत नेत्र नही, तो भी उन मे एक स्वाभाविक राग है ।

इन स्त्री चरित्रो मे करुणा का पुट भी स्पष्ट है । 'दुखिया' की नायिका, 'करुणा की विजय', की रामकली, 'चन्दा', की चन्दा, 'जहाँनारा', की जहाँनारा, 'रसिया बालम', और 'सिकदर की शपथ' की क्रमश राजकुमारी और सरदारनी सब, किसी न किसी भाँति करुणा की आह मे डूबी हुई हैं ।

पुरुष

प्रसाद के कहानी-साहित्य मे, उन के पुरुष चरित्र भी स्त्री चरित्रो की भाँति अपनी कुछ मूलगत विशेषताओ के साथ आते है । दो बातो मे पुरुष चरित्र

---

[१] छाया, चन्दा, पृष्ठ २७ तृतीय संस्करण, संवत् १६८६

प्राकृतिक स्तर से स्त्री चरित्रो के पूर्णत: अनुकूल है, अर्थात् पुरुष का एक वर्ग यहाँ भी अत्यन्त भावुक और प्रेमनिष्ठ है तथा यहाँ भी पुरुष चरित्र प्राय. युवक और सुन्दर व्यक्तित्व के है। उन मे भी प्रेम और त्याग की भावना स्पष्ट है। लेकिन पुरुष चरित्रो की सब से बडी विशेषता है, उन के चरित्र का अनोखापन। इस अनोखेपन के प्रकाश मे, प्रसाद की कहानियो मे कुछ ऐसे प्रतिनिधि पुरुष मिलते है जो समस्त हिन्दी कहानी साहित्य मे अद्भुत हैं. जैसे, नूरी का प्रेमी याकूब, बेला का उपासक गोली, लैला का रामेश्वर, चम्पा का वुद्धगुप्त और सालवती का अभय। इन पुरुष चरित्रो का अनोखापन इन के व्यक्तित्व मे है तथा इन के व्यक्तित्व की विशेषता तीन धरातलो पर है। वे धरातल है (१) चारित्रिक दृढ़ता (२) सवेदनशीतलता और (३) उन के व्यक्तित्व की अतर्मुखी भाव धारा जिस मे विद्रोह, तडप और कोई न कोई ऐसी स्वस्थ कुठा अवश्य स्थान किए रहती है, जिस मे करुणा की बहुत हल्की-हल्की रेखाए छिपी होती हैं।

प्रारम्भिक कहानियो मे पुरुष पात्र उक्त रेखाचित्र की दिशा मे अपने प्राथमिक रूप मे मिलते है। 'तानसेन' का तानसेन, 'रसिया बालम' का युवक, 'कलावती की शिक्षा' का श्यामसुन्दर आदि चरित्र भावुक और प्रेमी है। 'रसिया बालम' की भावुकता और राज कुमारी के प्रति उसका प्रेम कितना नाटकीय है। युवक अपनी उगली के खून से पत्र लिख कर राजकुमारी के पास ले जाता है। हरदम राजकुमारी की खिडकी की ओर देखता हुआ पागल बना है। अत मे उस प्रेम की बलि के वेदी पर वह अपने को उत्सर्ग कर देता है। इस सबध मे यह भी स्मरणीय है कि ऐसे युवक मे भी बहुधा एकाकी और प्रेम के नशे मे झूमते मिलेगे कही तालाब के किनारे वशी बजाते हुए, कहीं खडहर मे कोई चित्र देखते हुए और कही नीले आकाश की ओर निहारते हुए वे ऐसे लगते है जैसे उनकी दुनिया मे प्रेम है और वे एक मात्र प्रेम के पुजारी है। अतएव ये पुरुष चरित्र बहुधा काव्य प्रेमी और कला प्रेमी हो गए हैं और अपनी कोमल प्रवृत्तियो के कारण ये चारो ओर से सवेदना और श्रद्धा के पात्र बनते गए है। क्योकि इन पुरुष पात्रो मे आरम्भ ही से मानवीय सवेदना और शील का इतना विस्तार मिलता है कि उन मे अजीब आकर्षण उपस्थित हुआ है। 'रसिया बालम', का रसिया, 'तानसेन' का रामप्रसाद, 'चन्दा' का प्रेमी, 'गुलाम' का कादिर, 'पत्थर की पुकार', का शिल्पी, 'उस पार का योगी' का नन्दलाल, 'खडहर की लिपि,' का युवक आदि पुरुष चरित्र सर्वथा काल्पनिक चरित्र है। लेकिन इन काल्पनिक चरित्रो मे भी प्रसाद जी ने इस कला से मानवीय संवेदना और शील

की प्रतिष्ठा की हे कि ये सब पुरुष चरित्र हमे आकर्षक लगते है। इन का सब से बडा रहस्य यही है कि प्रसाद जी अपने इन पात्रो मे किसी न किसी भाँति निश्चय ही भाव मडल उपस्थित कर देते है और उस भावमडल मे करुणा की एक अदृश्य लीक खीच देते हैं।

प्रारम्भिक कहानियो के स्त्री पुरुष चरित्रो मे दो वर्ग है। जो कहानियाँ सर्वथा काल्पनिक प्रतीकात्मक अथवा रहस्यवादी ढग की है, जैसे 'प्रलय', 'प्रतिभा', 'खडहर की लिपि', 'उस पार का योगी', और 'प्रसाद', आदि उन कहानियो के स्त्री पुरुष पात्र अधिक छायावादो ढग के हो गए हैं। फलत. उन चरित्रो की व्यक्तित्व प्रतिष्ठा नही हो सकी है। लेकिन जिन चरित्रो की अवतारणा यथार्थ और कल्पना के सयोग से हुई है उन मे अपेक्षाकृत व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के अतिरिक्त उन के स्पष्ट मनोभावो के उदाहरण मिलते हैं।

इस तरह इन प्रारम्भिक कहानियो मे चरित्र अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व मे नही मिलते, वे सर्वथा एकागी दिखते है। इस का सब से बडा कारण यह है—कि इस काल की प्राय अधिकाश कहानियाँ कल्पना के धरातल से लिखी गई है।

फिर भी यहाँ की कहानियाँ चरित्रो के बाह्य पक्ष के धरातल पर बहुत कम टिको हैं। यहाँ की कहानियो का मूल धरातल चरित्रो के मनोभाव हैं और इस मनोभाव के केन्द्र-विन्दु प्रेम है। इसी प्रेम के किनारे मानव सवेदना और शील मिलता रहता है। इस के उदाहरण मे 'ग्राम', 'गूदडी', 'साई', 'अघोरी का मोह', 'पत्थर की पुकार', 'दुखिया', 'जहाँनारा', 'शरणागत' आदि कहानियो के चरित्र स्मरणीय हैं।

शैली

प्रसाद की कहानियो की निर्माण-शैली भारतीय नाटक प्रणाली के प्रकाश मे है। अर्थात् प्रसाद की कहानियो मे बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठा हुई है। यह सत्य एक ओर जहाँ प्रसाद की लम्बी कहानियो मे विशेषकर उन की प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियो मे मुखरित मिलता है, वहाँ दूसरी ओर यही सत्य उन की छोटी और भावपूर्ण कहानियो मे बहुत स्पष्ट और सूक्ष्म हो गया है। इन कहानियो मे सर्वत्र आदि से लेकर अंत तक प्रश्न और कौतूहल बिखरा हुआ मिलता है तथा कहानी के अत मे फिर वही प्रश्न उभर पडता है जो कहानी मे बीज रूप से विकसित होता हुआ फलागम की ओर आ रहा था। यही कारण है कि प्रसाद की ये छोटी कहानियाँ गद्यगीत का रूप लेकर रहस्यात्मक हो गई हैं।

प्रथम तथ्य प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियो मे नही मिलेगा और मिलेगा भी तो अविकसित रूप मे । वस्तुतः यहाँ की कहानियो का आरम्भ विकास और चरम सीमा प्रसाद की कहानी कला के आरम्भिक रूप का उदाहरण है । अपेक्षाकृत छोटी कहानियो के सबध मे उपर्युक्त द्वितीय तथ्य अवश्य चरितार्थ होता है ।

आरम्भ

प्रसाद की समस्त कहानियो का आरम्भ प्राय दो शैलियो से हुआ है । या तो उन का आरम्भ प्राकृतिक चित्रण या दृश्यो के वर्णन से होता है, या दो पात्रो के नाटकीय कथोपकथन से ।

यहाँ प्रारम्भिक कहानियो मे इन के उदाहरण स्पष्ट हैं । 'दुखिया' नामक कहानी का आरम्भ, "पहाडी, देहात, जगल के किनारे गाँव और बरसात का समय । वह भी ऊषा काल । बडा मनोरम दृश्य था । रात की वर्षा से आम के वृक्ष सराबोर थे । अभी पत्तो पर से पानी ढुलक रहा था । प्रभात के स्पष्ट होने पर भी धुधले प्रकाश मे सडक के किनारे आम वृक्ष के नीचे एक बालिका कुछ देख रही थी । 'टप' से शब्द हुआ, बालिका उछल पडी, गिरा हुआ आम उठा कर अंचल मे रख लिया" ।[१] "यह छोटा-सा सरोवर क्या ही सुन्दर हे । सुहावने जामुन के वृक्ष चारो ओर से घेरे हुए है । × × × सध्या हो चली है । विहग कुल कोमल कलरव करते हुए अपने नीड की ओर लौटने लगे हैं । अधकार अपना आगम सूचित करता हुआ वृक्षो की ऊँची टहनियो के कोमल किसलयो को धुधले रंग का बना रहे है । पर सूर्य की अंतिम किरणे अभी अपना स्थान नही छोडना चाहती । वे हवा के झोको से हटाई जाने पर भी अधकार के अधिकार को विरोध करती हुई सूर्यदेव की उगलियो की तरह हिल रही है" ।[२]

इस तरह के प्राकृतिक चित्रण और दृश्य वर्णन शैली के आरम्भ, 'चन्दा', 'ग्राम', 'रसिया बालम', 'शरणागत', 'गुलाम', 'प्रसाद', 'उस पार का योगी', आदि कहानियो मे मिलते हैं दूसरे प्रकार की आरम्भ शैली में कथोपकथन आरम्भ आते है जैसे 'अघोरी का मोह', का आरम्भ—

"आज तो भैया, मूँग की बरफी खाने को जी नही चाहता, यह साग तो बडा ही चटकीला है : मै तो ."

"नही-नही जगन्नाथ, उसे दो बरफी तो जरूर ही दे दो ।"

---

[१] प्रध्विनि, दुखिया, पृ० ५५ [२] छाया, तानसेन, पृ० १-२

"न-न . क्या करते हो , मैं गगा जी मे फेक दूँगा।"

"लो तब तो मै तुम्ही को उलटे देता हूँ", ललित ने कह कर किशोरी की गर्दन पकड ली। दीनता से मोती और प्रेम भरी आँखो से चन्द्रमा की ज्योति मे किशोर ने ललित की ओर देखा।

इसी भाँति पत्थर की पुकार का आरम्भ, नवल और विमल दोनो बात करते हुए टहल रहे थे। विमल ने कहा—

"साहित्य सेवा भी एक व्यसन है।"

"नही मित्र : यह तो विश्व भर की एक मौन सेवा समिति का सदस्य होना है।"

"अच्छा तो फिर बताओ, तुमको क्या भला लगता है ? कैसा साहित्य रुचता है ?

"अतीत और करुणा का जो अंश साहित्य मे है वह मेरे हृदय को आकर्षित करता है।"

तात्विक दृष्टि से कहानी के इन आरम्भो मे मूल सवेदना तथा कथासूत्र का बीज निहित होना चाहिए। लेकिन इन कहानियो की आरम्भ शैली मे प्राय वह बीज निश्चित रूप से हर कहानी मे नही मिलता, वरन् कुछ ही कहानियो मे आ सका है, जेसे 'तानसेन' के आरम्भ मे कहानी की मूल सवेदना के बीज है "सध्या हो गई। कोकिल बोल उठा एक सुन्दर कोमल कठ से निकली हुई रसीली तान ने उसे भी चुप कर दिया।" कथोपकथनात्मक आरम्भ शैली की दिशा मे कहानी का बीज, 'पत्थर की पुकार' मे मिल जाता है—"अतीत, और करुणा का जो अश साहित्य मे है वह मेरे हृदय को आकर्षित करता है।"

वस्तुत. आरम्भ मे कहानी के बीज की निश्चित प्रतिष्ठा द्वितीय और तृतीय काल की कहानियो मे मिलती है। यहाँ बीज की प्रतिष्ठा अपने प्रयोग काल मे है।

विकास

इस काल की कहानियो मे प्रायः अधिक कहानियाँ बहुत छोटी और कला को दृष्टि से गद्यगीत की भाँति है। ऐसी कहानियो मे विकास-क्रम का अध्ययन वैज्ञानिक ढङ्ग से नही हो सकता। इस के पीछे मुख्य कठिनाई तो यह है कि ये गद्यगीत है, कहानी नही। इन का धरातल केवल एक भाव है, एक अनुभूति है, समस्या या सवेदना नही, तथा यही एक भाव, एक अनुभूति समूची कहानी मे

इस तरह से गुँथी रहती है जैसे गीत मे एक वृत्ति या संगीत, जिस का आरम्भ, विकास सब एक ही मे होता है, अलग से नही देखा जा सकता।

कहानी शिल्पविधि की दृष्टि से जो कहानियाँ हैं उन मे भी विकास-क्रम का कोई वैज्ञानिक रूप नही है। यह बात दूसरी है कि इन कहानियो मे समस्या का आरम्भ, द्वन्द्व, आरोह-अवरोह, आदि मोटे ढग से मिल जाता है, वस्तुतः प्रसाद जी अपनी कहानियो के इस काल मे प्रयोगवादी थे, उन की दृष्टि मे स्वयं कहानी की कोई निश्चित शिल्पविधि या कला स्थिर नही हो सकी थी। फलतः इन कहानियो को एक निश्चित विकास-क्रम की कसौटी पर कसना अनुचित होगा। इस दृष्टि से हम उन की कहानियो के द्वितीय काल से एक निश्चित और वैज्ञानिक विकास-क्रम पाते है।

चरम सीमा

समग्र रूप मे प्रसाद की कहानियो को चरम सीमा अत्यन्त भावपूर्ण और ध्वन्यात्मक होती है। इस मे कभी-कभी कलात्मकता का इतना सुन्दर पुट मिलता है कि मन सहसा झकझोर दिया जाता है। तभी प्रेमचंद जी ने कहा था कि प्रसाद की कहानियो का अन्त, अपने ढंग का निराला होता है, बडा ही भावपूर्ण ध्वन्यात्मक और सहसा पाठक का मन झकझोर देता है, वह एक समस्या को पुनः सुलझाने लगता है।

चरम सीमा की यह कलात्मक प्रवृत्ति हमे प्रसाद के प्रथम काल की कहानियो मे ही मिलने लगती हे। इस काल की प्रायः अधिकाश कहानियो की चरम सीमा चरित—उत्कर्ष और मनोवैज्ञानिक सत्य पर प्रतिष्ठित हुआ है, जैसे, 'तानसेन', 'ग्राम', 'प्रसाद', 'पत्थर की पुकार', 'अघोरी का मोह', आदि कहानियो की चरम सीमाएँ। लेकिन यहाँ गद्यगीत सी कहानियो की चरम सीमाएँ और भी रहस्यात्मक और कलापूर्ण हुई है। इन मे चरम सीमा पर वही प्रश्न बार-बार मिलता है जिसे लेकर कहानी का प्रारम्भ हुआ था। इस के उदाहरण मे, 'प्रलय' और 'कलावती की शिक्षा', आदि कहानियाँ स्मरणीय रहेगी। व्यापक रूप से प्रसाद की कहानियो मे उन की चरम सीमाएँ निम्नलिखित रेखाओ मे व्यक्त हो सकती हैं।
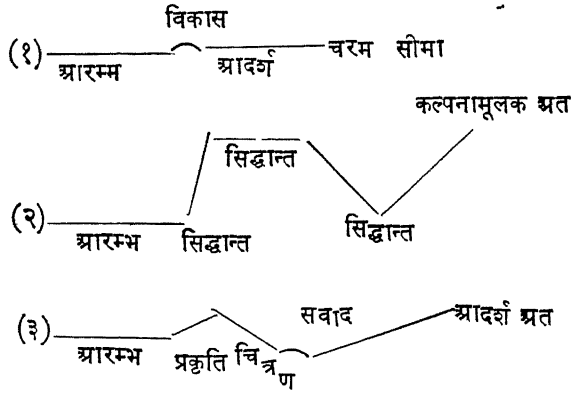
कथोपकथन

शैली के सामान्य पक्ष मे कथनोपकथन का अध्ययन मुख्य स्थान ग्रहण करता है। क्योकि कहानी मे व्यावहारिक दृष्टि से वर्णन और कथोपकथन के ही माध्यम से समूची कहानी अपनी अभिव्यक्ति पाती है। प्रारम्भिक काल की कहानियो मे कथनोपकथन का रूप अपने समुचित कलात्मक स्तर पर है। प्रसाद जी मुख्यत· नाटककार और कवि थे, अतः उनकी कहानियो मे आरम्भ ही से किसी भी प्रकार की त्रुटि नही होने पाई थी। प्रसाद कथोपकथन तीन रूप ग्रहण करते है। स्वतत्र कथोपकथन, कार्यों के रूप से कथोपकथन और मनोभावो के सकेतो के साथ कथोपकथन, 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की कहानियो मे मिलते हैं।

लक्ष्य और अनुभूति

प्रसाद की कहानियो का मुख्य लक्ष्य, सत्य-दर्शन, त्याग, उत्सर्ग और करुणा है, क्योकि उन के व्यक्तित्व पर बौद्ध दर्शन और भारतीय सस्कृति का विशेष प्रभाव था। दूसरी ओर स्वभावतः प्रसाद भावुक और सवेदनशील व्यक्ति थे। यही कारण है कि उन के व्यक्तित्व का अणु-अणु दया, क्षमा, स्नेह और प्रेमादि तत्वो से अभिभूत था। तत्कालीन समाज की गरीबी, निरीहता और दुख को पल-पल पर देख कर उन का हृदय भर आता था और वे उस की अभिव्यक्ति अतीत काल मे जाकर वहाँ की कारुणिक संवेदनाओ, प्रसगो के माध्यम

से या कल्पना-लोक के कथा-प्रसगो के माध्यम से करते थे, जिस मे सदैव करुणा का पुट रहता था।

प्रथम काल की कहानियो मे करुणा से साथ-साथ सत्य-दर्शन का लक्ष्य स्पष्ट है। लेकिन सामाजिक कहानियो मे यह करुणा अपने स्थायी भाव शोक से आगे नही बढ पाई है। 'ग्राम', मे मुख्य सवेदना, का अंत इसी लक्ष्य पर समाप्त होता है—"स्त्री की कथा को सुनकर मोहनलाल को बडा दुख हुआ रात विशेष बीत चुकी थी, अत रात्रि यापन करके, प्रभात मे मलिन तथा पश्चिमगामी चन्द्र का अनुसरण करके बताए हुए पथ से वह चले गए। कारण यह था कि स्त्री की जमीदारी हरण करने वाले, तथा उस के प्राण प्रिय पति से उसे विच्छेद कराकर इस भाँति दुख देने वाले कुन्दलाल मोहनलाल के ही पिता थे?" लक्ष्य की यही स्थिति, 'अघोरी का मोह', 'पाप का पराजय', 'पत्थर की पुकार', 'उस पार का योगी', और 'दुखिया' आदि कहानियो मे मिलती है। लेकिन अपवाद स्वरूप 'रसिया बालम' और 'करुणा की विजय', मे कारुणिक लक्ष्य सफलता से स्पष्ट है। रसिया बालम, राजकुमारी के प्रेम मे विष पी लेता है और उस के ऐसे प्रेम के उत्कर्ष पर राजकुमारी भी उस के हाथ से अवशेष विष को पी लेती है।

यहाँ की ऐतिहासिक कहानियो को पढने से यह अवश्य प्रकट है कि इन का निर्माण प्राय कारुणिक लक्ष्य को ही लेकर हुआ है। इस का पूर्ण विकास हमें द्वितीय और तृतीय काल की ऐतिहासिक कहानियो मे मिलता है। लेकिन प्रारम्भ की ऐतिहासिक कहानियो मे करुणा की प्रतिष्ठा आगे की ऐतिहासिक कहानियो मे करुणा की प्रतिष्ठा से भिन्न हैं। यहाँ प्रारम्भिक कहानियो मे करुणा की निष्पत्ति कहानी की चरम सीमा पर किसी घटना के घटने मे अधिक होती है और आगे की कहानियो मे सम्पूर्ण वातावरण आदि से विकास तक, करुणा से अभिभूत रहता है, चाहे उस का अत अथवा चरम सीमा सयोगात्मक ही क्यो न हो। इस सबध मे इस काल की ऐतिहासिक कहानियो मे, 'सिकदर की शपथ', 'गुलाम', 'अशोक', आदि कहानियो के चरम लक्ष्य स्मरणीय है।

प्रसाद की अधिकाश कहानियाँ केवल एक अनुभूति के धरातल पर लिखी गई हैं: अर्थात् उन के निर्माण मे एक निश्चित अनुभूति की ही प्रेरणा है, लक्ष्य की नही। प्रसाद की इस अनुभूति का केन्द्र-विन्दु, सौन्दर्यानुभूति और प्रेमानुभूति है। तभी प्रसाद की कहानियो मे प्रेम की पीडा इतनी प्रबल

---

[1] छाया, ग्राम, पृ० ४०

हो गई है कि इस का रूप हमे सूरदास के प्रेमगीतो और जायसी के प्रेमाख्यानको के समीप ले जाता है। मुख्यतः प्रसाद ने जितनी कहानियाँ इस प्रेम की गहरी अनुभूति से और सौन्दर्य—मन्थन के बीच से लिखी है उन मे अपेक्षाकृत अधिक प्रभविष्णुता और गहराई आ गई है। इस दृष्टि से 'आँधी', 'ग्राम गीत', 'दासी', 'नूरी', 'सालवती', और 'आकाश दीप', प्रसाद की उत्कृष्ट कहानियाँ है।

यहाँ प्रथम काल की कहानियो मे जितनी भी कहानियाँ काल्पनिक है, उन मे अपेक्षाकृत अनुभूति की ही प्रेरणा है, जिस से वे कहानियाँ इतनी सुन्दर लगती है, जैसे, 'तानसेन', 'प्रलय', 'मदन' 'मृणालिनी', और 'रसिया बालम' आदि कहानियाँ।

समीक्षा

प्रसाद की प्रथम काल की कहानियाँ परिस्थिति प्रधान है : अर्थात् यहाँ कहानियों का धरातल मुख्यत परिस्थितियो का विभिन्न प्रसग है, अतः यहाँ संवेदना और मनोविज्ञान गौण है और परिस्थितियो का चित्रण प्रधान हो गया है। इस काल की गद्यगीत जैसी कहानियो को छोड कर शेष कहानियाँ विभिन्न परिस्थितियो के प्रसगो की प्रतिकृति मात्र है। 'चन्दा', 'ग्राम', 'सिकन्दर की शपथ', 'जहाँनारा', 'अघोरी का मोह', और 'करुणा की विजय', इन समस्त कहानियो मे विभिन्न परिस्थितियो का चित्रण है और इन्ही विभिन्न परिस्थितियो के चित्रण मे इन कहानियो की विशेषता है।

'चन्दा', मे प्रेम परिस्थिति है, जहाँ चन्दा की भावना परिधि मे दो प्रेमी रामू और हीरा है। लेकित चन्दा और हीरा एक दूसरे से प्रेम करते है और दोनो एक दूसरे से शादी करने वाले है, लेकिन रामू इस बीच मे खलनायक का काम करता है और सारी परिस्थिति कारुणिक हो जाती है। 'ग्राम', आर्थिक परिस्थिति के धरातल पर लिखी हुई कहानी है। यहाँ एक ग्राम मे दो निरीह किसान है जिनकी सारी सम्पत्ति और सुख जमीदार ने हडप ली है। एक दिन परिस्थिति वश उसी जमीदार का उदार लडका मोहनलाल उसी गाँव में उसी किसान के घर आ पहुँचता है और परिस्थिति मे तीव्रता आ जाती है। 'सिकन्दर की शपथ' और 'जहाँनारा' मे नैतिक परिस्थिति है, जहाँ सिकन्दर और औरगजेब क्रमशः भारतीय हिन्दू योद्धाओ और जहाँनारा को यातना पहुँचाते है। 'अघोरी का मोह' और 'करुणा की विजय' मे क्रमशः मनोभावो की परिस्थिति

और दारिद्रिक परिस्थिति का चित्रण है जो आदि से अन्त तक हमारे सामने अपने विभिन्न रूपो मे अभिव्यक्त होता रहता है। शिल्पविधि की दृष्टि से, यही कारण है कि इस काल की कहानियो के विकास मे संयोग और घटनाओ का सहारा बहुत लिया गया है।

द्वितीय काल

प्रथम काल मे, 'छाया', और, 'प्रतिध्वनि, की कहानियाँ एक दूसरे से भिन्न थी। 'छाया', मे ऐतिहासिक और प्रेम-कथाएँ हैं, तथा कहानी कला की दृष्टि से ये कहानियाँ प्रसाद की कला की प्रराम्भिक अवस्था के उदाहरण हैं। 'प्रतिध्वनि', की कहानियाँ प्राय कहानियाँ न होकर गद्यगीत और रेखाचित्र हैं। इन मे जीवन के विभिन्न प्रसगो, घटनाओ की भावात्मक झाँकियाँ हैं।

'आकाश दीप', की कहानियाँ प्रसाद के द्वितीय काल की कहानियाँ है, ये सख्या मे कुल उन्नीस है। ये सारी कहानियाँ प्रेम के प्रसगो के साथ आई हैं। लेकिन यहाँ प्रेम का धरातल अपनी पूर्ण विशालता और गभीरता के साथ है। 'आकाश दीप', 'स्वर्ग के खडहर', 'ममता', सुनहरा 'साँप', 'देवदासी', 'बनजारा', 'चूडीवाली', 'प्रणय चिह्न', और 'बिसाती', आदि प्रेम की उत्कृष्ट कहानियाँ है। अध्ययन की दृष्टि से ये प्रेम कहानियाँ 'छाया', सग्रह की कहानियो की विकास दशा मे रखी जा सकती है। इन कहानियो के अतिरिक्त 'आकाश दीप', की और शेष कहनियाँ पुन गद्य गीतो और रेखाचित्रो के विकास-क्रम मे आई है, जैसे, 'हिमालय का पथिक', 'प्रतिध्वनि', 'कला', 'समुद्र सतरण', 'वैरागी', 'अपराधी', और 'रूप की छाया'। अध्ययन की दृष्टि से ये कहानियाँ 'प्रतिध्वनि' संग्रह की कहानियो की विकास दिशा मे रक्खी जा सकती हैं। अत समग्र रूप मे 'आकाश दीप' की कहानियो मे दो दिशाएँ आई है। 'छाया' के विकास-क्रम की दिशा मे आने वाली कहानियाँ कहानी शिल्पविधि की दृष्टि से उत्कृष्ट हुई है और 'प्रतिध्वनि' के विकास-क्रम मे आने वाली कहानियाँ साधारण ही रह गई है। यद्यपि यहाँ पहले की अपेक्षा कहानी के तत्त्व अधिक आए है और उनकी सम्पूर्ण कला मे विकास हुआ है।

कथानक

इस काल की कहानियो मे दो तरह के कथानक मिलते हैं: अर्थात् 'आकाश दीप', 'स्वर्ग के खडहर', 'ममता', 'सुनहला साँप', 'बजारा', 'चूडीवाली',

'प्रणय चिह्न', और 'विसाती', कहानियो के कथानक लम्बे और नाटकीय तत्व के साथ आए है। दूसरी ओर 'हिमालय के पथिक' 'प्रतिध्वनि' 'कला' 'समुद्र सतरण', वैरागी, 'अपराधी', और 'रूप की छाया', कहानियो के कथानक छोटे और प्रासगिक हुए है।

यहाँ लम्बे कथानको मे दो प्रकार के कलात्मक सौन्दर्य उपस्थित हुए हैं। इन कथानको मे अपेक्षाकृत बडी सवेदनाएँ अपने कई प्रसगो के साथ गुँथी हुई आई है। फिर भी इन कथानको की सब से बडी विशेषता इस मे है कि इन मे भाव की इकाई और एकसूत्रता सर्वत्र है। 'आकाश दीप', की मुख्य इकाई है। प्रेम और कर्तव्य का सघर्ष और इसी सघर्ष मे इसी कहानी की एकसूत्रता भी है तथा इसी के किनारे-किनारे ये जितने प्रसग आए है वे सकेत और व्यजना के माध्यम से हमारे सामने प्रकट हुए है, जैसे, चम्पा, चम्पा नगरी की एक बालिका थी। उस के पिता मणिभद्र के यहाँ प्रहरी थे। चम्पा माता के देहावसान के उपरान्त अपने पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। एक दिन चम्पा के पिता दस्युओ के आक्रमण से मारे गए और युवती चम्पा से मणिभद्र ने घृणित प्रस्ताव किया जिसके विद्रोह मे चम्पा बन्दी हुई। वस्तुत. इतने प्रसग मुख्य सवेदना और कथासूत्र की पृष्ठभूमि मे आए है। मुख्य संवेदना के साथ इतने प्रसग आए हैं। बुद्ध गुप्त ही वह दस्यु था जिस ने चम्पा के पिता की हत्या की और इधर चम्पा और बुद्धगुप्त से प्रेम होता है तथा इस के फलस्वरूप प्रेम और कर्तव्य मे सघर्ष छिडता है। बुद्धगुप्त का जावा, सुमात्रा, बाली का अधिकारी होना। वस्तुत. ये प्रसग मुख्य सवेदना मे और भी तनाव और गभीरता उपस्थित करते हैं तथा सब से बडी बात इन प्रसगो मे यह है कि इन के माध्यम से मुख्य संवेदना मे अतर्द्वन्द्व और घात-प्रतिघात की अवतारणा हुई है, तथा समग्र रूप से प्रसाद की कहानी कला मे नाटकीय तत्व की प्रतिष्ठा हुई है। फलत ऐसे कथानको की इकाई एकसूत्रता इतनी बलवती और कलात्मक हुई है कि कहानियो के आरम्भ ही से पाठक की जिज्ञासा-वृत्ति पर कहानी की सवेदना पूर्ण अधिकार प्राप्त कर अत तक पाठक को कौतूहल से अभिभूत किए रहती है। पाठक कहानी के अत पर भी पहुँच कर उस इकाई से छूट नही पाता वरन् उस के सामने एक नई समस्या आ जाती है और वह स्वय उसके सुलझाने मे लग जाता है।

ऐसे कथानको का अन्यतम सौन्दर्य इस मे है कि एक लम्बी-सी सवेदना और कथासूत्र को एक छोटे-से इतिवृत्त मे समेट देना, तथा उस मे भी कौतूहल का चमत्कार पैदा करते रहना। प्रत्यक्ष रूप से 'आकाश दीप' के कथानक का सूत्र इतना ही है। एक महाजल पोत से सबधित एक अन्य नाव मे चम्पा और बुद्ध-

गुप्त दोनो बन्दी है । दोनो अपनी कुशलता और पराक्रम से बधन मुक्त हो जाते हैं और उन की नाव एक दिन एक नये द्वीप पर पहुँचती है । वहाँ चम्पा और बुद्ध-गुप्त एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं, लेकिन इसी बीच चम्पा को स्पष्ट हो जाता है कि बुद्धगुप्त ही वह दस्यु है जिसने उस के पिता की हत्या की है । चम्पा मे अंतर्द्वन्द्व बढते है और बुद्धगुप्त अत मे चम्पा को अप्राप्य समझ कर निस्स-हाय भारत लौट आता है । लेकिन इतने से इतिवृत्त मे 'आकाश दीप' की और भी बडी सवेदना और कथासूत्र समाया हुआ है ।

ऐसे कथानको के निर्माण मे प्रसाद ने बिल्कुल नये कथानक तत्र की सहायता ली है। इस तत्र–निर्माण मे नाटकीय अनुक्रमो वर्णनात्मकता, व्यजना और संदर्भ की सामुहिक सहायता ली गई है । इस दिशा मे सब से बडी विशेषता इस बात मे है कि ये कथानक न तो अधिक इतिवृत्तात्मक हो सके है न वर्णनात्मक। वस्तुतः ऐसे कथानको का निर्माण प्रसाद जी ही द्वारा संभव था, क्योकि प्रसाद के व्यक्तित्व मे एक ही साथ नाटककार, गीतकार और उपन्यासकार की प्रतिभा समन्वित थी । उन्हे जिस कथानक का आरम्भ समस्या और द्वन्द्व के साथ करना हुआ, वहाँ उन्होने अपनी नाटकीय प्रतिभा से कथोपकथन की अवतारणा कर दी और कथानक का आरम्भ समस्या की तीव्रता से हुआ, जैसे, 'आकाश दीप', 'सुनहला साँप', और 'चूडीवाली' के आरम्भ मे कथानक का आरम्भ । उन्हे जिस कथानक का आरम्भ समस्या की पृष्ठभूमि सौन्दर्य के साथ करना हुआ तो उन्होने काव्यात्मक वर्णनो से कथानक का आरम्भ किया, जैसे, 'ममता', 'स्वर्ग के खडहर मे' और 'विसाती' ऐसे कथानको के निर्माण मे प्रसाद जी ने दो शैलियाँ अपनायी है । कथोपकथनो से कहानी आरम्भ करके कथानक मे द्वन्द्व पैदा करना और इस के उपरान्त वर्णन द्वारा वस्तुस्थिति को व्याख्या द्वारा नही बल्कि सकेतो द्वारा स्पष्ट करते चलना, फिर कथोपकथनो द्वारा अतर्द्वन्द्वो की अभिव्यक्ति और साकेतिक वर्णनो से कथानक को चरम सीमा पर पहुचा देना। कथानक निर्माण का यह अवस्था-क्रम 'आकाश दीप', 'सुनहला साँप', 'विसाती', और 'चूडीवाली' आदि कहानियो मे मिल जायगा । दूसरी शैली है, वर्णन और चित्रण से कथानक का आरम्भ करना और समस्या का प्रवेश तथा कथोपकथनों द्वारा उस के अतर्द्वन्द्वो को उभारते हुए कथासूत्र को चरम सीमा पर पहुँचा देना । कथानक निर्माण का यह अवस्था-क्रम 'ममता', 'स्वर्ग के खडहर' मे और 'बनजारा', आदि कहानियो मे मिलेगा ।

इन दोनो शैलियो से निर्मित कथासूत्रो मे बीज, विकास और फलागम

की प्रतिष्ठा पूर्ण सफलता से हुई है । इन कथानको मे भारतीय नाटक प्रणाली का अनुमोदन भी हुआ है। प्रसाद मूलत. अपने नाटको के कथानक-निर्माण मे इसी प्रणाली से प्राय आकर्षित थे । उन्हो ने अपने समस्त नाटको मे इस का सक्रिय अनुमोदन किया है ।

उपर्युक्त तथ्य की परीक्षा के लिए हम, 'आकाश दीप', और 'चूडीवाली' कहानी को ले सकते है । 'आकाश दीप', मे दोनो बदियो का आपस मे टकराना और एक दूसरे को बधन मुक्त कर देना बीज है । चम्पा द्वीप मे उन दोनो का पॉच वर्ष का रहना और चम्पा का प्रेम-कर्तव्य के धरातल पर अपने से सघर्ष करना, कहानी का विकास है। और चम्पा का उस द्वीप पर अकेली रह जाना और बुद्धगुप्त का भारतवर्ष लौटना फलागम है । चूडीवाली मे चूडीवाली का बहू जी को चूडो पहनाते समय बहू के पति के सबध मे विनोद मे यह कहना, "आप तो कहती थी न कि सरकार को ही पहनाओ तो जरा उनसे पहनने के लिए कह दीजिए", यह बीज है । सरकार का चूडीवाली वेश्या पुत्री से प्रेम हो जाना और चूडीवाली का इन्हे पति के रूप मे पाने के लिए उस की साधना, त्याग आदि विकास है तथा चूडीवाली और सरकार का अत मे सयोग हो जाना फलागम है।

दूसरे ढग के कथानक जो छोटे और प्रासगिक है, उनमे उपर्युक्त प्रणाली नही मिलती । इन कथानको मे दो विशेषताएँ स्पष्ट है । यहाँ कथानको का निर्माण व्यजनाओ से हुआ है घटनाओ से नही, तथा इन कथानको का मूल्य रूपकात्मक अधिक है कथात्मक कम । ऐसे कथानको के उदाहरण मे हम 'कला' नामक कहानी के कथानक को देख सकते हैं । इस का कथानक इन व्यंजनाओ से निर्मित हुआ है—कला एक युवती है, कालेज मे पढती है तथा रूपनाथ और रसदेव इसके प्रेमी हैं । एक दिन कला अपनी पढ़ाई समाप्त कर कालेज छोड देती है और इधर रूपनाथ तथा रसदेव कला के प्रेम मे क्रमश चित्र और गीत बनाने लगते है । सहसा एक दिन कला अभिनेत्री के रूप मे रगमच पर दिखाई देती है । रूपनाथ उसे देख कर अपनी चित्रकला को भूल जाता है और कला से पराजित होकर भाग जाता है । रसदेव सुनता है कि कला उसी की बनाई हुई एक गीत गा रही है, फिर दोनो का संयोग हो जाता है । वस्तुतः यह इतिवृत्तपूर्ण रूपकात्मक है । इस की सवेदना को लेकर कहानी को कथा बनाया जा सकता है । लेकिन यहाँ प्रसाद जी ने जान बूझ कर इसे अस्पष्ट और अमूर्त्त बनाने की चेष्टा की है । ऐसी कहानियो के पीछे प्रसाद के व्यक्तित्व का गीत तत्व अधिक

प्रधान हो गया है, यही कारण है कि ये कहानियाँ गद्यगीत हो गई है और इस के कथानक टूटे हुए विशृंखलित और रूपकात्मक हो गए है।

इस काल की कहानी—'देवदासी' मे प्रसाद ने कथानक—निर्माण पत्रात्मक शैली मे किया है, लेकिन कथानक-निर्माण की वह शैली बहुत सफल नही है और आगे फिर कभी इस शैली का दर्शन नही हुआ है।

चरित्र

पिछले पृष्ठो मे चरित्र अवतारणा के संबध मे हमने बौद्ध दर्शन और प्रसाद के सौन्दर्यनिष्ठ और भावुक व्यक्तित्व की चर्चा की थी। वह तथ्य यहाँ की कहानियो की चरित्र अवतारणा पर पूर्णत स्पष्ट है। यहाँ के चरित्रो का गभीर और कारुणिक व्यक्तित्व सुन्दरता से प्रतिष्ठित हो गया है तथा चरित्रो की सौन्दर्यनिष्ठा और उन का प्रेमतत्व दोनो अपनी सीमा पर पहुँच गए हैं। यहाँ चरित्र अपने भाव जगत् अपनी आन्तरिकता मे अधिकाधिक एक दूसरे के समीप है अर्थात् प्रया समस्त चरित्र अतर्द्वन्द्वो से अभिभूत हो गए है। उन की बाह्य क्रियाशीलता उन के आन्तरिक अतर्द्वन्द्वो की अपेक्षा बहुत ही सीमित हैं। चरित्र प्राय. अपने अतर्लोक मे जितने महान्, जितने सघर्ष रत है, उतने अपने बाह्य पक्ष मे नही। इस का सब से प्रधान कारण यह है कि यहाँ की कहानियो मे प्रायः समस्त प्रतिनिधि चरित्र अपने कारुणिक व्यक्तित्व मे मौन हैं, वे तिल-तिल पर घुलते रहते हैं और अपने अतर्लोक के छायाचित्रो मे ही अपना सतोष ढूँढते रहते है। यही एक मात्र कारण है कि, चम्पा, ममता, मीना, गुल, और देवपाल, रसदेव, सुदर्शन, बिसाती, और बनजारा, आदि चरित्र, काव्य और नाटक के चरित्र अधिक हो गए है, कहानी के कम।

स्त्री

जैसा कि पहले कहा गया है मूलत. प्रसाद के स्त्री चरित्र सदैव युवती, सुन्दर और आकर्षक होते है। इस का प्रमाण हमने प्रथम काल की कहानियो मे ही पा लिया है।। इस काल की भी स्त्रियाँ सुन्दर आकर्षक नवीन इन्दुकला-सी, आलोकमयी आँखो की प्यास बुझाने वाली तो है ही, लेकिन इन के व्यक्तित्व के दो पक्ष करुणा और भावुकता दोनो यहाँ अपूर्व ढग से प्रतिष्ठित हुए हैं। अर्थात् प्रसाद के ही शब्दो मे यहाँ की सभी स्त्रियाँ अपने मन मे वेदना, मस्तक मे आँधी शरीर मे यौवन और आँखो मे पानी की बरसात लिए हुए आई हैं।

'ममता', कहानी मे मुख्य स्त्री पात्र ममता युवती है। उस का यौवन शोण के समान ही उमड रहा है, उस के लिये कुछ अभाव होना असभव है, क्योकि वह रोहतास दुर्गपति के मत्री चूडामणि की अकेली दुहिता है परन्तु वह विधवा है है। हिन्दू विधवा, ससार मे सब से तुच्छ निराश्रय प्राणी, लेकिन इस स्त्री चरित्र की करुणा यही नही समाप्त होती, बल्कि यह कारुणिक व्यक्तित्व और भी कारुणिक होता है। इस के एक मात्र पिता की हत्या होती है, ममता भिक्षुणी हो जाती है, महल से निकल कर झोपडी मे रहने लगती है और अत मे अपूर्व करुणा से भर जाती है। 'स्वर्ग के खंडहर,' मे बालिका का शुभ्र शरीर मलिन वस्त्र मे दमक रहा था। नासिका मूल से कानो के समीप तक भ्रू युगल प्रभावशालिनो रेखाएँ और उस की छाया मे दो उनीदे कमल संसार से अपने को छिपा लेना चाहते थे। लेकिन उस का विरागी सौन्दर्य, शरद के शुभ्र घन के हलके आवरण मे पूर्णिमा के चन्द्र-सा आप ही लज्जित था।

इस तरह यहा स्त्री चरित्र की अवतारणा अनुपम सौन्दर्य, विराग और करुणा के सधि-विन्दु पर हुआ है और अधिकाश स्त्री पात्र साधना रत, एकाकी जीवन, व्यतीत करती हुई हमारी समस्त सवेदना और पूरी सहानुभूति को स्वत अपने मे खीच लेती है। यहाँ की कहानियो मे स्त्रियाँ ही मूलरूप से केन्द्र-विन्दु बन कर उपस्थित हुई हैं, जिनके किनारे-किनारे कहानी की समस्त रेखाएँ समस्त क्रियाएँ घूमती रहती है। इन मे इतनी प्रभविष्णुता आ गई है कि पुरुष चरित्र इन की छाया से लगने लगते है। इस प्रभविष्णुता और बलशाली स्त्री व्यक्तित्व के पीछे प्रसाद ने तीन रहस्य छिपाया है फलत. ये कहानियाँ स्त्री प्रधान है और अधिकाश रूप मे इन का नायकत्व स्त्रियो को ही मिला है। यहाँ स्त्री पात्रो मे प्रसाद ने मुख्यत: चरित्र को लिया है, आचरण को नही। कही-कही चरित्र मे ही डूब कर, उन्होने स्त्री की आन्तरिकता को लिया है तथा इस आतरिकता मे उन्होने उन अतर्द्वन्द्वो तथा घात-प्रतिघात को लिया है, जो शाश्वत और चिरन्तन है : जैसे प्रेम और कर्त्तव्य, प्रतिशोध और क्षमा।

"विश्वास कदापि नही बुद्धगुत : जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नही कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मै कैसे कहूँ : मै तुम्हे घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अधेर है जलदस्यु ! तुम्हे प्यार करती हूँ .. ..चम्पा रो पडी।

लेकिन यहाँ स्त्रियाँ अपने समस्त प्रतिशोधो, कटु अनुभूतियो और

अतर्द्वन्द्वो के बावजूद भी चारित्रिक रूप मे महान सिद्ध हुई है । चम्पा कहती है, "बुद्धगुप्त मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है कोई विशेष आकाक्षा हृदय मे अग्नि के समान प्रज्वलित नही। सब मिला कर मेरे लिए शून्य एक है प्रिय नाविक तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवो का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड दो, इन निरीह भोले-भाले प्राणियो के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए ।" मीना अपनी भावुकता मे कितनी ऊँची बाते करती है—"वही स्वर्ग तो नरक है, जहाँ प्रियजनो से विच्छेद है । वही रात्रि प्रलय की रात्रि है, जिस की कालिमा मे विरह का सयोग है । वह यौवन निष्फल है जिस का हृदयवान् उपासक नही । वह मदिरा हलाहल है, पाप है, जो उन मधुर अधरो की उच्छिष्ट नही । वह प्रणय विषाक्त छुरी है, जिस मे कपट है ।"

इन स्त्री चरित्रो की प्रतिष्ठा इतनी रंगीन, भावुक और कोमल रेखाओ से हुआ है कि हम इन के सामूहिक व्यक्तित्व को कभी नही भूल सकते, क्या इन के शौर्य रूप मे, क्या कोमल और कारुणिक रूप मे "मैं एक भटकी हुई बुलबुल हूँ, मुझे किसी टूटी डाल पर अधकार बिता लेने दो । इस रजनी विश्राम का मूल्य अंतिम तान सुनाकर जाऊँगा ।" फिर भी ये स्त्रियाँ स्थान-स्थान पर कर्म प्रधान है । अपनी क्रियाशीलता मे कही प्रतिहिंसा के लिए प्रस्तुत हुई है, कही पुरुष को पाने के लिए चूडीवाली-सी अपूर्व साधिका बन गई है और अपनी साधना तपस्या से पुरुष को पा गई है ।

यहाँ स्त्री चरित्रो मे जातिगत और वर्गगत विभिन्नता अवश्य आई है लेकिन मूलत· सब स्त्रियाँ एक सी तरुण, आकर्षक और सुन्दरी हैं चाहे वे विधवा हो, चाहे कुमारी, चाहे साधिका, जातिगत और वर्गगत प्रभेदो मे, कुमारियाँ, रानियाँ, धीवर बालाएँ, वेश्या पुत्री, कोल कुमारी, मालिन, सपेरिन, देवदासी दासी, भिक्षुणी, भिखारिन आदि अनेक प्रकार स्त्री चरित्र आए हैं ।

पुरुष

प्रथम काल की कहानियो मे पुरुष चरित्र अपनी सवेदनशीलता, चारित्रिक दृढ़ता और अंतर्मुखी भावधारा मे प्रारम्भिक अवस्था मे थे । यहाँ इन दिशाओ मे पुरुष पात्र बहुत आगे बढ आए है । लेकिन फिर भी पूर्ण रूप से उन प्रतिनिधित्व नही हुआ है । इस के दो कारण है । मूलतः 'आकाश दीप' की कहानियाँ स्त्री प्रधान है—अर्थात् स्त्री यहाँ केन्द्र-विन्दु है, कार्यो और घटनाओ की

प्रेरणा है, अतः यहाँ पुरुष पात्र दब से गए है और उन का चरित्र गौण हो गया है। जिन दो-तीन कहानियो मे पुरुष पात्रो को प्रधानता भी मिली है वे कहानियाँ प्रायः रहस्यात्मक और स्पष्ट रह गई। फलतः पुरुष पात्रो की व्यक्तित्व प्रतिष्ठा उचित ढंग से नही हो सकी है, और अगर कही हुई भी है तो हिमालय के पथिक की भाँति पुरुष पात्र मनुष्य न रह कर देवता हो गए है। 'हिमालय के पथिक' मे पथिक को देवता बनाया है, फिर भी यहाँ के पुरुष पात्र प्रथम काल के पुरुष पात्रो से बहुत आगे है। 'आकाशदीप' का बुद्धगुप्त कितना साहसी और संवेदनशील है। वह तूफानी समुद्र की लहरो मे बन्दी चम्पा और अपने को बधन मुक्त करता है, एक नए द्वीप की सृष्टि करता है। नए प्रजा वर्ग की प्रतिष्ठा करता है, नया राज्य बनाता है, और स्वयं महानाविक बन कर चम्पा को उन द्वीपो की महारानी बनाता है, 'हिमालय का पथिक' मे पथिक नूरी के प्रति कितना ईमानदार है, और "मैंने देवता के निर्माल्य को और भी पवित्र बनाया है उसे प्रेम के गध, से सुरभित कर दिया है। उसे तुम देवता को अर्पण कर सकते हो, इतना कहकर पथिक उठा और गिरिपथ से जाने लगा और भयानक शिखर पर चढने लगा उत्सर्ग के लिए।"

यहाँ के पुरुष चरित्रो का निर्माण विशुद्ध प्रेम के धरातल पर हुआ है। प्रथम काल मे यह धरातल बहुत ही रुमानी और काल्पनिक था, यहाँ इस धरातल मे प्रेम के साथ ही साथ कर्तव्य और दायित्व भी विशिष्ट ढंग से जुड गया है। भिखारिनी, के प्रति युवक हृदय उत्तेजित हो उठा "बोला, यह क्या भाभी, मै तो इससे ब्याह करने के लिए प्रस्तुत हो जाऊँगा तुम व्यग कर रही हो ?" 'बिसाती', का प्रेमी अपनी प्रेमिका को एक सरदार पत्नी के रूप मे देखकर सदा के लिए वहाँ से दूर चला जाता है और सब तरह से प्रेम तथा कर्तव्य दोनो के प्रति अपने दायित्व को पूरा करता है।

यहाँ पहले की अपेक्षा पुरुषपात्र अधिक जीवन-रत हुए। प्रथम काल के प्रेमी भावुक पुरुष प्राय एकाकी और उदास थे, यहाँ जीवन प्रागण मे उन्होने प्रेम की बाजियाँ लगाई है और अपना सर्वस्व बलिदान किया है। निष्कर्ष रूप मे यहाँ आकर पुरुष चरित्र अधिक स्वाभाविक और सजीव हुए है तथा उन के चरित्रो के अतर्लोक के भावमडल अधिक उभर कर मानव सुलभ हुए है। अब यहाँ पुरुष पात्र एकागी नही रह गए हैं। वे भावुक होने के साथ ही साथ क्रियाशील भी हैं, और इस काल की कहानियाँ इन पात्रो के बाह्य और आतरिक दोनो धरातलो की सधि-बिन्दु पर टिकी हुई है। फलत. इस काल के

स्त्री पुरुष चरित्र पहले की अपेक्षा अधिक व्यक्तित्व प्रधान और स्मरणीय है; जैसे, 'आकाश दीप,' का बुद्धगुप्त, 'स्वर्ग के खडहर,' 'बनजारा' और 'बिसाती' के तीनो प्रेमी। वस्तुतः ऐसे व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा और मनोविश्लेषण उन्ही कहानियो मे हो सका है जो 'छाया', की कहानियों की विकास दिशा में यहाँ अपने विस्तृत रूप मे आई है।

शैली

यहाँ के कथा सूत्र मे भारतीय नाटक प्रणाली का बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठा हुई है। इस का प्रभाव इस काव्य की कहानियो के निर्माण मे दो तरह से पडा है। यहाँ की कहानियाँ अपने आरम्भ, विकास और अंत मे संतुलित और गठित है, तथा यहाँ की कहानी शैली मे कहानी के तत्व पहले की शैली मे। सामान्य दिशा मे यहाँ की कहानियाँ वर्णन, कथोपकथन, व्यजना और अतर्कथाओ के साधन से निर्मित हुई है। इन मे अधिक से अधिक कथा सामग्री और वर्णन लाने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी इन कहानियो मे सयम और गठन का प्रयत्न है।

आरम्भ

'आकाश दीप', कहानी सग्रह मे केवल, 'देवदासी', को छोडकर समस्त कहानियो का आरम्भ उन्ही दो शैलियो कथोपकथनात्मक और प्राकृतिक चित्रण या दृश्य वर्णन से हुआ है। ये दोनो शैलियाँ यहाँ पूर्णत सबल और कलात्मक सिद्ध हुई है। 'आकाश दीप' का कथोपकथनात्मक आरम्भ कितना नाटकीय और कौतूहल पूर्ण हुआ है।

"बन्दी।"
"क्या है? सोने दो।"
"मुक्त होना चाहते हो?"
"अभी नही। निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"
"फिर अवसर न मिलेगा।"
"बडी शीत है, कही से एक कम्बल डाल कर कोई शीत मुक्त करता।"
"आँधी की सभावना है। यही अवसर है। आज मेरे बधन शिथिल है।"
"तो क्या तुम भी बन्दी हो।"
"हाँ धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी है।"
"शस्त्र मिलेगा?"

"मिल जायगा। पोत से सबध रज्जु काट सकोगे ?"

"हाँ।"

इसी भाँति 'चूडीवाली' का आरम्भ :

"अभी तो पहना गई हो !"

"बहू जी बहुत अच्छी चूडियाँ है। सीधे बम्बई से पारसल मँगाया है। सरकार का हुक्म है, इसलिए नई चूडियाँ आते ही चली आती है।"

"तो जाओ सरकार को ही पहनाओ, मै नही पहनती।"

"बहू जी जरा देख तो लीजिए।"

ऐसे आरम्भ मे प्रसादजी की कहानी कला की दो विशेषताएँ बहुत ही स्पष्ट हैं। यहाँ कहानी के प्रारम्भ मे आकर्षण और कौतूहल वृत्ति की प्रतिष्ठा सब से प्रमुख विशेषता के रूप मे आती है। दूसरे ऐसे आरम्भ मे समस्या, चरित्र और द्वन्द्व की प्रतिष्ठा हो जाती है। वस्तुत प्रसाद के नाटको मे जो कार्य उन के प्रथम अक देते है वही कार्य इन्होने अपनी कहानियो मे ऐसे आरम्भो से लिया है। यहाँ कहानी के मुख्य पात्र, मुख्य द्वन्द्व आदि के सकेत का साकेतिक परिचय मिल जाता है। 'आकाश दीप' के उपर्युक्त आरम्भ के उतने की कथोपकथनो मे, कहानी के प्रमुख पात्र चम्पा और बुद्धगुप्त का प्रवेश है, दोनो की समस्त परिस्थितियो का परिचय है तथा दोनो के चरित्रो की ओर सकेत है और सब से बडी विशेषता इन उक्त कथोपकथनो मे यह है कि इन के अक्षर-अक्षर मे कौतूहल, जिज्ञासा व्याप्त है।

दूसरी आरम्भ शैली पिछली ही शैली का विकसित रूप है। यहाँ 'कला', नामक एक स्वतत्र कहानी मे, इस शैली की दिशा मे चित्रण और वर्णन के स्थान पर परिचयात्मक शैली आई है। उसके पिता ने बडे दुलार से उस का नाम रखा था, कला। नवीन इन्दु कला-सी वह आलोकमयी और आँखो की प्यास बुझाने वाली थी। विद्यालय मे सबकी दृष्टि उस सरल बालिका की ओर घूम जाती थी, परन्तु रूपनाथ और रसदेव उस के विशेष भक्त थे। कला भी कभी-कभी उन दोनो से बोलती थी, अन्यथा वह एक सुन्दर नीरवता ही बनी रहती थी[१]।

विकास

'आकाश दीप' की प्रतिनिधि कहानियो मे प्रसाद ने चार अवस्था-क्रमो को रखा है (१) समस्या प्रवेश (२) परिचय (३) द्वन्द्व का जन्म (४) घात-प्रतिघात।

[१] आकाश दीप, कला, पृ० ८४।

वस्तुत: ये विकास-क्रम उन छोटी कहानियों में नहीं मिलेंगे जो रहस्यात्मक हैं और गद्यगीत की शैली में लिखी गई हैं।

ये विकास-क्रम, 'आकाश दीप', 'ममता', 'स्वर्ग के खंडहर' में, 'वनजारा' 'चूड़ीवाली', और 'विसाती', आदि कहानियों में स्पष्ट रूप से मिलेंगे। 'आकाश-दीप' में समस्या प्रवेश: समुद्र में हिलोरे उठने लगीं दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे। पहले बन्दी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया दूसरे का बंधन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक दूसरों को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा, स्नेह का असम्भावित आलिंगन दोनों ही अंधकार में मुक्त हो गए। दूसरे बन्दी ने हर्षातिरेक से उसे गले से लगा लिया, सहसा उस बन्दी ने कहा, यह क्या तुम स्त्री हो ?

"क्या स्त्री होना पाप है ?" अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

"शस्त्र कहाँ है ? तुम्हारा नाम ?"

"चम्पा"।

इस के उपरान्त परिचय क्रम आता है। इस क्रम में परिस्थिति परिचय, पात्र परिचय, दोनों मुख्य रूप से आते हैं और दोनों परिचय प्राय: एक में मिले हुए आते हैं; जैसे —

"तुम्हें इन लोगों ने बन्दी क्यों बनाया ?"

"मणिक मणिभद्र की पाप वासना ने।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"जाह्नवी के तट पर। चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मार कर जल समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इसी नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निस्सहाय हूँ, अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाई। उसी दिन से बंदी बना दी गई", चम्पा रोष से जल रही थी।

"मैं भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय हूँ चम्पा : परन्तु दुर्भाग्य से जल-दस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी ?"

इस के उपरान्त द्वन्द्व के जन्म का क्रम आता है।

"तो चम्पा : अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं तुम

मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।" नही-नही तुमने दस्युवृत्ति छोड दी, परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण, और जलनशील है। भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश दीप का व्यग कर रहे हो। नाविक उस प्रचड आँधी मे प्रकाश की एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे मुझे स्मरण है। जब मैं छोटी थी मेरी पिता नौकरी पर समुद्र मे जाते थे मेरी माता, मिट्टी का दीपक बॉस की पिटारी मे भागीरथी के तट पर बॉस के साथ ऊँचे टॉग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती, "भगवान। मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अधकार मे ठीक पथ पर ले चलना और जब मेरे पिता बरसो पर लौटते तो कहते, साध्वी तेरी प्रार्थना से भगवान ने भयानक सकटो मे मेरी रक्षा की है। वह गद्गद हो जाती। मेरी माँ! आह नाविक: यह उसी की पुण्य स्मृति है। मेरे पिता। वीर पिता की मृत्यु करके निष्ठुर जलदस्यु हट जाओ। सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भी अरुण होकर रग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठा कर हँस पडा।

"यह क्या चम्पा? तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो।" कहता हुआ चला गया। चम्पा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी-सी घूमती रही।

और इस के उपरात घात-प्रतिघात का क्रम आता है:

"विश्वास? कदापि नही बुद्धगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नही कर सकी। उसी ने धोखा दिया, तब मै कैसे कहूँ मै तुम्हे घृणा करता हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अधेर है जल दस्यु! तुम्हे प्यार करती हूँ।" चम्पा रो पडी।

"चुप रहो महानाविक: क्या मुझे निस्सहाय और कगाल जान कर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा।"

"मैं तुम्हारे पिता का घातक नही हूँ चम्पा! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।"

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती! बुद्धगुप्त वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय! आह! तुम इस निष्ठुरता मे भी कितने महान् होते।"

"तब मैं अवश्य चला जाऊंगा, चम्पा! यहाँ रह कर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूं इसमे सन्देह है। आह! किन लहरो मे मेरा विनाश हो जाय।" महानाविक उच्छ्वास मे विकलता थी फिर उसने पूछा—"तुम अकेली यहाँ क्या करोगी?"

"पहले विचार था कि कभी-कभी इस दीप-स्तभ पर से आलोक जला कर अपने पिता की समाधि का इस जल मे अन्वेषण करूँगी। किन्तु देखती हूँ, मुझे भी इसी मे जलना होगा, जैसे आकाश दीप।

चरम सीमा

अधिकाश कहानियो की चरम सीमाए मनोवैज्ञानिक अनुभूति और मनोभावो के उत्कर्ष पर प्रतिष्ठित हुई है, जैसे, 'आकाश दीप', 'सुनहला साँप', 'चूडीवाली', 'भिखारिन', 'प्रतिध्वनि', 'कला', 'विसाती', 'बनजारा', आदि। इस काल मे दो ही एक कहानियाँ, जैसे 'हिमालय का पथिक', और 'स्वर्ग के खडहर मे, ऐसी है जिन की चरम सीमा सयोग या घटना पर आधारित है।

पहले प्रकार की चरम सीमा मे मनोभावो के चरम उत्कर्ष के साथ-ही साथ प्रसाद जी ने अत मे दो एक प्रतियाँ और जोड कर नाटकीयता लाने का प्रयत्न किया है; जैसे, 'आकाश दीप', 'ममता', और 'स्वर्ग के खडहर मे', विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से कुछ चरम सीमाएँ नितान्त रहस्यवादी ढग से अस्पष्ट और अनिश्चित-सी हो गई है: जैस, 'रमला', 'ज्योतिष्मती' की चरम सीमाएँ। कुछ चरम सीमाएं व्यजनात्मक और ध्वनि प्रधान हुई है जैसे 'विसाती', 'देवदासी', और, 'प्रतिध्वनि' आदि। इन के अतिरिक्त अधिकाश चरम सीमाएँ ऐसी भी हैं जो जिज्ञासा और प्रश्न-विन्दु पर समाप्त हुई हैं, जहाँ से पाठक को फिर से एक नए सिरे से एक नई समस्या को सुलझाना पडता है जैसे 'बनजारा', 'हिमालय का पथिक' और 'स्वर्ग के खडहर मे'।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष मे प्राकृतिक दृश्य और शोभा वर्णन यहाँ पहले की अपेक्षा उत्कृष्ट ढग से हुआ है। वस्तुत: इन दोनो की अवतारणा कहानी के प्राय: प्रत्येक क्रम पर होता है और इस तरह सम्पूर्ण कहानी मे सुन्दर वातावरण प्रस्तुत करने के लिए दृश्य चित्रण और शोभा वर्णन बार-बार आया है। इस से कही-कही कहानियो मे व्यंजना और लाक्षणिकता आ गई है। 'स्वर्ग के खडहर मे', प्राकृतिक दृश्य कितना अनुपम है। "बन्य कुसुमो की झालरे सुख शीतल पवन से विकम्पित होकर चारो ओर झूल रही थी, छोटे-छोटे करनी की कलाएं कत-राती हुई बह रही थी'। लता वितानो ढकी हुई प्राकृतिक गुफाएँ शिल्प रचना पूर्ण सुन्दर प्रकोष्ठ बनाती जिसमे पागल कर देने वाली सुगध की लहरे नृत्य करती थी। स्थान-स्थान पर कुजो और पुष्प शाखाओ का समारोह, छोटे-छोटे

विश्राम गृह, पान-पात्रो मे सुगधित मदिरा, भाँति-भाँति के सुस्वादु फल फूलवाले वृक्षो के झुरमुट दूध और मधु की नहरो के किनारे गुलाबी बादलो का क्षणिक विश्राम। चाँदनी का निभृत रग मच, पुलकित वृक्ष फूलो पर मधु मक्खियो की भन्नाहट, रह-रह कर पक्षियो के हृदय मे चुभने वाली तान, मणि-दीपो पर लटकती हुई पुलकित मालाएँ।"

इन प्राकृतिक चित्रणो मे प्रसाद की काव्यमयी रेखाओ ने कल्पना के पख लगा कर और कितने विभिन्न रगो के अनुपात से अनुपम चित्रो को उपस्थित किया है। यहाँ प्राकृतिक चित्रण सम्पूर्ण चित्रात्मकता और व्यजना के साथ प्रस्तुत हुआ है। इस मे वातावरण निर्माण की अद्भुत शक्ति चरितार्थ हुई है। कहानी मे ऐसे प्राकृतिक चित्रण जहाँ एक ओर घटनाओ, क्रिया-कलापो के लिए पृष्ठभूमि और वातावरण प्रस्तुत करते हैं वहाँ कहानी मे इन की अवतारणा कथासूत्र के आरम्भ और विकास-क्रमो के लिए सुन्दर पीठिका के लिए भी हुआ है। यही कारण है कि एक एक कहानी मे ऐसे प्राकृतिक चित्रण बार-बार आए हैं।

शोभा वर्णनो मे ये रेखाएँ और सूक्ष्म तथा अतर्मुखी हुई है। ये रेखाएँ शोभा रूप के वर्णनो मे वस्तुस्थिति के केवल बाह्य स्तर को छूकर नही लौट आती, वरन् उस के अन्तरतम मे पैठ कर उस के शास्वत और चिरतन रूप की अभिव्यक्ति करती है। "एक धीवर कुमारी समुद्र तट से कगारो पर चढ़ रही थी, जैसे पख फैलाये तितली नील भ्रमरी-सी उसकी दृष्टि एक क्षण के लिए कही नही ठहरती थी। श्याम सलोनी सी गोधूली-सी वह सुन्दरी सिकता मे अपने पद चिह्न छोडती हुई चली जा रही थी। सायकाल का समुद्रतट उसकी आँखो मे दृश्य के उस पार की वस्तुओ का रेखाचित्र खीच रहा था, जैसे वह जिसको नही जानता था, उसको कुछ-कुछ समझने लगा हो, और वही समझ, वही चेतना एक रूप रखकर सामने आ गई। उसके अधरो मे मुसकान, आँखो मे व्रीडा और कपोलो पर यौवन की आभा खेल रही थी, जैसे नील मेघ खड के भीतर स्वर्ण किरण अरुण का उदय।"

यह रूप सौन्दर्य कितनी काव्यात्मक, और सुन्दर रेखाओ से बाँधा गया है, इस मे भावभूमि कल्पना और भाव किस स्तर से घनीभूत हैं, कहा नही जा सकता, यही कारण है कि प्रसाद की कहानियो के सारे चरित्र मुख्यत स्त्री चरित्र परम सुन्दर और अद्भुत रेखाओ से निर्मित हुए हैं, फलत. ये चरित्र महाकाव्य खडकाव्य के चरित्र अधिक लगते हैं, कहानी के कम।

कथोपकथन

कलात्मक दृष्टि से, 'आकाश दीप', की कहानियो मे कथोपकथन का मूल्य बहुत है। प्राय समस्त कहानियाँ मुख्यत इसी के माध्यम से विकसित की गई हैं, यही कारण है कि कुछ कहानियो मे बहुत लम्बे-लम्बे कथोपकथन आ गए है, जैसे, 'स्वर्ग के खडहर मे', 'विसाती', और 'आकाश दीप', आदि मे। यहाँ की प्रतिनिधि कहानियो का आरम्भ भी कथोपकथन से ही हुआ है और प्राय: समस्त कहानिया की मुख्य सवेदनाएँ वर्णनो या चित्रणो के माध्यम से अभिव्यक्ति न पाकर सर्वथा कथोपकथनो के ही माध्यम से निर्मित हुई हैं।

शिल्प की दृष्टि से इन कथोपकथनो की शैली विशुद्ध ढग से नाटकीय है। यही कारण है कि, 'आकाश दीप', 'समुद्र सतरण', 'स्वर्ग के खडहर' मे, 'बनजारा', 'विसाती', आदि कहानियों के कथोपकथनात्मक अश पढते समस ऐसा लगने लगता है कि हम कोई प्रसाद जी के नाटक को पढ रहे है, कहानी को नही, जैसे, "मै भूल जाता हूँ मीना ! हाँ मीना ! मैं तुम्हे मीना नाम से कब तक पुकारूँ, और मैं तुम्हे तुमको गुल कहकर क्यो बुलाऊँ ?"

"क्यो मीना ! यहाँ भी तो हम लोगो को सुख ही है, है न ! अहा क्या ही सुन्दर स्थान है, हम लोग जैसे एक स्वप्न देख रहे है, कहाँ दूसरी जगह न भेजे जायँ, तो क्या ही अच्छा हो।"

"नही गुल, मुझे पूर्व स्मृति विकल कर देती है। कई बरसेँ बीत गए वह माता के समान दुलार, उस उपासिका की स्नेहमयी, करुणा भरी दृष्टि आँखो मे कभी-कभी चुटकी काट लेती है, मुझे तो अच्छा नही लगता बन्दी होकर रहना तो स्वर्ग मे भी। अच्छा तुम्हे यहाँ रहना नही खलता।"

"नही मीना ! सबके बाद जब मै तुम्हे अपने ही पास पाता हूँ तब और किसी आकाँक्षा का स्मरण ही नही रह जाता, समझता हूँ कि तुम गलत-समझते हो।"

वस्तुत. कहानी मे कथोपकथन की उक्त शैली की कोई अच्छी शैली नही है, इन की उत्कृष्टता नाटको मे ही चरितार्थ होती है, कहानी मे नही क्योकि नाटक मूलत. दृश्य काव्य है, लेकिन कहानी मे कार्य, घटना और वर्णन के बीच से कथोपकथनो को प्रस्तुत करना पडता है क्योकि कहानी मूलत. पठनपाठन की वस्तु है। इस शैली से कहानी मे प्रवाह चित्रात्मकता व्यजना तो बनी ही रहती है, इस के अतिरिक्त कहानी मे गढन और स्वाभाविकता रहती है। पात्र अपने कथोपकथनो के समय किन-किन भाव भगिमाओ मे बदलते रहते है, उन मे

क्या-क्या क्रियाएँ हो रही है, आदि सब का उल्लेख कथोपकथनो के साथ होते रहना चाहिए, फलतः इस भाँति स्वतत्र कथनोपकथनो की अवतारणा केवल नाटको मे ही शोभा पाते है, कहानी मे नही ।

लक्ष्य और अनुभूति

लक्ष्य-विन्दु पर यहाँ बौद्ध दर्शन का प्रभाव बहुत सुन्दरता से मुखरित हो आया है । प्रारम्भिक कहानियो के लक्ष्य-विन्दु पर प्रायः करुणा की वृत्ति थी, अर्थात् अधिकाश कहानियाँ करुणा-प्रतिष्ठा के लक्ष्य से लिखी गयी थी । वस्तुत. बौद्ध दर्शन से प्रसाद जी ने दो महान् सत्य ढूढ निकाला : नारी शक्ति की महानता और उन का सम्मान तथा मानव जीवन की करुणा और मानव के प्रति क्षमा, दया, और प्यार ।

इन्ही सत्यो के ऊपर प्रसाद जी की कहानियो के लक्ष्य-विन्दु का निर्माण हुआ है और इसी लक्ष्य-विन्दु से, 'आकाश दीप', की सारी कहानियाँ लिखी गई है । 'आकाश दीप', 'चूडीवाली', 'देवदासी', 'स्वर्ग के खडहर मे', इन कहानियो की सृष्टि नारी चरित्र की महानता और उस की आत्मा के कारुणिक धरातल पर हुई है । स्वतंत्र रूप से मानव जीवन की करुणा दिखाने लिए, 'ममता', 'वनजारा', और 'विसाती', कहानियो की रचना हुई है । मानव के प्रति क्षमा, दया और प्यार के लक्ष्य को लेकर 'भिखारिन', 'अपराधी', 'वैरागी', कहानियाँ लिखी गई है ।

इन के अतिरिक्त, 'आकाश दीप' की कुछ कहानियाँ विशुद्ध मनोवैज्ञानिक अनुभूतियो के धरातल पर निर्मित हुई है । उस अनुभूति का मुख्य केन्द्र है—प्रेम, इसी प्रेमानुभूति की ही प्रेरणा से रची हुई कहानियाँ यहाँ प्राय गद्यगीत हुई हैं, जैसे, 'समुद्र सतरण', 'प्रणय चिह्न', 'रूप की छाया', 'ज्योतिष्मयी', 'रमला' 'समुद्र सतरण' की प्रेमानुभूति स्पष्ट ढग से छायावादी गीत की प्रेरणा-सी लगने लगती है । "बेला से दूर चारो ओर जल । आँखो मे वही धवल पात्र, कानो मे अस्फुट संगीत, सुदर्शन तैरते-तैरते थक चला था । ××× छोटी मछली पकडने की एक नाव आ रही थी । पास आने पर देखा, धीवर वशी बजा रहा है और नाव अपने मन से चल रही है ।

धीवर बाला ने कहा, "आओगे ?"

लहरो को चीरते हुए सुदर्शन ने पूछा, "कहाँ ले चलोगी ?"

पृथ्वी से हर जल राज्य मे, जहाँ कठोरता नही केवल शीतल कोमल

और तरल आलिंगन है, प्रवंचना नही सीधा आत्मविश्वास है । वैभव नही सरल सौन्दर्य है ।

अत. ऐसी कहानियो मे गीत तत्व अधिक आ गए है और कहानी तत्त्व जैसे लुप्त हो गए हैं। उत्कृष्ट कहानी अवश्य अनुभूतियों पर आधारित होती है लेकिन वह मनोवैज्ञानिक अनुभूति किसी समस्या सूत्र के साथ आती है । वैसे यह सर्वथा स्पष्ट है कि केवल अनुभूति और भाव सयोग से गीत कौ सृष्टि होती है, कहानी की नही ।

समीक्षा

'आकाश दीप' की कहानियाँ मुख्य रूप से सवेदनात्मक कहानियाँ है, यहाँ परिस्थितियाँ गौण है और सवेदना की तीव्रता सब से अधिक हैं। सवेदनाएँ मुख्य रूप से प्रेम के केन्द्र-विन्दु से चारो ओर फैली हैं । फलत यहाँ कहीं प्रेमी-प्रेमिका को लेकर नारी-पुरुष के प्रेम के चिरन्तन सत्य और प्रश्न को छुआ है, कही उपेक्षिता के प्रति प्रेम दिखा कर प्रेमियो को सदा के लिए अलग करके उन्हे मूक रहने की शिक्षा दी है । इस तरह प्रेम के धरातल चारो ओर विखरी हुई संवेदनाएँ आकाशदीप, की कहानियो की आत्माएँ है जो 'ममता' ऐसी विधवाओ भिखारिन, सँपेरिन, धीवर बाला, और चूड़ीवाली विलासिन ऐसी उपेक्षिताओ को अपने मे समेटे हुए हैं ।

ऐसी सवेदना-जन्य कहानियाँ प्रसाद की कहानी-साहित्य की एक अमूल्य निधि हैं, जिस मे विशुद्ध प्रेम जन्य कहानियाँ जैसे 'आकाश दीप', 'बनजारा', 'स्वर्ग के खडहर मे', 'विसाती', आदि उत्कृष्ट हैं ।

तृतीय काल

यह काल प्रसाद की कहानी कला का चरम उत्कर्ष काल है । इसलिए नही कि इस काल मे अपेक्षाकृत बहुत कहानियाँ लिखी गई है, बल्कि इस काल मे प्रसाद जी अपनी सृष्टि के प्रयोग काल (१९२६ ई०) से आगे बढ कर जीवन को जितनी गहराई से देखा है, जीवन के अनेकानेक भाव-भंगिमाओ का जितना गभीर और पूर्ण चित्र उपस्थित किया है, वह स्तुत्य है । इस काल की लिखी हुई कुल कहानियाँ पच्चीस है, और इन पच्चीस कहानियो मे प्रसाद जी ने मानव दर्शन, मनोभावो, अनुभूतियो को अपनी कला मे जितनी ईमानदारी से सजोया है, वह अमूल्य है । 'छाया,' 'प्रतिध्वनि', की कहानियाँ तरुण रोमाटिक

कवि के भाव चित्र है। 'आकाश दीप', की कहानियाँ विकसित होकर जीवन के प्रति एक जागरूक भावात्मक दृष्टिकोण उपस्थित करती हैं। लेकिन इस काल की कहानियो मे जीवन-दर्शन की पैठ और कलात्मक स्तर की ऊँचाई, दोनो का सयोग अपूर्व है।

कथानक

यहाँ की भी कहानियाँ दो तरह की हे। कुछ कहानियाँ लम्बी और विस्तृत है। ये प्राय. ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक सवेदनाओ को लेकर लिखी गई हैं और अपने समय रूप मे बहुत लम्बी कहानियाँ हो गई हैं, जैसे, 'आधी', 'पुरस्कार', 'नीरा', 'दासी', 'इन्द्रजाल', 'नूरा' 'गुडा', 'देवरथ', और 'सालवती'। इन कहानियो के कथानक बहुत लम्बे और अनेकानेक मोड़ो के साथ निर्मित हुए है। इन के रूप को देख कर, ये नाटक की कथावस्तु लगते हैं, और वस्तुत. इन की सवेदनाएँ नाटक सृष्टि लिये अधिक उपयुक्त और स्वाभाविक है। यहाँ दूसरी प्रकार की कहानियाँ वे है जो यथार्थ भावभूमि पर, स्केच, की शैली मे लिखी गई है। उन के कथानक अत्यन्त छोटे और आधुनिक शिल्पविधि की दृष्टि से अत्यन्त सफल कथासूत्र हैं। 'मधुआ', 'घीसू', 'ग्रामगीत', 'विजया', 'अमिट स्मृति', 'छोटा जादूगर', 'परिवर्तन', 'सदेह', 'भीख', 'चित्र मन्दिर', 'अनबोला', मे कथासूत्र की लघुता और प्रासगिकता ने इन मे बहुत कलात्मकता ला दी है।

पहले प्रकार के लम्बे कथासूत्रो के पीछे, प्रसाद जी की एक मुख्य प्रेरणा कार्य कर रही थी। वे एक समूचे युग, एक समूची भावधारा के बाँधने मे अपनी सवेदनाओ को इतना विस्तृत कर देते थे कि कहानी की भावभूमि बहुत लम्बी-चौडी हो जाती थी। यह सत्य, देश काल, परिस्थिति तीनो दिशाओ मे चरितार्थ होता है। उदाहरण के लिए, 'सालवती' मे, पूरा एक युग समाया हुआ है। वज्जियो के कुल की मर्यादा और गरीबी, सालवती और उस के वृद्ध पिता धवल यश की दयनीय स्थिति, कर्मकाडियो की महत्ता, विदेह, वज्जि, लिच्छिवि, और मल्लो की कीर्तिरेखा, धवल यश, और उस का वस्तुवादी दृष्टिकोण, कुल अभिमान, उसकी मौत, सालवती और उस से कुल पुत्रो की भेट, जनपद और वसतोत्सव सुन्दर निर्वाचन युद्ध, सालवती और अभय का प्रेम, द्वन्द्व, युद्ध अभिमान सालवती की पुत्रोत्पत्ति, नवजात शिशु की उपेक्षा, अभय का शिशु पाना और आठ वर्ष बाद अभय और सालवती का संयोग। इन मोटी रेखाओ के बीच मे कथासूत्र का विस्तार अपने मे दार्शनिक प्रवचन वादविवाद, अभिसधि आदि को समेटे हुए है। इसो तरह 'आधी', 'इद्रजाल', और 'पुरस्कार', मे

कथासूत्र विभिन्न रेखाओ मे फैलकर समूचे युग का दर्पण बन गया है। लेकिन यहाँ इतिवृत्तात्मकता मे प्रासगिकता अधिक प्रधान है, कथा की पुर्णता नही। यही कारण है कि ये कहानियाँ इतने लम्बे कथासूत्र के रहते भी आकर्षण और कलात्मक हैं क्योकि इन के विकास मे कौतूहल और जिज्ञासा के बीच बहुत कलात्मक ढग से कथासूत्र मे पिरोए गए हैं।

छोटे कथानको मे यह भावभूमि बहुत सीमित और अति साकेतिक हो गया है। यहाँ कथासूत्र आधुनिक कहानियो जैसा है और इस मे जीवन की यथार्थ समस्याओ को लिया गया है। इन कथासूत्रो मे एक ओर गठन है और दूसरी ओर कलात्मक तेजी। ऐसे कथासूत्रो मे प्राय. सामाजिक सवेदनाएँ ही पिरोई गई हैं। इन कथासूत्रो मे प्रसाद जी ने पहले की भाँति भारतीय नाटक प्रणाली की दिशा मे बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठा नही की है

प्रसाद ने लम्बे ऐतिहासिक इतिवृत्तो मे कही-कही पूर्व कथा, पूर्व सूत्र को पृष्ठभूमि मे छिपा कर, सूत्र को बहुत आगे से उठाया है और कथासूत्र के विकासावस्था पर पहुँच कर उन्होने पृष्ठभूमि मे डाले हुए कथासूत्र का कलात्मक लाभ उठाया है, जैसे 'आँधी' के कथासूत्र मे लैला, एक बिलोची तरुणी एक हिंदू तरुण रामेश्वर से प्रेम करती है। वस्तुत˙ यह प्रेम दोनो मे कब, कैसे, किन परिस्थितियो मे पैदा हुआ, कैसे इस का इस भाँति विकास सम्भव हुआ, इस का सूत्र हमे कहानियो मे कही नही, वरन् कथासूत्र बहुत आगे बढ़ कर विकसित प्रेम के धरातल पर चलने लगता है। कथानक-निर्माण मे प्रसाद जी की यह शैली परम सुन्दर और कलात्मक है छोटे कथासूत्रो मे यह शैली कही नही है। यहाँ कथासूत्र बिल्कुल सीधा और स्पष्ट है।

चरित्र

यहाँ चरित्र अपनी पिछली पूर्ण प्रवृत्तियो और व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताओ मे परम स्पष्ट है, और अपनी चारित्रिक सीमाओ पर कलात्मक ढग से प्रतिष्ठित हुए हैं। स्त्री पात्रो का अपूर्व आकर्षण, परम सौन्दर्य तथा उन का कारुणिक व्यक्तित्व बहुत ही उत्कृष्ट है। पुरुष पात्र अपनी भावुकता, सौन्दर्य-निष्ठा के साथ-साथ कर्मवादिता पर भी स्थिर है अर्थात् प्रसाद के बौद्ध दर्शन, कवि दर्शन और जीवन दर्शन के पूर्ण समन्वय पर, यहाँ के चरित्रो की अवतारणा हुई है।

स्त्री

यहाँ स्त्री चरित्र रूप, यौवन और विलास के सुन्दरतम सधि-विन्दु पर प्रतिष्ठित हुए है। 'इन्द्रजाल' की बेला, का व्यक्तित्व रूप और यौवन की कितनी रगीन और मादक रेखाओ से निर्मित है : "बेला, साँवरी थी। जैसे पावस की मेघमाला मे छिपे हुए आलोक पिंड का प्रकाश निखरने की अदम्य चेष्टा कर रहा हो, वैसे ही उसका यौवन सुगठित शरीर के भीतर उद्वेलित हो रहा था। गोली के स्नेह की मदिरा से उसकी कजरारी आँखे लाली से भरी रहती। वह चलती तो थिरकती हुई, बातें करती तो हँसती हुई। एक मिठास उसके चारो ओर बिखरी रहती।" नूरी, मे नूरी स्त्री चरित्र मे प्रसाद की ये रेखाएँ और भी बलवती हुई है "और भी आज पहला ही अवसर था, जब उसने केशर कस्तूरी और अम्बर से बसा हुआ यौवन पूर्ण उद्वेलित आलिंगन पाया था। उधर किरणें भी पवन के एक झोंके के साथ किसलयो को हिलाकर घुस पडी। नूरी कश्मीर की कली थी। सिकरी के महलो मे उसके कोमल चरणो की नृत्यकला प्रसिद्ध थी। उस कलिका को आमोद मकरद अपनी सीमा से मचल रहा था।"

इस के साथ ही साथ यहाँ स्त्रियो मे कर्मशीलता, शौर्य, और निर्भीकता भी आई है। ये सतेज और भावुक स्त्रियाँ जहाँ एक ओर भावुकता और प्रेम म डूबी हुई है वहाँ दूसरी ओर प्रेम, चरित्र और आदर्श को बलि-वेदी पर अपने को उत्सर्ग भी किया है। यह सत्य सब तरह की सब देश काल परिस्थिति की स्त्रियो के प्रति चरितार्थ हुआ है, चाहे वह ईरानी, चाहे वह बलूची युवती हो, या गजनी की सुरबाला, या कोहकाफ की परी हो।

प्रसाद ने क्यो स्त्री चरित्र अवतारणा मे इतने विभिन्न देश काल की स्त्रियो को लिया है ! प्रसाद ने अपने स्त्री दर्शन मे दुनिया की सारी स्त्रियो को स्त्रीत्व के एक ही धरातल से देखा है और सब के व्यक्तित्व निर्माण मे सर्वत्र वही प्रेम, त्याग, क्षमा, भावुकता, सौन्दर्य, और मादकता है। क्योकि प्रसाद ने यहाँ अन्यान्य देश, जाति वर्ग की स्त्रियो को कला और मूर्ति की दृष्टि से देखा मे, यहाँ सर्वत्र समन्वय ही समन्वय है, आर जो भारतीय स्त्री मूर्ति सौंदर्य का ही एक रूप है फलतः उस से कभ। अलग नही है—"मै उसके मुख को कला की दृष्टि से देख रहा था कला की दृष्टि, ठीक बौद्ध कला, गाधार कला, द्रविणो को कला इत्यादि नाम से भारतीय मूर्ति सौन्दर्य के अनेक विभाग जो है[1]।"

---

[1] आँधी, पृ० ६-७।

यहाँ स्त्री चरित्र की अवतारणा और स्त्री समग्र रूप की व्यवस्था प्रायः एक ही धरातल से हुई है, और वह धरातल है, अतर्द्वन्द्व । इसी अतर्द्वन्द्व के केन्द्र विन्दु से उस के चारो ओर प्रतिशोध, उत्सर्ग, क्षमा, दया, प्रेम, बलिदान और सहनशीलता की रेखाएं बिछी हुई हैं । इस के उदाहरण मे 'आँधी' की लैला. 'दासी' की फिरोजा, 'ग्रामगीत' की रोहिणी, नीरा' की 'नोरा, 'पुरस्कार' की मधूलिका, 'इन्द्रजाल' की बेला, 'देवरथ' की सुजाता और 'सालवती' ज्वलत उदाहरण है ।

पुरुष

द्वितीय काल की कहानियो मे पुरुष चरित्र के व्यक्तित्व को पूर्ण प्रतिष्ठा और उन के निजत्व का प्रतिनिधित्व नही हो सका था । उस का मुख्य कारण था कि आकाश दीप तक की कहानियाँ स्त्री प्रधान है उन के चरित्र के ही केन्द्र-विन्दु से ही सारी कहानियाँ विकसित हुई है ।

इस काल मे भी, यद्यपि स्त्री चरित्र ही उभरा हुआ है, लेकिन यहाँ पुरुष चरित्र को भी समानता दी गई है। 'आँधी', 'पुरस्कार', 'सालवती', 'देवरथ' और 'इन्द्रजाल' मे स्त्री चरित्र के समान ही पुरुष चारित्र को प्रधान्ता मिली है ।

'पुरस्कार', मे राजकुमार अरुण मधूलिका का प्रकाश है, उस का पुरस्कार है, फलतः उस की कर्मशीलता, चारित्रिक दृढ़ता और संवेदनशीलता अपूर्व है । 'सालवती' का अभय, उस का पुरुष व्यक्तित्व, उसका प्रेम, उस का अभिमान, विजय, वैशाली आगमन मे शिशु स्वीकृति और उस की अन्य चारित्रिक महानता—सब ने एक विन्दु पर मिल कर, पुरुष चरित्र को परम उत्कृष्ट बनाया है, तभी यह सत्य बार-बार मस्तिष्क मे घूमता है कि इस काल के पुरुष चरित्र, यहाँ के स्त्री चरित्र के समान ही अपने निजत्व और व्यक्तित्व को स्वय प्रतिष्ठित करके प्रेम, त्याग, बलिदान और अपने चारित्रिक दृढता मे अनोखे सिद्ध हुए हैं । 'नूरी' का प्रेमी याकूब' बेला का उपासक गोली' सालवती का प्रेमी अभय' सुजाता का प्राण आर्यमित्र' मधूलिका का स्वर्ग अरुण' आदि पुरुष चरित्र इन दिशाओ मे सदा अमर रहेगे ।

इस के पूर्व की कहानियो के पुरुष चरित्र अपेक्षाकृत भावुक और तरुण—रोमाटिक तथा केवल प्रेम स्वप्नो मे दृढ थे । यही कारण है कि उन के पुरुषमत व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा पिछली कहानियो मे नही हो सकी है । परन्तु यहाँ 'गुडा'

का ननकू सिह ऐसा प्रतिनिधि पुरुष चरित्र है कि इस से पुरुषत्व और पुरुष के दायित्व को गर्व हो सकता है : कितनी विधवाएँ उस की दी हुई धोती से अपना तन ढकती है। कितनी लडकियो की ब्याह-शादी होती है। कितने अनाथ हुए लोगो की इस के द्वारा रक्षा होती है। अत मे अग्रेजी से काशी के सम्मान की रक्षा तथा चेत सिह को बचाने मे वह बीसो तिलंगो की सङ्गीन मे अविचल खडा, तब तक तलवार चलाता है जब तक उस के शरीर का एक-एक अग कट कर जमीन पर नही गिर जाता। इस के अतिरिक्त यहाँ 'मधुआ', 'घीसू', 'बेड़ी', 'विजया', 'भीख', 'सदेह' आदि मे कहानियाँ मूलत पुरुष चरित्र की कहानियाँ है। यहाँ पुरुप के मनोभावो उस की सीमाओ उस की निरीहता और सघर्षो को लेकर ये कहानियाँ निर्मित हुई है।

अतएव इस काल मे आकर प्रसाद के पुरुष चरित्र मे वह व्यक्तित्व, वह निजत्व तथा चरित्र को पूर्णमत्ता प्रतिष्ठित हो सकी है, जिस की कमी इस के पूर्व की कहानियो मे खटक रही थी। स्त्री-पुरुष चरित्र के समान अवतारणा और सृष्टि से इस काल की कहानियो मे प्रसाद की कहानी-कला का परम उत्कर्ष सिद्ध हो सका है, नही तो शिल्पिविधि की दृष्टि से प्रसाद जी का मूल्य, एक कहानीकार की दृष्टि से बहुत नीचे चला जाता है।

शैली

शैली के व्यापक पक्ष मे यहाँ की भी ऐतिहासिक, काल्पनिक और भावुक कहानियो का रूप पिछली ही शैली के अतर्गत है। यहाँ केवल यथार्थवादी कहानियो की आरम्भ शैली मे नवीनता आई है। 'घीसू', 'बेडी'' 'भीख', 'सदेह', 'विजया', और 'परिवर्तन' आदि मे कहानी का आरम्भ बिलकुल स्वाभाविक और यथार्थ गति से हुआ है, और ऐसे आरम्भो मे कहानी शैली के तत्व अधिक निखर सके है। जैसे 'भीख' का आरम्भ—

"खपरैल की दालान मे, कम्बल पर मिन्ना के साथ बैठा हुआ बृजराज मन लगा कर बाते कर रहा था। सामने ताल मे कमल खिल रहे थे। उस पर से भीनी-भीनी महक लिए हुये पवन धीरे-धीरे उस झोपडी मे आता और चला जाता। मा कहती थी मिन्ना ने केशो को बिखराते हुए कहा। क्या कहती थी ?"

'विजय' का आरम्भ—"कमल का सब रुपया उड चुका था सब सपत्ति बिक चुकी थी। मित्रो ने खूब दलाली की, न्यास जहाँ धरा वही धोखा हुआ जो उसके साथ मौज मङ्गल मे दिन बिताते थे, रातो को आनन्द लेते थे वे ही

उसकी जेब टटोलते थे । उन्होने कही पर, कुछ भी बाकी नही छोडा, सुख भोग के जितने आविष्कार थे, साधन भर सबका अनुभव लेने का उत्साह ठडा पड चुका था । बच गया था एक रुपया।''

इस के अतिरिक्त यहाँ प्रथम पुरुष के वर्णनो से 'बेडी' और 'चित्रवाले पत्थर' कहानियो का आरम्भ हुआ है, 'चित्र वाले पत्थर' का आरम्भ—

''मै सगमहल का कर्मचारी था। उन दिनो मुझे विंध्य शैल माला के एक उजाड स्थान मे सरकारी काम से जाना पडा । भयानक वनखड के बीच पहाडी से हट कर एक छोटी-सी डाक बङ्गलिया थी । मैं उसी मे ठहरा था। वही की एक पहाडी मे एक प्रकार का रङ्गीन पत्थर निकलता था । मैं उसकी जाँच करने और तब तक पत्थर की कटाई बन्द करने के लिए गया था।''

विकास

विकास-क्रम मे यहाँ की भी प्रतिनिधि कहानियो मे वही द्वितीय काल के अवस्था-क्रम रखे गए है—समस्या प्रवेश, परिचय द्वन्द्व का जन्म और घात-प्रतिघात । लेकिन यहाँ की कहानियो मे पहले की अपेक्षा घात-प्रतिघात पर अधिक बल दिया गया है। 'सालवती', 'आँधी', 'देवरथ' आदि कहानियो का लक्ष्य-विन्दु, घात-प्रतिघात है, शेष विकास की और अवस्थाएँ बस, साधन या प्रयोजन मात्र है। फलत इन कहानियो मे घात-प्रतिघात को भी स्पष्ट रूप से हम दो स्थितियो आरोह, अवरोह मे बाँट कर देख सकते है ।

'आँधी' मे समस्या का प्रवेश लैला का पत्र है । परिचय है लैला का बलूची भोली-भाली युवती होना । द्वन्द्व का जन्म है बिना समझे-बूझे लैला का रामेश्वर से प्रेम करने लगना । घात प्रतिघात मे दो स्थितियाँ समान रूप से पूर्ण मुख्यता लिए हुए आती है । आरोह मे अतर्द्वन्द्व इन क्रमो से आगे बढ़ता हे । लैला के पास रामेश्वर ने जो हिन्दो मे पत्र भेजा था, उस मे लैला के प्रेम को अपनी असमर्थता प्रकट करके अस्वीकार किया था । लेकिन लैला ने उस पत्र को जिस व्यक्ति से पढ़वाया, उस ने लैला के विश्वास की रक्षा के लिए झूठ बोल दिया कि उस ने लिखा है कि मै तुम को प्यार करता हूँ । अव यह द्वन्द्व दो दिशाओ मे विकास पाने लगता है। लैला उधर अपने प्रेम मे पागल रहती है । पत्र-पाठक रामेश्वर का दोस्त है, वह रामेश्वर और उस की धर्मपत्नी मालती तथा उस के तीन बच्चो को खूब जानता है । वे सब आपस मे कितने सुखी और

को जब इस झूठ का पता चलेगा, तब मालती का क्या होगा। लैला उन से चाहे जो प्रतिशोध ले सकती है। उसी स्थान पर रामेश्वर संयोग वश अपने परिवार के साथ वायु-परिवर्तन के लिए आता है। अन्तर्द्वन्द्व का आरोह पत्र-पाठक के हृदय मे और बढता है, तथा इस अन्तर्द्वन्द्व के आरोह का चरमविन्दु वहाँ होता है जहाँ पत्र-पाठक लैला से सत्य का उद्घाटन करता है।

"उस चिट्ठी मे लैला . मैंने उसमे कुछ झूठ कहा था।"

"झूठ" ! लैला की आँखो मे बिजली निकलने लगी थी।"

"हाँ लैला ! उसमे रामेश्वर ने लिखा था कि मैं तुमको नही चहता, मुझे बाल बच्चे है।"

"ऐ तुम झूठे ! दगाबाज ! कहती हुई लैला अपनी छूरी की ओर देखती हुई दाँत पीसने लगी।" इस के उपरान्त विकास-क्रम मे अवरोह की स्थितियाँ आती है। लैला रामेश्वर से भेट करती है, लैला रामेश्वर ही से अपने प्रेमपत्र को पढाती है। रामेश्वर से उस पत्र को फाडने के लिए कहती है और रामेश्वर उसे सचमुच फाड देता है। लेकिन लैला का चरित्र अपनी सच्चाई, अपनी दृढता, विश्वास, त्याग, क्षमा के मिलन-विन्दु पर आकर महान हो जाता है। घात-प्रतिघात की यही स्थितियाँ 'सालवती', 'देवरथ' और 'पुरस्कार', आदि कहानियो मे मिलेगी।

यहाँ कुछ कहानियो मे विकास-क्रम के अनुपात मे असतुलन आ जाने से कहानी के पूर्वार्द्ध मे, इस की इकाई नष्ट हो गई है, इन्द्रजाल इस का उदाहरण है यह विकास-क्रम गठित न होने के कारण कहानी मे आकस्मिकता उत्पन्न हो गई है। इस के अतिरिक्त यहाँ की प्रतिनिधि कहानियाँ कथानक प्रधान और प्रसंग विस्तार के कारण सयोग और घटना के सहारे विकसित हुई हैं।

चरम सीमा

यही कारण है कि यहाँ की प्रतिनिधि कहानियो की चरम सीमाएँ घटना अथवा संयोग पर प्रतिष्ठित हुई हैं, जैसे 'आँधी' की चरम सीमा—"आँधी रुक गई थी मैंने देखा कवि पीपल की बडी-सी डाल कटी पडी थी, और लैला उसके नीचे दबी हुई अपनी भावनाओ की सीमा प्यार कर चुकी है।" 'देवरथ' की चरम सीमा—"देवरथ विस्तीर्ण राथपथ से चलने लगा। उसके दृढ़ चक्र धरणी की छाती में गहरी लीक तुलते हुए आगे बढ़ने लगे। उस जन-समुद्र मे सुजाता आन पड़ी और एक क्षण मे उसका शरीर देवरथ के भीषण चक्र से पिस उठा।"

कुछ कहानियो की चरम सीमाओ के उपरान्त छोठे-छोटे उपसंहार भी जुड़े मिलते है, जैसे, "चित्र मदिर मे मानव जीवन के उस काल का वह स्मृति चिह्न जब कि उसके अपने हृदय लोक मे ससार के दो प्रधानो की प्रतिष्ठा की थी आज भी सुरक्षित है।"

उस प्रान्त के जगली लोग उसे राजा-रानी की गुफा और ललित कला के खोजी उसे पहला चित्र मदिर कहते है।" 'आँधी' मे "आज भी मेरे हृदय हृदय मे आँधी चला करती है और उसमे लैला का मुख बिजली की तरह कौधा करता है।"

शैली का सामान्य पक्ष

प्राकृतिक दृश्य का वर्णन और चित्रण पहले की अपेक्षा यहाँ और गभीरता से हुआ है। इस मे सूक्ष्मता, चित्रात्मकता और भावाभिव्यंजना आई है। चित्रण और वर्णन की दोनो रेखाएं अलग-अलग कल्पना और भावो को समेटने मे समर्थ हुई है। प्राकृतिक चित्रणो की अवतारणा यहाँ भी मुख्यतः कहानियो मे वातावरण प्रस्तुत करने के लिए हुई है। इस के अतिरिक्त यहाँ प्राकृतिक वर्णन मानव मनोभावो को व्यजनाओ के भी लिए हुआ है। यही कारण है कि यहाँ चित्रण की रेखाएँ कल्पना सकेतो और व्यंजनाओं से अभिभूत हो गई है। "सदा नीरा अपनी गभीर गति से, उस घने साल के जगल से कतरा कर चली जा रही है। सालो की श्यामल छाया उसके जल को और भी नीला बना रही है। परन्तु वह इस छाया दान को अपनी छोटी-छोटी वीचियो से मुस्करा कर ताल देती है, उसे तो ज्योत्सना से खेलना है। चैत की मतवाली चाँदनी परिमल से लदी थी। उसके वैभव की यह उदारता थी कि उसकी कुछ किरणो को जंगल के किनारे की फूस की झोपडी पर बिखरना पडा।"

मुख्यतः यह प्राकृतिक चित्रण कहानी के गंभीर पृष्ठभूमि के लिए किया गया है तथा इस चित्रण मे स्थिति की स्वाभाविकता और दृश्य की झाँकी भी सुन्दरता से प्रस्तुत की गई है।

शोभा वर्णन मे यहाँ आकृति शोभा और रूप शोभा दोनों का वर्णन अपूर्व ढग से हुआ है। 'सालवती' मे, कुल पुत्रो की आकृति शोभा "कुछ गंभीर विचारक से वे युवक देव, गंधर्व की तरह रूपवान थे, लम्बी चौड़ी हड्डियो वाले व्यायाम से सुन्दर शरीर पर दो एक आभूषण और काशी के बने हुए बहुमूल्य उत्तरीय, रत्न जटित, कटिबध मे कृपाणी। लच्छेदार बालो के ऊपर सुनहरे पतले

पटबध और वसतोत्सव के प्रसान चिह्न स्वरूप दूर्वा मधूक पुष्पो की सुरचित मालिका। उनके मासल भुजदड कुछ-कुछ असावपात से अरुण नेत्र, ताम्बूल रजित सुन्दर अधर रूप शोभा का वर्णन भी इसी प्रकार नितान्त कलात्मक है। सुजाता की रूप शोभा—"दो-तीन रेखाएँ भाल पर, काली पुतलियो के समीप मोटी और काली वरौनियो का घेरा, घनी आपस मे मिली रहने वाली भौंहे और नास पुट के नीचे हल्की-हल्की हरियाली उस तापसी के गोरे मुह पर सबल अभिव्यक्ति की प्रेरणा प्रकट करती थी।

कथोपकथन यहाँ और विकसित होकर पूर्ण कलात्मक और सफल हुए हैं। उन मे नाटकीयता के साथ ही साथ कहानीपने को भी कला आ गई है। यद्यपि नाटकीयता यहाँ प्रधान है।

लक्ष्य और अनुभूति

यहाँ की कहानियो के लक्ष्य विन्दु पर करुणा, त्याग और बलिदान की भावनाएँ अपूर्व ढग से व्यक्त हुई है, इस काल की प्राय समस्त ऐतिहासिक कहानियाँ ऐसी कारुणिक सवेदनाओ को लेकर लिखी गई हैं कि वे अपने लक्ष्य-विन्दु पर न जाने कितनी करुणा उत्सर्ग की सुगधि बिखेर देती है। यहाँ की कहानियाँ जो मुख्यत· किसी समस्या के धरातल पर लिखी गई है, जैसे, 'आँधी', 'सालवती' और 'देवरथ', ऐसी कहानियो मे वस्तुत लक्ष्य ही ने कथासूत्र को जन्म दिया है। यही कारण है कि प्रसाद जी ने करुण उत्सर्ग ओर त्याग को दिखाने के लिए बार-बार इतिहास से कथासूत्र को ढूँढ निकाला है, और अगर इतिहास पृष्ठो मे उन्हे कोई उचित सवेदना नही मिल सकी है तो उन्होने अपनी कल्पना मे उन सवेदनाओ की सृष्टि की जिन से उन के लक्ष्य प्रतिष्ठित हो सके। इस सबध मे प्रसाद की सब से बडी कला यह है कि उन की ऐसी कहानियाँ मुख्यत समस्या और अतर्द्वन्द्व प्रधान हो जाती है और समूची कहानी से एक मूक विद्रोह, चरित्र की महानता और उत्सर्ग की आवाज गूँजने लगती है। अत: यहाँ की प्रतिनिधि कहानियाँ 'आँधी', 'पुरस्कार', 'इन्द्रजाल', 'देवरथ', 'सालवती', 'नूरी', आदि के निर्माण के पीछे करुणा, उत्सर्ग, नारी चरित्र की महानता का लक्ष्य-विन्दु है, जो क्रमशः अलग-अलग लोको से अपने अनुरूप कथा सूत्रो को जुटा लेती है, और कथा-सूत्रो से चरित्र और चरित्र की कर्म शीलता तथा अतर्द्वन्द्वो से सम्पूर्ण कहानी बन जाती है।

फलतः यहाँ की कहानियाँ समस्या प्रधान कथा-सूत्रो के होते हुए भी

मूलत. अनुभूति प्रधान हैं, क्योकि इन कहानियो की सृष्टि का एक मात्र कारण प्रसाद की तद्विषयक अनुभूतियाँ ही थी।

समीक्षा

इस काल की कहानियो का व्यापक धरातल मनोविज्ञान हुआ है और सवेदनाएँ तथा परिस्थितियाँ इस की अनुवर्तिनी हुई है। ऐसा सभव, केवल एक कारण से हो सका है, जहाँ मनोविज्ञान जीवन के विस्तृत क्षेत्र से तादात्म्य स्थापित करके आया है, वहाँ हमारे समाज, इतिहास और सस्कृति तीनो का सधि-स्थल प्रतिष्ठित हुआ है।

सामाजिक मनोविज्ञान के धरातल से लिखी 'मधुआ', 'घीसू', 'बेडी' 'विजया', 'अमिट स्मृति', 'भीख' आदि कहानियो मे आधुनिक समाज, इस का मनोविज्ञान और व्यक्ति की विरोधी स्थितियो मे जीवन स्वय अपनी जैसी अभिव्यक्ति देता रहता है—"मार तो रोज ही खाता हूँ। आज तो खाना ही नही मिला। कुवरसाहब की ओवर कोट के लिए खेल मे दिन भर साथ रहा। सात बजे लौटा तो और भी नौ बजे तक कुछ काम करना पडा। आटा नही रख सका था। रोटी बनती तो कैसे?" यही धरातल हमारे इतिहास के मनोविज्ञान के भी पीछे और स्पष्ट शब्दो मे रो लेता है। 'सालवती', का वृद्ध पिता कहता है "आर्थिक पराधीनता ही ससार मे दुख का कारण है। मनुष्य को इससे मुक्ति पानी चाहिए, इसलिए मेरा उपास्य स्वर्ण है।" हमारी संस्कृति तथा मनोविज्ञान के तत्व दया, त्याग, क्षमा, सत्य आदि है और इन की परीक्षा क्रमश 'देवरथ', 'सालवती', 'दासी', 'पुरस्कार', आदि कहानियो मे सफलता से हुई है।

प्रसाद का आदर्शवाद

प्रसाद के सम्पूर्ण कहानी साहित्य मे आदर्श की प्रतिष्ठा उन के लक्ष्य की सब से बडी विशेषता है। यह आदर्शवाद समाज, दर्शन और व्यक्ति तीनो क्षेत्र मे समान रूप से व्यंजित हुआ है।

समाजिक क्षेत्र मे प्रसाद का आदर्शवाद अपनी दो विशेषताओ मे मिलता है। कही पुरातन की मर्यादा का समर्थन और कही सामाजिक मान्यताओं के प्रति क्रान्ति। लेकिन इन दोनो विशेषताओ मे प्रसाद सदैव अपने दृष्टि-

कोण मे उदार और प्रगतिशील रहे हैं। पुरातन मर्यादाओ मे उन्हो ने अपने आदर्शवाद के अतर्गत केवल प्रेमतत्व को लिया है, जो वस्तुत: एक महान और चिरतन आदर्श का प्रतीक है। 'रसिया बालम', 'तानसेन', और सुनहरा साँप,' मे इन्हो ने स्वतत्र प्रेम को इस प्रकार महान और शाश्वत बताया है कि उस मे स्वस्थ, प्राकृतिक प्रेरणा और स्वर्गिक आकर्षण है, जो प्रेम ऐसे वासना रहित धरातल से चरितार्थ होता है वह सदेव महान होता है। वस्तुत: प्रेम विवाह की यह स्वस्थ कसोटी हमारे पुरातन समाज की कसौटी है। इस धरातल पर प्रसाद की कहानियो मे कितने स्त्री-पुरुष पात्र एक दूसरे को सामाजिक रूप से पाने के लिए अपने आप को उत्सर्ग कर देते हैं। 'चन्दा' की चन्दा, 'रसिया बालम' की राजकुमारी, 'आधी' की लैला और 'देवरथ' की सुजाता इस परम्परा के महान प्रतीक हैं। सामाजिक मान्यताओ के विद्रोह मे प्रसाद जी ने प्रेम और अर्थ दोनो को बराबर महत्व दिया। 'चूडीवाली' और 'नीरा' मे समाज की झूठी मान्यताओं के विरुद्ध सफल विद्रोह है। 'चूडीवाली' एक विलासिनी नर्त्तकी की कन्या थी, लेकिन वह सच्चे प्रेम हृदय को लिए समाज की गृहस्थी मे वह किसी की वधू बनकर चाहती हैं, तथा वह विजयकृष्ण के चरित्र से मुग्ध होकर उन्हे ही अपना पति बनाना चाहती है। इसलिए वह चूडीवाली के रूप मे अपने को छिपा कर विजयकृष्ण से प्रेम करती है और अत मे दोनो समाज के विरुद्ध एक दूसरे से शादी कर लेते हैं। 'नीरा' मे एक धनी रुपवान व्यक्ति एक अकिंचन, वयोवृद्ध, अपाहिज व्यक्ति की एक मात्र लडकी नीरा से व्याह कर लेता है। इस तरह समाज के क्षेत्र मे प्रसाद का आदर्शवाद प्रेम और विवाह के दो केन्द्र-विन्दुओ से प्रतिष्ठित हुआ।

दर्शन के क्षेत्र मे प्रसाद का आदर्शवाद वैदिक और बौद्ध दर्शन के धरातल पर प्रतिष्ठित हुआ है। वैदिक दर्शन मे ब्रह्म और माया के पारस्परिक सबध का आदर्श 'प्रलय' कहानी मे चरितार्थ हुआ है, जहाँ शाश्वत, निरंकार और अद्वैत ब्रह्म अपने अस्तित्व के लिए सर्वदा स्वय अपने को व्यक्त करता रहता है। ब्रह्म का ताडव नृत्य होता है और माया उन मे विश्व की प्राचीनता और रमणीयता, स्वर्ण, और प्रलय सब एक साथ देखती है और अत मे नयी सृष्टि के आरम्भ के लिए ब्रह्म और माया का आनन्दमय मिलन होता है: अखड शान्ति, आलोक आनन्द।

इस के अतिरिक्त वैदिक दर्शन के अन्य अग भी हैं: प्रकृति और नियति। इसी नियति की शक्ति मे सारी प्रकृति सारा ब्रह्माड सचालित है। इसी

को कामायनी मे प्रसाद जी ने इस तरह कहा है,—"कर्म चक्र-सा घूम रहा है, यह गोलक, वह नियति प्रेरणा" । वस्तुत. इसी नियति से आदर्श को प्रतिष्ठित करने के ही फलस्वरूप प्रसाद की कहानियो मे स्थान-स्थान पर अप्रत्याशित सयोग और दैवी घटनाएँ आई है तथा पात्र मरते गए है, क्योकि प्रसाद का विश्वास है कि सब एक परोक्ष सत्ता, नियति के हाथ के कदुक है, मानव चरित्र स्वय अपने मे कुछ नही है ।

बौद्ध दर्शन का सारभूत तत्व है करुणा, सत्य, और उत्सर्ग । बौद्ध दर्शन का यह आदर्श मुख्यत. प्रसाद की समस्त कहानियो की आत्मा है । 'आँधी', 'आकाश दीप', 'देवरथ', 'नूरी', 'दासी', 'ग्रामगीत', आदि कहानियाँ तो इस आदर्श के अमर प्रतीक है ।

व्यक्ति के क्षेत्र मे आदर्शवाद की प्रतिष्ठा पुरुष पात्रो की अपेक्षा नारी पात्रो मे अधिक हुई है । प्रसाद के समस्त कहानी-साहित्य मे उन के नारी पात्र क्षमा, दया, प्रेम और उत्सर्ग की आदर्शमयी प्रतिमाएँ है, जो ससार के किसी भी कहानी-साहित्य मे नही मिल सकती । 'आकाश दीप' की चम्पा, 'पुरस्कार' की मधूलिका और 'सालवती', की सालवती जनहित लोकमगल भावना से अभिभूत, प्रेम की अमर देवियाँ भी है ।

पुरुष पात्र के माध्यम से जिस आदर्शवाद की प्रतिष्ठा हुई है, उस मे पुरुषो का शौर्य, बलिदान और चारित्रिक दृढ़ता मुख्य तत्व हैं । पुरुष पात्रो के चरित्र ये तत्व बार-बार प्रसाद की कहानियो मे आदर्श पर प्रतिष्ठित हुए है । पुरुष पात्रो मे आदर्श के एक नवीन सम्प्रदाय की सृष्टि हुई है । वीरता, जिस का धर्म, प्राण-भिक्षा माँगने वाले कायरो तथा चोट खाकर गिरे हुए प्रतिद्वन्द्वी पर शस्त्र न उठाना, सताये हुए निर्बलो की सहायता देना और प्रत्येक क्षण प्राणो को हथेली पर लिए हुए घूमना उन का बाना था । आदर्श के इस प्रकाश मे हमे 'गुंडा' ननकू सिंह का 'सालवती' का अभय, 'पुरस्कार' का अरुण, 'नूरी' का याकूब, 'इन्द्रजाल' का गोली, और 'दासी' का बलराज और अहमद प्रतिनिधि पुरुष पात्र है, जिन के निर्माण मे प्रसाद ने व्यक्ति के क्षेत्र मे अपने आदर्शवाद को प्रतिष्ठित किया है ।

प्रसाद की भाषा

प्रसाद के कहानी-साहित्य मे इन की भाषा का अध्ययन दो धरातलो मे बॉट कर किया जाता है। प्रथम, प्रसाद की ऐतिहासिक और सास्कृतिक कहानियो की भाषा, और द्वितीय प्रसाद की सामाजिक कहानियो की भाषा। वस्तुत: इन दोनो दिशाओ की भाषा दो स्तरो की है।

प्रसाद एक ऐसे कहानीकार है जो भाषा शैली के बहुत धनी थे। कहानी की सवेदना के समान और उस मे वातावरण प्रस्तुत करने के अनुरूप उन के पास परम समृद्धिशाली भाषा थी। सस्कृत के तत्सम शब्दो से लेकर हिंदी प्रदेश के ग्रामीण शब्द तक उन की भाषा-शैली मे फैले थे। अतएव उन की ऐतिहासिक या सास्कृतिक कहानियो मे भाषा की काव्यात्मकता सूक्ष्म अतर्द्दष्टि और कलात्मक ऐश्वर्य विशेष रूप से मिलता है। इस मे एक ओर भाषा की लाक्षणिकता, व्यजकता के साथ ही साथ उपमा—रूपक की प्रचुरता मिलती है तथा दूसरी ओर विभिन्न रगो और रसो मे डूबे हुए शब्दजाल मिलते है। 'आकाश दीप' की भाषा—"सामने शैल माला की चोटी पर हरियाली मे विस्तृत जल देश मे, नील पिंगल सध्या, प्रकृति की एक सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्न लोक का सृजन करने लगी। उस मोहनी के रहस्यपूर्ण जल का कुहुक स्फुट हो उठा। जैसे, मदिरा से सारा आतरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलो से भर उठी। उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनो हाथ पकड लिए। वहॉ एक आलिगन हुआ, जैसे क्षितिज मे आकाश और सिधु का। किन्तु उस परिरम्भ मे सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने अपनी कचुकी से एक कृपाण निकाला।"

इस गद्याश मे रस स्निग्ध भाषा अपने स्वाभाविक और सरल रूप से प्रयुक्त हुई है। इस मे कलात्मक सयम और भाषा शैली की सजीवता से प्रसाद जी ने हमारी सामाजिक संवेदनाओ, समस्याओ और अनुभूतियो को कितना सजीव और सूक्ष्य अभिव्यक्ति दी है। 'मधुआ', मे माया का रूप कितना स्वाभाविक और सजीव है–"शराबी उसका हाथ पकड कर घसीटता हुआ गली मे ले गया। एक गन्दी कोठरी का दरवाजा ढकेल कर बालक को लिए हुए भीतर पहुँचा। टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढेबरी जला कर वह फटे कम्बलो के नीचे से कुछ खोजने लगा।"

इस तरह प्रसाद की भाषा शैली मे एक ओर प्रतिदिन की बोली जाने वाली सजीव भाषा का सयोग है और दूसरी ओर उस मे प्रसाद के कवि, नाटक-

कार और निबन्धकार व्यक्तित्व की भाषा शैली की प्रतिभा आ मिली। फलतः प्रसाद की कहानी, भाषा शैली मे कवि की कल्पना, नाटककार का विश्लेषण और निबन्धकार के चिंतन, तीनो तत्वो का सुन्दर समन्वय है।

प्रसाद की मौलिकता

कहानीकार प्रसाद का व्यक्तित्व आधुनिक हिन्दी कहानीकारो मे सर्वथा अनूठा है। कुछ आलोचको का तो कहना है कि प्रसाद की कहानियाँ निश्चित कहानी शिल्पविधि से बहुत दूर हटकर लिखी गई है। यह बात सर्वथा अवैज्ञानिक है। वस्तुतः कहानीकार प्रसाद के व्यक्तित्व मे दो आधारभूत चेतना बहुत शक्तिशाली ढग से कार्य कर रही थी। उन की आत्मा की सच्ची आवाज उन की, 'पत्थर की पुकार', नामक कहानी मे स्पष्ट ढग से मुखरित है—"अतीत और करुणा का जो अश साहित्य मे है, वह मेरे हृदय को आकर्षित करता है।" प्रसाद जी अपनी आत्मा की इस पुकार से बहुत ही पिपासित और प्रेरित थे। फलत. उन्होने अपनी कहानियो मे सहज प्रेरणा के प्रति विश्वासघात नही किया, वरन् सर्वदा इस प्रेरणा से वे कहानियो की सृष्टि करते गए। दूसरी बात प्रसाद जी ने कहानी को कहानी के तात्विक धरातल से बहुत कम लिखा। उन के मन मे जो भी जैसी भावनाएँ उठी, उस के अनुरूप या तो उन्होने इतिहास से कोई कथासूत्र ढूँढ़ निकाला या अपने कल्पना लोक से उस की सृष्टि कर ली और उस मे अपनी सहज अनुभूतियो और भावनाओ को पिरो दिया। यही कारण है कि उन की प्राय. समस्त कहानियाँ भावात्मक हो गई हैं और भावात्मक कहानियो की अपनी स्वतत्र शिल्पविधि होती है। वे सर्वथा अपने एक-एक रूप मे स्वतत्र और मौलिक होती है। अतएव प्रसाद कहानियो मे घटना के प्रस्तुत करने मे, चरित्र-चित्रण और चरित्र-निर्माण मे, सिद्धान्त-प्रतिपादन और वातावरण की अवतारणा मे वे बिल्कुल मौलिक सिद्ध हुए है।

घटना को प्रस्तुत करने मे प्रसाद जी की तीन विशेषताएँ है—घटना की अवतारणा के पहले उस के ही अनुरूप वर्णन या चित्रण की एक पीठिका प्रस्तुत होती है। दूसरी विशेषता यह है कि घटनाओ के ही माध्यम से प्रसाद जी अपनी कहानियो मे नाटकीयता और अतर्द्वन्द्व की सृष्टि करते हैं, जैसे, 'आकाश दीप', 'इन्द्रजाल', और 'नूरी' की घटनाएँ।

चरित्रो का निर्माण प्रसाद ने सदैव कल्पना, अनुभूति और आदर्श के तादात्म्य से किया है। फलत. प्रसाद के चरित्र एक ओर भावुक, परम

सौन्दर्यनिष्ठ, आकर्षक और प्राय. यथार्थ मानव से कुछ ऊपर उठे हुए होते है, तथा दूसरी ओर उन मे अतर्द्वन्द्व, करुणा और उत्सर्ग के तत्व इतने घनीभूत रहते है कि उन्हे पूर्ण रूप से समझना मुश्किल हो जाता है उन के चरित्र की अंतर्मुखी प्रवृत्ति ही उन्हे अमर बना देती है तथा समस्त चरित्रो मे बहुत समानता भी आ जाती है। चरित्र-चित्रण की प्रमुख शैली, प्रसाद जी ने नाटकीय शैली रखी है, अर्थात् घटना और कथोपकथन के माध्यम से पात्रो का चरित्र-चित्रण।

प्रसाद जी की कहानियो मे दो शैलियो से सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। मुख्यत: उन्हो ने पात्रो के मुख से सिद्धान्तो को कहलवाया है तथा कही-कही स्वतत्र वर्णनो मे भी इस का प्रतिपादन हुआ है, जैसे' 'सालवती' के वर्णनो मे।

वातावरण का निर्माण प्रसाद की कहानी-कला की सब से बडी मौलिकता है। मुख्यत ऐतिहासिक और भावात्मक कहानियो मे वातावरण का निर्माण आश्चर्यजनक से हुआ है। प्रसाद ने दो शैलियो से वातावरण का निर्माण किया है। कहानी की मुख्य सवेदना आरम्भ होने के पूर्व, कहानी के आरम्भिक वर्णनो द्वारा और पात्रो के नाटकीय कथोपकथनो द्वारा वातावरण की सृष्टि करना प्रसाद जी की प्रधान कला है। इस के अतिरिक्त दृश्य विधान, रूप वर्णन, और भाव चित्रो के भी माध्यम से इन्होने वातावरण की सृष्ठि की है।

इस तरह प्रसाद जी की मौलिकता कहानी के भाव पक्ष मे ही सीमित न रह कर कहानी के कलापक्ष मे विशेष रूप से अपनी प्रेरणा दे रही थी। प्रसाद जी की कहानियाँ हिन्दी कहानी साहित्य मे सब से अलग और स्वतत्र शिल्पविधि के रूप मे है। इस के मूल मे प्रसाद जी के व्यक्तित्व के कवि, नाटककार, और उपन्यासकार तीनो रूपो का सुन्दरतम तादात्म्य स्थापित हुआ है। इस अपूर्व सन्धि-बिन्दु से जितनी कहानियो की सृष्टि हुई हे, उन पर दर्शन, कल्पना, और अनुभूति की गहरी छाप है।

प्रसाद संस्थान के कहानीकार

कहानी-कला की जिन शिल्पगत विशेषताओ से प्रेमचद्र सस्थान की प्रतिष्ठा हुई है, उस से कुछ अंतर पर कला के नये मूल्य-स्तर पर प्रसाद की कहानी-कला निश्चित हुई है। मूलत. प्रसाद की कहानी-कला के तत्व वे ही है, जिन के माध्यम से प्रेमचंद संस्थान बना है, लेकिन अंतर इतना ही है कि प्रसाद

की कला की दिशा, लक्ष्य और स्तर विभिन्न है। यह कलात्मक विभिन्नता प्रसाद और प्रेमचंद के जीवन-दर्शन अथवा जीवन के प्रति दृष्टिकोण के अन्तर के कारण उत्पन्न हुई है। प्रेमचद आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तथा जन-जीवन के प्रतिनिधि कहानीकार थे। उन की कला का लक्ष्य जीवन था। इस की वर्तमान सभ्यता वर्तमान परिस्थितियो और सस्कारो का सघर्ष था। प्रसाद जी भी इसी धरातल पर खडे थे, लेकिन जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण भिन्न था। उन के जीवन-दर्शन मे करुणा, प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द और आदर्श की भावना अत्यन्त तीव्र थी। फलत इन की भावना मे, सस्कार मे, अतीत की अपूर्व प्रेरणा, इतिहास और सस्कृति का इतना आग्रह था कि इस के फलस्वरूप उन्हे करुणा, प्रेम सौन्दर्य, आनन्द और आदर्श का प्रतिष्ठा के लिए बार-बार वर्तमान से अतीत के स्वर्णिम पृष्ठो मे जाना पडा है। कभी-कभी अपनी प्रेरणा की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उन्हे काल्पनिक सृष्टि करनी पडी है। इस तरह इन की कहानी-कला का लक्ष्य करुणा, प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द, आदर्श-प्रतिष्ठा तथा पाठक के सामने जीवन के किन्ही ऐसे विशिष्ट प्रकरणो को रख देना था, जिन मे उन के जीवन-दर्शन को कोई न कोई इकाई अवश्य ही प्रति-फलित होती है। अतएव जहाँ प्रेमचद सस्थान मे कथानक-निर्माण यथार्थ जीवन की इतिवृत्तात्मकता, क्रम-बद्धता तथा सयोग घटनाओ के द्वारा होता है, वहाँ प्रसाद सस्थान मे कथानक निर्माण इन्ही तत्वो के माध्यम से कल्पना, अतीत और रागात्मकता के धरातल से होता है। चरित्र अवतारणा और चरित्र-चित्रण मे भी इसी तरह जहाँ प्रेमचद ने जीवन के सामन्य और यथार्थ धरातल को लिया है, वहाँ प्रसाद ने विशिष्ट और काल्पनिक चरित्रो को लिया है, जिन मे एक ही साथ सौन्दर्यनिष्ठा, भावुकता तथा आदर्श और बलिदान आदि चारित्रिक इकाइयो का सुन्दर समवन्य और तादाम्य रहता है। इन चरित्रो के व्यक्तित्व मे चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व और आन्तरिक सघर्ष प्रेमचद से भी अधिक होते है। लेकिन यथार्थ जीवन और चरित्र के सूक्ष्म मनोविश्लेषण मे प्रेमचद का स्थान विकास युग मे अनन्य है।

शैली के व्यापक प्रकाश अर्थात् रचना विधान मे, प्राय प्रेमचद की भाँति इन की कहानियो का भी आरम्भ, विकास और चरम सीमा का निर्माण परिचायक, घटनात्मक और वर्णनात्मक होती है, लेकिन इस दिशा मे अंतर केवल दो बातो मे होता है। प्रसाद की शैली मे भूमिका नही होती, और परिचयात्मक वर्णन की अपेक्षा इन मे कथोपकथन की मात्रा सब से अधिक होती

है । संपूर्ण कहानी के विकास-क्रम मे नाटकीय सधियाँ और नाटकीय परिस्थतियो का अद्‌भुत प्रयोग होता है । प्रसाद की कहानियो का आकर्षण का सब से बडा रहस्य यही है । प्राय. कहानियो का आरम्भ कथोपकथन से होता है, तथा इसी शैली से कहानियो मे कौतूहल जिज्ञासा की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है । यहाँ चरम सीमा आदार्श विन्दु पर प्रतिफलित होने के कारण प्राय घटनात्मक योगात्मक हुई हैं, लेकिन इस के पीछे सर्वथा प्रभाव की दृष्टि से चरित्र और मनोविज्ञान की प्रेरणा मुख्य रूप से रही है । शैली के सामान्य पक्ष मे इन कहानियो मे कवित्व पूर्ण वर्णन हुआ है। रूप-छवि के चित्रण अन्य ढङ्ग से हुए है । वर्णनो, चित्रणो द्वारा निर्माण की कला इस सस्थान की अनन्य देन है । लक्ष्य और अनुभूति की दृष्टि से ये कहानियाँ यद्यपि लक्ष्यात्मक अवश्य है, लेकिन इन के निर्माण की प्रेरणा मे अनुभूति का ही स्थान मुख्य है । अतएव शिल्पविद्या की दृष्टि से प्रसाद सस्थान मे भावात्मक विशिष्टता मुख्य रही है, यही कारण है कि इस सस्थान मे बहुत कम कहानीकार आ सके है । जो कुछ आ भी सके है, उन मे कलात्मक और भावात्मक अभिरुचि तथा इस की क्षमता भी थी—कोइ सगीत का प्रेमी का, कोई चित्रकला, मूर्तिकला तथा अतीत का उपासक था और कोई मस्त स्वच्छंद और आनन्दवादी था ।

चतुरसेन शास्त्री

प्रसाद सस्थान के कहानीकारो मे चतुरसेन शास्त्री का नाम सब से पहले आता है । इन्होने, 'दुखवा मै कासे कहूँ मोरी सजनी' 'नूरजहाँ का कौशल', 'सिंहगढ़ विजय', 'वसन्त', 'पूर्णाहुति' और 'झडा' आदि अपनी प्रतिनिधि कहानियो का निर्माण, कल्पना और इतिहास के इतने रूमानी धरातल से किया है कि ये कहानियाँ सदा अमर रहेगी । इन कहानियो के कथानक निर्माण मे क्रम-बद्ध स्वाभाविक घटनाओ के घटने का प्रमुख हाथ है । 'दुखवा मै कासे कहूँ मोरी सजनी' मे कथानक का आरभ बेगम सलीमा और उस की प्यारी बादी को लेकर होता है । इस का विकास इस घटना से होता है कि बादी सलीमा को शराब पिलाती है और जब बेगम नशे मे बेहोश हो जाती है, तब उस के भरे यौवन को वह बाँदी जो स्त्री के वेश मे वस्तुत उस का प्रेमी था, चुम्बन लेता है । उसी समय संयोग वश वहाँ बादशाह उपस्थित हो जाते है और सब कुछ देख लेते है । इस सयोग से कथानक मे नाटकीय विकास होता है । चरित्र अवतारणा मे बाँदी और सलीमा इतिहास के भी पर्दे मे पूर्ण काल्पनिक है,

जिन की सृष्टि, सौदर्य, प्रेम और बलिदान की रेखाओ से हुई है । इन मे बाँदी का व्यक्तित्व चारित्रिक अतर्द्वन्द्व का प्रतीक है। कहानी का आरम्भ पूर्ण सफल और स्वाभाविक शाही वातावरण के साथ होता है तथा इस की चरम सीमा पर आदर्श की प्रतिष्ठा स्पष्ट है । सामाजिक कहानियाँ, जैसे 'दे खुदा के राह पर', मे भी इसी तरह कल्पना, नाटकीय स्थितियो, सयोग और आदर्श आदि तत्वो का आपस मे अद्भुत तादात्म्य उपस्थित हुआ है ।

रायकृष्ण दास

कल्पना और भावुकता की प्रेरणा से रायकृष्ण दास ने इतिहास और अतीत के धरातल से कहानियाँ लिखी है। 'अत पुर का आरम्भ' की सवेदना प्रागैतिहासिक काल से ली गयी है और कल्पना के प्रकाश मे यह चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है कि वस्तुत स्त्री पुरुष मे स्वाभाविक भेद कैसे हुआ, जिस के फल स्वरूप अत. पुर का आरम्भ हुआ । कथानक-निर्माण जङ्गल निवासी स्त्री-पुरुष के बीच मे एक सिंह को देख कर होता है । उस दिन पुरुष ने स्त्री को गुफा मे ही रोक कर सिंह के शिकार को चलने लगा । लेकिन उस दिन अकेला क्यो ? कथानक का विकास इसी द्वन्द्व को लेकर होता है, जिस से कहानी मे नाटकीयता उत्पन्न हो जाती है ।

"क्यो ? मुझे ले चलने मे हिचकते हो ?"

"नही तुम्हारी रक्षा का ख्याल है ।"

"क्यो, आज तक किसने मेरी रक्षा की है ?"

"हाँ, मै यह नही कहता कि तुम अपनी रक्षा नही कर सकती ।"

"पर . ?"

"मेरा जी डरता है ।"

"क्यो ?"

"तुम सुकुमारी हो ।"

अतएव पुरुष अपनी प्रिया को उस दिन सर्व प्रथम गुफा के अंतःपुर मे छोड कर अकेले शिकार पर जाकर सिंह को मारता है और नारी गुफा द्वार के सहारे खडी रहती है । उस का आधा शरीर लता की ओट मे था । वही से वह अपने पुरुष के पराक्रम को देख रही थी, आनन्द की कूके लगा रही थी । हा, उसी दिन अंत पुर का आरम्भ हुआ था । कहानी-निर्माण का उद्देश्य इस से स्पष्ट है । 'गहुला', कहानी मे कथानक का निर्माण इतिहास के पृष्ठो और

कल्पना के रंगो से हुआ है। इस के विकास मे घटना और सयोगो का परम कलात्मक सबध जुडा है। हूण अधिपति तोमारल के राज्य मे मदसोर के क्षत्रप हेमनाभ और राजकुमारी गहुला मे प्रेम था। गहुला उसे हर विदा-क्षण मे एक नील कमल देती। हेमनाभ उसे एक सुगन्धित रेशमी कपडे मे लपेट कर, सुवर्ण सूत्र से बाँध कर सुन्दर मजूषा मे रखता जाता था। प्रत्येक पर स्वर्ण की एक मुद्रा भी बनवा कर ग्रन्थित कर देता। इन मुद्राओ पर पाने की तिथि और सवत् अकित होते। सयोगवश एक बार हूण राजा ने मदसोर प्रान्त का कर न देने के कारण दमन किया, लूटा, मारा तथा इसी मे हेमनाभ की भी मृत्यु हो गई। सब लूट का सामान राजा के सामने उपस्थित होता है। सामान मे हेम की वह स्वर्ण मजूषा भी थी, जिसे गहुला ने देखने ही अपने लिए पसन्द किया। लेकिन जब वह उसे खोलती है और पूर्व स्मृति तथा हेमनाभ के अव्यक्त पवित्र प्रेम से वेहोश हो जाती है। "प्रसन्नता की प्राप्ति" मे कथावस्तु अत्यन्त सूक्ष्म और भावात्मक हैं। इस मे एक मूर्ति-निर्माता के चरित्र का सुन्दर विश्लेषण हुआ है। चित्रकार कितने वर्षो से अपने चित्र मे प्रसन्नता की अभिव्यक्ति देने के प्रयत्न मे लगा था, पर बार-बार असफल हो रहा था। अत मे वह अपने बच्चे मे सच्ची प्रसन्नता को पा लेता है। 'अतःपुर का आरम्भ', 'गहुला' और 'प्रसन्नता की प्राप्ति' इन तीनो कहानियो मे चरित्र अवतारणा भावुकता और कल्पना के धरातल पर हुई है। इन मे मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व का आकर्षण सफलता से व्यक्त हुआ है, इन कहानियो के विकास और अत मे नाटकीय तत्व विशेष रूप से आए है।

बेचन शर्मा 'उग्र'

उग्र का कहानीकार व्यक्तित्व प्रसाद सस्थान मे सब से अधिक आकर्षक हे। इन की कला मे नवीन भाषा शैली प्रयोग और सर्वत्र स्वच्छदना है। इन्हो ने प्रसाद जी की भॉति तीन तरह की कहानियाँ लिखी है। प्रथम, कल्पना और भावुकता के आधार पर व्यजनात्मक एव प्रतिकात्मक कहानियाँ, द्वितीय केवल भावुकता के आधार से गद्यगीत से मिलती-जुलती कहानियाँ तथा नाटकीय स्थिति के प्रकाश मे जीवन मे किसी सूक्ष्म पहलू के रेखाचित्र मे बाँधना। इन के उदाहरण मे क्रमशः 'देशभक्त' तथा, 'मुक्ता', 'सगीत समाधि' तथा, 'मोको चुनरी की साध', और 'चौडा छूरा' तथा 'रेशमी' आदि उग्र की प्रतिनिधि कहानियाँ उल्लेखनीय है। 'देशभक्त' और मुक्ता मे कथानक-निर्माण, कल्पना और रागात्मक तत्त्वो से हुआ है, दैवी अमूर्त शक्तियो के माध्यम से। 'सगीत',

'समाधि', तथा 'मोको चुनरी की साध', मे कथानक-निर्माण, घटनाम्रो तथा मूर्त स्थितियो के साथ हुम्रा है । मोको चुनरो की साध मे, तुलसा एक म्राठ साल की लडकी को शादी होती है म्रोर वह म्रनजान मडवे मे चुनरी पाकर गाती फिरती है ।

मोको चुनरी की साध ।
मोको चुनरी की माध ।।

सयोग वश बारात मे दुलहे को साप डस लेता है, भोली तुलसा विधवा हो जाती है । उस के मुहाग के सब वस्त्रादि छीन लिए जाते है वह बीमार पडती है, म्रौर चुनरी-चुनरी रटती रहती है । माँ समाज की परवाह न करके उसे चुनरी पहना देती है, लेकिन फिर भी तुलसा मर जाती है । ऐसी कहानियो की सृष्टि के पीछे सोद्देश्यता सब से अधिक तीव्र ढग से अभिव्यक्त हुई है । पहली प्रकार की कहानियो मे जीवन के प्रति आदर्शवाद की प्रेरणा है । दूसरी प्रकार की कहानियो का धरातल व्यक्तिगत म्रौर सामाजिक समस्यएँ हैं । लेकिन इन के भी निर्माण मे कल्पना भावुकता के फलस्वरूप के कहानियाँ अविकसित रह गई है । इस का सब से बडा कारण है, उग्र जी के व्यक्तित्व का स्वच्छंद होना । चरित्र अवतारणा मे उग्र जी की भावुकता, काल्पनिकता, तथा भाषा शैली म्रौर रूप छवि का वर्णन मे इन की मौलिकता म्रौर कवित्व शक्ति पूर्ण म्राकर्षक है। 'मुक्ता', मे माया चरित्र की अवतारणा म्रौर उस के व्यक्तित्व वर्णन मे इन तत्त्वो का सोदर्य एक ही साथ व्यक्त हुम्रा है—"प्रबालद्वीप की राजकुकारी, का नाम था माया । प्रियतम द्वारा चोरी से चुने जाने पर मुग्धा के कपोलो पर जो तप्त मुवर्ण लज्जा विखर जाती है, वह वैसे ही सुन्दर थी । वसन्त के मद-मदिर मलयानिल के मधुर झोको से मुग्ध होकर जो मुकुल मडली चिटख पडती है, खुल म्रौर खिल कर नाच उठती है, वह वैसी ही भोली थी ।" फलतः शिल्पविधि की दृष्टि से उग्र जी का स्थान प्रसाद सस्थान मे सदा अमर रहेगा, क्योकि उन्हो ने प्रसाद की कहानी-कला के तत्वो से पूर्ण प्रेरणा लेकर, उन से अप ने व्यक्तित्व की सफल अभिव्यक्ति की है ।

वाचस्पति पाठक

कलात्मक दृष्टि पाठक जी का कहानीकार व्यक्तित्व प्रेमचद म्रौर प्रमाद सस्थान के सधि विन्दु पर आधारित है । इन मे प्रसाद की भावुकता, सवेदनशीलता म्रौर प्रेमचद की यथार्थवादिता, म्रौर मनोविज्ञान का इतना मुन्दर

तादात्म्य स्थापित हुआ है कि इन की कहानी-कला मे एक अलग आकर्षण है। 'कागज की टोपी', 'सूरदास', कल्पना', आदि कहानियाँ पाठक जी की कला की प्रतिनिधि कहानियाँ है। इन मे कथानक-निर्माण मुख्यत घटनाओ, सयोगो के धरातल पर न होकर मानव हृदय की सवेदनाओ और अनुभूतियो से हुआ है। चरित्र-चित्रण को ही लेकर इन की कहानियो का आरम्भ होता है। चरित्र के मनोवेगो, और चारित्रिक द्वन्द्व के विकास मे इन की कहानी की सृष्टि होती है। चरित्र अवतारणा मे सवेदनशीलता और अनुभूति दोनो की मुख्य प्रेरणा रहती है। यही कारण है कि इन की प्राय समस्त कहानियाँ चरित्र प्रधान है, तथा चरित्र विश्लेषण और विकास मे परिस्थिति जन्य कसक, टीस, करुणा का इतना वेग रहता है कि प्रत्येक कहानी के अत पर पहुँच कर पाठक का हृदय मानव सवेदना, अनुभूति से अभिभूत हो जाता है। इस के उदाहरण से 'सूरदास', 'कल्पना', 'कागज को टोपी', और 'फेरीवाला', कहानियाँ कभी भुलाई नही जा सकती।•इन्हो ने प्रायः उपेक्षित, कारुणिक और दुखी चरित्रो को लेकर कहनियो का निर्माण किया है।

विनोदशकर व्यास

प्रसाद जी की भावुकता का पूर्ण प्रभाव विनोद शकर व्यास के कहानी-शिल्प विधान पर पडा है। इन की छोटी-छोटी भावपूर्ण कहानियो मे गद्यगीत, रेखाचित्र और कहानी, तीनो के तत्व मिलते है। प्राय अधिकाश कहानियाँ करुणा और मानवीय सवेदना को लक्ष्य बना कर लिखी गई है तथा कहानियो के विकास मे अनुभूति की प्रेरणा मुख्य है। इन की शिल्पविधि की प्रतिनिधि कहानियाँ 'कल्पनाओ का राजा', 'विधाता' और 'अपराधी', आदि मे कथानक-निर्माण घटना सयोग से न होकर स्वाभाविक भाव-विकास और चरित्र-विश्लेषण के आधार पर हुआ है। अतएव पाठक जी की भाँति व्यास जी की भी कहानियाँ चरित्र प्रधान है, कथानक प्रधान नही। चरित्र अवतारणा मे भी चारित्रिक द्वन्द्व की तीव्रता इन की कहानियो मे मुख्य रूप से है। 'कल्पनाओ के राजा' कहानी की सृष्टि इस के नायक के मानसिक द्वन्द्व के आधार पर हुई है। कहानी का आरम्भ नायक के परिचयात्मक परिच्छेद से होता है। इस का विकास एक क्रिया-कलाप से होता है कि नायक एक वेश्या के कोठे पर जाता है। उसे खूब शराब पिलाता है और स्वय भी पीता है और अपने मानसिक आवेग की कथा कह कर वापस लौट आता है। अत इस कहानी का अत वेश्या की मानसिक प्रतिक्रिया

पर होता है। व्यास जी ने प्राय. अपनी कहानियो मे सामान्य चरित्रो को न लेकर विशिष्ट चरित्रो को लिया है। लेकिन उन मे व्यास जी ने पूर्ण कलात्मकता से मानवीय सवेदना और अनुभूति की प्राण-प्रतिष्ठा की है। विशुद्ध शैली के प्रकाश मे इन्हो ने प्राय कथोपकथनात्मक ऐतिहासिक पत्रात्मक और शैलियो मे कहानियाँ लिखी हैं।

इन के अतिरिक्त प्रसाद सस्थान मे चडी प्रसाद 'हृदयेश', और कमला कान्त वर्मा, यमुनादत्त वैष्णव का भी नाम उल्लेखनीय है। उक्त समस्त कहानियाँ प्रसाद सस्थान मे आती है। इन की कला पर प्रसाद की शिल्पविधि का प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष प्रभाव है। लेकिन इस के यह तात्पर्य नहीं कि इन कहानीकारो का अपनी स्वतत्र व्यक्तित्व ही नहीं है। वस्तुत सब मे अपना-अपना व्यक्तित्व और मौलिक प्रतिभा है। यह सत्य प्रेमचद और प्रसाद दोनो सस्थानो के कहानीकार के सम्बन्ध मे लागू है।

संक्रान्ति युग

प्रेमचद और प्रसाद हिन्दी कहानी-कला के दो मुख्य प्रवृत्तियो के प्रतिनिधि कृती कहानीकार है। इन के विभिन्न सस्थानो ने कहानी [illegible] के विकास मै आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की हे। प्रसाद की भावमूलक कला और प्रेमचद की यथार्थ मूलक कला प्रवृत्ति मे सामाजिक कुरीतियो के प्रति सुधार का आग्रह, पराजय पतन के प्रति आदर्श की प्रतिष्ठा और दुखी पीडित मानवता के प्रति अथाह सवेदना आदि इन के भाव-पक्ष की मुख्य विशेषताएँ थी। दूसरी ओर कथा-विधान मे इतिवृत्त का स्पष्ट रूप, घटना का प्राधान्य, शैली की सरलता, सुगमता, सोद्देश्यता और लक्ष्य का स्पष्ट होना उन की शिल्पगत कसौटी थी। अतएव प्रेमचद और प्रसाद की कला केवल दो प्रवृत्तियो की प्रतीक हैं और समूचे विकास-युग का प्रतिनिधित्व इन्ही दोनो की धाराएँ करती रही।

लेकिन सक्रान्ति युग मे अनेक प्रवृत्तियाँ प्रस्फुटित हुई। कारण सक्रान्ति युग मे हिन्दी कहानी के क्षेत्र मे अपूर्व विस्तार और प्रसार हुआ, फलत युग की अनेकानेक प्रवृत्तियो का इस मे स्थायी होना स्वाभाविक था। विकास-युग मे साधारण मनोविज्ञान और गाँधीवाद ही दो मुख्य प्रवृत्तियाँ थी। प्रेमचद अपनी कहानी कला के अतिम वर्षो मे अवश्यमेव कुछ और युगीन प्रवृत्तियो के सम्पर्क मे आए, लेकिन उन का प्रतिनिधित्व उन मे न हो सका। सक्रान्ति युग मे इन नवीन प्रवृत्तियो ने जीवन-दर्शन और व्यक्ति विश्लेषण मे सर्वथा नूतन अध्याय उपस्थित किया, तथा इन से कहानी-कला मे अपूर्व विस्तार, परिवर्तन हुआ, और विविध प्रयोगो के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ।

कहानी कला में युगीन प्रवृत्तियाँ

युगीन प्रवृत्तियाँ मुख्यत: दो क्षेत्रो मे बाँटी जा सकती है: साँस्कृतिक और सामयिक। सास्कृतिक क्षेत्र मे जीवन-दर्शन और सामयिक क्षेत्र मे, साम्यवाद (द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद) मनोविश्लेषण अथवा यौनवाद दो प्रवृत्तियाँ हैं। वस्तुत. ये समस्त प्रवृत्तियाँ इतनी शक्तिशाली क्रान्तिमूलक और युग सापेक्ष है कि इन के प्रभाव और इन की प्रेरणा से हिन्दी कहानी साहित्य का स्वर्ण युग-द्वार खुलता है।

जीवन-दर्शन

यहाँ जीवन-दर्शन का अभिप्राय तात्विक अर्थ मे न होकर व्यावहारिक जीवन-दर्शन मे है, अर्थात् नैतिक प्रश्नो, मापदडो और भारतीय आदर्शवादिता का वह रूप जो इस युग मे कहानी-कला का उपजीव्य रहा। प्रेमचद मे यह जीवन-दर्शन मुख्यत गाधीवाद मे प्रेरित था और प्रसाद के जीवन-दर्शन मे बौद्ध धर्म की करुणा और प्राचीन सस्कृति की आदर्शमूलक स्फूर्ति थी। इस युग मे गाँधीवाद के विकसित रूप मानववाद ने जीवन-दर्शन को सर्वग्राही व्यापक और महान बनाया। वस्तुत यही मानववाद युग-दर्शन का मूल धरातल बन गया, जिसमे बुद्ध की करुणा, जैन की अहिसा, पुरातन का आदर्शवाद और गाँधीनीति का सुन्दर तादात्म्य स्थापित हुआ। इस मानववाद मे अब पुरातन पगुता, अध-विश्वास, सामाजिक कुरीतियो की समस्या न रही, बल्कि इस की समस्या अपेक्षाकृत व्यक्ति परक, चरित्र परक, और भाव परक हो गई। नैतिक मान्यताओ और आदर्शो मे व्यापकता आई, क्योकि समाज की अपेक्षा ये व्यक्ति सापेक्ष्य अधिक हुए। प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण, व्यक्तित्व के आधार मे इस के विषय मे अपने अपने मतव्य स्थिर करने लगा।

सियारामशरण गुप्त ने अपने वैष्णव व्यक्तित्व के प्रकाश मे व्यक्ति के सस्कारो को प्रमुखता दी, और इन सस्कारो के माध्यम से चरित्र की महानता और आदर्शवाद की स्थापना की। जैनेन्द्र कुमार ने अपने चिंतन और गाँधीवादी व्यक्तित्व से एक ओर चरित्र के निर्माण और विकास मे जीवन की नैतिकता को ही विधेयक माना। अर्थात् जैनेन्द्र के चिंतक मस्तिष्क ने नैतिक मान्यताओ पर ही चरित्र की सापेक्ष्यता सिद्ध की। दूसरी ओर उन्होने गाँधीवादी और पुरातनवाद के जीवन-दर्शन से आध्यात्मिकता और आदर्शवाद का आग्रह स्वीकार किया। परोक्ष रूप से उन्होने बुद्ध की करुणा, महावीर की अहिसा और गाँधी के सत्य से प्रेरणा ग्रहण की। अज्ञेय का व्यक्तित्व विद्रोह और करुणा के तत्वो से निर्मित है, लेकिन उन की दृष्टि मूलत: कवि की दृष्टि है। फलत उन के जीवन दर्शन मे व्यक्ति की करुणा के प्रति सवेदना तथा आदर्शवाद का पुट है। इलाचन्द्र जोशी का व्यक्तित्व चितन और विश्लेषण प्रधान है, अत. इन के अनुसार व्यक्ति का अह ही समस्त विकृतियो और अनाचारो का मूल है। फलत: इन के जीवन-दर्शन की गति अहं से ऊपर उठ कर समाज की ओर जाती है। भगवतीचरण वर्मा के अनुसार मनुष्य के लिए पाप-पुण्य कोई वस्तु नही है ये सब परिस्थिति जन्य है, मनुष्य जन्य नही। इस तरह इस युग का जीवन-दर्शन

समाज सापेक्ष से अधिक व्यक्ति सापेक्ष है । इस की मान्यताएँ विभिन्न और व्यापक हो गई है । लेकिन सब का सधि-स्थल मानववाद ही है, तथा इस मानववाद मे चरित्र निष्ठा और मानव सवेदना दो मुख्य तत्त्व हैं ।

मनोविज्ञान

विकास युग मे जिस मनोविज्ञान का सहारा लिया गया था, वह चरित्र के साधारण मनोविज्ञान से सबधित था । पात्र-रचना प्रक्रिया और उनके चरित्राकन की दृष्टि से प्रसाद के चरित्रो का घात-प्रतिघात और प्रेमचद के चरित्रो का अतर्द्वन्द्व मूलत. बाह्य घटनाओ से अधिक सबद्ध थे, मानव की आन्तरिक प्रेरणाओ से कम । सक्रान्ति-युग मे मनोविश्लेषण के विकास ने आश्चर्यजनक उन्नति की । जिस तरह बाह्य जगत् मे हम इतने मानव-व्यापार इतनी जटिलताएँ और समस्याएँ देख रहे है, इस विज्ञान ने इसी तरह यह सिद्ध कर दिखाया है कि मनुष्य का एक अतर्जगत् भी है, और यह अर्तजगत् बाह्य जगत् से कही अधिक शक्तिशाली और जटिल है । यह सारा बाह्य जीवन चक्र से प्रेरित और निर्देशित है । अतएव अतर्प्रवृत्तियाँ ही मनुष्य के व्यक्तित्व मे प्रधान हैं । समस्त बाह्य कार्य व्यापार उन्ही अर्तप्रवृत्तियो की बाह्याभिव्यक्ति है । मनोविश्लेषण ने इस के भी आगे यह सिद्ध किया है कि मानव अर्तजगत् मे चेतन मन से भी आगे अवचेतन जगत् है तथा यह अवचेतन जगत् चेतन से भी अधिक शक्तिशाली है । मनुष्य के चेतन और अवचेतन के असामजस्य ने उसे कितना रहस्यमय असाध्य और दुर्बोध बना दिया हे इसे मनोविज्ञान शास्त्र ने व्याख्या करके स्पष्ट कर दिया । मनुष्य की इच्छाशक्ति किस भाँति बाह्याभिव्यक्ति न पाकर अतर्मुखी हो जाती है, और अवचेतन जगत् मे अक्षुण्ण रह कर कुठाओ, अस्पष्ट-अमूर्त्त स्वप्न चित्रो को जन्म देती रहती है ।

मनोविश्लेषण मे हमे इन के अध्ययन के लिए एक नई पद्धति भी दी है—कि मनुष्य के बाह्य सकेतो कर्म-प्रेरणाओ और भाव-भंगिमाओ द्वारा हम मनुष्य के सश्लिष्ट-गूढ अर्तजगत् को समझ सके उस के मन के उलझे हुए सूत्रो को सुलझा सके । गहरी दृष्टि और विश्लेषण पद्धति ने सक्रान्ति युग की कहानी-कला को अपूर्ण और मौलिक दिशा दी है इस के प्रकाश मे नये दृष्टिकोणो से सामाजिक प्रश्नो को देखा गया । विद्रोह, पाप और अपराध के विश्लेषण हुए तथा पापी विद्रोही अपराधी के प्रति करुणा, दया की भावना लाई गई । स्त्री-पुरुष के सबंधो का नये सिरे से अध्ययन हुआ और स्त्री के प्रति अपूर्व सवेदना प्रकट

की गयी। सक्रान्ति युग के प्राय समस्त कहानीकारो ने मनोविज्ञान के इन्हीं पहलुओ को अपनाया। जैनेन्द्र कुमार ने मनोवैज्ञानिक विशिष्ट चरित्रो को लेकर परम सफल कहानियाँ लिखी। उन्हो ने चरित्रो की अवतारणा और उनका विकास मनोविश्लेण पद्धति पर किया। उन की कहानियो मे घटनाओ और कार्यो की अपेक्षा मानसिक ऊहापोह और विश्लेषण को प्रमुखता मिली, लेकिन इस दिशा मे जैनेन्द्र से आगे अज्ञेय के दृष्टिकोण का विकास हुआ। जहाँ जैनेन्द्र के चरित्रो मे सामाजिकता अधिक हे, वहाँ अज्ञेय के चरित्रो मे वैयक्तिकता उत्कृष्ट ढंग की है।

अज्ञेय की कहानियाँ चरित्र की कर्म प्रेरणाएँ और मानसिक स्थिति के सूक्ष्म विश्लेषण के धरातल से लिखी गई है। इलाचन्द्र जोशी का भी प्रायः यही दृष्टिकोण है। लेकिन जहाँ अज्ञेय अपने मनोविश्लेषण मे अह से अधिक प्रेरित होने के कारण मानवीय पहलुओ और उस की सवेदनाओ के चित्रण मे अधिक आकर्षक और प्रभावशाली है, वहाँ जोशी अह का ही मनोविश्लेषण उपस्थित कर एक चिंतक के रूप मे अपेक्षाकृत भौतिक धरातल पर कहानियो की सृष्टि करने मे सफल हुए हैं।[१]

मनोविज्ञान ने प्रमुखतः स्त्री-पुरुष सबधी मूल्यो और समस्याओ को अपना धरातल बनाया है, क्योकि फ्रॉयड ने अपने मनोविश्लेषण के समस्त सिद्धान्तो और पद्धतियो को स्त्री-पुरुष के यौन संबधी (Sex relation) आधारों पर प्रतिष्ठित किया है। फलत· फ्रॉयड के यौनवाद के सिद्धान्तो, विश्लेषण-पद्धतियो को इस युग के कहानीकारो ने अपनाया है, और उस से उन की अंतर्दृष्टि को अपूर्व बल मिला है।

यौनवाद

फ्रॉयड के अनुसार हमारी समस्त मनःस्थितियो, मनोद्वेगों और मनोविकारो का मेरुदंड यौन भावना ही है। अर्थात् फ्रॉयड ने मानव जीवन की

[१] उसी बाह्य जीवन-चक्र का चित्रण सच्ची सफलता पा सकता है जो अंतर्जीवन चक्र पर आधारित हो, उसी प्रकार अंतर्जीवन की वही प्रगति श्रेयोन्मुखी हो सकती है जो बाह्य जीवन की प्रगति से निश्चित संबंध स्थापित किए हो। बाह्य और अंतर दोनो जीवनो की प्रगतियाँ एक दूसरे से अन्योन्याश्रय संबंध रखती हैं। इलाचन्द्र जोशी, विवेचना : आधुनिक साहित्य में मनोविज्ञान, पृष्ठ ११७।

पूर्ण व्याख्या यौन (Sex) के केन्द्र से की है। उन की व्याख्या के अनुसार मनुष्य का अवचेतन जगत् चेतन जगत् की अपेक्षा अत्यन्त शक्तिशाली होता है। समस्त इन्द्रिय जन्य इच्छाओ मे उन्हो ने यौन-इच्छा को ही सब से महत्वपूर्ण माना है। इसी को जीवन का मूल केन्द्र सिद्ध किया है। चेतन-अवचेतन के जागरण और सुषुप्ति का भेद इन्हो ने निश्चित किया है। यौन-इच्छाए किस तरह तृप्ति अथवा अभिव्यक्ति न पाकर अवचेतन जगत् मे एकत्र हो कर स्वप्नो मे परिचित हो जाती है, फ्रॉयड ने इस का पूर्ण विकास दिखाया है।[१] इसी आधार पर उन्हो ने स्वप्न-सिद्धान्त (Dream Theories) और स्वप्न-विश्लेषण (Dream Analysis) की विधियो को निश्चित किया है।[२]

इस प्रकाश मे फ्रॉयड ने यह सिद्ध किया है कि प्रेम-वासना और इन के आधार पर नीति, अनीति, सच्चरित्र और दुश्चरित्र आदि ऐसी कोई मान्यताएँ सत्य नही है, सब भ्रम है, मनुष्य जन्य है, प्रकृति जन्य नही। इन को लेकर यौनवाद ने आगे प्रेम-वासना तथा इन की समस्त विकृतियो का विश्लेषण किया है। मनुष्य के स्वप्नो और चेतन उद्गारो, भाव-भगिमाओ तथा नित्य प्रति के जीवन के पहलुओ की सहायता से फ्रॉयड ने यौन संबधी अध्ययन का पथ प्रशस्त किया है।

वस्तुत· कहानी-कला मे फ्रॉयड के सिद्धान्तो का सर्व प्रथम प्रभाव उर्दू कहानीकारो पर पडा। वहाँ किशन चन्दर और ख्वाजा अहमद अब्बास ने इस के स्वस्थ पक्ष को ग्रहण किया, तथा सआदत हसन मटो और असमत चुगताई ने इस के अस्वस्थ और अति गोपनीय रूप को भी अपनी कहानी-कला मे स्थान दिया। लेकिन शिल्पविधि की दृष्टि से असमत और मटो की इस दिशा की कहानियाँ उच्च कोटि की है। इस युग के हिन्दी कहानीकारो ने भी इस के दोनो रूपो को अपनाया है। अज्ञेय, जोशी, आदि ने इस के स्वस्थ रूप को अपनाया है। मुख्यत: विज्ञान के रूप मे साधन स्वरूप इन्हो ने अपनी कला मे स्थान दिया है, और यौनजन्य अस्वस्थ कुंठाओ, भ्रान्तियो, उलझनो और विकृतियो को सुलझाने का प्रयत्न किया है। कभी आदर्श के पुट से तथा कभी मानवीय निष्ठा

---

[१] The Dreams as Wishfulfiment—The Interpretation. P. 33. by Sigmund Freud.

[२] The Psychology of Dreams—Processes—The Interprepardan of Dreams P. 368 by sigmund Freud.

के धरातल से । यशपाल और पहाडी ने, इस के दूसरे रूप को अपनाया है। विशेषकर पहाडी ने नग्न वर्णन और भोड़ेपन को अधिक प्रश्रय दिया है। उर्दू में असमत, और मंटो इसके कुशल शिल्पी और सूक्ष्म मनोविश्लेषण के कहानीकार हैं। उन मे यौनवाद का अतियथार्थ पक्ष, कलात्मकता मे सँवर उठा है। लेकिन इस दिशा मे पहाडी और यशपाल को असफलता मिली है, और उन की कहानियो मे अनीति, नगेपन, उच्छृङ्खलता को प्रश्रय मिला है। मटो, असमत मे जहाँ यौनवाद के प्रकाश मे समाज व्यक्ति पर व्यंग के छींटे कसे गए है, बंद सूरतें बेनकाब की गई हैं, वहाँ पहाडी मे अनीति-कुकर्म की व्याख्या की गई है। वस्तुतः यौनवाद के आधार पर कोई भी क्रिया उस की विकृति और अनीति आदि सब मनुष्य की स्वाभाविक गतियाँ सिद्ध की गई हैं। इन मे किसी तरह के पाप-पुण्य की कल्पना करना अनुचित है।

साम्यवाद

फ्रॉयड ने जिस तरह यौन को ही सारभूत और मूल केन्द्र मान कर व्यक्ति और समाज की व्याख्या की है, ठीक उस के विपरीत मार्क्स ने अर्थ–वस्तु (Matter) को परम सत्य मान कर उस के प्रकाश मे समाज, व्यक्ति और उस के इतिहास, संस्कृति और नैतिकता, मूल्यस्तर आदि की व्याख्या की है। जहाँ फ्रॉयड ने आन्तरिक जगत् को सर्वशक्तिमान मान कर आन्तरिक विश्लेषण किया है, वहाँ मार्क्स ने बाह्य जगत् को सारभूत मान कर, बाह्य जगत् अर्थात् वस्तु की ही व्याख्या की है। इस तरह मार्क्स और फ्रॉयड आपस मे सम्पूर्ण सत्य के पूरक हैं। मार्क्स के वस्तुवादी दर्शन का मूल केन्द्र द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। राजनीति मे जहाँ इस के आधार पर साम्यवाद की प्रतिष्ठा हुई है, वहाँ साहित्य मे उससे प्रगतिवाद की स्थापना हुई है। वस्तुतः बाते सब एक ही हैं, अर्थात् व्यापक रूप से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मे दो सत्य हैं, भौतिकता और द्वन्द्वात्मकता। मार्क्स के अनुसार समस्त दृश्य और सूक्ष्म जगत् वस्तु-पदार्थ से निर्मित है। यहाँ तक कि मेधा भी इसी तत्व से निर्मित है। अतएव इस ससार मे केवल एक ही आदि सत्ता है · वह है भौतिकता। इस के अतिरिक्त आध्यात्मिकता, मन आदि सब प्राय. भ्रम और कल्पना है। पदार्थ मे दो परस्पर विरोधी तत्व होते है, जिन के परस्पर संघर्ष से उस का विकास होता रहता है। अतएव मार्क्स के अनुसार इस जगत् का एक मात्र सत्य भौतिक जीवन है और कुछ नही। व्यावहारिक रूप से समाज मे अर्थ-पदार्थ व्यवस्था ही परमसत्य है। और यह

समाज दो विरोधी वर्ग, पूंजीपति और सर्वहारा से बना है। उन्ही के परस्पर संघर्ष से समाज का विकास होता चल रहा है। फलतः मार्क्सवादी लेखक के दो चरम लक्ष्य हैं। अर्थ के प्रकाश मे समाज की आलोचना और मूल्याकन करना तथा भौतिक शक्तियो को ही कला का उपजीव्य बनाना। इन भौतिक शक्तियो मे जो वर्ग पतनोन्मुखी हो, उसे अपनी कला द्वारा हेय सिद्ध करना तथा उसे नष्ट करने का सतत प्रयत्न करना, जैसे आज का पूँजीवाद, तथा जो वर्ग विकासोन्मुख हो उसे सर्वथा प्रश्रय देना, सहज सहानुभूति देना, जैसे सर्वहारा वर्ग।

निस्सदेह इस वस्तुवादी दर्शन ने हिन्दी कहानी कला को एक नई दृष्टि और समाज व्याख्या की एक नई कसोटी दी है। अनेक चरित्रो के अध्ययन इस वस्तुवादी धरातल से हुए। व्यक्ति की अपेक्षा सामाजिक शक्तियाँ ही कला की उपजीव्य बनी। अह का समाजीकरण हुआ। क्योकि मार्क्स के अनुसार साहित्य सामाजिक और सामूहिक चेतना है, वैयक्तिक नही। कला के इस दृष्टिकोण को मुख्यतः प्रगतिवादी कहानीकारो ने अपनाया है। यशपाल इस के प्रतिनिधि कहानीकार है। व्यक्ति की नैतिकता तथा सामाजिक प्रश्नो का अध्ययन इन्हो ने निर्वैयक्तिक सामाजिक शक्तियो के प्रकाश मे किया, जिस मे आर्थिक पक्ष और वर्ग संघर्ष ही दो मुख्य तत्व मान्य हुए।

इस तरह कहानी-कला के सक्रान्ति युग मे दर्शन, मनोविज्ञान, यौनवाद, और साम्यवाद, चार प्रमुख प्रवृत्तियाँ है जिन्हो ने इस युग को अपूर्व प्रेरणा चिन्तन और विश्लेषण की नई दृष्टि दी। इन्ही प्रवृत्तियो के आधार से इस युग के कहानीकार स्वभावतः अलग-अलग वर्गो मे बाँटे गए, और उन के ही आधार पर उन की कहानी शिल्प-विधि का विकास हुआ।

युगीन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले कहानीकार और उन की विशिष्ट कहानी शैली

उक्त प्रवृत्तियो के अध्ययन के साथ, जैसा कि सकेत किया गया है, प्रत्येक संक्रान्ति कालीन कहानीकार एक विशिष्ट प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। जैनेन्द्र कुमार सास्कृतिक दिशा मे दर्शन और मनोविज्ञान के कहानीकार है। इन की कहानियो मे एक ओर आदर्श के पुट से भारतीय जीवन-दर्शन का आग्रह है और दूसरी ओर इन की कहानियो की मुख्य प्रेरणा चरित्र-विश्लेषण और मानसिक ऊहापोह मे है। जीवन-दर्शन तथा जीवन आलोचना के प्रकाश मे

भगवती चरण वर्मा और सियाराम शरण गुप्त भी आते हैं। विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति मे, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी का नाम लिया जा सकता है। इन की कला मे मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण की समस्त कव्योचित पद्धतियो का अनुसरण किया गया है। 'अश्क' की कला मनोविज्ञान और सामाजालोचन के युग्म पर आधारित है। यौनवाद और साम्यवाद की प्रवृत्तियो मे यशपाल और पहाडी आते है। लेकिन यशपाल मे मनोविश्लेषण का तीव्र आग्रह है। व्यक्ति की कर्म प्रेरणाओ का अध्ययन इन्हो ने अत्यन्त सूक्ष्म और व्यंगात्मक ढगो से किया है।

इन सब प्रवृत्तियो के अतिरिक्त सक्रान्ति युग मे एक स्वतत्र प्रवृत्ति हिन्दी कहानी लेखिकाओ की है। होमवती, उषादेवी मित्रा, महादेवी वर्मा, सत्यवती मल्लिक, चन्द्रकिरण सौनरैक्शा आदि ने साधारण घरेलू जीवन के चित्रण की प्रवृत्ति अपनायी है।

प्रवृत्तियो के आधार पर इन कहानीकारो की शिल्पविधि का अध्ययन सर्वथा एक दूसरे से भिन्न है। सब ने अपनी-अपनी प्रवृत्ति के पूर्ण प्रतिनिधित्व के लिए शिल्पविधान मे विशिष्ट प्रयोग किये है। इस के फल स्वरूप अनेक शैलियो, रचना-विधानो के रूप सामने आते हैं और संक्रान्ति युग में कहानी शिल्पविधि मे आश्चर्य जनक विविधता दृष्टिगोचर होती है।

जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र की कहानी-कला मूलाधार जीवन-दर्शन और मनोविज्ञान है। इन्ही दोनो के व्यापक धरातल से इन्हो ने अपनी कहानियो की सृष्टि की है। 'एक रात' (१९३५) से लेकर, 'जय सधि', (१९४८) तक इन के ये दोनो धरातल समान रूप से मिलते हैं। इन की प्रारम्भिक कहानियो मे अपेक्षाकृत उन का दार्शनिक धरातल पूर्ण स्पष्ट और सशक्त है। प्रारम्भ मे जैनेन्द्र की इस दार्शनिकता की हिन्दी जगत् मे बडी आलोचना हुई थी, क्योकि कहानी-कला में यह दार्शनिक तत्त्व पूर्ण मौलिक और क्रान्तिकारी था। वस्तुत· विकास युग मे ही यह सिद्ध हो चुका था कि कहानी की आत्मा स्वाभाविकता है, यथार्थ सामाजिक समस्याओ की प्रतिष्ठा है। लेकिन इस नूतन प्रयोग की दिशा मे स्वयं जैनेन्द्र ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है—"मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नही जानता जो मात्र लौकिक हो, जो सम्पूर्णता से शारीरिक धरातल पर ही रहता हो, सब के भीतर हृदय है, जो सपने देखता है। सब के भीतर आत्मा है, जो जगती रहती है, जिसे शस्त्र छूता

नही, आग जलाती नही। सब के भीतर वह है जो अलौकिक है। मै वह स्थल नही जानता जहाँ 'अलौकिक' न हो। कहाँ वह कण है, जहाँ परमात्मा का निवास नही है? इसलिए आलोचक से मै कहता हूँ कि जो अलौकिक, है वह भी कहानी तुम्हारी ही है, तुमसे अलग नही है। रोज के जीवन मे काम आने वाली, तुम्हारी जानी-पहचानी चीजो का और व्यक्तियो का हवाला नही है तो क्या, उन कहानियो मे तो वह अलौकिक है, जो तुम्हारे भीतर अधिक तहो मे बैठा है। जो और भी घनिष्ट और नित्य रूप मे तुम्हारा अपना है।[१]" अतएव जैनेन्द्र ने अपने दार्शनिक व्यक्तित्व की सहज प्रेरणा से विशुद्ध दार्शनिक कहानियाँ लिखी। दार्शनिक सवेदनाओ मे सस्कृत आख्यान, आख्यायिका, पौराणिक कथा और कल्पना के आधार से कहानियो की सृष्टि की।

शिल्पविधि की दृष्टि से ये दर्शनगत कहानियाँ जिन मे धर्म, शिक्षा, नीति और आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है, साधारण कहानियो के शिल्प से दूर हट गई है। इन मे स्पष्ट रूप से वार्त्ता, दृष्टान्त और कथा के तत्त्व आ गए है। स्वयं जैनेन्द्र के शब्दो मे, "दार्शनिक तत्व के रूप मे सत्य अत्यन्त गरिष्ठ है उस रूप मे वह सत्य अपरोक्षित भी है। वह अधिकाश के लिए अग्राह्य है उसको दृष्टान्त गत चित्रगत और कथा के रूप मे परिवर्तित करो, तभी वह रुचिकर और कार्यकारी बनता है"[२] इस तरह इन दर्शनगत कहानियो मे इन के शिल्पगत तत्व परम अनूठे ढंग से प्रयुक्त हुए है।

कथानक

दार्शनिक धरातल से लिखी हुई कहानियाँ मुख्यत: चार प्रकार की सवेदनाओ से निर्मित हुई है।

(१) पृथ्वी के मानव तथा पौराणिक चरित्रो को लेकर प्राय काल्पनिक इतिहास से, जैसे, 'नारद का अर्ध्य', 'बाहुबली', 'देवी देवता', 'ऊर्ध्व बाहु', 'अनबन', 'भद्रबाहु' और 'गुरु कात्यायन',

(२) ऐतिहासिक सवेदना से, जैसे, 'जय सधि', 'राजरानी', 'साधू', 'वैरागी', 'राज्यकन्या', और 'युवराज', आदि,

(३) काल्पनिकता तथा लौकिकता से सवेदना निर्माण करके जैसे, 'रानी',

---

[१] जैनेन्द्र, 'एक रात', की भूमिका, पृष्ठ ४
[२] जैनेन्द्र, 'एक रात', की भूमिका, पृष्ठ १

'महामाया', 'राजपथिक'' 'नीलमदेश की राजकन्या', 'हवामहल', 'लाल सरोवर', और 'जनार्दन की रानी'।

(४) तथा अंतिम भाँति की वह संवेदना है, जो पशु पक्षी और वृक्षादि को लेकर निर्मित हुई है जैसे, 'वह विचारा साँप', 'चिड़िया की बच्ची', और 'तत्सत्'।

प्रथम प्रकार की संवेदना से कथानक-निर्माण पूर्ण कलात्मक हुआ है। इस का आरम्भ प्रायः समस्या उद्घाटन के बीच से हुआ है। वर्णनों के माध्यम से जैसे, 'भद्रबाहु' में, पृथ्वी के मानव, भद्रबाहु और स्वर्ग के इन्द्र के बीच स्पर्धा की समस्या है। कथानक के विकास में घटानाओं की क्रमिक है अवतारणा हुई और इस का अंत दार्शनिक ध्येय की परिसमाप्ति पर होता है, जैसे नारद द्वारा बताई हुई विधि के अनुसार इन्द्र और शची का स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरना ऐतिहासिक संवेदना से भी कथानक का निर्माण इसी पद्धति पर हुआ है। तीसरी प्रकार की संवेदना से कथा-विधान अत्यन्त सरल और प्रायः कलात्मक ढंग से हुआ है।

कुछ कहानियों में कथानक-निर्माण कथात्मक तत्व, कार्य व्यापार और घटनाओं के तादात्म्य से हुआ है, जैसे, 'हवा महल', 'रानी महामाया', और 'जनार्दन की रानी' के कथानक। इन तीनों प्रकार के कथानक मुख्यतः सुस्पष्ट और अपने कथातत्व में पूर्ण रहते हैं। इतिवृत्त में कलात्मकता का आग्रह मुख्य रूप से रहता है। चतुर्थ प्रकार की संवेदना से कथानक-निर्माण मुख्यतः कथात्मक ढंग से ही हो जाता है, क्योंकि प्रायः इस धरातल की कहानियाँ अन्य पुरुष में कथित हुई हैं, जैसे 'तत्सत', और 'विचारा साँप', आदि। लेकिन इस दिशा की जो कहानियाँ विशुद्ध रूप में प्रतीकात्मक हैं, उन के कथानक-निर्माण में कार्य व्यापार और घटनाएँ मुख्य रूप से आई हैं जैसे, 'तत्सत्',।

चरित्र

दार्शनिक धरातल की कहानियों में कथानक-निर्माण में बहुत कम कला है, क्योंकि इन का कथा-विधान प्राचीन शैली वार्त्ता, कथा दृष्टान्त आदि के प्रकाश में निर्मित हुआ है। लेकिन इन कहानियों में जैनेन्द्र की कला की वास्तविकता शिल्पविधान में स्पष्ट हुई है। उन्हों ने यहाँ चरित्र-निर्माण, चरित्र-चित्रण, और उन के व्यक्तित्व प्रतिष्ठा में आश्चर्यजनक शिल्प-कौशल का परिचय दिया है। वस्तुतः यहाँ चरित्र-निर्माण में कल्पना तत्व है। फिर भी प्राचीन वार्त्ताओं कथाओं और दृष्टान्तों के चरित्रों की भाँति यहाँ के चरित्रों में अपना अलग-

अलग आकर्षण है। यहाँ के चरित्र मुख्यत: छ वर्गो मे बाँटे जा सकते है।

(१) ऐतिहासिक चरित्र, जैसे यशोविजय, वसन्त तिलका, जय वीर, जय सन्धि,

(२) पौराणिक चरित्र, जैसे शकर, पार्वती, इन्द्र, आदि,

(३) लौकिक, राजा रानी, योगी, बैरागी, आदि,

(४) आध्यात्मिक चरित्र,

(५) विशुद्ध भावात्मक, और काल्पनिक चरित्र, और

(६) प्रतीकात्मक, पशु-पक्षी चरित्र।

ऐतिहासिक चरित्र

'जय सधि', ऐतिहासिक सवेदना की प्रतिनिधि कहानी है इस मे केवल चार चरित्र है। दो पति-पत्नियो के जोडे, जैसे यशोविजय, और वसत तिलका, तथा जय वीर, और यशस्तिलका ये सब चरित्र किसी न किसी अज्ञान प्रेरणा और अन्तर्द्वन्द्व से अभिभूत हैं। इन के व्यक्तित्व मे एक विचित्र रहस्यात्मक प्रेरणा है। यशोविजय मे वसत तिलका ने वसत से इसलिए विवाह किया है कि वह समाज की विषमताओ को चुनौती दे। दूसरी ओर यशस्तिलका ने जयवीर, को इसलिए अपना पति बनाया है कि वह अपने पति को यशोविजय के सामने पराजित करे, क्योकि यशस्तिलका यशोविजय से प्रेम करती है। सब किसी न किसी रहस्यात्मक शक्ति से प्रेरित है और सब अपनी-अपनी सीमा मे महान और आदर्श हैं।

पौराणिक चरित्र

यहाँ शंकर पार्वती, इन्द्र, शची, नारद, कामदेव, रति और गुरु कात्यायन आदि मुख्य चरित्र है। लेकिन इन पौराणिक चरित्रो की अवतारणा निरपेक्ष ढंग से न होकर धरती और मानव सापेक्ष हुई है, 'नारद का अर्घ्य,' मे शंकर पार्वती कैलाश पुरी मे बैठ कर नीचे धरती के आदि मानव को धनराज और जनराज के रूप मे अपनी लीला देखते है। इन मे नारद पृथ्वी आदि अन्य ग्रहो का भ्रमण करते हुए यहाँ पहुँचते है, धरती के मानव की स्थिति की चर्चा होती है। नारद का कहना था कि धरती त्वरा चाहती है कुछ और आगे कुछ अप्राप्त, कुछ निषिद्ध पार्वती ने सहसा अपने आपाद् लम्बित केशो से एक लट को निचोडते हुए कालकूट अमृत की एक बूँद को पृथ्वी की धुरा मे चुवा दिया,

फलतः पृथ्वी पर धन राशि आनन्द सुसपत्ति बिखर गई और पृथ्वी पर कलह मच गया। मानव मे 'अपना-मेरा का' कीडा पैठता है तथा संयुक्त प्रेम विनष्ट हो जाता है। भद्रबाहु, मे इन्द्र कामदेव के सामने धरती के भद्रबाहु और उर्ध्वबाहु को रख कर दोनो के चारित्रिक बल और व्यक्तित्व की तुलना की गई है। इन की परस्पर अवतारणा से यह दर्शन प्रतिपादित किया गया है कि सदा सबका कारण पृथ्वी है, उस पर मनुष्य परम बलिष्ठ और महान् है। अनबन, मे, बुद्धि और धृति की अवतारणा से नीति और दर्शन पर अपेक्षाकृत निरपेक्ष ढंग से प्रकाश डाला गया है।

लौकिक राजा-रानी

लौकिक राजा—रानी के प्रकाश मे जिन चरित्रो का निर्माण हुआ है, उन मे मुख्य रूप से मुख्यतः चारित्रिक निष्ठा तथा जीवन नीति का स्तर सब से उज्वल और सशक्त है। 'रानी महामाया' 'जनार्दन की रानी' और 'राजपथिक,' का राजकुमार, ये तीनो चरित्र भावुकता चारित्रिक निष्ठा और आदर्श के प्रतीक हैं। यहाँ के स्त्री पात्र अनन्य श्रद्धा भक्ति के प्रतीक है, तथा राजा चरित्र और दार्शनिकता के प्रतीक है।

जनार्दन राजा यह कह कर कि ब्रह्माड अनन्त है और ग्रह मडल मे अनेक आवागमन तो लगा ही है, राज्य छोड कर विरक्ति-पथ पर चल देते हैं। राज पथिक का राजकुमार, और वैजयन्त भी परोक्ष सत्ता के अन्वेषण और संयोग के लिए अपना-अपना राज्य छोड कर चल देते हैं।

आध्यात्मिक चरित्र

लौकिक धरातल पर कुछ आध्यात्मिक चरित्रो की भी अवतारणा हुई है। 'लाल सरोवर', का वैरागी इस का प्रतिनिधि। मानवता की सेवा, आदर्श मे अपार निष्ठा, वस्तु के प्रति उत्कट उपेक्षा ईश्वर मे अनन्य भक्ति इस के चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस चरित्र को निश्चित सुस्पष्ट रूप देने के लिए इस के व्यतिरेक मे जैनेन्द्र ने एक अधम चरित्र की अवतारणा की है। यह वैरागी, की चारित्रक विशेषताओ से बिल्कुल उलटा है, वैरागी मे इतना अध्यात्म बल है कि वह मानवता की सेवा मे अथवा वैसे ही जहाँ कही जाता है, उस के प्रत्येक पग पर एक-एक अशर्फी उत्पन्न होती रहती है। लेकिन यह वैरागी सोना पदार्थ का परम उपेक्षक है, और उसे अपने अध्यात्म बल का कुछ पता भी नही है, इस के

विपरीत मङ्गलदास अतुल स्वर्ण की लालच से वैरागी भक्त हो जाता है, वैरागी को अन्यान्य जीवन परीक्षाए देनी पडती है लेकिन अंत मे वैरागी को जब अशर्फी के रहस्य का पता चलता है, तब वह ईश्वर से उस की परिसमाप्ति की प्रार्थना करता है और अपने अभीष्ट को प्राप्त होता है। वैरागी के व्यक्तित्व से परोक्ष सत्ता की महिमा अध्यातम बल की निष्ठा वस्तु से ऊपर उठ कर रहस्यात्मक शक्ति की ओर प्रेरित होने का हमे सदेश मिलता है।

भावात्मक चरित्र

दार्शनिक धरातल से लिखी हुई कहानियो मे कुछ ऐसे भी चरित्रो की अवतारणा हुई है जो विशुद्ध रूप से भावात्मक और काल्पनिक है। 'नीलम देश की राजकन्या' उस की सखियाँ तथा नीलम देश पहुँचने वाला राजकुमार इस के प्रतीक है। राजकुमार की रानी माँ राजकुमार को खाना खिलाते, रात को सुलाते समय अपनी कल्पना से नीलम देश की छोटी-सी रानी के भावात्मक व्यक्तित्व से उस का परिचय कराती है। 'सात समुन्दर पार नीलम का देश है वहाँ लाल पन्नों का महल है। उस मे अकेली नीलम देश की रानी रहती है। समुन्द्र के नीचे से पानी की परियाँ सीप के पात्रो मे तरह-तरह के फल-फूल लाती है। फूलो को वह सूँघ लेती है, फलो का रस पी लेती है। वहाँ की हवा स्वच्छ दूध की-सी है, उसको वह पीती है वह चाँदनी से बारीक सपनो के कपडे पहनती है। ऐसी है वह रानी जो सोने के महलो मे सहस्रो वर्षों से अकेली उस द्वीप की रानी है और आदि से प्रतापी राजकुमार के आने की प्रतीक्षा मे अकेलापन काट रही है।"

वस्तुतः यह भावात्मक चरित्र किसी परोक्ष सत्ता का प्रतीक है। इस में अध्यात्म की दार्शनिक व्याख्या है। राजकुमार भी इसी प्रकाश मे आता है और दोनो मे परस्पर ब्रह्म और आत्मा के व्यक्तित्व का सकेत है।

प्रतीकात्मक चरित्र

प्रतीकात्मक चरित्र के प्रकाश मे मुख्यतः पेड-पौधे, जीव जतु आदि प्रयुक्त हुए है। 'वह विचारा साँप' मे साँप, 'तत्सत्' मे वट, पीपल, शीसम, बबूल तथा 'चिडिया की बच्ची' मे चिडिया आदि चरित्रो को दिया गया है। ये प्रतीकात्मक चरित्र विशुद्ध रूप से मानव दर्शन सापेक्ष्य हैं। इन के माध्यम से मनुष्य जीवन इस की नीति, उस के व्यवहार तथा इस के जीवन दर्शन पर प्रकाश डाला गया

है। इन में स्वाभाविकता लाने के लिए जैनेन्द्र ने स्वाभाविक परिस्थिति और वातावरण उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है।

वस्तुतः चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व प्रतिष्ठा ही इन दार्शनिक कहानियो के प्राण हैं, इस के ही माध्यम से कहानीकार ने अपना अभीष्ट पूरा किया है।

शैली

शैली के व्यापक पक्ष मे इन कहानियो की निर्माण-शैली, वार्ता तथा दृष्टान्त के रूप मे है। आधुनिक कहानी शैली मे इन कहानियो का निर्माण क्यो नही हो सका, इस का सब से बडा कारण यही है कि ये कहानियाँ विशुद्ध दार्शनिक धरातल से लिखी गई है। स्वय जैनेन्द्र के ही शब्दो मे "दार्शनिक तत्व के रूप मे सत्य अत्यन्त गरिष्ट है। उस रूप मे वह अपरीक्षित भी है। वह अधिकाश के लिए अग्राह्य है। फलत उस को दृष्टान्तगत, चित्रगत, और कथा रूप मे परिवर्तन करना पडा तभी वे दार्शनिक तत्व ग्राह्य हो सके।"

कहानियाँ विशेषकर दृष्टान्त के रूप मे क्यो लिखी गई। इसके उत्तर मे जैनेन्द्र का ही दृष्टिकोण इस के संबध मे सब से अधिक वैज्ञानिक है। "शास्त्र ने तो कह दिया सत्यं वद, लेकिन असली जिन्दगी मे सत्यं वद सीधी-सादी चीज नही रह जाती। सत्य वद् पर जब चलना आरम्भ करते हैं तो पेच पर पेच पैदा होते है। उस सीधे-सादे कथन मे शकाएँ निकलती जाती हैं, जब आदमी कहता है शास्त्र का सत्य वद हम को मत दो, दुनिया के सामने रख कर दृष्टान्त से हमे दिखलाओ, सत्यं वद क्या है, कैसे यह टिकता है।"[1] फलतः ये कहानियाँ दृष्टान्त शैली मे लिखी गई है सब मे कोई न कोई ससार घटित कथा के दृष्टान्त से दार्शनिक तत्व की प्रतिष्ठापना हुई है। वार्ता-शैली मे लिखी हुई कहानियाँ अपेक्षाकृत छोटी और रेखाचित्र के रूप मे निर्मित हुई है, जैसे 'नारद का अर्घ्य', 'बाहुबली', 'तत्सत्', और 'गुरु कात्यायन', आदि वार्ता में वस्तुत किसी की महिमा वर्णित होती है या किसी के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना कही जाती है। इन कहानियो मे भी व्यक्तियो के विषय मे बातें कही गई है। इन मे कथा विधान सामान्य रह कर व्यक्तियो के विषय मे दार्शनिकता की निष्पत्ति सफल रूप से हुई है। कथात्मक शैली मे आई हुई कहानियाँ अपेक्षाकृत लम्बी और सब से अधिक आकर्षक सिद्ध हुई हैं, जैसे, 'लाल सरोवर', और 'नीलम देश की राज-कन्या'। इन कहानियो की शैली बिल्कुल उसी तरह है जेसे कोई कथावाचक या

---

[1] जैनेन्द्र, प्रस्तावना, एक रात, पृष्ठ २

नानी-दादी कहानियाँ सुनाती है, उदाहरण के लिए 'लाल सरोवर', कहानी इस तरह कथित है," कमल के फूलो से भरे इस लाल सरोवर की कथा, भाई, प्राचीन है और परम्परा के अनुसार सुनता हूँ, बहुत पहले यहाँ से उत्तर पूरब की तरफ एक नगर बसा हुआ था। उस के बाद खडहर की हालत मे एक शिवाला था[१] आदि। रानी महामाया, कहानी की निर्माण-शैली कथा और नाटक शैली के बीच से है। वस्तुत किसी भी कहानी का आरम्भ भूमिका को लेकर हुआ है तथा 'रानी महामाया', को छोडकर किसी भी कहानी के अत मे उपसहार नही और यह उपसहार भी विवशता का परिणाम था। शैली के सामान्य पक्ष मे इन कहानियो मे देश-काल-परिस्थिति और व्यक्ति आदि का चित्रण, वर्णन सबल और सशक्त है।

लक्ष्य और अनुभूति

दार्शनिक धरातल के कारण इन कहानियो मे के निर्माण मे एक निश्चित दार्शनिक नैतिक धारणा सर्वत्र व्याप्त है। यही धारणा लक्ष्य रूप मे इन कहानियो के सृजन की मुख्य प्रेरणा रही है। लक्ष्य को हम स्पष्ट रूप से तमाम कहानियो मे ढूँढ सकते है, जैसे, 'जनार्दन की रानी" कहानी मे लक्ष्य की प्रेरणा, "ब्रह्माड अनत है, और इस ब्रह्माड मे आवागमन तो लगा ही है।' 'लाल सरोवर' मे लक्ष्य की प्रेरणा, "अनेकानेक अनार्थो का मूल यह स्वर्ण है भौतिकता, लेकिन फिर भी प्रभु, सब मे तुम्ही हो, तुम्ह · ।', । इसतरह, वह 'विचारा साँप' मे तो "परमात्मा सदा मौन रहता है, कृत्य ही मे वह व्यक्त है। जगत् की घटना ही जगदीश्वर की वाणी है।" 'जय सधि', और 'नीलम देश की राजकन्या' जैसी कहानियो की निर्माण की प्रेरणा लक्ष्य मे साथ ही साथ अनुभूति की भी तीव्रता स्पष्ट है।

वस्तुत दार्शनिक धरातल से लिखी हुई कहानियो मे जैनेन्द्र के चितक व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इन कहानियो का धरातल इतना ऊँचा है कि कहानी-कला के इस चरम विकास युग मे परम्परा गत, प्राचीन शैलियो मे लिखी हुई कहानियो का मूल्य वस्तुतः भावगत अधिक है, शिल्पगत कम। ये कहानियाँ अध्यात्म दर्शन और रहस्य की उन शाश्वत प्रेरणाओ से लिखी गई है जिन का मूलाधार हमारी सस्कृति है।

---

[१] **जय संधि, लाल सरोवर, पृष्ठ २०**

मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियाँ

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी हुई कहानियाँ, जैनेन्द्र की शिल्पविधि की उत्कृष्ट कहानियाँ है। यहाँ शिल्पविधान का वह चरमोत्कर्ष सर्वथा स्पष्ट है, जो प्रेमचंद, प्रसाद युग से हमारे अध्ययन को बहुत आगे बढ़ाता है। शिल्पविधान घटना के प्राधान्य, इतिवृत्त के विस्तार और बाह्य सघर्षो और परिस्थितियो के चित्रण, वर्णन से आगे बढ कर स्थूल से सूक्ष्म की ओर गया हे। इस मे बाह्य से अंतर की ओर जाने का आग्रह पूर्ण सफलता से स्पष्ट है। अतएव जैनेन्द्र की कहानी कला मे उन्हे कथा-विधान के नये-नये कौशल, नये-नये प्रयोग करने पडे है, तथा इन मे उन के आश्चर्यजनक हस्तलाघव का परिचय मिलता हे।

कथानक

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी हुई समस्त कहानियो को हम स्पष्टतः चार वर्गो मे बाँट सकते है—

प्रथम प्रकार की कहानियाँ वे हैं जो किसी के जीवन के एक लम्बे भाग के आधार पर लिखी गई है, जैसे 'मास्टर जी।'

दूसरे प्रकार की कहानियाँ वे हैं, जो एक रात या कुछ घंटो के जीवन चक्र के आधार पर निर्मित होकर मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन उपस्थित करती हैं, जैसे, 'एक रात',

तीसरे प्रकार की वे कहानियाँ है जो केवल विशिष्ट रूपो के आधार पर लिखी गई हैं। वे जीवन के किन्ही विशिष्ट चित्रो की द्रुत झाँकी उपस्थित करती है, जैसे,' क्या हो ?',

चौथी प्रकार की कहानियाँ मात्र चरित्र विश्लेषण और अध्ययन के आधार पर लिखी गई हैं जैसे, 'मित्र विद्याधर।'

प्रथम प्रकार मे कथानक सुस्पष्ट तथा अपने निश्चित इतिवृत्त के साथ आया है। यहाँ कथानक का निर्माण चरित्र के विकास-क्रमो के माध्यम से हुआ है। दूसरे प्रकार के कथानक अपेक्षाकृत सब से अधिक सबल और कथा-विधान के उत्कृष्ट उदाहरण है। कथानक-निर्माण मे वर्तमान स्थितियो का पूर्व स्थितियो से तादात्म्य स्थापित कर इस के विधान मे इतना कलात्मक चमत्कार उत्पन्न किया गया है कि इन से निर्मित कहानियाँ जैनेन्द्र की सर्वोत्कृष्ट कहानियाँ है। फिर भी यहाँ कथानक निर्माण मे घटना-चक्रो और सयोगो का बहुत कम सहारा

लिया गया है। इस के विकास मे मानसिक सूत्रो का अवलम्ब बहुत ही लिया गया हे।

यही कारण है कि ये कथानक जहाँ शिल्पविधान के उत्कृष्ट उदाहरण हैं वहाँ इन्हे हृदयगम करने के लिए पाठक को भी पूर्ण जागरूक, बौद्धिक और सशक्त रहना होगा, तभी पाठक से सवेदना का पूर्ण साधारणीकरण हो सकता है। तीसरे प्रकार के कथानक अपेक्षाकृत सूक्ष्म तत्त्वो से निर्मित हुए है। ये कुछ क्षणो की मन'स्थिति की आधार शिला से मनःउद्वेगो के घात-प्रतिघातो के साधनो से व्यक्त हुए है। केवल नाममात्र के लिए कथानक ऐसे लगते हैं कि जैसे कोई मात्र भाव ही फैलकर कहानी बन गया है और उस मे कथा चरित्र आदि इस तरह से सगुफित हो गये है कि सभी तत्वो की अपनी स्वतत्र सत्ता ही एक दूसरे मे खो गई है। 'क्या हो', मे सब कुछ स्मृति चिन्तन द्वारा ही व्यक्त किया गया है, लेकिन फिर भी कथातत्व सूक्ष्म स्वरूप मे होता हुआ भी, इतना शक्तिशाली और वेगवान है कि इस से सम्पूर्ण कहानी जैसी कोई अग्निशिखा-सी प्रतीत होती है, जो किसी तूफान की गति मे जलती-जलती सहसा टूट जाती है। चौथे प्रकार मे कथानक और भी सूक्ष्मतर हो गया है। इस मे एक तरह से कथा-तत्व का सर्वथा लोप हो गया है। क्योकि ये कहानियाँ चरित्र की आन्तरिकता के रेखाचित्र है, और यहाँ सूक्ष्म भावो, मनोविकारो को स्थूल कथातत्व मे समेटना असगत क्रिया हो गई है।

उक्त चारो प्रकार के कथानक तथा उन के शिल्प-विधान मे मूलत. कहानी की सवेदना और मनोविज्ञान के स्तर का विभेद है। जहाँ मनोविज्ञान स्थूल संवेदना को लेकर चला है, वहाँ कथानक, उस का इतिवृत्त, उस का स्परूप उतना ही स्पष्ट और निश्चित है। लेकिन जहाँ मनोविज्ञान केवल चरित्रो को लेकर कहानियो मे प्रतिष्ठित हुआ है, वहाँ कथानक सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते गए है।

चरित्र

वस्तुत. इस धरातल की कहाँनियाँ चरित्रो की कहानियाँ है, इस मे कथा-तत्व केवल साधन स्वरूप मे आए हैं, साध्य यहाँ चरित्र-विश्लेषण है। जैनेन्द्र ने अपनी कहाँनी कला मे चरित्र को क्यो इतना महत्त्व दिया, इस का कारण उन के सूक्ष्म दृष्टिकोण[१] और अध्ययन का आग्रह है।

---

[१] **यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी होगी कि शरीर से प्राणों की ओर बढ़ना बनावट से स्वाभाविकता की ओर बढ़ना होगा, सजावट से रुचिरता**

यहाँ समस्त कहानियो मे चरित्र-अवतारणा केवल दो दृष्टिकोणों से हुई है। जैनेन्द्र ने प्राय. साधारण चरित्रो के स्थान पर विशिष्ट चरित्रो को लिया है। दूसरे प्रकार के चरित्र अपने मे स्वय व्यक्ति नही होते वरन् व्यक्ति के 'टाइप' अथवा प्रतिनिधि हुआ करते है।

विशिष्ट चरित्र

जैनेन्द्र के अधिकाश चरित्र प्राय इसी वर्ग मे आते है। इन चरित्रो की सब से बडी कसौटी यह है कि ये अन्तर्मुखीं अधिक होते है। सब के सब किसी न किसी अतर्द्वन्द्व, घात-प्रतिघात से अनुप्राणित रहते है तथा ये कुछ ऐसी रहस्यात्मक शक्ति से प्रेरित रहते हैं कि इन्हे पूर्ण रूप से समझना कठिन कार्य है फिर भी ये चरित्र असाधारण न होकर पूर्ण मानव होते हैं। देखने से लगता है जैसे, सामने कोई विशाल अजेय पर्वत खडा है, लेकिन प्रत्येक मानवीय स्थितियो मे इस तरह पिघल जाते हैं, जैसे, मोम के पुतले। इन के चरित्र का आकर्षण भी अपूर्व है। इन मे किसी न किसी दिशा से एक अव्यक्त करुणा की लय, व्यक्त कसक टीस का अभिशाप, अनिर्दिष्ट अभाव और सब से बडी विशेषता, इन का निष्पद, निश्चेष्ट होना है। यह सत्य इन के स्त्री-पुरुष चरित्रो पर समान रूप से चरितार्थ होता है। इस के उदाहरण मे, 'एक रात' का जयराज और सुदर्शना, 'राजीव की भाभी', का राजीव, 'मास्टर जी', मे घोषाल, बाबू, और श्याम कला, 'क्या हो', का बन्दी, और सुषुमा, 'जाह्नवी' की जाह्नवी, 'नादिरा' का नादिरा, आदि सदा अमर रहेगे।

प्रतिनिधि चरित्र

जैनेन्द्र के प्रतिनिधि चरित्र अपने मे स्वतत्र व्यक्ति न होकर किसी वर्गगत जातिगत व्यक्तिगत व्यक्तित्व की इकाई होते है। जैनेन्द्र ने 'एक टाइप', कहानी मे अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट भी किया है। "कुछ लोग अपने मे व्यक्ति नही होते : वे एक टाइप के प्रतिनिधि हुआ करते हैं : × × ये सब जगह सब

की ओर और आडम्बर से प्रसाद की ओर बढ़ना होगा। स्थूल वासना के नीचे धरातल पर इस प्रगतिशील जगत् में टिकना नही हो सकेगा, सूक्ष्म की ओर अग्रसर ही होना होगा। इसी का नाम विकास है। जैनेन्द्र—'एक रात', भूमिका, पृष्ठ ३

नामो के नीचे एक ही मूल्य के द्योतक है । कामादिक प्राणी की हैसियत से अमुक ही उनके जीवन की नीति होती है वस्तुओ का अमुक मूल्य और विचारो की वही एक काठ की बनावट, वे अपना निज का व्यक्तित्व बनाने की झंझट से आरम्भ ही से बचे होते है : और अपने विश्वास आप गढने का कष्ट भी उन्हें उठाना नही होता[१] ।" ऐसे चरित्रो की अवतारणा प्रायः साधारण ढंग की कहानियो मे हुई है ।

जहाँ कोई घर-परिवार सबधी अथवा किसी व्यक्ति के सबध मे कहानी लिखनी पडी है, प्रात: वहाँ प्रतिनिधि चरित्रो ही को लिया गया है जैसे, 'ग्रामोफोन की रिकाड' की विजया, 'पत्नी' की सुनन्दा, प्रियव्रत, और 'टाइप' आदि ।

व्यापक रूप से जैनेन्द्र के समस्त चरित्रो मे अपने-अपने ढग से व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है । विशिष्ट चरित्रो मे यह सत्य अपने उत्कृष्ट ढग से चरितार्थ हुआ है । वस्तुत चरित्रो की व्यक्तित्त्व-प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व-विश्लेषण मुख्यतः चार साधनो से हुआ है—

(अ) आत्म विश्लेषण
(आ) मानसिक ऊहापोह
(इ) अवचेतन विज्ञप्ति
(ई) सकेतो, कार्य

आत्म विश्लेषण

"क्या मुझ मे कृतज्ञता है ? क्या मुझ मे खुशी है ? तब मैंने वह झूठा आचरण किया कि मैंने जज को धन्यवाद दिया, धन्यवाद मुझ मे न था । लेकिन यह क्या यह है कि रोऊँ नही, इसलिए हँसा ? मै समझता हूँ यह भी ठीक बात नही है ? रोने की भी जरूरत इस समय मेरे भीतर नही है ।"

—"क्या हो", पृष्ठ २०७

मानसिक ऊहापोह

"उस के मन को स्थिरता नही थी । वह अपने को कहाँ बाँधे ? उस मन के भीतर पढाई भी है, प्रेम भी है, लेकिन वह मन अपने को जैसे अस्वीकृत पाता है । किसने उसे ले लिया है । जिसके लिए इसका वह मन रहता है,

[१] एक रात—एक टाइप, पृ० १५६

तीनो लोको मे जो उसका अधीश्वर है वह आदमी तो एकदम उसे सोने मे और ऐश्वर्य मे डुवा देना चाहता है वह इसे ऐसा प्यार करता है। पर उसके क्या वह योग्य है।"

—'ग्रामोफोन का रिकार्ड', पृष्ठ ६१

अवचेतन विज्ञप्ति

अन्त मे टहलते-टहलते वह मेज पर आ बैठा और पेन से ब्लाटिंग पैड पर लिखा—लिखा कहे कि खीचा—

Swaraj Independence
Love Marriage

××× ××× God made Love. Did God make marriage also ? No, the man did the making of it and I say a Love is not choose. It is never that Never. never ! Ah ! how slavish of me thus unwillingly to use English wust write Hindi ! हिंदी, हिंदी ! हिंदी हमारा देश, हिंदुस्तानी है, हम, हिंदी हमारी भाषा, हिंदी हमारा बाना, भाइयो ! हरीपुर, २३ मील, सवेरे की गाडी मे नही जा सकता। Oh ! Damn it all ! Why make a misery of it—Dear Jairaj !

—'एक रात', पृष्ठ १२

सकेतो और कार्यो द्वारा

"कहते-कहते कमरे मे फिर मास्टर वापस लौट पडते, हिष्ट्री मे आर्य जाति विजय, और उन की सौम्यता, खूब याद करना चाहिए ! कौन-कौन लोगों ने भारत पर चढ़ाई किया ! ओह ! तुम लोग सोओ ! हम चला जाता है......

ऊपर दरवाजे की तरफ बढ़ते और गणित अथवा अग्रेजी या भूगोल इतिहास की कोई बहुत जरूरी बात बतलाते-बतलाते फिर लौट पडते। वास्तव मे उनका अभ्यन्तर उस अपने मकान मे इस रात्रि के अधेरे मे अपने को अकेला पाने से बचाता था।"

—'मास्टर जी', पृष्ठ ५७

शैली

जैनेन्द्र की कहानियो की निर्माण-शैली अत्यन्त व्यापक और विस्तृत हे। इस का सब से बडा कारण यह है कि उन्होने मनोविज्ञान और दर्शन के विभिन्न स्तरो और धरातलो से अपनी कहानियाँ लिखी हैं।

अतएव कहानियो की रूप-शैली अनेक प्रकार की हो गई है, जैसे, पत्रात्मक शैली, आत्म कथात्मक शैली, सम्वाद शैली, स्वगत भाषण शैली और विशुद्ध नाटक शैली, तथा इन समस्त शैलियो के तादात्म्य से ऐतिहासिक शैली। इन समस्त शैलियो मे उन्हे समान रूप से आश्चर्यजनक सफलता मिली है।

उक्त शैलियो के उदाहरण मे निम्नलिखित प्रतिनिधि कहानियाँ सर्वथा उल्लेखनीय है।

१. पत्रात्मक शैली—'परावर्तन'
२. आत्म कथात्मक शैली—'नादिरा'
३. सम्वाद शैली—'वीएट्रिस'
४ स्वगत भाषण शैली—'क्या हो'
५. नाटक शैली—'परदेशी'
६. वर्णनात्मक अथवा कथात्मक शैली—'मास्टर जी'

उपर्युक्त समस्त शैलियो मे केवल कथात्मक शैली को छोड कर किसी भी शैली मे भूमिका और उपसहार की योजना नही हुई है। फलत: कहानियो के निर्माण मे अर्थात् उन के आरम्भ, विकास और अत मे केन्द्रैक्य तथा कलात्मक मगुफन की सब से अधिक प्रेरणा है। उन मे कही भी अस्वाभाविक विकास तथा उपकथाओ, अंतंकथाओ को नही जोड़ा गया है। कथात्मक शैली से निर्मित कहानियो मे नाटकीय तत्व परम सफलता से आए हैं। इन के विकास मे घटनाओ की क्रमिक अवतारणा और नाटकीय परिस्थितियो का उत्पन्न होते जाना, दूसरी ओर चरित्रो के आतरिक पक्ष मे भावो का क्रमिक उदय, मन स्थिति का स्वाभाविक विश्लेषण और कहानी को लक्ष्य की ओर प्रेरित करते जाना। कहानियों के विकास मे अद्भुत गति और प्रवाह देता है। इन्हे पढ़कर ऐसा लगता हैं, जैसे हमारी सवेदनशीलता पर किसी ने बहुत तेजी से कोई लकीर खीच दी है, ऐसी लकीर जिस के आदि-अत का पता नही चलता, और पाठक कहानी मे उसे ढूंढ़ता-ढूंढ़ता थक जाता है, तथा बार-बार कहानियो को पढता रहता है। प्रायः हमेशा पाठक कहानी के अत पर रोक कर एक बार पुनः उसी कहानी की समस्या का कुछ और समाधान ढूंढ़ने लगता है, क्योकि इन कहानियो से हमे

शंका, उद्वेलन और अतृप्ति मिलती है, संतोष नही। वस्तुतः आधुनिक कहानी-कला की सब से बडी विशेषता यही है कि कहानी की पूरी समस्या वहाँ पैदा होती है जहाँ कहानी का अंत होता है।

शैली के सामान्य पक्ष मे यहाँ वर्णन और चित्रण मे क्रमश. चित्रात्मकता और विश्लेषण पद्धति की सब से बडी विशेषता है। जहाँ व्यक्ति विश्लेषण और मूर्ति प्रतिष्ठा की चेष्टा हुई है वहाँ कहानियाँ रेखाचित्र के उत्कृष्ट उदाहरण हो गई हैं। देश-काल-परिस्थिति के चित्रण मे बहुधा व्यजना का सहारा लिया गया है। क्योकि यहाँ शैली, व्यक्ति और उस के मनोविज्ञान को केन्द्र बना कर व्यक्त हुई है। अतएव सामान्य शैली के मुख्य पक्ष वर्णन और चित्रण मे सूक्ष्मता और व्यंजना आई हैं। जैनेन्द्र की भाषा-शैली इन के शिल्प विधान के प्रमुख विशेषताओ मे से है। इस मे इतनी स्वाभाविकता और प्रवाह है कि कहानियाँ अपनी सवेदना के साथ पाठक के अतस्थल को स्पष्ट करती चलती हैं। जहाँ व्यक्ति-विश्लेषण हुआ है वहाँ की भाषा गद्य शिल्पी की हुई है। जहाँ मानसिक ऊहापोह दिखाया गया है वहाँ की भाषा चिन्तक की भाषा हुई है, और जहाँ कही किसी चित्र-मूर्ति की प्रतिष्ठा करनी है, वहाँ की भाषा कवित्वपूर्ण भावुक और एक चतुर शिल्पी की भाषा है। अतएव जैनेन्द्र की भाषा मे भावोचित शब्द निर्माण, स्वाभाविक शब्द चयन और शब्द विस्तार, इतना है कि उन्हो ने सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो की अभिव्यक्ति मे सफलता प्राप्त की है। भाषा की लक्षणा और व्यंजना शक्ति को इन्होने इतना बल दिया है कि आधुनिक हिन्दी कहानी की भाषा उन की सदैव कृतज्ञ रहेगी।

लक्ष्य और अनुभूति

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी कहानियो की सृष्टि मे लक्ष्य और अनुभूति की समान प्रेरणा हैं, लेकिन फिर भी कुछ कहानियाँ तो विशुद्ध अनुभूति की प्रेरणा से लिखी गई है · अर्थात् वे कहानियाँ कहानीकार के अनुभूति का अभिव्यक्ति है। जो कहानियाँ जीवन के एक लम्बे भाग अथवा जीवन के कुछ घटो के प्रकाश मे मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के अध्ययन के आधार पर लिखी गई है, वे निश्चित रूप से एक लक्ष्य को लेकर लिखी गई है। उन मे अनुभूति का सहारा, उन के विकास मे लिया गया है जैसे 'मास्टर जी', कहानी एक व्यक्ति विशेष के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लक्ष्य से लिखी गई है और उस मे सब से अधिक एक जीवन-दर्शन और आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। 'एक रात' मे यह लक्ष्य

ग्रौर भी स्पष्ट हो गया है ग्रौर इस के विकास मे ग्रनुभूति की भी इतनी गहरी प्रेरणा है कि इस के चरित्र हमारी सवेदनशीलता मे सदा के लिए घर कर लेते है। जो कहानियाँ जीवन की द्रुत झाँकी ग्रथवा रेखाचित्र उपस्थित करती है उन मे केवल ग्रनुभूति की प्रेरणा है। 'क्या हो', 'पाजेब', 'पत्नी' 'ग्रामोफोन का रिकार्ड' ग्रादि कहानियाँ ग्रनुभूतिपूर्ण है। इन के निर्माण मे मानव सवेदनशीलता मनोभावो के ग्रारोह ग्रौर ग्रवरोह की गति मिलाई गई है। इन कहानियो की चरम सीमा पर जो कही-कही ग्रादर्शवाद का पुट दिया गया है ग्रौर उस पर जीवन-दर्शन का ग्रालोक बिखेरा गया है, वह वस्तुतः जैनेन्द्र के साँस्कृतिक व्यक्तित्व की छाया है। जो कहानियाँ व्यक्ति विश्लेपण ग्रथवा रेखाचित्र के रूप मे लिखी गई है जैसे 'मित्र विद्याधर', 'एक टाइप', 'त्रिवेणी' 'जाह्नवी', 'एक कैदी', 'उर्वशी', 'प्रतिमा', ग्रादि को भी सृष्टि की प्रेरणा मे ग्रनुभूति ग्रोर भाव ग्रध्ययन ग्रधिक है। इन मे जीवन-दर्शन की झाँकी बार-बार कहानीकार के चिन्तक ग्रौर दार्शनिक व्यक्तित्व की झाकी है जो ग्रवचेतन रूप से इन कहानियो मे उतर ग्राई है।

जैनेन्द्र मानव जीवन-दर्शन के सब से बडे कहानीकार हैं। मनोविज्ञान के धरातल के उन्हो ने मुख्यत व्यक्ति का जो ग्रध्ययन दिया है वह ग्रनुपम है। कहानी शिल्पविधि द्वारा इन्हो ने जीवन के व्यापक रूप ग्रौर दार्शनिक पक्ष ग्रौर व्यक्ति के उन मूल नैतिक प्रश्नो को लिया है जो हमारी सस्कृति ग्रौर उस के विकास के मेरुदंड है।

सियाराम शरण गुप्त

सियाराम शरण गुप्त की विशुद्ध दार्शनिक धरातल से लिखी हुई कहानियाँ केवल तीन है। 'मानुषी', 'त्याग', तथा 'कोटर ग्रौर कुटीर'। 'मानुषी' की सवेदना शकर पार्वती तथा धरती के मानव के प्रतीक मनोहर ग्रौर उसकी पत्नी श्यामा को लेकर निर्मित हुई है। इन में भारतीय ग्रादर्शवाद ग्रौर परम्परा की प्रतिष्ठा हुई है, त्याग, गाधीवाद दर्शन की सवेदना लेकर इस से एक बच्चे का त्याग दिखाया गया है। 'कोटर ग्रौर कुटीर', मे चारित्रिक महानता ग्रौर निष्ठा की प्रेरणा से लिखी हुई कहानी है। वस्तुत. यह कहानी सूत्र ग्रौर भाष्य के ढग से लिखी गई है। 'कोटर ग्रौर कुटीर' मे दो प्रतीकात्मक चरित्रो की ग्रवतारणा करके चारित्रिक निष्ठा ग्रौर ग्रादर्श की प्रतिष्ठापना हुई है। 'कोटर', का चातक ग्रपने पिता से लड कर पृथ्वी का पानी पीने के लिए निकल पडा। उडते-उडते

वह एक गरीब किसान की कुटी पर बैठता है वहाँ उसे चारित्रिक महानता की दीक्षा मिलती है और पुनः अपने कुटीर पर लौट जाता है। ये तीनो कहानियाँ अपने सपूर्ण शिल्पविधान मे कथा, दृष्टान्त और वार्ता शैली के अतर्गत आती है। दार्शनिक प्रेरणा भी इन मे पूर्णत स्पष्ट है।

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी हुई। कहानियाँ जैसे, 'पथ मे से', 'काकी' 'मुंशी जी', 'झूठ सच', आदि मे साधारण ढग का मनोविश्लेषण है। इन्हो ने कुछ निबधो को भी कहानी शैली मे लिखने का प्रयत्न किया है। जैसे, साहित्य और राजनीति साहित्य मे क्लिष्टता आदि, लेकिन ये कहानियाँ अपने शिल्पविधान मे बिल्कुल साधारण है। गुप्त जी मुख्यत कवि है, इन की विचार धारा मे वैष्णव मत की महानता, और गाधीवाद दर्शन दोनो का सुन्दर सामजस्य है।

'अज्ञेय'

अज्ञेय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार है। उन की कहानी-कला का मूल धरातल व्यक्ति चरित्र है। इस का सब से बडा लेकिन सहज कारण यह है कि अज्ञेय की दृष्टि मूलतया कवि की दृष्टि है, समाज सुधारक की दृष्टि नही, जो सामाजिक अव्यवस्थाओ के इतिवृत्त उपस्थित करता चलता है। इन्होने केवल व्यक्तिगत पहलू को मुख्य केन्द्र बना कर अपनी सब तरह की कहनिया लिखी है।

अध्ययन की दृष्टि से इन कहानियो को हम स्पष्टत चार भागो मे रख सकते है—

(१) सोद्देश्य सामाजिक आलोचना सबधी

(२) राजनीतिक बदी जीवन सबधी

(३) चरित्र-विश्लेषण सबधी और

(४) प्रतीको के सहारे मानसिक संघर्षो के अध्ययन सबंधी। इन चारो धरातल की कहानियाँ अपने दृष्टिकोण और देश-काल परिस्थिति मे इतनी विस्तृत, व्यापक और गभीर है कि मानववाद अपने अधिक से अधिक रूपो मे इन का उपजीव्य बन गया है। इस के लिए अज्ञेय की कहानी-कला मे असाधारण विधान-कौशल और शिल्प विधि का परिचय मिलता है। चरित्र-विधान और शैली-निर्माण मे इन की मौलिकता और हस्तलाघवता अपूर्व है।

कथानक

कहानियो के उक्त चार धरातलो के फलस्वरूप कथानक-विधान भी चार रूपो मे व्यक्त हुए हैं। जो कहानियाँ सोद्देश्य सामाजिक, नैतिक आलोचना की दृष्टि से लिखी गई है उन मे कथानक का रूप सुनिश्चित, स्पष्ट इतिवृत्त के साथ है जैसे, 'रोज', 'सभ्यता का एक दिन', 'परम्परा एक कहानी', 'जीवन शक्ति', 'शरण-दाता', 'बदला', 'लेटर बक्स', 'बसत', और 'कविप्रिया' आदि कहानियो के कथानक इन के निर्माण मे दो साधनो का समान रूप से सहारा लिया गया है। प्रथम आन्तरिक साधन, द्वितीय बाह्य साधन। आन्तरिक साधन जहाँ अपने अमूर्त्त रूप मे चरित्रो के माध्यम से कथानक के निर्माण करते है, वहाँ बाह्य साधन अपने मूर्त्त रूप मे क्रमिक घटनाओ, कार्य विधानो के माध्यम से इसे सुनिश्चित रूप देते है। शरणदाता, के कथानक निर्माण मे देवेन्द्रलाल के आन्तरिक संघर्ष रफीकउद्दीन, शेख अताउल्ला, के सपर्क से इन के मन मे सारा आरोह-अवरोह कथा विकास मे स्वाभाविक गति प्रेरण देता है। दूसरी ओर साप्रदायिक दगे के भय से देवेन्द्र लाल का रफीउद्दीन के घर से उस के दोस्त अताउल्ला की शरण पाना अताउल्ला द्वारा विष देने का प्रयास, बिलार की मृत्यु, देवेन्द्र लाल का वहाँ से भागना आदि, बाह्य घटनाएँ और कार्य-चक्र कथानक को सुनिश्चित रूप देते है। राजनीति तथा बदी जीवन से सबधित कहानियो मे वे दोनो उप-करण और भी विस्तृत और व्यापक रूप मे प्रयुक्त हुए हैं। अतएव ऐसी कहा-नियो मे कथानक का रूप और भी विराट तथा सुदृढ हो गया है। विराट इस अर्थ मे कि कथानक मे कथा तत्व सापेक्ष होते हुए भी मानवता की आत्मा को अपार सवेदना निष्ठा, और विद्रोह से अपने मे सगुफित कर लेता है। 'पेगोडा बृक्ष', 'छाया', 'केसेन्ड्रा का अभिशाप', और 'एक घटे मे' आदि कहानियाँ इस दिशा मे परम उल्लेखनीय है।

इन कहानियो मे राजनीति, प्रेम, घृणा और विद्रोह आदि को कहानी सवेदना बनाने के कारण कथानक-निर्माण मे मुख्यत. दो तत्व दो आए हैं : अंतर्कथाएँ और अतर्नुभूतियो का तादात्म्य कथा-विन्दु से सदैव रहा है। अतएव कथानक के केन्द्रैक्य मे अद्‌भुत ढग से गंभीरता उपस्थित हुई है। 'छाया', कहानी की मूल संवेदना एक बदी के कारुणिक जीवन और मनोभावो पर आधारित है। इस मे निर्मित कथासूत्र केवल इतना ही है—बदी अरुण जिस जेल मे है, सयोग वश, उसी जेल मे उस की बहन सुषमा भी आती है, और सुषमा की फाँसी

अरुण के सामने होती है। कथानक के इस मूल केन्द्र के किनारे इतनी अतर्कथाएँ और अतनुर्भूतियाँ आती है—

(क) जेल के वार्डर और उस की पत्नी, मेट्रन की सवेदना

(ख) अरुण के बदी जीवन की अनुभूतियाँ, उपकथाएँ,

(ग) सुषमा के राजनीतिक जीवन चरित्र की अतर्कथा और उस की फासी। लेकिन इन समस्त अतनुर्भूतियो और उपकथाओ से मूल कथा का इतना कलात्मक तादात्म्य उपस्थित हुआ है कि समूची कहानी की कथा वस्तु जैसे कोई सीधी छोटी रेखा हो, जिस पर कहानी के समस्त पात्र समस्त वर्णन-चित्रण घनीभूत हो गए हैं। कैसेन्ड्रा का अभिशाप मे यह विधान और भी मफलता से चरितार्थ हुआ है।

जो कहानियाँ चरित्र-विश्लेषण के धरातल से लिखी गई हैं, उन मे कथानक-निर्माण दो तरह से हुए हैं। अर्थात् अगर चरित्र सश्लिष्ट हैं, उन की मन:स्थिति मे गूढ ग्रन्थियाँ हैं : ऐसे चरित्रो के लिए उन कहानियो की रचना हुई है, जिन के विधान मे उस व्यक्ति से सबधित अनेक अन्तः प्रेरणाओ के विवरण दिए गए है।

'पुरुष का भाग्य', मे एक ऐसे स्त्री चरित्र का विश्लेषण किया गया है, जो केवल इस नगण्य सयोग से कँप कर गिरने लगी थी, कि उस का पैर एक बच्चे के गीले पैर की छाप पर पड गया था। ऐसे गूढ़ और सश्लिष्ट चरित्र के मनोविश्लेषण से उस के अनेक कर्म प्रेरणाओ की अवतारणा हुई है। वह स्त्री कभी जेल के कठिन कारावास मे थी, उस का पति फासी पर लटका दिया गया था, और वह स्वय स्कूल मे अध्यापन कार्य करती हुई बदी बना ली गई थी और उसे सात वर्ष की कडी सजा मिली थी। इसी बीच मे वह स्त्री से माँ बन गई। लेकिन वह पुरुष शिशु उस की गोद से खीच कर न जाने कहाँ विलुप्त कर दिया गया। वह स्त्री जेल से कभी बाहर आई होगी और उस के चेतन--अवचेतन मन मे सतत् उस शिशु पुरुष की अनंत खोज, उस के भाग्य की दुश्चिन्ताएँ, सर्वदा चुभती रही होगी। जो चरित्र अपेक्षाकृत साधारण मनो-ग्रन्थियो और मनोरहस्यो के है, उन के मनोविश्लेषण के लिए एक सीधा-सादा, एम-सूत्रात्मक कथानक लिया गया है, और उस के आधार पर चरित्र की मन. स्थिति, स्वभाव से सबधित घटनाओ की अवतारणा हुई है। 'हीली वोन् की बत्तखें', इस विधान की प्रतिनिधि कहानी है।

प्रतीको के सहारे मानसिक सघर्षों के चित्र की कहानियो मे भी कथानक

विधान दो ढगो से हुआ है । प्रथम, व्यक्ति के आत्म चिन्तन तथा उस से सबंधित भूत, वर्तमान और भविष्य की अनेक स्फुट सवेदनाओ के तादात्म्य से । द्वितीय चिन्तन और छोटी-छोटी घटनाओ के मेल से, 'पठार का धीरज', 'सिगनेलर', और 'नबर १०' । पहले ढग की कथा विधान की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं, तथा 'साँप', 'कोठरी की बात' और 'पुलिस की सीटी', दूसरे ढग के कथा विधान की ।

वस्तुत अज्ञेय की कहानियो मे शिल्प विधि की इतनी विभिन्नता तथा इस मे इतने प्रयोग हैं, कि इन मे कथा निर्माण के प्रकार, कथा शिल्प के विधानो को एक एक करके ढूढना पूर्ण मनोरजक अध्ययन है । कथा विधान की इतनी पटुता, इतना हस्त लाघव, हिन्दी के अन्य किसी कहानीकार मे सभवत: नही है । लेकिन कहानी के भाव पक्ष की दिशा मे कथा विधान की इतनी जटिलता, इतने प्रयोग, बहुत श्रेयस्कर नही । इससे कही-कही कहानी की आत्मा मे अस्पष्टता आ गई है ।

चरित्र

अज्ञेय की कहानी कला की आत्मा व्यक्ति चरित्र के केन्द्र-बिन्दु से निर्मित हुई है अर्थात् चरित्र-अवतारणा, चरित्र-विश्लेषण, चरित्र-मनोविज्ञान इन की वे आधार शिलाएँ हे, जिन पर कहानीकार अज्ञेय के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है । उन्हों ने अपनी कहानियो मे जितने भी सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक समस्याओ प्रश्नो को उठाया है, उन सब का अध्ययन उन्हो ने व्यक्तिगत पहलुओ से किया है । अज्ञेय का यह व्यक्तिगत पहलू चाहे कवि के दृष्टिकोण से अनुशासित हो, चाहे एक दार्शनिक दृष्टिकोण से, लेकिन यह तो निश्चित है कि वे सर्वत्र अपने व्यक्ति के चरित्र के अध्ययन मे एक सफल मनोवैज्ञानिक रहे हैं, जिस पर उन के आदर्शवाद तथा मानववाद का गहरा और प्रत्यक्ष प्रभाव हे ।

व्यापक दृष्टि से चरित्र-अवतारणा विशुद्ध मनोवैज्ञानिक धरातल से हुई है और इन के निर्माण मे प्राय तीन प्रकार की प्रेरणाएँ कार्य करती है ।

(क) अह रूप

(ख) विद्रोहात्मक

(ग) विश्लेषणात्मक रूप

वस्तुत यही तीनो प्रेरणाएँ चरित्र-निर्माण, चरित्र-विश्लेषण तथा व्यक्तित्व प्रतिष्ठापना मे समान रूप से कार्य करती है अर्थात् एक तरह से अज्ञेय का प्रत्येक चरित्र व्यक्तिवादी है । उस मे किसी न किसी पक्ष से विद्रोहात्मक

प्रेरणा कार्य कर रही है और चरित्रो के विकास उन के अह रूप ही के माध्यम से किया गया है । लेकिन फिर भी चरित्रो की सपूर्ण आधार-शिला मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही है ।

अहं रूप

व्यक्ति चरित्र को ही कहानी-कला का मूलाधार बनाने के कारण अज्ञेय के चरित्र मुख्यत व्यक्तिवादी हो गए हे । यह व्यक्तिवादिता कई रूपो मे उन के चरित्रो मे व्यक्त है । प्राय. चरित्र सामान्य न होकर विशिष्ट हो गए हैं । पात्रो मे बाह्य विभिन्नता होते हुए भी प्रायः सभी चरित्र अतर्मुखी हैं । इस का सब से बडा कारण यह हे कि अज्ञेय के चरित्रो का विकास उन के अह रूप "मैं" मे ही दिखाया गया है अर्थात् अज्ञेय का "मै" उन के चरित्रो का प्रतिनिधि रूप है, और समूची कहानी की शिल्प-विधि का सूत्रधार प्राय यही 'मैं' ही है । इसी के चिन्तन, मनन, और स्मृतियो से एक ओर 'मैं' का विकास व्यक्त होता है, दूसरी ओर अन्य चरित्र भी इसी के प्रकाश मे विकसित होते हैं ।

इस तरह अज्ञेय के चरित्र का यह अह रूप कही सकीर्ण अथवा उथला नही है । यह इतना उदात्त और समुन्नत है कि वह अपने मे सर्वदा मानववाद को समेट कर चलता है । इन की कहानियो मे इन का व्यक्तिवाद ही मानववाद का प्रतीक हैं । इसलिए जो आलोचक अज्ञेय को चरित्रो पर यह दोषारोपण करते है कि अज्ञेय अपने से बाहर कुछ नही देखते, वे सर्वथा अवैज्ञानिक हैं । वस्तुत. चरित्र का यह रूप मुख्यतः तीन तरह से उन की कला मे व्यक्त हुआ है । प्रथम चिन्तक के रूप मे, जैसे, 'छाया', का वार्डर, जो अपने अहं रूप से कहानी को आरम्भ करता हे । अरुण और सुषुमा के अलग-अलग अहं रूप इस कहानी की आत्मा ये हैं । 'कोठरी की बात' मे, कोठरी के प्रतीक से अलग-अलग सुशील और दिनमणि के चरित्र उन के अह रूप से व्यक्त हुए हैं । द्वितीय रूप मे चरित्र का यह अह रूप स्वतः नायक के रूप मे अभिव्यक्त होता है । 'साँप' का मै इस का सुन्दर उदाहरण हे । इस मै का स्वरूप इतना शक्तिशाली और सुदृढ है कि इस की सीमा मे कहानी का सब कुछ आ गया है, वह, जगल, और साँप, सब । तृतीय रूप मे यह अह भाव पहले अन्य पुरुष के रूप मे आता है, वर्णित होता है, इस का परिचय दिया जाता है, लेकिन फिर वह अन्य पुरुष

[1] कोठरी की बात, द्रोही पृ० सं० ३१

[2] कोठरी की बात, द्रोही पृ० ३

अपने अह रूप मे इतना व्यापक हो जाता है कि उस के माध्यम से अन्यान्य चरित्रो का आविर्भाव होता चलता है। 'द्रोही' इस का उदाहरण है। इस मे द्रोही चरित्र का अविर्भाव और विकास यो होता है।

१ अन्य पुरुष मे :—वह बुद्धिमान था या मूर्ख, दबैल या हठी, साहसी था या कायर, हम नही कह सकते। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह द्रोही था, सिर से पैर तक द्रोही।[१]

२ अहं रूप मे :—आँखे बन्द करके सोचता हूँ भविष्य के क्रोड मे क्या है, जो मुझसे छिपा हुआ है? बहुत सोचता हूँ, पर एक प्रशस्त अधकार के अतिरिक्त कुछ नही दीखता।[२]

३ व्यापक रूप मे :—अर्थात् जब इस के माध्यम से अन्य चरित्रो अवतारणा होती है।

एक स्मृति आती है एक व्यक्ति कठघरे मे खडा है।

कमला कमला तुम्हे कैसे पाऊँगा।

मैने पूछा विमल तुम तो बहुत कष्ट मे हो।

वह बोला, आपका परिचय क्या है? मै तो आप को जानता ही नही।[२]

देखो रघुनाथ व्यर्थ की चिन्ता मे क्यो पडे हो? ऐसे व्याख्यान करने लगोगे तो पागल हो जाओगे। मन तुम्हारा सच्चा मित्र है, उसकी प्रेरणा का तिरस्कार मत करो।[३]

अज्ञेय के चरित्र-निर्माण और विधान मे इस अह रूप की सब से बडी प्रेरणा है। इस का प्रयोग उन्होने सब रूपो और प्रकारो मे किया है और इसी की सहायता से उन्हे अपने अनेक शिल्पगत प्रयोगो मे आश्चर्य जनक सफलता मिली है।

विद्रोह

विद्रोह के धरातल से आविर्भूत चरित्र सामाजिक, राजनीतिक, तथा व्यक्तिगत प्रश्नो और मूल्यो को लेकर आए हैं। कुछ कहानियाँ ऐसे भी चरित्रो को लेकर लिखी गई हैं जिन मे विद्रोह केवल एक पहलू को लेकर व्यक्त हुआ है, जैसे, 'रोज' की मालती, 'दुख और तितलियाँ' का शेखर, 'सूक्ति और भाषा' की

---

[१] **कोठरी की बात, द्रोही पृ० ३३**

[२] **कोठरी की बात, द्रोही पृ० ४०**

[३] **कोठरी की बात, द्रोही पृ० ४८**

जसुमती, 'परम्परा—एक कहानी' का[1] दरबान और 'सभ्यता का एक दिन' का नरेन्द्र आदि सामाजिक विद्रोह की भावना के चरित्र है। राजनीतिक विद्रोह की प्रेरणा मे आने वाले अज्ञेय के चरित्र सब से अधिक हैं, और ये चरित्र अज्ञेय के महान चरित्र है, जैसे, 'पगोडा बृक्ष' की सुखदा और युवक, 'छाया' का अरुण और सुषुमा, 'कोठरी की बात' के सुशील और दिनमणि और 'एक घटे' का प्रभाकर और रजनी आदि। व्यक्तिगत प्रश्नो और मूल्यो मे विद्रोह की गति लिए हुए-से चरित्र आते हैं जो अपनी अनन्य करुणा और शोषण को अपने मे छिपाए उस भावी विद्रोह के प्रतीक-से लगते है, जिन की विद्रोहात्मक आवाज भविष्य मे सब से ऊँची उठेगी। इस के उदाहरण मे 'एकाकी तारा' का लूनी, 'हर सिंगार' का गोविन्द, 'शान्ति हँसी थी' का जानकी दास और शान्ति, 'जीवन-शक्ति' की मातरा, और दामू आदि उत्कृष्ट चरित्र है।

वस्तुत: अज्ञेय की परम सफल कहानियाँ वे हैं, जिन मे कुछ ऐसे चरित्रो की अवतारणा हुई है, जो सामुहिक रूप से राजनीतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत मूल्यो और समस्याओ के प्रति विद्रोही हैं, जैसे, 'शत्रु का ज्ञान', 'नम्बर दस' का रतन, 'द्रोही' का मैं और कमला, 'कैसेन्डा को अभिशाप' की कर्मेन और मेरिया, ये सब चरित्र वस्तुतः विद्रोह के प्रतीक है। इन के व्यक्तित्व का निर्माण की करुणा, शोषण और मूक बलिदान के तत्वो को लेकर हुआ है। उक्त तथ्य स्त्री-पुरुष दोनो चरित्रो मे समान रूप से स्पष्ट हैं, दोनो शोषित है और विद्रोही भी। दोनों कर्म प्रधान है। जीवन को सर्वदा हथेलियों पर लिए हुए मिलते है। ये सदैव कठिनाइयो से आकृष्ट होते है, सरलता से नही। इन के विद्रोही चरित्र अपनी प्रकृति की साक्षी देता है—"मै यदि विद्रोही हूँ तो इसलिए कि मेरी प्रकृति यह माँगती है। मेरी जीवन-शक्ति को वही निष्पत्ति।"[2]

विश्लेषण

विश्लेषण का आग्रह अज्ञेय के चरित्रो मे सब से अधिक है। इसी धरातल से समस्त चरित्रो के स्वतंत्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा है। इन की कर्म प्रेरणाओ, मन:स्थितियो, स्वभावो का सूक्ष्म आकलन और विश्लेषण हुआ है। यह विश्लेषण कई भूमिकाओ से हुआ है, यथा, मनोविश्लेषण, आत्मविश्लेषण

---

[1] द्रोह मेरे हृदय में है, मेरी अस्थियों मे है, मेरी नस-नस में, है में द्रोही हूँ। कोठरी की बात, द्रोही, पृ० ५७

[2] कोठरी की बात, पृष्ठ १३२

तथा सकेतो और सूक्ष्म हाव-भावो के सहारे मनुष्य की कर्म प्रेरणाओ और मन स्थितियो का अध्ययन ।

मनोविश्लेषण

मनोविश्लेषण मे भी अज्ञेय ने दो विधियो का सहारा लिया है । प्रथम सीधे चरित्र-विश्लेषण, द्वितीय मानसिक सघर्षो द्वारा मनोविश्लेषण ।

पहले के उदाहरण मे—"चिन्तन से उसे पीडा होती थी, किन्तु पीडा उसे चिन्तन का आधार देती थी और इसलिए वह पागल नही, इसलिए जब तूफान आकर उसे अशान्त करके चला जाता था, तब वह उन्मत्त दानव की भाँति उस छोटी-सी कोठरी मे टहलने लगता था । एक सिरे से दूसरे सिरे तक, एक, दो, तीन, चार, पाँच कदम फिर वापस एक, दो, तीन, चार, पाच फिर लौट कर एक, दो, तीन और इसी तरह वह सारी रात बिता था, तब उसकी टाँगे थक जाती, वह एकाएक रुक कर भूमि पर बैठ जाता और चुपचाप मन ही मन रोने या कविता करने लगता । उसका एक शब्द भी बाहर नही निकलता एक छाया भी उस के मुख पर व्यक्त नही होती । वह मानो किसी अदृश्य समुद्र के भाटे की भाँति धीरे-धीरे उतर जाती और निश्चल हो जाती उस समय तक जब कि दूसरा तूफान पुन उसे न उठाये[1] ।"

दूसरे के उदाहरण मे—"नालायक वह ?'

चौक कर रतन उठ बैठा, क्या उस ने कुछ देखा, या कुछ याद आ गया ? कोडे की मार से आहत-सा वह उठ बैठा । नालायक वह । अगर मै नही नालायक, जिस ने एक तो चोरी की, दूसरे अपनी बहन को बुलाया और तीसरे हाथ आई हुई दौलत फेंक दी ? चोर ! दस नम्बर का बदमाश ! और बेवकूफ[2]?"

आत्म विश्लेषण

अज्ञेय के चरित्रो मे हम इस प्रवृत्ति की प्रेरणा सब से अधिक पाते है । उन की कुछ उत्कृष्ट कहानियाँ तो चरित्र के आत्म विश्लेषण को ही लेकर निर्मित हुई है, जैसे, 'द्रोही', 'साँप', और 'सिगनेलर' । आत्म विश्लेषण की स्थिति मे चरित्र अपनी स्मृतियो, चिन्तनो आत्म कथाओ और अतर्कथाओ द्वारा इस को चरितार्थ करता है । 'द्रोही' का नामक समूची कहानी मे आत्म विश्लेषण की

---

[1] कोठरी की बात, पृ० १३४

[2] परम्परा नम्बर दस, पृ० १०६

समस्त सभावनाओ, स्थितियो और सवेदनाओ को उपस्थित करता है और कहानी के अन्त मे उस के सपूर्ण आत्म विश्लेषण की निष्पत्ति होती है ।

"मै द्रोही हूँ, रहूँगा, द्रोह मेरे हृदय मे है, मेरो अस्थियो मे है, मेरी नस-नस मे है, मै द्रोही हूँ, पहली बार मैने सरकार से द्रोह किया था किसी की मुख श्री म आकृष्ट होकर, दूसरी बार मैने देश से द्रोह किया किसी के शरीर की लालसा से । तीसरी बार मैने धर्म से द्रोह किया । किसी के लिए ईर्ष्या करके । फिर अपनी नीचता का परिणाम जब मै जान पाया तब मै प्रायश्चित करने लग गया । पर फल क्या हुआ, प्रायश्चित भी नही किया और अपनी अतरात्मा के प्रति भी द्रोही बनकर लौट आया[१] ।"

सकेतो तथा सूक्ष्म हाव-भावो के सहारे मनुष्य की कर्म-प्रेरणाओ और मन स्थिति के अध्ययन मे, 'पुरुष का भाग्य' कहानी परम उल्लेखनीय है । यह कहानो केवल इस मनोदशा से प्रारम्भ होती है कि एक औरत का पैर धूल के ऊपर दो गीले पैरो की छाप पर पडता है और वह विक्षिप्त हो जाती है और वह गिरने से बचती है । ऐसा क्यो है, किन कर्म-प्रेरणाओ से उस की यह मन स्थिति है इसी के अध्ययन मे पूरी कहानी निर्मित हुई है । 'पुलिस की सीटी' मे भी कहानी के नायक सत्य को सीटी की आवाज सुनते ही उसे जान पडा मानो अभी ससार मे अधेरा हो जायगा, पृथ्वी स्थापना च्युत हो जायगी उस ने सहारे के लिए हाथ आगे बढ़ाया । हाथ कुछ थाम नही सका । मुट्ठी भर उडती हुई हवा को अगुलियो मे से फिसल जाने देकर खाली ही रह गया, तब सत्य ने समझ लिया कि वह गिरेगा, गिरकर रहेगा उसने आँखे बद कर ली ।[२] ऐसा क्यो हुआ ? एक साधारण लडके के सीटी की आवाज सुन कर सत्य की मनोदशा क्यो बिगड गई ? क्योकि उसके अवचेतन जगत् मे एक बहुत बडा 'आप्रेशन' था, जिसे हम मनोवैज्ञानिक शब्दावली मे दंड—विक्षिप्तता(Prosecution Maniea) कह सकते हैं ।

चरित्र की दिशा मे उक्त जितने भी विधान प्रयुक्त हुए है उन सब का मूल आधार मनोविज्ञान ही है । यह मनोविज्ञान चाहे आत्मविश्लेषण के रूप मे स्थापित हुआ है, चाहे विद्रोह के रूप मे । चरित्र की मनोवैज्ञानिक अवतारणा, चरित्र-विश्लेषण और व्यक्तित्व प्रतिष्ठा ये तीनो भूमिकाएँ बहुत ऊँची और महत्वपूर्ण हैं । लेकिन चरित्र की दिशा मे इतनी ऊँची भूमिका के कारण कहानी

[१] कोठरी की बात, द्रोही, पृ० ५७

[२] पुलिस की सीटी, परम्परा पृष्ठ १५६ ।

पर इस के दो प्रभाव पडे है। प्राय. चरित्र असाधारण और विशिष्ट हुए है, तथा इन को समझने या साधारणीकरण के लिये विद्वान और जागरूक पाठक की अपेक्षा है, साधारण कहानी पाठक की नही। लेकिन दूसरी ओर इन चरित्रो की दो महान विशेषताएँ भी है ये चरित्र चाहे राजनीतिक हो चाहे विद्रोही चाहे किसी देश प्रात सस्कृति और वर्ग के हो ये सर्वथा मानवीय सबधो, प्रश्नो और आकाक्षाओ के चित्रो से अभिभूत है। इन मे मानवीय निष्ठा और सस्कार अनन्य हे।

शैली

कहानी-निर्माण मे शैली की विविधता और इस मे विभिन्न प्रयोग तथा प्रकार, अज्ञेय की शिल्पविधि की अन्य सब से बडी विशेषता है इन मे शैलीगत इतनी विविधता क्यो आई, इस का एक मात्र कारण यह हे कि अलग-अलग चरित्रो व्यक्तियो को अध्ययन के लिये उन्हे उन के अनुरूप कहानी-निर्माण की शैलियाँ ढूँढनी पडी जिन्हे हम छ. भागो मे रह सकते है।

१. कथात्मक शैली
२. आत्म कथात्मक शैली
३ नाटकीय शैली
४. पत्रात्मक शैली
५ प्रतिकात्मक शैली
६. मिश्रित शैली

उक्त समस्त शैलियो मे विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति अज्ञेय की कला की प्रमुख विशेषता हे। वस्तुत इस के पीछे व्यक्ति के चरित्र-विश्लेषण की प्रेरणा सब से अधिक रूप मे कार्य कर रही है।

कथात्मक शैली

कथात्मक शैली की प्रतिनिधि कहानियो मे 'कैसेन्ड्रा का अभिशाप', 'आदम की डायरी', 'पगोडा वृक्ष', 'शरणदाता', 'हीली बोन् की बत्तखे', आदि कहानियाँ मुख्य है। लेकिन यहाँ अज्ञेय ने कथात्मक शैली मे भी कुछ नये प्रयोग किये है। अन्य पुरुष मे वर्णनात्मकता प्राय विश्लेषण के आधार से अभिव्यक्त हुई है। अन्य पुरुष मे उत्तम पुरुष की स्थापना और अन्य पुरुष मे स्मृतियो चिन्तनो द्वारा कहानी मे विकास के विधान प्रस्तुत हुए है। जैसे, 'इन्दु की बेटी', 'वे दूसरे', 'जय दोल', और 'पठार का धीरज', । वस्तुतः कथात्मक शैली

मे अज्ञेय का यह तीसरा प्रयोग अपूर्व है। इस की सफलता ने कथात्मक शैली मे आश्चर्यजनक शक्ति और विकास दिया है।

आत्मकथात्मक शैली

आत्म कथात्मक शैली अज्ञेय की सर्वप्रिय शैली है क्योकि इस के माध्यम से अर्थात् 'मै' के सहारे चरित्र-विश्लेषण मे अनन्य सुविधा प्राप्त होता है। 'अमर वल्लरी', 'विपथगा', 'लेटर बक्स', 'रमन्ते तत्र देवता', 'सॉप', 'मेजर चौधरी की वापसी' आदि कहानियाँ इस शैली की उत्कृष्ट कहानियाँ है। कहानी का निर्माण जहाँ 'मै' के माध्यम से अबाध गति से होता है वहाँ मै से सबधित अनेक अनुभूतियो, स्मृतियो से भी सबधित अनेक चित्रो के विश्लेषण प्रस्तुत होते चलते है। इस शैली के अतर्गत सपूर्ण कहानी का विकास घटनाओ और द्वन्द्वो के सहारे होता है यही कारण है कि इस शैली मे स्वगत भाषण के तत्व बहुत आए हैं—विशेषकर उन स्थानो पर जहाँ चरित्र के मानसिक द्वन्द्व और ऊहापोह की अभिव्यक्ति अधिक हुई न।

नाटकीय शैली

'जयदोल', मे 'कविप्रिया', और 'बसत' दो कहानियाँ इस शैली के अतर्गत उल्लेखनीय है। इन मे 'कविप्रिया' तो विशुद्ध एकाकी नाटक शिल्पविधि मे लिखी गयी है अतः इसे कहानी कहना ही अवैज्ञानिक है। 'बसत मे एक नये शिल्पगत प्रयोग के दर्शन होते है। यहाँ शैली एकाकी नाटक और कहानी के बीच से चलती है इस मे दोनो के तत्वो का सुन्दरतम तादात्म्य हुआ है और उस के एक नई कला-वस्तु की अवतारणा हुई है।

पत्रात्मक शैली

केवल 'सिगनेलर' इस शैली की प्रतिनिधि कहानी है। इस शैली मे भी कुछ विशेषता है। पत्र केवल 'मै' ने अपने मित्र विमल को लिखा है और 'मै' क्रमशः पाच पत्रो के समन्वय से 'सिगनेलर', कहानी की अभिव्यक्ति हुई है। इस के विकास मे कहानीकार ने किसी और अन्य के एक भी पत्र का सहारा नही लिया है। अतिम दो पत्र डायरी के पृष्ठो के रूप मे हैं क्योकि उस स्थल पर कहानी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है तथा कहानी अपने चरम परिणति पर पहुँचती है। कहानी मे अबाध गति उत्पन्न करने के लिए कहानीकार ने एक ही पत्र को दो-तीन भागो और तिथियो मे बॉट कर लिखा है।

प्रतीकात्मक शैली

प्रतीकात्मक शैली अज्ञेय की कहानी कला का एक ललित पक्ष है। जहाँ भी इन्हे मानसिक सघर्षो के अतस्तल मे जाकर उस का अध्ययन प्रस्तुत करना पडा है वहाँ इन्होने प्राय इसी शैली को अपना साधक बनाया है। अतएव इस शैली से निर्मित इन की कुछ कहानियाँ जैसे 'चिडिया घर', 'पुरुष का भाग्य', 'कोठरी की बात', 'पठार का धीरज', और 'साँप' आदि शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियाँ है। कहानी के भाव-पक्ष से पूर्ण स्वाभाविकता और वैज्ञानिकता स्थापित करने के प्रयास मे यहाँ प्रतीको मे पूर्ण विविधता और आकर्षण उपस्थित हुआ है। 'चिडिया घर' के प्रतीक विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तु है। पुरुष के भाग्य मे धूल पर दो गीले पैरो की छपा, अनन्य सुन्दर प्रतीक है। इसी तरह 'कोठरी की बात', 'पठार का धीरज' और 'साँप' मे क्रमश कोठरी, पठार और साँप, इस के कलात्मक प्रतीक है। इन सब प्रतीको और कहानी के विभिन्न मानसिक सघषो का पूर्ण सफलता से तादात्म्य उपस्थित हुआ है।

मिश्रित शैली

शिल्पविधि की दृष्टि से जो कहानियाँ उच्चकोटि की है वे इस शैली मे निर्मित हुई है, अर्थात् उन के विकास और अंत मे ऐतिहासिक आत्म कथात्मक सवादात्मक, पत्रात्मक और प्रतीकात्मक आदि सभी शैलियो का इन्हो ने सामूहिक सहारा लिया है और इस मिश्रित शैली से कहानी मे उच्चकोटि का चरित्र-विश्लेषण, कर्म-प्रेरणाओ की पूर्ण व्याख्या तथा शिल्पविधान मे आश्चर्यजनक हस्तलाघवता का परिचय दिया है। 'छाया', 'द्रोही', और 'नम्बर दस' इस शैली की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। 'छाया' मे वार्डन द्वारा आत्मकथन, वर्णन, अरुण और वार्डन द्वारा सवाद, सुषमा और अशोक द्वारा पत्र व्यवहार, वार्डन और अशोक के अलग-अलग आत्म चिन्तन, विभिन्न प्रतीको द्वारा अशोक और सुषमा के मानसिक सघर्षों के चित्र आदि सब शैलीगत उपादानो से इस का कहानी का निर्माण हुआ है। ठीक यही शैलीगत स्थिति द्रोही और नम्बर दस की भी है।

विशुद्ध रचना शैली की दृष्टि से अज्ञेय की कहानियो मे रचना विधान विश्लेषण, कथोपकथन और घटना-प्रवाह के सहारे से होता है। व्यापक दृष्टि से इन की कहानियो के रचना-विधान मे निम्नलिखित विकास-क्रम मिलते हैं।

१. आरम्भ : पात्र-परिचय और समस्या का सकेत

२. विकास :

अ प्रथम मुख्य घटना . जिस मे केन्द्रीय भाव की सूचना होती है।
ब. द्वितीय मुख्य घटना . कौतूहल या विस्मय के तत्व जिस के सहारे स्पष्टता आती है।
स तृतीय मुख्य घटना जिस से कहानी चरम उत्कर्ष पर पहुँचती है और कहानी अपने भाव-पक्ष मे पूर्णत स्पष्ट हो जाती है।

३. निष्पत्ति या चरम सीमा : सपूर्ण तथा एकात प्रभाव चरितार्थ हो जाता है।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष अर्थात् चित्रण, वर्णन, कथोपकथन भाषा सौष्ठव और शब्द-संयम आदि मे अज्ञेय का हस्तलाघव और लेखन शिल्प दोनो अपनी पूर्ण सफलता पर है। चित्रण और वर्णन दोनो विश्लेषण के धरातल से चरितार्थ हुए है। कथोपकथन प्राय छोटे सुगठित और व्यंजनात्मक हुए है। अज्ञेय की गद्य-शैली मे सर्वत्र आश्चर्यजनक सयम, गभीरता, चयन, और परिष्कार (Finish) मिलता है यही कारण है कि इन की भाषा अमूर्त्त से अमूर्त्त मनोद्गारो, घात-प्रतिघातो और मानसिक द्वन्द्वो की अभिव्यक्ति मे सदैव सफल रही है।

लक्ष्य और अनुभूति

अज्ञेय की कहानियो के निर्माण मे लक्ष्य और अनुभूति की प्रेरणा समान रूप से है। लेकिन अनुभूति की प्रेरणा जहाँ इन की कहानियो मे प्रत्यक्ष और अपूर्व वेग से व्यजित होती हैं वहाँ लक्ष्य अपने अप्रत्यक्ष रूप मे ध्वनित होता है। जो कहानियाँ राजनीति, विद्रोह, बन्दी जीवन, तथा अज्ञेय के विस्तृत देशाटन और युद्ध कालीन अनुभवो के धरातल से निर्मित हुई हैं वे मूलतः अनुभूति के ही धरातल से लिखी गई है। कहानी के निर्माण मे अनुभूति की प्रेरणा को अज्ञेय ने सब से ऊँचा स्थान दिया है।[१] जो कहानियाँ सामाजिक तथा नैतिक जीवन के वैषम्य समस्याओ और सघर्षो के धरातल से लिखी गई है उन मे एक निश्चित लक्ष्य की प्रेरणा ध्वनित होती हे। अर्थात् ऐसी

---

[१] मेरा आग्रह रहा है कि लेखक अपनी अनुभूति ही लिखे, जो अनुभूति नही है कोई सैद्धान्तिक प्रेरणा के वशीभूत हो कर उसे लिखना ऋणशोध हो सकता है साहित्यिक सिद्धि नही—अज्ञेय, शरणार्थी : भूमिका, पृष्ठ २

कहानियो मे लक्ष्य की भावना प्राय. कटु व्यग, चुनोती, ग्लानि और तिरष्कृत अनुभवो के माध्यम से व्यजित की गई है। दृष्टान्तो के रूप मे नही कि सत्य वद, आदर्श बन, चरित्रनिष्ठ बन। कहानियाँ अपने अधिकाश रूप मे अनुभूति के ही धरातल से लिखी गई है। यही कारण है कि इन कहानियो मे एकात प्रभाव डालने की क्षमता अपूर्व है।

सक्रान्ति युग मे कहानीकार अज्ञेय का मूल्य सर्वाधिक है। इन मे रचना-कौशल की प्रतिभा नये-नये प्रयोगो का सफल आग्रह इतना है कि इन की शिल्पविधि मे आश्चर्यजनक विविधता आ गई है। लेकिन कला-शिल्पी अज्ञेय की उत्कृष्टता शिल्पविधि की ओर है, इस की अपेक्षा इन का भाव-पक्ष कुछ निर्बल पडता है। इस मे न तो शिल्पविधान की-सी विविधता है न कथा सौष्ठव की भाँति भावगत मौलिकता। लेकिन इस के स्थान पर अज्ञेय ने अपनी कहानी कला मे देश-काल और परिस्थिति का चित्रण इतने व्यापक और विस्तृत ढग से किया है कि इन का स्थान सर्वोपरि सिद्ध होता है।

इलाचन्द्र जोशी

मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के दूसरे प्रतिनिधि कहानीकार इलाचन्द्र जोशी है। ऐतिहासिक दृष्टि से सक्रान्ति युग के समस्त कहानीकारो मे जोशी जी प्रथम कहानीकार है जिन्हो ने इस प्रवृत्ति को लेकर कहानी लिखना प्रारम्भ किया। इन की सर्वप्रथम कहानी 'सजनवा'[१], उस का प्रमाण है। इन की कहानी का मुख्य धरातल मनोविज्ञान है और इस के दो प्रमुख पक्ष है। मध्य वर्ग अथवा ह्रासोन्मुख जीवन की विश्लेषणात्मक आलोचना। दूसरी ओर व्यक्ति के अहभाव की एकातिकता पर निर्भय प्रहार : यही दो पक्ष इनकी कहानी कला के मूलाधार हैं। अज्ञेय और जोशी के मनोवैज्ञानिक धरातलो मे अतर और विरोध स्पष्ट है। अज्ञेय जहाँ सर्वगामी अह रूप के माध्यम से विश्लेषण उपस्थित करते है वहाँ जोशी अहं रूप ही पर प्रहार करते हैं। क्योकि जोशी की धारणा है कि 'आधुनिक समाज मे पुरुष की बौद्धिकता ज्यो-ज्यो बढ़ती चली जा रही है त्यो-त्यो उस का अह भाव तीव्र से तीव्रतर और व्यापक से व्यापकतर रूप ग्रहण करता चलता है। अपने तृप्त न होने वाले अह भाव की अस्वाभाविक मूर्ति की चेष्टा मे जब उसे पग-पग पर स्वाभाविक सफलता मिलती है तो वह

---

[१] हिन्दी गल्प माला, भाग २ अंक ८, मार्च १९२०, पृष्ठ ३५९

बौखला उठता है और उस बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फल स्वरूप वह आत्म-विनाश क पहले अपने आस-पास के ससार के विनाश की योजना मे जुट जाता है ।[२]' इस तरह जहाँ अज्ञेय की मनोवृत्ति अतर्मुखी है, वहाँ जोशी के दृष्टिकोण मे अपेक्षाकृत अतर्जगत् और बहिर्जगत् का सुन्दर सामजस्य है । इसी प्रकाश मे जोशी की कहानी मे शिल्पविधि का निर्माण हुआ है ।

कथानक

जो कहानियाँ मध्य वर्ग और ह्रासोन्मुख जीवन की विश्लेषणात्मक आलोचना के धरातल से लिखी गई है, जैसे, 'चरणो की दासी', 'होली', 'अनाश्रित' 'रक्षित धन का अभिशाप', 'रोगी', 'परित्यक्ता', 'जारज', 'एकाकी', 'दुष्कर्मी', और 'पतिव्रता या पिशाची' आदि कहानियो मे कथानक का रूप इतिवृत्तात्मक है । इन कहानियों मे कथानक का आरम्भ मध्य और अत पूर्ण स्पष्ट और सुनिश्चित है । इन के निर्माण प्राय. दो ढगो से हुए है । मुख्य चरित्र को लेकर उस के जीवन परिचय जीवन सबधी विभिन्न घटनाओ और वर्णनो के साथ कथानक-निर्माण, जैसे, 'चरणो की दासी', 'होली' 'अनाश्रित', आदि के कथानक । ऐसे कथानक प्राय. व्यक्ति को ही लेकर निर्मित हुए है । इस का कारण है व्यक्ति चरित्र-विश्लेषण की प्रवृत्ति और उस के जीवन के किंचित घटना-चक्रो और कार्य व्यापारो के माध्यम से एक ओर व्यक्ति-जीवन और उस की सामाजिकता पर व्यंग दूसरी ओर व्यक्ति चरित्र-विश्लेषण । दूसरे प्रकार के कथानक निर्माण मे कोई चरित्र अन्य व्यक्ति सबंधी उस के जीवन सबधी कहानी को निरपेक्ष ढग से वर्णन अथवा कथन प्रस्तुत करता है, जैसे, 'एकाकी', 'पतिव्रता या पिचाशी', 'कापालिक', ओर 'दुष्कर्मी' आदि कहानियाँ । इन मे कथात्मकता और वर्णनात्मकता ही मुख्य रूप से कथानक-निर्माण के दो तत्व है । वस्तुत ऐसे कथानक साधारण है । दूसरी ओर जो कहानियाँ व्यक्ति के अह विश्लेषण, अह की एकातिकता पर निर्भय प्रहार के लिए लिखी गई हैं, जैसे, 'मै', 'मिस एल्किन्स', 'रात्रिचर', 'पागल की सफाई', 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' आदि मे कथानक का रूप अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक है । इन मे भी जो कहानियाँ विशुद्ध रूप से अह की एकातिकता पर प्रहार के लिए लिखी गई हैं, जैसे, 'मै', और 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' इन मे कथानक का निर्माण केवल भावो मनो-

---

[२] इलाचन्द्र जोशी, विवेचना, पृष्ठ १२४

वेगों के विश्लेषण के माध्यम से हुआ है। 'मै', के कथानक मे न तो कोई घटना-चक्र है न कार्य-व्यापार, बस केवल आत्म-विश्लेषण के आधार पर कहानी निर्मित हुई है। शेष जो कहानियाँ व्यक्ति के अह के विश्लेषण के निमित्त लिखी गई हैं, जैसे 'मिस एल्किन्स', 'पागल की सफाई', 'रात्रिचर', आदि, इन मे कथानक एक सूत्रात्मक ढग से विभिन्न घटना-चक्रो, कार्य-व्यापारो, से निर्मित हुआ है।

जोशी की कहानियो मे कथा-विधान स्पष्ट और कथा-तत्व को लेकर निर्मित हुआ है। इन मे कही भी प्रयोग का आग्रह नही है।

चरित्र

जोशी के समस्त चरित्र तीन वर्गों मे बाँटे जा सकते हैं। पहले वर्ग मे वे चरित्र आते हैं जो पूर्णतः असाधारण और विशिष्ट हैं, जैसे, 'कापालिक', 'रात्रिचर', 'प्रेतात्मा', 'शराबी', और 'एकाकी'। दूसरे वर्ग के चरित्र वे हैं जो सर्व साधारण, स्वाभाविक और प्राय मध्य वर्ग के प्रतीक हैं, जैसे, 'रोगी', 'परित्यक्ता', 'दीवाली और होली' की बिन्दी, मोहन और रज्जन, 'चरणो की दासी', की कामना, 'रेल की रात', का महेन्द्र और 'अनाश्रित के द्वार' का तारा आदि। चरित्र का तीसरा वर्ग सर्वग्राही व्यक्ति को प्रतिनिधि रूप मे है। यह तीसरा वर्ग अर्थात् 'मैं', जोशी के चरित्र-विधान मे सब से अधिक बलिष्ठ, सुदृढ और सर्वग्राही है। इस के विकास मनोविश्लेषण और इस की एकातिकता के प्रहार मे जोशी पूर्ण सफल और वैज्ञानिक सिद्ध हुए हैं।

विशिष्ट और असाधारण चरित्रों की अवतारणा मे विश्लेषण की अपेक्षा कौतूहल, जिज्ञासा की प्रवृत्ति अधिक है। लेकिन इन मे भी जो दो एक चरित्र एक निश्चित मनोवैज्ञानिक प्रेरणा से अवतरित हुए हैं, जैसे, स्त्री, कुँवर साहब; इन मे विश्लेषण के तत्व पूर्ण सफलता से स्पष्ट हो आए हैं। चरित्र के वास्तविक रूप मे जोशी के दूसरे प्रकार के चरित्र सब से अधिक आकर्षक और व्यक्तित्व प्रधान हैं। यह हमारे मध्यम वर्ग के जीवन तथा हम लोगो के प्रतीक है। इन मे एक ओर चरित्रगत स्वाभाविक निर्बलता और त्रुटियाँ हैं। दूसरी ओर इन मे अपने सद्गुणो, आदर्श सस्कारो के प्रति आस्था और निष्ठा है। ऐसे चरित्रो का पूर्ण चरित्र-चित्रण और व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा जोशी ने अपनी कहानियो मे की है। वस्तुत. ये चरित्र पूर्ण रूप से यथार्थवादी धरातल से अवतरित हुए है।

चरित्र का तीसरा प्रकार अर्थात् 'मै', जोशी जी के चरित्र-विधान का

प्रमुख अग है। बल्कि यहाँ तक कहा जा सकता है कि उन की कहानियो का सर्व सुलभ प्रतिनिधि नायक 'मै' ही है। लेकिन यहाँ उल्लेखनीय यह है कि 'मैं', के अस्तित्व और इस की एकान्तिकता को जोशी जी ने कभी प्रश्रय नही दिया है। इस का मनोविश्लेषण परम निर्मम ढग से किया है। इन्हो ने चेतन और अवचेतन जगत् की अनेक गुत्थियो और कुठाओ का उद्घाटन मानस के सूक्ष्म प्रेरक सूत्रो के माध्यम से किया है।

मनोविश्लेषण

चरित्र का मनोविश्लेषण दो रूपो से हुआ है। प्रथम आत्म-विश्लेषण और आत्म-कथन द्वारा, द्वितीय अन्य पुरुष मे। पहले मे चरित्र स्वय का व्यक्तित्व प्रधान है दूसरे मे कहानीकार की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति उभर आई है। वस्तुत: आत्म-विश्लेषण ही जोशी जी की शैली की प्रमुख विशेषता है अधिकाश चरित्र इसी कसौटी पर कसे गये है तथा उस का रूा निम्नलिखित है।

आत्म विश्लेषण

"मैं उन आदमियो मे से हूँ जो सब समय केवल अपने ही अंतर की भावनाओ के लिए रहते है, ठीक उसी तरह जिस प्रकार मादा कंगारू अप ने नवजात शिशु को हर घडी छाती से जकडे रहती है। × × × × मैं इसी प्रकृति का आदमी हूँ अर्थात् मैं आधुनिक मनोवैज्ञानिक भाषा मे, इट्रोवर्ट हूँ।"

निरपेक्ष विश्लेषण

"श्यामा के हृदय मे एक नया आन्दोलन मचने लगा। अपने हृदय में वह पति का एक निराला चित्र अंकित करने लगी। विवाह के समय उसने अपने पति के मुख की क्षणिक झलक देखी थी, वह बिल्कुल अस्पष्ट थी, उससे उनकी आकृति के संबंध मे कोई धारणा उसके मन मे नही हो सकती थी।"

जोशी जी के चरित्र जैनेन्द्र और अज्ञेय की अपेक्षा परम स्पष्ट और यथार्थ कोटि मे आते हैं। कभी भी इन्हो ने चरित्र को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर अपनी कहानियो में नही रखा है। इस दिशा मे सर्वत्र वैज्ञानिकता और स्वाभाविकता का आग्रह है।

शैली

रचना-कौशल की दृष्टि से जोशी की कहानियो मे सब से कम विविधता है। इन्हो ने कहानी की विभिन्न शैलियो मे लिखने, विभिन्न प्रयोगो और शिल्प-विधानो मे बाँधने का जैसे प्रयत्न ही नही किया है। सब के पीछे सर्वत्र एक सहज गति है। इन की कसौटी के अनुसार कहानी मे भाव तत्व और चरित्र-विश्लेषण ही कहानी की आत्मा है। वस्तुत इसी धारणा के फल स्वरूप जोशी जी मे रचनागत अथवा शैलीगत विभिन्नता बहुत कम है। मुख्यत दो ही रचना-शैलियो मे इन की कहानियाँ निर्मित हुई हैं।

आत्म कथात्मक

जितनी भी कहानियाँ अह विश्लेषण के धरातल से लिखी गई है वे समस्त कहानियाँ इसी शैली के अतर्गत हैं। इस मे आत्मकथा के अतिरिक्त और भी दो तत्व आए हैं जैसे स्वगत भाषण तथा सवाद। इन सब के सामूहिक प्रभाव के फल स्वरूप इस शैली मे अपूर्व वेग आन्तरिकता और सूक्ष्म अध्ययन की शक्ति आ गई है। जोशी की यही शैली उन की सहज और प्रमुख शैली है। इसी के माध्यम से वे व्यक्ति चरित्र का अध्ययन उस के सूक्ष्म सूत्रो का उद्-घाटन और अहं का विश्लेषण प्रस्तुत करते है।

वर्णनात्मक

सामाजिक, व्यक्तिपरक कहानियाँ इसी शैली मे लिखी गई है। इन के रचना विधान मे वर्णनात्मकता, कथोपकथन, के साथ घटना-चक्रो का क्रमिक प्रतिफलन और कार्यो का स्वाभाविक विश्लेषण यही इस के तीन पक्ष है। असाधारण चरित्रो सामाजिक विवरणो और आलोचनाओ की भी कहानियाँ इसी शैली मे निर्मित हुई हैं, अतएव रचना शैली की दृष्टि से जोशी जी की कहा-नियो मे निम्नलिखित विकास-क्रम मिलते है।

१. आरम्भ : पात्र परिचय और विषय प्रवेश
२ पूर्व विकास . केन्द्रीय भाव अथवा चरित्र पर बल
३. विकास : केन्द्रीय भाव और मुख्य चरित्र का पूर्व उद्घाटन
४, मुख्य घटना द्वारा : भाव और चरित्र विश्लेषण का चरमोत्कर्ष
५. निष्पत्ति या अत : पूरे अभिप्राय की निष्पत्ति।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष मे वर्णन, चित्रण और कथोपकथन तीनो के रूप परम स्वाभाविक है। इस दिशा मे विश्लेषणात्मक शैली इन की मुख्य प्रेरणा है। जहाँ देश-काल परिस्थिति का चित्रण अथवा वर्णन हुआ है वहाँ की भाषा परम सयत और सुबोध है। जहाँ व्यक्ति चरित्र का विश्लेषण हुआ है वहाँ की भाषा वैज्ञानिक और अभिव्यजक हुई है। इस तरह जोशी की भाषा मे बौद्धिकता अधिक है और इसी बौद्धिकता के फल स्वरूप जहाँ-कही परिस्थिति अनुसार भाषा मे लयमयता और माधुर्य आना चाहिए वहाँ ये गुण इन की भाषा मे नहीं आ पाते। फिर भी जोशी जी के गद्य मे शब्द-सयम, शब्दनिर्माण और भाषा-सौष्ठव आदि तत्व प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं।

लक्ष्य और अनुभूति

जोशी जी की जितनी कहानियाँ व्यक्तिपरक हैं, उन मे निश्चित रूप से जीवन के मूल्यो पर नैतिक प्रश्नो पर प्रकाश डाला गया है। क्योकि ये कहानियाँ परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप से एक लक्ष्य को लेकर निर्मित हुई हैं। लेकिन विशेषता इन में यह है कि ये कहानियाँ कही भी दृष्टान्त-सी नही प्रतीत होती। इन कहानियो मे कहानीकार का दृष्टिकोण और निश्चित लक्ष्य सर्वत्र बिखरे पड़े है। निष्कर्ष रूप मे लक्ष्य को प्रतिफलित करने की पद्धति जोशी जी की कहानियों मे बहुत कम है। दूसरी ओर वे भी कहानियाँ जो अह के विश्लेषण और उस की एकान्तिकता पर प्रहार की दृष्टि से लिखी गई है उन के भी निर्माण मे लक्ष्य की प्रेरणा है लेकिन उन के विकास मे आत्मानुभूति की भी प्रेरणा बहुत है। जो कहानियाँ कुछ सच्चे चरित्रो और सवेदनाओ को लेकर लिखी गई हैं, जैसे, 'खडहर की आत्माएँ' की कहानियाँ उन के निर्माण मे वस्तुत: आत्मानुभूति की ही प्रेरणा सर्वोपरि है। व्यापक रूप मे जोशी जी की कहानी-कला विश्लेषणात्मक है। इस पर बौद्धिकता की छाप सब से अधिक है। इस का सब से बडा कारण जोशी जी का कलागत दृष्टिकोण है। बाह्य अतर का तादात्म्य इन की कहानी-कला मे लक्ष्यात्मक गभीरता लाता है। इस कलागत दृष्टिकोण को न समझने वाले आलोचक जोशी जी की कहानी-कला के मूल्याकन मे पथभ्रष्ट हो जाते है जोशी जी की कला मे अपना एक स्वतत्र छद है, गति है इस की अपनी एक विशिष्ट धारा है जिसे कभी नही भुलाया जा सकता।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

'अश्क' की कहानी की शिल्पविधि प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा, शिल्पविधान के विकास का आधुनिक रूप है। जिस तरह प्रेमचद की कला व्यक्ति-समाज के यथार्थ जीवन और मनोविज्ञान का सामूहिक प्रतिनिधित्व करती थी, ठीक वही धरातल अश्क की कहानियो का है। यही कारण है कि इन की कहानियाँ जहाँ एक ओर समाज की आलोचना करती हैं, वहाँ दूसरी ओर व्यक्ति के मनोविज्ञान की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं। चरित्र पर तीखे व्यग के साथ पाठक को एक निश्चित आदर्श अथवा लक्ष्य की ओर प्रेरित करती हैं।

साहित्यिक परिस्थितियाँ

प्रेमचद की भाँति अश्क भी उर्दू से हिंदी मे आए। इन की कहानियो का आरम्भ वस्तुतः प्रेमचद के प्रभाव और प्रेरणा से हुआ। १६२६ ई० से १६३२ ई० तक अश्क अपनी कहानी-कला के प्रारम्भिक काल मे पूर्ण रूप से प्रेमचद के विकासकालीन कला के प्रभाव मे थे। उर्दू मे इन की कहानियो का आरम्भ सन् १६२६ ई० से ही होता है। इन की १६२६ से १६२८ ई० तक की कहानियाँ अप्रकाशित हैं। १६२६ ई० की कुछ कहानियाँ उर्दू नवरत्न मे हैं। इन की १६३० से १६३१ ई० तक की उर्दू कहानियाँ 'औरत की फितरत' नामक उर्दू कहानी सग्रह मे सगृहीत है। ये कहानियाँ विशुद्ध रूप से प्रेमचद की विकास-कालीन कला के उदाहरण है। इस की भूमिका प्रेमचद ने ही लिखी थी। वस्तुतः इन कहानियो की शिल्पविधि मे वे सब तत्व विद्यमान है, जो प्रेमचंद की विकासकालीन कला की मुख्य देन है। इन मे से कुछ कहानियाँ रुमानी धरातल से लिखी गयी है। लेकिन शिल्पविधान समान ही है।

उर्दू से हिन्दी मे आगमन

मुख्यतः प्रेमचद की ही प्रेरणा से अश्क उर्दू से हिंदी मे आए। प्रेमचद ने ही सर्वप्रथम इन की दो एक कहानियो को उर्दू से हिंदी मे अनूदित करा कर 'हस', 'माधुरी' आदि मे प्रकाशित किया। 'औरत की फितरत' की भूमिका मे प्रेमचद ने इन्हे हिंदी मे आने के लिए पूर्णरूप से प्रेरित किया। प्रेमचद के अतिरिक्त इन्हे हिंदी मे लाने का श्रेय हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशकर भट्ट और माखनलाल चतुर्वेदी को है। चतुर्वेदी जी ने 'कर्मवीर' के लिए हिंदी कहानियाँ लिखने को

इन्हे आमन्त्रित किया तथा इन्हो ने उस के लिए 'सम्वाददाता', 'कलाकार', 'सतीत्व का आदर्श', और 'भाई' आदि कहानियाँ लिखी। इसी समय 'प्रेम की वेदी' जो आगे चलकर 'जुदाई की शाम का गीत' शीर्षक से आयी है, 'विशाल भारत' मे प्रकाशित हुई, और इस तरह १९३२ ई० से अश्क ने नियमित रूप से हिंदी कहानियाँ लिखनी आरम्भ की और १९३३ ई० तक अर्थात् एक ही वर्ष मे इन्हो ने अनेक अच्छी कहानियाँ लिखी।

आलोचनात्मक दृष्टि से १९३३ ई० तक की कहानियाँ जैसे-'नज्जियाँ', 'जुदाई की शाम का गीत', 'मरीचिका', 'निशानियाँ' और 'फूल का अजाम' आदि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की कहानियाँ है। लेकिन इसी समय इन्हो ने 'चित्रकार की मौत', 'नरक का चुनाव' और 'तीन सौ चौबिस' जैसी विशुद्ध यथार्थवादी कहानियाँ भी लिखी। वस्तुतः इसी यथार्थवादी परम्परा को लेकर अश्क का वास्तविक विकास हुआ और इन का कलात्मक व्यक्तित्व इसी प्रवृत्ति का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। स्पष्ट शब्दो मे हम यो भी कह सकते है कि १९३३ ई० का काल अश्क की कहानी-कला का वह सक्रान्ति-विन्दु है, जहाँ से ये कहानी का रूमानी धरातल और प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को छोड़ कर विशुद्ध यथार्थवादी दिशा की ओर बढे, और इस की परम्परा के अनुकूल इन के शिल्पविधान का निर्माण हुआ।

कथानक

अश्क की कहानियो के कथानक परम स्पष्ट और आदि, मध्य तथा अंत अपने तीनो रूपो मे पूर्ण परिष्कृत रहते है। लगता है कि कहानीकार ने सवेदना के स्वाभाविक विकास से अपने कथानक को खूब सँवारा है। इस स्पष्टता और परिष्कार के स्पष्ट कारण है। अश्क की कहानियो की सवेदना हम सब की संवेदना होती है—विशेष कर मध्य वर्ग की। जिस समस्या को लेकर कथानक का निर्माण होता है, वह समस्या भी हमारी नित्य प्रति की समस्या होती है। फलत. यहाँ कथानक का रूप चाहे व्यजनात्मक हो चाहे अपूर्ण, पाठक के लिये सर्वथा स्पष्ट रहता है। दूसरी ओर उन की कहानियो के कथानको मे एक समता और केन्द्रीय भावना परम सफलता से विद्यमान रहती है। मूल कथानक के साथ प्रायः कही भी उपकथा, अन्य कथा अथवा अन्तर्कथा की व्यवस्था नही रहती। कथानक सदैव किसी निश्चित समस्या या भाव को लेकर आरम्भ होता है और

इसी भाव या समस्या के किनारे-किनारे पूरा कथानक अपनी एक समता के साथ केन्द्रीभूत रहता है ।

विधान की दृष्टि से अश्क के कथानक निर्माण मे दो शैलियाँ है . प्रथम, वर्णनात्मक ढग से घटना-चक्र से और कार्यो के तादात्म्य से, द्वितीय कथासूत्र के पूर्ण विकास और उत्तर विकास के कलात्मक सयोग से । पहले के उदाहरण मे उस वर्ग की कहानियाँ आती है, जो नैतिक व्यंग और समाजिक आलोचना सूत्र को लेकर लिखी गई है, जैसे 'वह मेरी मगेतर थी', 'तीन सौ चौबीस', 'चारा काटने की मशीन', 'डायरी', 'गोखरू', 'कालेसाहब', और 'कॉगडा का तेली', आदि । इन सब कहानियो की सवेदना जीवनगत व्यग और कटु आलोचना से सम्बद्ध और इन के कथानको के निर्माण मे व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी सहज घटना-चक्रो तथा परिस्थितियो के आरोह-अवरोह एक सूत्रता मे पिरोए गए हैं । दूसरे के उदाहरण मे उस शैली की कहानियाँ आती हैं जो प्राय. प्रतीकात्मक हैं अथवा जिन के कथा-विधान मे पूर्व और उत्तर स्थितियाँ चिन्तन, स्मृति आदि के माध्यम से वर्तमान स्थिति मे पिरोयी गयी है, जैसे—'नासूर', 'चट्टान', 'अकुर', 'उबाल', 'बैगन का पौदा', और 'पिंजरा' आदि । 'पिंजरा', का कथानक शान्ति की वर्तमान स्थिति को लेकर आरम्भ होता है । वह किस भाँति इतने धनी प्रतिष्ठित पति के घर, संस्कार व्यवहार के पिजडे मे बन्दिनी बन कर बैठी है, किस तरह उस का व्यक्तित्व, उस की सत्ता मिट गयी है, इसी मन:स्थिति और द्वन्द्व मे वह एक पत्र लिख ने को है । बार-बार वह पत्र लिखती है और बार-बार उसे फाड देती है और वह पाँचवाँ पत्र था । तब कही बैठे-बैठे उस की आँखो के सामने अतीत के कई चित्र घूम गए, यहाँ से कथानक अपनी पूर्व कथा की ओर मुडता है . "तब शान्ति गरीब थी । उस के पति लाँड्री का काम करते थे । गोमती एक काली-कलूटी निम्नकोटि की लडकी शान्ति की बहन बन गयी । वही गोमती आज दोपहर को, बहुत दिनो के बाद फिर शान्ति के घर आयी । शान्ती ने उस का स्वागत पहले की भाँति किया उस पर शान्ति के पति, जो आज धनी व्यक्ति हो गये है, क्रुद्ध होते है और शान्ति की स्थिति पिंजरे मे पड़े हुए पक्षी की भाँति हो जाती है । वह गोमती को लिखे हुए खत को फाड देती है ।"—वस्तुत ऐसे कथामक के शिल्पविधान के पीछे व्यक्ति-अध्ययन और उस के मनोवैज्ञानिक चित्रण की प्रेरणा सब से अधिक है । प्रथम प्रकार के कथानक की सवेदना जहाँ स्थूल होती है वहाँ दूसरे प्रकार के कथानक की सवेदना अपेक्षाकृत सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक होती है ।

चरित्र

अश्क की कहानी-कला मे चरित्र सीमित है । लेकिन इस सीमित क्षेत्र मे भी उन के चरित्रो मे विविधता है । उन के समस्त चरित्र विशुद्ध रूप से हमारे जीवन के सच्चे प्रतिनिधि है । उन की अवतारणा सर्वथा स्वाभाविकता और मानवीय तत्वो के धरातल से हुई है । वस्तुतः, अश्क, का यथार्थवादी दृष्टिकोण मुख्यतः उन के चरित्रो के ही माध्यम से व्यक्त हुआ है । चरित्र मुख्यत. दो भागो मे रखे जा सकते है—

(१) साधारण चरित्र
(२) प्रतिनिधि चरित्र

साधारण चरित्र

साधारण चरित्रो मे अश्क ने परिवार के भाई-बहन, प्रेमी-प्रेमिका से लेकर नौकर, किसान, मजदूर व्यावसायिक और अन्य छोटे-मोटे कर्मचारियो को लिया है । साधारण चरित्रो मे इन्हो ने उन्ही चरित्रों को लिया है जो सर्व सुलभ और व्यापक है । अश्क ने इन्ही पूर्ण परिचित चरित्रो को लिया है और उन के रहस्योद्‌घाटन से पाठक को आश्चर्य चकित कर दिया है । 'काले साहब' का रिक्शा वाला, 'बगूले', का दुल्ले, 'डाची' का बाकर, 'तीन सौ चौबीस' का हैदर, और 'उबाल' का चंदन इस के अमर उदाहरण है । इन्ही साधारण चरित्रो के सहारे इन्हो ने सामाजिक वैषम्य और जन-सघर्षों का चित्रण किया है । इस दिशा मे कुछ चरित्र अपनी सामाजिक परम्परा, नैतिक मानदडो तथा आर्थिक व्यवस्था से इतने दुखी और शोषित दिखाए गए हैं कि इन के प्रति पाठक की सहज संवेदना और करुणा का जागृत होना स्वाभाविक हो गया है । ये साधारण चरित्र एक ओर मौन विद्रोह के प्रतीक है, दूसरी ओर ये मानवीय सवेदना से ओत-प्रोत है । इन की दुर्बलताएँ, परम्परानिष्ठा, विश्वास तथा जीवन-सघर्ष सब हमारे है और इन के चरित्र-चित्रण हमारे जीवन के चित्रण है ।

प्रतिनिधि चरित्र

अश्क के प्रतिनिधि चरित्र विशुद्ध यथार्थवादी परम्परा के हैं । इन की अवतारणा कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक स्थितियो और भावो के आधार पर हुई है । इन चरित्रो का प्राय. स्वतत्र व्यक्तित्व न होकर ये चरित्र के

प्रतिनिधि रूप अथवा 'टाइप' हो गए है । अश्क की जितनी कहानियाँ प्रतीकात्मक है, उन के चरित्र प्राय. इसी कोटि मे आते है। चरित्र अलग-अलग मन स्थितियो, समस्याओ और द्वन्द्वो के प्रतिनिधित्व करते हैं। इन के व्यक्तित्व प्रतिष्ठा मे मन:स्थिति गत विशेषताएँ मुख्य रूप से व्यक्त हुई है और ये चरित्र उन स्थितियो के सफल प्रतिनिधि हैं अर्थात् इन के चरित्र सापेक्षिक अधिक है निरपेक्ष कम । 'पिंजरा' की शान्ति, हमारे ह्रासोन्मुख सामाजिक सस्कार का प्रतीक है। 'गोखरू' की मालती, और 'पत्नीव्रत' के खन्ना साहब, क्रमश: स्त्री सस्कार, निर्बलता और स्वार्थ के प्रतिनिधि चरित्र है। 'अकुर' की शकरी और 'उबाल' का चन्दन क्रमश अतृप्त इच्छाशक्ति के उदाहरण है। इसी तरह 'नासूर' का सुरजीत और ईश्वर वैवाहिक वैषम्य और अस्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के उदाहरण है। 'बैंगन का पौधा', का बुड्ढा सामाजिक वैषम्य और शोषण का वह प्रतीक है जिस की सीमा उस क्यारी तक नही समाप्त होती जहाँ वह सूखा-सिकुडा हुआ पीला बैंगन का पौधा खडा है। वरन् उसकी सीमा हर एक फुटपाथो, चालो, गदी सडको, गदी गलियो और अनेक ठडे बरामदो तक फैली है, जहाँ एक ओर धनी वर्ग जाडे की रात मे सुख से सोता है, दूसरा उस के बरामदे मे बाहर ठडक से अकड कर मर जाता है। व्यापक रूप से ये प्रतिनिधि चरित्र हमारे जीवन-दर्शन के प्रतीक अधिक हैं, चरित्र कम । अश्क का चरित्र-विधान, पूर्ण मानवीय धरातल पर स्थित है।

शैली

'अश्क' मे रचना-कौशल अवश्य है, लेकिन इन मे विभिन्नता उतनी विशेष नही है। वस्तुत ये उस सस्थान के कहानीकार है, जो शिल्पविधि की अपेक्षा कहानी के भाव-पक्ष को अपना साध्य मानते हैं। अध्ययन की दृष्टि से इन की कहानियो मे रचना-विधान तीन शैलियो मे है।

१ कथात्मक शैली

२. प्रतीकात्मक

३. चिन्तन (Reflective) शैली

कथात्मक शैली

'अश्क' की परम स्वभाविक शैली यही है। अधिकांश कहानियाँ इन्हों ने इसी शैली में लिखी हैं। इस दिशा में अश्क की कुछ कलागत विशेषताएँ निश्चित रूप से उल्लेखनीय हैं। वर्णनात्मकता का मुख्य धरातल इन्हों ने चरित्र-चित्रण लिया है। कथा की अविच्छिन्न एकसूत्रता देश-काल-परिस्थिति के चित्रण के साथ आदि से अंत तक अक्षुण्ण रहती है। इस शैली के अंतर्गत जो कहानियाँ मात्र चरित्र के धरातल से लिखी गई हैं, जैसे, 'काले साहब', 'ज्ञानो' और 'कालू' आदि ये कहानियाँ अपने कलात्मक रूप में रेखाचित्र अधिक हो गई हैं।

प्रतीकात्मक शैली

अश्क कहानी के केन्द्र-विन्दु से कभी दूर नहीं हटते, और जब कभी किसी प्रतीक के सहारे से व्यक्ति की कोई मानसिक स्थिति या कुरीति को कहानी का साध्य बनाते हैं, तब इन की कहानियाँ विशुद्ध रूप से रूपकात्मक हो जाती हैं। प्रतीकों के सहारे एक ओर चरित्र का मनो-विश्लेषण करते हैं। दूसरी ओर कहानी के समूचे विधान में इस को मूल स्रोत मानते हैं। 'अंकुर', और 'बैंगन का पौधा' में दोनों प्रतीक अपने स्थूल रूप में क्रमशः जन्म और मरण के रूप में आये हैं। रचना-विधान की दृष्टि से 'बैंगन का पौधा', में कहानी की सारी संवेदना उसी 'बैंगन के पौधे' को अपना केन्द्र बना कर उस के चारों ओर घूमती हैं और कहानी का निर्माण हो जाता है और इसी प्रकाश में बुड्ढे का मनोविश्लेषण भी हो जाता है।

चिन्तन शैली

रचना-विधान की दृष्टि से, चिन्तन-शैली में वे कहानियाँ आती हैं जिन का निर्माण ऐतिहासिक ढंग से न होकर मुख्य चरित्र को पूर्व स्मृति या उस के आत्म-चिन्तन के सहारे पूर्व विकास का संबंध मिलाया गया हो, 'पिंजरा' समूची कहानी का रचना विधान शान्ति की पूर्व स्मृति में केन्द्रित है। 'दूलो', में 'मैं', के चिन्तन के माध्यम से दूलो के जीवन का पूर्व भाग उस के वर्तमान जीवन के भाग से मिल कर पूरी कहानी को पूरा करता है। 'पत्नीव्रत', में इस शैली का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है कहानी का आरम्भ अस्पताल में

लक्ष्मी की मृत्यु दृश्य से होता है और इस के विकास मे निम्नलिखित विकास क्रम आए ह ।

१. लक्ष्मी और उस के पति खन्ना का पूर्व प्रेम . पूर्व विकास .
२ उस की लाश को उठाने के लिये स्टेचर का आना उत्तर विकास .
३. लक्ष्मी यक्ष्मा को रोगी कैसे हुई . पूर्व विकास
४. लक्ष्मी की वर्तमान स्थिति का चित्रण : उत्तर विकास
५. लक्ष्मी और खन्ना मे गहने का द्वन्द्व : पूर्व विकास .
६ खन्ना का न लौटना, पता चलना कि वे शादी करने चले गए हैं । : चरम विकास :

यहाँ पूर्व विकास और चरम विकास दोनो का क्रमिक तादात्म्य उपस्थित किया गया हे । वस्तुत अश्क की यह शैली पूर्ण कलात्मक है ।

व्यापक दृष्टि से इन की कहानियो के आरम्भ, विकास और अत तीनो भाग अत्यन्त स्पष्ट और निश्चित होते हे । चरम सीमा पर इन्हो ने विशेष बल दिया है ।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष मे अश्क की कहानियो मे चरित्र-वर्णन काफी स्वाभाविक हुए हैं । देश-काल-परिस्थिति के चित्रण मे नाटकीयता आई है । घटनाओ की निष्पत्ति और चरित्र प्रवेश के पूर्व इन्हो ने सर्वथा नाटकीयता परिपार्श्व देने का प्रयत्न किया है । अश्क के कथोपकथन इन की शैली के प्रमुख अग है । इन की भाषा प्रेमचंद की भाषा की अनुवर्तिनी है । इस मे कही-कही पजाबी और उर्दू की गति के कारण एक अजीब अटपटा भोलापन आ गया है ।

लक्ष्य और अनुभूति

अश्क की कहानी कला मे सोद्देश्यता सब से अधिक स्पष्ट है । विशेष कर जितनी कहानियाँ समाज व्यक्ति की आलोचना के धरातल से लिखी गई हैं, उन मे चरित्रगत, नीतिगत और सामाजिक मान्यता गत कोई न कोई लक्ष्य निश्चित रूप से रहता है । उसी लक्ष्य को केन्द्र मान कर अश्क की कहानी-कला अग्रसर होती है । जो कहानियाँ व्यक्ति की विशेष मन स्थिति को लेकर लिखी

गई है, केवल उन्ही के निर्माण मे अनुभूति की प्रेरणा मुख्य रूप से रही है। लेकिन सैद्धान्तिक रूप से अश्क कहानी मे सोद्देश्यता के पक्षपाती हैं।

अश्क एक सफल कहानीकार के अतिरिक्त नाटककार और मान्य उपन्यासकार है। इन दोनो व्यक्तित्व की प्रेरणा इन की कहानी कला मे स्पष्ट हैं। नाटक के तीखे व्यग, तिलमिला देने वाले छीटे और औपन्यासिक शैली से देश-काल-परिस्थिति के चित्रण इन की कहानी-कला की मुख्य विशेषताएँ है।

सामाजिक जीवन की इकाइयो अथवा व्यक्तिगत जीवन के विभिन्न पहलुओ के धरातल पर कहानियाँ लिखने वालो मे भगवती चरण वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, के भी नाम उल्लेखनीय है। क्योकि इन दोनो कहानीकारो की कला मे अपनी मौलिक प्रतिभा भी है और शिल्प-विधान के आकर्षण भी। वस्तुत. ये दोनो कहानीकार व्यापक रूप से जीवन दर्शन की ही प्रवृत्ति मे आते हैं। भगवती चरण वर्मा ने जीवन-दर्शन के सम्बन्ध मे अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है कि नैतिकता और अश्लीलता दोनो व्यक्ति सापेक्ष्य हैं वस्तुत इन का अपना कोई स्वतत्र अस्तित्व नही है।[१] 'निराला' ने मुख्यतः जीवन को परम स्वस्थ और व्यापक दृष्टिकोण से देखा है। इस मे जीवन-दर्शन, मानव सवेदना और चरित्र निष्ठा ये तीनो पक्ष अत्यन्त स्वस्थ दृष्टिकोण से लिए गए है।

भगवती चरण वर्मा

भगवती चरण वर्मा की कहानी कला मुख्यत. प्रेमचद सस्थान के समीप है। दोनो मे बहुत थोडा-सा ही कलागत अंतर है। इन की कहानियो के व्यापक शिल्पविधान मे दो रूप पूर्णतः स्पष्ट है, प्रथम इनकी कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं, फलत ये रेखाचित्र के समीप है, जैसे, 'दो पहलू', 'विवशता', 'पराजय और मृत्यु', 'प्रेजेंट्स और इन्स्टालमेन्ट'। द्वितीय इन की कहानियाँ बौद्धिक विचारो और समस्याओ को ले कर लिखी गई हैं, फलतः शैली-विधान मे ये व्यक्तिगत निबन्ध हो गई है, जैसे, 'दो बाके', 'पराजय' अथवा 'मृत्यु', 'कायरता', और 'प्रायश्चित', आदि। इन सब कहानियो की शैली, रचना-विधान मे भूमिका, तर्क

---

[१] भूमिका, दो बाँके, पृष्ठ १

वितर्क और अत मे दृष्टान्त की प्रेरणा स्पष्ट है। रूप विधान मे ये कहानियाँ लघु कहानी है।

'निराला'

'निराला' की कहानियो मे मुख्यत: भाव-पक्ष की सम्पत्ति अतुल है, कलापक्ष की नही। कला पक्ष मे इन की कहानियाँ प्रेमचद ही सस्थान मे आती है। रचना विधान मे वर्णनात्मकता, कथा-विधान मे इतिवृत्त तथा शैली की दृष्टि से, ऐतिहासिक शैली इन की कहानी-कला के मुख्य पक्ष हैं। वस्तुत निराला की कहानियाँ इस अर्थ मे उत्कृष्ट है कि ये समाज के सभी पात्रो को छूती हैं विशेपकर उन को जहाँ शोषण है, सघर्ष है। इन की कहानियाँ अपनी मार्मिकता और सवेदना के सहारे मानव विश्लेषण और अध्ययन मे सफल हुई हैं, उतनी ही सफलता उन्हे इस सत्य की प्रतिष्ठा मे मिली है कि मानव-जीवन अपनी समस्त सीमाओ और सघर्षों के रहते महान और सुन्दर है।

यशपाल

यशपाल की कहानियो का धरातल मुख्यत निर्वैयक्तिक सामाजिक शक्तियाँ है, जिन का मूल केन्द्र द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। अतएव यशपाल की कहानी-कला मे समाज अपने दोनो पक्षो मे ही लिया गया है। प्रथम शोषित और शोषक दृष्टियो से, जिस मे समाज का अध्ययन इसे पूँजीपति और सर्वहारा दो वर्गो मे बाँट कर किया गया है। इसी के साथ-साथ समाज का सास्कृतिक पक्ष भी लिया गया है, जहाँ पुरातन धार्मिकता और परम्परा की कटु आलोचना की गई है और उन के स्थान पर आधुनिक आर्थिक शक्तियो को महत्व दिया गया है। अर्थात् समाज का अध्ययन मुख्यत अर्थ के धरातल से किया गया है। दूसरे पक्ष मे स्त्री-पुरुष के सबधो को लेकर कहानियाँ लिखी गई है और नये-नये मापदडो और मान्यताओ की प्रतिष्ठा के फल स्वरूप इन की कहानियो मे मनो विश्लेषण और व्यक्ति की कर्म-प्रेरणाओ का विवेचन सर्वथा अनूठे ढग से हुआ है।

कथानक

यशपाल की कहानियाँ समस्या प्रधान है तथा सामयिकता और यथार्थ-वादिता उस के दो प्रमुख पक्ष है। फलतः इन के कथानको के मुख्यत' दो रूप हैं। जो कहानियाँ मानसिक विश्लेषण अथवा व्यक्ति-सघर्ष को लेकर लिखी गई है, उन के कथानक प्रायः छोटे और सूक्ष्म है। उन के निर्माण मे जीवन के उस पक्ष से सबधित दो-एक घटनाएँ हैं, अथवा कार्य-सकेत हैं, जैसे 'काला आदमी', 'आदमी का बच्चा', और 'रोटी का मोल', आदि कहानियो के कथानक अपूर्ण से लगते है, लेकिन उन मे कलात्मक आग्रह बहुत है। दूसरी ओर जो कहानियाँ व्यापक जीवन-सघर्ष और मनुष्य के कार्यो ओर कर्म-प्रेरणाओ के विवेचन के प्रकाश मे लिखी गई है, उन के कथानक अपेक्षाकृत लम्बे, इतिवृत्ता-त्मक और पूर्ण हुए है। उन के निर्माण मे कभी-कभी महीनो, वर्षों की घटनाओ का विवरण और कार्य-व्यापार सम्बद्ध हुए है। 'उत्तराधिकारी', 'फूलो का कुर्त्ता', 'दास धर्म', 'मक्रील', 'हिंसा', और 'पराई' आदि कहानियो के कथानक इस दिशा मे इस के स्पष्ट उदाहरण है। व्यापक दृष्टि से यशपाल मे कथा-विधान की विविधता और प्रयोग का आग्रह नही है। समस्त कथानक सीधे स्पष्ट और लक्ष्यात्मक हैं।

चरित्र

यशपाल की समस्त कहानियो मे चरित्र अवतारणा मुख्यत. आर्थिक सघर्ष और वर्ग-चेतना के धरातल से हुई है लेकिन इस दिशा मे यशपाल का दृष्टिकोण इतना व्यापक है कि इन्हो ने इतिहास, पुराण, समाज, और कल्पना-जगत् से अन्यान्य चरित्रो को लिया हे। परन्तु इस व्यापकता मे यशपाल के चरित्रो की दो मान्यताएँ सर्वत्र व्याप्त है। इन के चरित्र सर्वथा सर्व साधारण, यथार्थ और मानव सघर्षो के प्रतीक होते है। इस का सब से बडा कारण यही है कि इन्हो ने अपनी कहानियो मे अधिक से अधिक वर्गो, जातियो, उम्रो, और स्थितियो के चरित्रो को लिया है। चरित्र-चित्रण और व्यक्तित्व प्रतिष्ठा इन के चरित्रो मे प्रायः सर्वत्र हुआ है। इन के चरित्रो के व्यक्तित्व मे सघर्ष और विद्रोह दोनो पक्ष विशिष्ट है। इन पक्षो से इन्हो ने पूर्ण यथार्थवादी चरित्रो की अव-तारणा की है। अतएव यशपाल के चरित्र-विधान मे जैनेन्द्र, अज्ञेय, सरीखे एक भी आदर्श चरित्र नही है, यद्यपि उन के चरित्र प्रायः संघर्ष और विद्रोह के धरातल से निर्मित हुए है।

शैली

शिल्प प्रयोग की दृष्टि से यशपाल मे इस का आग्रह बहुत ही कम है, यही कारण है कि इन मे शैलीगत विविधता और व्यापकता नही है। कहानियो की रचना-शैली मे कथा-वर्णन, कथोपकन, और चरित्र-चित्रण मुख्यत· यही तीन तत्व है, लेकिन इन तीनो तत्वो के कलात्मक तादात्म्य मे यशपाल अपूर्व हैं। संपूर्ण कहानी अपने आरम्भ-विकास और अन्त मे इतनी कलात्मकता से गुंथी रहती है कि इन भागो को एक दूसरे से अलग करना कठिन हो जाता है। अतएव इन की कहानियो के गठन मे प्रभाव की तीव्रता अधिक है। इन की छोटी कहानियाँ जो शैली की दृष्टि से रेखा चित्र अधिक है, जैसे, 'शर्त', 'दुख', 'तीसरी चिन्ता', 'आदमी का बच्चा', 'चार आने', और 'जीत का हार' आदि इन का शिल्पविधि की सुन्दर कहानियाँ है। इन कहानियो के अत प्राय: अस्पष्ट और निर्णयहीन है। इस का एक मात्र कारण यह है कि इस सक्रान्ति युग मे कहानी-कार को मान्यताएँ सामाजिक तथा अन्य मानवीय संबधो पर स्वय ही अनिश्चित और अस्पष्ट हैं।

शैली के सामान्य पक्ष मे यशपाल मे वर्णन और चित्रण पूर्ण स्वाभाविक और परिस्थिति के अनुकूल है। भाषा-शैली मे इन का भी गद्य अपना अलग सौन्दर्य रखता है कहानियो की भाषा संवेदना के अनुकूल रहती है, लेकिन यह अवश्य है कि अज्ञेय, जैनेन्द्र और जोशी जी आदि ने भाषा, गद्य-शैली को जितना महत्व दिया है उतना यशपाल ने नही।

लक्ष्य और अनुभूति

यशपाल की प्राय: समस्त प्रतिनिधि कहानियाँ लक्ष्यात्मक है। इन के निर्माण मे लक्ष्य की ही प्रेरणा प्रधान है। लक्ष्य मे आर्थिक सघर्ष और वर्ग-चेतना का आग्रह सर्वत्र स्पष्ट है। वर्ग-चेतना मे पूँजीपति और सर्वहारा के अतिरिक्त जितनी कहानियाँ इन्हो ने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धो और नैतिक मान्यताओ को लेकर लिखी है, उन मे नये-नये मूल्यो, मान्यताओ की उद्देश्यता प्रधान है। सभ्यता, संस्कृति, आस्था, ईश्वर आदि के प्रश्नो मे भी यही प्रेरणा कार्य कर रही हैं। इस के फल स्वरूप इन की कहानियो मे कही-कही अस्वाभाविक उग्रता और नग्नता आ गई है। अनुभूति की प्रेरणा मुख्यत: चरित्र विश्लेषण और उन के कर्म-प्रेरणाओं के अध्ययन मे है।

यशपाल मुख्यतः समाजालोचन के कहानीकार है। जिस आर्थिक दर्शन अथवा मार्क्सवाद की प्रेरणा इन की कहानी कला मे है उस से जो प्रकाश हमारे नैतिक प्रश्नो और सामाजिक मान्यताओ पर पडा है, वह सदा उल्लेखनीय है।

पहाड़ी

सीमित यौनवाद की प्रेरणा पहाडी की कहानी कला का मुख्य केन्द्र है। स्त्री-पुरुष के समस्त रूपो और सम्बन्धो मे इन्हो ने केवल ऐन्द्रिक सम्बन्ध को अपनी कहानियो का चरम साध्य बनाया है। वस्तुत: फ्रॉयड ने जिस सेक्स के प्रकाश मे सामाजिक सबधो और नैतिक प्रश्नो की व्याख्या की है, उस मे आश्चय-जनक व्यापकता और विस्तृत कर्म-प्रेरणाओ के विवेचन है। अस्पष्ट से अस्पष्ट, सश्लिष्ट से सश्लिष्ट और अवचेतन जगत् की गुत्थियो को उस ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषणो से उपस्थित किया है। अतएव फ्रॉयड की मनोविश्लेषण पद्धति ने मानव हृदय जगत् के अध्ययन का एक नूतन मार्ग खोला है। दूसरी ओर उस ने केवल सेक्स को ही चिरन्तन सत्य मानकर शेष समस्त सामाजिक सम्बन्धो को कृत्रिम और अप्राकृतिक माना है। काम-वासना और उस की तृप्ति को उस ने प्रकृति का एक मात्र अनिवार्य धर्म माना है।

पहाडी की कहानियाँ फ्रॉयड के इसी दूसरे पक्ष को अपना धरातल बना कर निर्मित हुई हैं। इन की कहानियो की संवेदना प्रायः सेक्स समस्या है। इस समस्या को भी इन्हो ने केवल एक सीमित क्षेत्र मे लिया है। प्रायः सभी कहा-नियो के कथानक काम-वासना के द्वन्द्व मे विकसित हो कर उसकी चरम परिणति पर समाप्त होते हैं। चरित्र-अवतारणा की भी दिशा मे सभी चरित्र केवल दो पक्षो से सामने आते हैं। कुछ पुरुष चरित्र प्रायः धनी उच्च वर्ग के है और प्रति-ष्ठित हैं, लेकिन काम-वासना मे असमर्थ हैं। इन के स्थान की पूर्ति प्रायः निम्न वर्ग के गरीब युवक करते हैं। स्त्री चरित्र केवल शारीरिक आदि वासना की भूख और अतृप्ति के धरातल से अवतरित हुए है। इतने सीमित क्षेत्र मे शिल्पविधि की दृष्टि से, पहाड़ी मे कथा-विधान और चरित्र-विधान बहुत ही निम्नकोटि के हैं इसका सब से बडा कारण यही है कि, सेक्स की दिशा मे, फ्रॉयड मे जिस मनोविश्लेषण की पद्धति को दी है, उस का प्रयोग कही भी पहाड़ी की कला मे नही है। केवल साधारण कथा-विधान और सीमित चरित्रों को लेकर उन्हों ने

नग्न वासना, अतृप्ति शारीरिक भूख और यौन विकारो का चयन अपनी कहानियो मे किया है, 'चार विराम', 'हिरन की आँखे', 'यथार्थवादी रोमास', 'राज रानी', 'एस्प्रिन की टेबुलेट', 'केवल प्रेम ही विश्राम' और 'लाक्षणिक पुरुष' इन की इस दिशा की प्रतिनिधि कहानियाँ है।

कहानी शिल्पविधि मे प्रयोगशीलता

अभी तक हम कहानी शिल्पविधि के सर्वाङ्ग पूर्ण विकास और उस की मुख्य प्रवृत्तियो की चर्चा करते आ रहे थे। इधर कहानी शिल्पविधि मे प्रयोगशीलता की प्रेरणा कहानियो को कथा और इतिवृत्त के स्पष्ट आकार से बहुत दूर ले गई है और अब कई प्रकार के स्वीकृत कला रूप इस के अंतर्गत आ गए है, जिन के मुख्य रूप निम्नलिखित है।

१ रेखा चित्र (Sketch)

२. सूचनिका (Reportas)

रेखा चित्र

मशीन और विद्युत ने वर्तमान युग को इतना द्रुतगामी बना दिया कि इस के फल स्वरूप मनुष्य और समाज के जीवन मे आमूल परिवर्तन उपस्थित हो गया। सामाजिक जीवन के सामने नित्य नई-नई समस्याएँ और उस के फल आते रहे। इस तरह जीवन की द्रुतगामी वास्तविकता से कला के सामजस्य ने भावाभिव्यक्ति के उक्त अभिनव रूप विधानो को जन्म दिया। इन रूप विधानो मे रेखाचित्र सब से अधिक सशक्त और प्रभावशाली है। हिंदी साहित्य मे 'रेखाचित्र सब से पहले काव्य मे अभिव्यक्त हुआ। इस के उपरान्त चित्र-कला मे, फिर यह कला हिंदी कहानी शिल्पविधान के अतर्गत आई। कहानी के अतर्गत रेखाचित्र उस कला-विधान को कहते है जो वास्तविकता के किसी अंग विशेष को अलग कर के अनुभूति और अनुभाव द्वारा उस का इतना संवेदनशील चित्र उपस्थित करता है, जिस से एक ओर उस अंग विशेष की बाह्य और आतरिक सुन्दरता रेखाओ मे उभर आती है, दूसरी ओर वास्तविकता संपूर्ण की आतरिकता भी व्यजित हो जाती है। वस्तुत. रेखाचित्र आधुनिक युग की द्रुतगामी देन है, इसलिए इस कला-विधान मे सम्पूर्ण और विस्तार के स्थान पर उस के टुकडे या विशेष अंग को ही ग्राह्य माना गया है, जो अपनी सीमा या टुकडे ही मे सपूर्ण का चित्र व्यंजित कर देता है। अतएव रेखाचित्र मे लेखक

की अनुभूति और वर्ण्यवस्तु को पूर्ण यथार्थवादी दृष्टिकोण से आँकना, ये दोनों शर्तें इस कला के प्राण है। कहानी के अतर्गत रेखाचित्र, कला के समीप है। यह पूर्ण व्यक्तिवादी कला है, जिस तरह चित्र-कला मे अनेक आधुनिक प्रवृत्तियाँ, जैसे प्रतीकवाद, रूपविधानवाद, अभिव्यजनावाद, प्रभाववाद आदि आ रही हैं, उसी तरह रेखाचित्र मे, व्यग चित्र, प्रकाश छाया, अध्ययन चित्र, खाके, शबीहे, आदि कला प्रवृत्तियाँ सामने आ रही है।

वर्तमान हिन्दी कहानी मे रेखाचित्र की परम्परा जैनेन्द्र और महादेवी वर्मा द्वारा आरम्भ हुई। 'स्मृति की रेखाएँ'[१], जिन-जिन चरित्रो के व्यक्तित्व और उन की चेतना रेखाओ मे उभारी गई है, वे इस दिशा मे सफल प्रयास है। इस का विकास आगे, प्रकाशचन्द्र गुप्त[२], अमृतराय[३], शमशेर[४], ओंकार शरद,[५], डाक्टर रघुवश[६] ने किया। प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृत राय और शमशेर की रेखाएँ जितनी पैनी है, उतनी ही यथार्थ चेतना की अभिव्यक्ति मे सशक्त है। लेकिन इन के चित्रो मे सवेदना की कमी है। ओंकार शरद मे सवेदना कुछ मात्रा मे अवश्य हैं, लेकिन इन की रेखाओ मे भी अधिक कोमलता और रगीनियाँ है। डाक्टर रघुवश के रेखाचित्र चरित्र के आन्तरिक विश्लेषण मे पूर्ण सफल हैं।

सूचनिका (रिपोर्ताज)

सक्रान्ति युगो मे साहित्य और कला के लघु रूपो और लघु विधानो की सृष्टि परम स्वाभाविक है। रेखाचित्र समाज और स्थिति की जिस द्रुतगामिता की अभिव्यक्ति है, सूचनिका इस से भी आगे है। हमारा दैनिक जीवन और इस की धटनाओ मे इतनी द्रुतगामिता और विभिन्नता है कि उसे कलात्मक रूप विधानो मे बाँधते चलना, बडा कठिन कार्य हो गया है। लेकिन कला और साहित्य की तो सब से बडी जिम्मेदारी यही है कि वह मनुष्य के सामयिक जीवन, युग चेतना और उस के सघर्षों को अपने मे सँजोता चले। वस्तुत· सूचनिका का रूप विधान इसी माँग की पूर्ति करता है।

---

[१] स्मृति की रेखाएँ—महादेवी वर्मा

[२] पुरानी स्मृतियाँ और नये स्केच—प्रकाशचंद गुप्त

[३] लाल धरती—अमृतराय [४] प्लाट का मोर्चा—शमशेर बहादुर

[५] लंक, महराजिन—ओंकार शरद [६] छाया तप—डा० रघुवंश

योरुप मे पिछले महायुद्ध के बाद जो बडी-बडी घटनाएं घटी और मानव संघर्ष मे जो ज्वार-भाटे आये, उन की विस्तृत सूचना, रिपोर्ट तैयार करने मे वहाँ के गद्य लेखक प्रयत्नशील हुए और उसी के फल स्वरूप सूचनिका का एक स्वतन्त्र रूप विधान प्रस्तुत हुआ। रूस इस का जन्मदाता है, और अमेरिका मे इस विधान का आश्चर्यजनक विकास हुआ। शिल्पविधि की दृष्टि से सूचनिका मे प्रायः तीन तत्वो की अपेक्षा होती है : यथार्थ घटना और सघर्ष मयी वास्तविकता का धरातल, द्वितीय, परिवेष्ठन और परिस्थितियो चित्रात्मक वर्णन, तृतीय विभिन्न शक्तियो, धारणाओ और क्रियाओ की व्याख्या, जो उन घटनाओ और सघर्षो मे प्रेरणा दे रही है। ये तीनो तत्व सूचनिका के प्राण है और इन मे से किसी भी एक तत्व की कमी इस रूप विधान को अपूर्ण और असफल कर सकती है। क्योकि सूचनिका का परम लक्ष्य इसी मे है कि वह वर्तमान जीवन की सारी सघर्षमयी चेतना की वास्तविकता को पाठक के हृदय मे स्थापित करती चले। हिन्दी मे यह रूप विधान अभी आरम्भ हुआ है। उर्दू मे अपेक्षाकृत इस का अधिक विकास हो रहा है। कृष्ण चंदर की प्रसिद्ध सूचनिका 'सुबह होती है' इसका सुन्दर उदाहरण है। हिन्दी मे इस रूप विधान को अपनाने वालो ने शिवदान सिंह चौहान, अमृतराय, आदि मुख्य है। लेकिन अपने निश्चित रूप मे अब तब सूचनिका हिन्दी मे नही आ पा रही है।

फिर भी वर्तमान समय मे हिन्दी कहानी शिल्पविधान मे निरतर प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति इस बात का प्रमाण उपस्थित कर रही है कि काव्य के समस्त रूपो मे हिन्दी कहानियो का भविष्य सब से अधिक उज्ज्वल और सशक्त हैं। अमेरिका में कहानी शिल्पविधान मे नित्य नये-नये प्रयोग हो रहे है, जैसे, केमरा विधान[१], न्यूजरील विधान आदि, इन सब के प्रयोग हिन्दी के नव युवक कहानीकारो द्वारा हो रहा है। समूचे सक्रान्ति युग की सामूहिक दृष्टि से देखने से स्पष्ट पता चल रहा है कि इस युग की कहानी की गतिविधि ससार के कहानी साहित्य मे अपना स्थान अमर कर लेगी।

---

[१] The technique of the camera angle—'This mobility as to the detail combined with the rigidity of the general Direction is one of the great technical pleasure of the modern short story'—Sen O' Faolain, The Short stories, page 181

प्रवृत्तियो और कहानीकारों की विशिष्ट शैली के आधार पर शिल्पविधि का विकास

जिस तरह युगीन प्रवृत्तियो ने हमारे सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करके हमारी नैतिक मान्यताओ, सामाजिक प्रश्नो और उन के निर्णयो मे आमूल परिवर्तन ला खडा किया, उसी तरह उन प्रवृत्तियो ने कहानीकारो के मापदड और दृष्टिकोण मे भी अपूर्व क्रान्ति की । युग का जितना बौद्धिक दृष्टिकोण 'जीवन' के प्रति हुआ, उतनी ही बौद्धिकता कहानी की परिभाषा के रचना-कौशल और शिल्पविधान के प्रति प्रकट हुई । अतएव इस युग की कहानी-कला मे आश्चर्यजनक वैविध्य उपस्थित हुआ । विशेषकर आश्चर्य इस दिशा मे है कि सक्रान्ति युग की कहानी-कला को किसी एक परिभाषा मे बाँधना कठिन हो गया है । क्योकि अनेक प्रवृत्तियाँ, अनेक दृष्टिकोण और उन के प्रतिनिधि कहानीकारो द्वारा उस की विभिन्न मान्यताएँ बनती गई । अध्ययन की दृष्टि से केवल एकात प्रभाव ही इस युग के कहानीकार का परम लक्ष्य बना[१] । इसे प्राप्त करने के लिए इस युग का कहानीकर, अपनी रचना-शैली, शिल्पविधान मे इतना स्वतत्र हुआ कि उस ने इस क्षेत्र मे अपूर्व व्यापकता ला दी । उस ने इतने प्रयोग किये कि उन का एक स्थान पर आकलन करना कठिन है । सम्यक कहानी शैली से लेकर उस मे रेखाचित्र, विश्लेषण चित्र से लेकर सूचनिका (Reportas) कैमरा विधान (Camera Technique) और न्यूजीरल विधान तक कहानी-रचना की सीमा बढ़ गयी ।

प्रवृत्तियो और उन के कहानीकारो की विशिष्ट शैलियो के फल स्वरूप कथानक-निर्माण तथा कथा-विधान के रूपको मे अनेक नये-नये प्रयोगो और हस्तलाघव के परिचय मिले । कथानक अपनी क्रमबद्धता, एकसमता, और वर्णनात्मकता से आगे बढ कर मानसिक सूत्रो, मनोवैज्ञानिक चक्रो, सूक्ष्म घटनाओ मनोद्वेगो के माध्यम से निर्मित होकर स्फुट रेखाचित्रो, टुकडो और साकेतिक रूपो मे कभी-कभी इतने व्यापक हो गए है कि उन मे जीवन के लम्बे लम्बे

---

[१] इतना ही कहा जा सकता है कि कहानी नामक साहित्य प्रकार में एकान्त प्रभाव ही साहित्यकार का उद्देश्य होता है, और उस के द्वारा चुनी गई वस्तु उस उद्देश्य की प्राप्ति का साधन । वह प्रभाव और उस प्रभाव की एकान्तिकता ही मुख्य है । अज्ञेय : हिन्दी० प्रति० कहा०, भूमिका, पृष्ठ २२,

भाग विस्तृत समस्याएँ सगुम्फित हो गई है। जैनेन्द्र और अज्ञेय के कथा-विधान इस दिशा मे सदैव उल्लेखनीय है।

सश्लिष्ट चरित्र तथा मन स्थिति की गूढ ग्रन्थियो के विश्लेषण मे ऐसे कथा-विधान प्रस्तुत किए गए, जिन से चरित्र से सबधित वे तमाम कर्म-प्रेरणाएँ एक ऐसे सधि-स्थल पर स्वीकृत हो गई कि जिन के सहारे उस गूढ चरित्र का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया गया। ऐसी भी न जाने कितनी कहानियाँ लिखी गई जिन मे कथानक के रूप इतने सूक्ष्म, और अव्यक्त हुए कि उन्हे अध्ययन की सीमा मे बाँधना कठिन है। साम्यवाद अथवा मार्क्सीय प्रवृत्ति ने सामाजिक और व्यक्तिगत घटनाओ को कथानक-निर्माण मे सब से अधिक स्थान दिया। दूसरी ओर फ्रॉयड की मनोविश्लेषण पद्धति ने जीवन के बाह्य घटनाओ को नगण्य सिद्ध कर व्यक्ति के चेतन अवचेतन जगत के मन.उद्वेगो, स्वप्न चित्रो को सब से अधिक स्थान दिया और इस प्रवृत्ति के फल स्वरूप कथा-विधान मे चरित्र के सूक्ष्म, सकेतो, घटनाओ और उद्गारो को सगुम्फित करने का कौशल प्रकट हुआ। कथानक की रूप-सीमा और उस के वर्ण्य विषय मे आश्चर्यजनक विस्तार हुआ तथा उस के विधान मे भी इसी तरह अनेक रूपता उपस्थित हुई।

कलात्मक दृष्टि से इस युग की कहानी-कला का मेरुदड चरित्र है। इसी के अध्ययन, इसी की कर्म-प्रेरणाओ के विवेचन तथा इसी के व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के चारो ओर इस युग की कहानी शिल्पविधि के समस्त उपकरण घूमते मिलते हैं। चरित्र के रूप, चरित्र के वर्ग, चरित्र की स्थिति और चरित्र के स्तर मे इतनी व्यापकता आई कि समूचा आधुनिक युग इस के माध्यम से प्रतिविम्बित हुआ। दर्शन, मनोविज्ञान, यौनवाद और साम्यवाद, समस्त युगीन प्रवृत्तियाँ इसी केन्द्र-विन्दु से चरितार्थ की गई। चरित्र अवतारणा मूलत: यथार्थ भूमि पर हुई। सामान्य चरित्र से लेकर विशिष्ट और प्रतिनिधि चरित्रो के सहारे सम्पूर्ण मानव सवेदनाओ, कार्य-व्यापारो को कहानी विधान मे स्थान मिले। चरित्रो की व्यक्तित्व प्रतिष्ठा और उन के व्यक्तित्व विश्लेषण मे नये-नये प्रसाधन प्रयुक्त हुए, जैसे आत्म विश्लेषण, मानसिक ऊहापोह, अवचेतन विज्ञप्ति तथा सकेत और छोटे-छोटे कार्य व्यापारो के अध्ययन।

व्यापक दृष्टि से इस युग मे चरित्र अवतारणा विशुद्ध मनोवैज्ञानिक धरातल से हुई और इस के व्यक्तित्व निर्माण मे प्राय· तीन प्रेरणाएँ, अह, विद्रोह और आत्मविश्लेषण चिंतन, कार्य करती रही, अर्थात् इस युग का चरित्र विकास युग के चरित्र की अपेक्षा अधिक व्यक्तिवादी हुआ। इस का रूप हमारे

सामने इतना स्पष्ट हुआ कि सर्वत्र इस से हमारा साधारणीकरण होता रहा। अब हमे कहानियो के कथानक न याद रह कर कहानियो के चरित्र याद रहने लगे। उन के सारे अतर्द्वन्द्व, सघर्ष हमारे मस्तिष्क मे तैरने लगे। वस्तुत मनोविज्ञान की उन्नति और उस से पायी हुई विश्लेषण पद्धति इस का एक विशेष कारण थी। वैसे तो इस का प्रयोग मानव जीवन के प्राय सभी अगो और स्तरो के अध्ययन के लिए किया गया, लेकिन इस युग मे विशेषकर स्त्री-पुरुष के सबधो, नैतिक मान्यताओ और स्त्रीत्व को समझने और व्यापक अध्ययन के लिए इस का प्रयोग सब से अधिक हुआ। लेकिन इस मनोविश्लेषण पद्धति का दूसरी ओर चरित्रो की दिशा मे दुरुपयोग भी हुआ। इस के नाम पर काम, नग्न प्रेम वासना और उस की अनेक विकृतियो के चित्रण हुए।

शैली की दिशा मे, इस युग मे सब से अधिक प्रयोग हुए, क्योकि इस युग की कहानी-कला का चरम लक्ष्य उस की प्रभविष्णुता और प्रभाव की एकान्तिकता है. और इसे प्राप्त करने के लिए इस युग का कहानीकार अपनी निर्माण-शैली, विधान आदि मे पूरी तरह स्वतत्र है। फलत कहानी की निर्माण शैली और सविधान मे अपूर्व ढग का वैविध्य नवीनता और व्यापकता आई। वार्ता, दृष्टान्त साकेतिक और प्रतीकात्मक शैली से लेकर ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, डायरी, रूपात्मक, नाटकीय, पत्रात्मक स्वगत भाषण और मिश्रित शैली तक इस का विकास हुआ। रचना-शैली मे इतने वैविध्य और प्रयोग आने का सब से मुख्य कारण यह था कि इस युग की कहानी-कला मे चरित्र का विकास दिखाने के लिए विस्तार के अभाव ने इस के रचना-कौशल पर सब से अधिक दबाव डाला। जिस के फल स्वरूप इस के रचना-विधान मे आश्चर्यजनक विविधता आई। चरित्र विकास के साथ जब कहानी-कला मे भाव-वस्तु को ही उस के अनुरूप प्रमुखता मिली, तब इस के रचना विधान मे और भी नये-नये प्रयोग हुए जैसे, रेखाचित्र, व्यगचित्र, सस्मरण, सूचनिका और कैमरा शैली आदि। इस तरह निर्माण की दृष्टि से कहानी की शैली चित्र-कला के बिल्कुल समीप आ गई, और जिस तरह चित्र-कला के माध्यम से अनेक आधुनिक वाद जैसे, प्रतीकवाद, रूप विधानवाद अभिव्यजनावाद, और प्रभाववाद आदि अभिव्यक्त हो रहे है, ठीक यही कार्य कहानी-कला से भी लिया जाने लगा। इस तरह अनेक युगीन प्रवृत्तियो और आधुनिक वादो के फल स्वरूप कहानी की निर्माण-शैली मे उत्तरोत्तर विकास होता जायगा। यही कारण है कि

आधुनिक काल मे साहित्य के समस्त प्रकारो मे कहानी साहित्य प्रकार का भविष्य सब से अधिक उज्वल है।

लक्ष्य और अनुभूति की दिशा मे, इस युग मे कहानी-निर्माण की प्रेरणा समान रूप से है। मुख्यत: मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियो की सृष्टि प्राय: अनुभूति की प्रेरणा से अधिक हुई हैं। जो कहानियाँ किन्ही वादो, तात्विक विचारो और समस्याओ के हल विवेचन के लिए लिखी गई हैं, उन की प्रेरणा निश्चित रूप से लक्ष्यात्मक है। समाजशास्त्र के विकास से, विशेषतया मार्क्सीय मत और फ्रॉयड मत की प्रगति से सामाजिक सबधो पर जो प्रकाश पडा और उन के अध्ययन की जितनी पद्धतियाँ आविर्भूत हुई, यह सोद्देश्यता भी इस युग की कहानियो की प्रेरणा बनी। अतएव विकास युग की भावात्मक कहानियों की अपेक्षा इस युग की कहानियाँ अधिक बौद्धिक हो गई। निर्माण की दृष्टि से इस युग के कहानीकारो की दृष्टि अधिक व्यापक हुई। वह मानव जीवन के समस्त पहलुओ को सापेक्ष-निरपेक्ष और कभी-कभी उसे अपना व्यक्तिगत पहलू बना कर अध्ययन करने लगा और उस के सबध मे अपना निर्णय देने का प्रयत्न करने लगा। लेकिन परिणामत: इस युग के कहानीकार की सवेदना अधिक उलझी हुई सिद्ध हुई। उस के विषय मे मानसिक ऊहापोह बढ़ा और समस्याओ, मूल्यो के सबध मे उस का निर्णय अस्पष्ट और अस्थायी रहा। यही कारण है कि जहाँ इस युग मे कहानी के शिल्प-विधान मे विकास युग की अपेक्षा आश्चर्यजनक विकास हुआ वहाँ कहानी अपने दृष्टिकोण और चरम परिणति मे अस्पष्ट और रहस्यात्मक होती रही। कहानियाँ इतिवृत्तात्मकता को छोड कर इतनी दूर चली आई है कि उन का पूर्ण रूप से समझना साधारण पाठको के लिए कठिन होने लगा।

उद्गम और विकास सूत्र

हिन्दी कहानियो की उत्पत्ति किसी एक दिन की घटना नही है, वरन् इस की उत्पत्ति मे वर्षो की साधना और प्रयोग की प्राणशक्ति व्यय हुई है। इस की उत्पत्ति कितने उद्गम सूत्रो से हुई है, इस का अध्ययन वस्तुत. उस तरह है, जैसे, किसी विशाल वट वृक्ष की उन तमाम जडो, अतर्शाखाओ और सूत्रो को ढूँढना, जो धरतो की न जाने कितनी अगम्य परिधि और तहो मे समा गए है, लेकिन जिन के सामूहिक अवलम्बन से समूचा वट वृक्ष जीवित खडा है। वस्तुत हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि के आविर्भाव मे यथासंभव उन समस्त सूत्रो से प्रेरणा शक्ति ग्रहण की गई है, जिन मे कहानी-कला की दिशा मे कुछ भी प्राणशक्ति देने की क्षमता थी। यही कारण है कि उद्गम सूत्रो के रूप अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और अमूर्त्त है, क्योकि उद्गम सूत्र मूलत प्रेरणाओ के स्वरूप मे चरितार्थ हुए है। आगे चलकर जब उन प्रेरणाओ के फलस्वरूप हिन्दी कहानो शिल्पविधि के स्वरूप की प्रतिष्ठा होने लगी, तब वही सूक्ष्म उद्गम सूत्र इस कला के विकास मे पूर्ण स्पष्टता से दृष्टिगोचर होने लगे, और उन्ही को हम दूसरे शब्दो मे प्रभाव भी कहने लगे।

विविधि युगो मे कहानी-कला की प्रेरणाएँ

हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि के विकास की दृष्टि से उस के उद्गम के अध्ययन मे स्तर विभेद करने होगे अर्थात् जिस तरह शिल्पविधि के विकास मे आविर्भाव, विकास और संक्रान्ति युगो के अंतर्गत हम ने उस के क्रमिक रूपो को देखा है, उसी के अनुरूप हम उस के उद्गम सूत्र के अध्ययन मे उन क्रमिक शक्तियो को देखेगे जो उन युगो को यथासभव प्रभावित और प्रेरित करती रही।

(क) आविर्भाव युग

उद्गम सूत्र के अध्ययन का पूर्ण वैज्ञानिक सबध आविर्भाव युग से ही है क्योकि यही युग वस्तुतः वह संधिस्थल है जहाँ कहानी की उत्पत्ति की अनेक प्रेरणाशक्तियो ने अपना बल दिखाया होगा। वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि के आविर्भाव मे मूलत. निन्मलिखित उद्गम सूत्रो की प्रेरणा है।

(अ) सस्कृत नाटको की कथा वस्तु
(आ) शेक्सपियर के नाटको की कथावस्तु
(इ) उर्दू किस्सा-अफसाने
(ई) प्रारम्भिक बगला कहानी

संस्कृत नाटकों की कथावस्तु

सस्कृत नाटको के हिन्दी अनुवाद उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्द्ध के अनन्य प्रयास है। इन अनुवादो से सस्कृत के प्राय. समस्त उत्कृष्ट नाटक हिंदी मे आए जैसे, राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा कालिदास कृत, 'शकुन्तला', का अनुवाद, हरिश्चन्द्र जी द्वारा कवि काचन कृत, 'धनजय विजय', राजेश्वर कृत, 'कर्पूर मजरी', और बिसाखदत्त कृत, 'मुद्राराक्षस', नाटको के अनुवाद, लाला सीताराम द्वारा भवभूति कृत, महावीर चरित, 'उत्तर रामचरित', 'मालती माधव', कालिदास कृत, नाटक, शूद्रक कृत, मृच्छ कटिकम्, और हर्षदेव कृत 'नागानन्द' के अनुवाद।

हिन्दी कहानियो के विकास काल मे अर्थात् बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में संस्कृत नाटको का हिन्दीकरण एक अन्य रूप मे भी हुआ। यह हिंदीकरण बिल्कुल नया और प्रयोगात्मक ढग का था। इस प्रयोग मे हिंदी कहानी के एक अनिश्चित रूप को निश्चित ढग से गढ़ने का प्रयास था। 'सरस्वती' के प्रारम्भ से सस्कृत नाटको की केवल कथा-वस्तु को लेकर अनेक आख्यायिकाओ की अवतारणा हुई, जैसे, सरस्वती के दूसरे वर्ष की पहली सख्या मे प० जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी द्वारा 'रत्नावली', श्री हर्ष रचित नाटक की आख्यायिका' आगे चल कर इन्हो ने ही महाकवि कालिदास के नाटक की आख्यायिका मालविका[२] और अग्निमित्र, को लिखा। यहाँ इन्हो ने नाटक के सपूर्ण इतिवृत्त को उस की समस्त घटनाओ और दृश्यो को अपनी आख्यायिका मे समेटने का प्रयत्न किया है। फलतः यह आख्यायिका संख्या ६ से धारावाहिक रूप मे सख्या ९ तक फैल गई है। अतएव इस मे कहानी की अपेक्षा उपन्यास के तत्व आ गए है सस्कृत के नाटको की कथा वस्तुओ की ये दोनो हिन्दीकरण की शैलियाँ : सम्पूर्ण इतिवृत्त केवल और आख्यायिका : हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि की उत्पत्ति मे केवल उस की कथा-वस्तु की दिशा मे कुछ प्रेरणा दे सकी है। कथा-वस्तु के रूप विधान और कथा विधान मे संस्कृत नाटको की कथा-वस्तुओ ने आरोह-अवरोह की कला दी है, शेष कुछ नही।

---

[१]सरस्वती, १९०१ भाग २ संख्या १। [२]सरस्वती, जून १९०४ भाग ५ संख्या ६

शेक्सपियर के नाटकों की कथावस्तु

हिन्दी कहानी शिल्पविधि मे कथा-तत्व के निर्माण मे सस्कृत नाटको की कथा-वस्तुओ की अपेक्षा शेक्शपियर के नाटको की कथा-वस्तुओ ने अधिक प्रेरणा दी है। सस्कृत नाटको की भाति भारतेन्दु काल मे शेक्सपियर के नाटको के हिन्दी अनुवाद हुए, जैसे, रत्नचन्द्र द्वारा १८७९ ई० कॉमेडी आफ ऐरर्स, का भ्रमजाल. अनुवाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा, मर्चेन्ट आफ वेनिस का 'दुर्लभ बन्धु' नाम से अनुवाद, पुरोहित गोपीनाथ द्वारा 'ऐजयू लाइक इट' का 'मन भावन' और रोमियो एन्ड जूलियट, का 'प्रेमलीला' नाम से अनुवाद तथा १८९३ ई० मे मथुराप्रसाद उपाध्याय द्वारा 'मैकबेथ' का साहसेन्द्र, नाम से अनुवाद, वस्तुतः इन अनुवादो से हिन्दी नाटको को प्रेरणा मिली है, कहानी को नही। परन्तु शेक्सपियर के नाटको की कथा-वस्तुओ अथवा आख्यायिकाओ ने निश्चित रूप से हिन्दी कहानी शिल्पविधि के प्रारम्भिक विकास मे प्रेरणा दी है। यह प्रेरणा बीसवी शताब्दी मे 'सरस्वती', के माध्यम से हिन्दी कहानी-कला को मिली। इस के दो स्वरूप भी मिले प्रथम शेक्सपियर के नाटको की कथा-वस्तुओ को लेकर 'हिन्दो शेक्शपियर[१]' की सृष्टि हुई। दूसरी ओर शेक्सपियर के नाटको की कथा-वस्तुओ के धरातल पर कलात्मक आख्यायिकाओ की सृष्टि हुई जिसे हम केवल सरस्वती, के प्रारम्भिक वर्षों की सख्याओ मे पाते है।

काल-क्रम के अनुसार 'सरस्वती' मे प्रकाशित शेक्सपियर के नाटको की आख्यायिकाओ की अपेक्षा हिन्दी शेक्सपियर का समय काफी बाद को आता है। उस समय हिन्दी कहानियो के निश्चित रूप विधान का विकास हो चुका था। फलत कहानी शिल्पविधि के ऊपर प्रभाव और उद्‌गम सूत्र की दृष्टि से केवल, 'सरस्वती मे आए हुए शेक्सपियर के नाटको की कथा-वस्तुओ का महत्व अपेक्षाकृत बहुत है। ये कथा-वस्तुए दो रूपो मे अवतरित हुई। प्रथम कलात्मक आख्यायिका के रूप मे, दूसरे इसके भाव धरातल पर स्वतत्र कहानी-सृष्टि के रूप मे, जैसे किशोरीलाल गोस्वामी लिखित हिंदी कहानी, इन्दुमती, जिस पर शेक्सपियर के नाटक 'टैम्पेस्ट' की छाप है, टेम्पेस्ट की कथा-वस्तु को भावात्मक धरातल मान कर इसकी सृष्टि हुई है 'यहाँ तक कि इसे भारतीय वातावरण के अनुकूल रूपान्तर की कहे तो अत्युक्ति न होगी'। यद्यपि इस शैली का प्रयास आगे नही हुआ फिर भी हिन्दी कहानी की उत्पत्ति मे इस का महत्व बहुत है। इस से हिंदी कहानियो

---

[१]**हिन्दी शेक्सपियर : गंगा प्रसाद, एम० ए० : इंडियन प्रेस प्रयाग १९१४**

के रूप निर्माण मे बहुत सरलता और सुगमता मिलने की सभावना थी। इस का प्रत्यक्ष प्रमाण इसी बात मे है कि आगे शेक्सपियर के नाटको की कथा-वस्तुएँ विभिन्न आख्यायिकाओ के रूप मे आई और हिन्दी पाठको को हिन्दी के उस प्रारम्भिक विकास काल मे उन आख्यायिकाओ से असीम आनन्द मिलता रहा। अतएव आगे शेक्सपियर के नाटको की कथा-वस्तुएँ इस रूप मे आई 'सिम्बेलिन[1]' महाकवि शेक्सपियर रचित नाटक की आख्यायिका का मर्मानुवाद, एथेन्स[2] वासी टाइमन, की आख्यायिका, तथा पेरिक्लिस, आख्यायिका की सृष्टि। इन आख्यायिकाओ मे कथा-तत्व को बहुत ही सफलता से चरितार्थ करने का प्रयत्न किया गया हे। नाटक के समूचे इतिवृत्त को काट-छॉट कर कहानी के समीप लाने का प्रयत्न किया गया है, अतएव इन आख्यायिकाओ मे भावी हिन्दी कहानी शिल्पविधि के विकास की समस्त सभावनाएँ स्पष्ट ही आई है।

शेक्सपियर के नाटको की इन आख्यायिकाओ ने कहानी शिल्पविधि की दिशा मे विशेषकर कथा-वस्तु के तत्व मे नाटकीय गठन और, मुख्य सवेदना मे अतर्द्वन्द्व और दुखात की भावना को प्रतिष्ठापित किया, हिन्दो शेक्स-पियर, (१६१४) मे निस्सन्देह, शेक्सपियर के प्राय समस्त नाटको की कथा-वस्तुओ को इतिवृत्तात्मक रूप मे अभिव्यक्त किया गया है, जैसे, (ओथलो) भूल-भुलैया, (कॉमेडी आफ एरर्स) वेरोना नगर के दो भद्र पुरुष (टू जेन्टल मैन आफ वेरोना) अथेन्स का टाइमन (टाइमन आफ एथेन्स) बात का बतंगड (मच एबाउट नथिंग) एटनी और क्लेपेट्रा (एटनी एन्ड क्लेपेट्रा) निष्फल प्रेम (लव्स लेवर लास्ट) हेनरी आठवाँ, कोरियो लेनस, टीटस एन्डोनीकस टोइलस[3] और क्रैसीडा। कलात्मक दृष्टि से ये आख्यायिकाएँ न होकर कथाएँ हो गई है। इन मे सरस्वती की आख्यायिकाओ की अपेक्षा कहानी-तत्व बहुत ही कम आए है। काल क्रम १६१४ ई० के अनुसार भी इन का प्रकाशन उस समय हुआ है जब प्रसाद जैसे कहानीकार का अभ्युदय हो चुका था तथा हिन्दो कहानी शिल्पविधि का अपना एक स्वतत्र रूप स्वीकृत हो चुका था। आलोचनात्मक दृष्टि से फलतः 'सरस्वती' मे आए हुए शेक्सपियर के नाटको की आख्यायिकाओ

---

[1] आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डा० श्री कृष्णलाल, पृष्ठ ३२२

[2] सरस्वती, १६०० ई० भाग १ संख्या १ पृ० ८

[3] सरस्वती, १६०० भाग १ सख्या २ पृष्ठ ४४

हिन्दी शेक्सपियर : गंगा प्रसाद एम० ए० : इंडियन प्रेस, प्रयाग, १६१४

का महत्व बहुत है। वस्तुत. हिन्दी कहानी के कथा-विकास के निर्माण का एक मात्र उद्गम सूत्र यही है।

उर्दू किस्सा और अफ़साने

उर्दू कथा साहित्य मे प्रेमचद के पूर्व तक उपन्यास और कहानी नाम की कोई अलग-अलग कथा-वस्तुएँ विकसित नही हो पाई थी। केवल कथाएँ थी, जिन्हे हम दास्तान, किस्सा कह सकते हे। फोर्ट विलियम कालेज से, उर्दू कथा-साहित्य के कथात्मक स्वरूप का निश्चित इतिहास मिलने लगता है और उस का यह विकास हिन्दी कथा-साहित्य के समानान्तर मिलता है। वस्तुतः उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध मे कथा-साहित्य का विकास दो रूपो मे होना प्रारम्भ हुआ। पहला अनुवाद के रूप मे। दूसरा स्वतत्र सृष्टि के रूप मे इस दिशा मे मुख्य प्रेरणा फोर्ट विलियम कालेज की थी। इस की प्रेरणा से मुख्यत: फारसी और सस्कृत की कथाएँ उर्दू मे अनूदित हुई। मीर शेर अली 'अफसोस' ने फारसी के प्रसिद्ध कवि शेख सादी की प्रसिद्ध पुस्तक, गुलिस्ता, का उर्दू मे अनुवाद किया और उस का नाम 'बागे उर्दू' रखा। मीर अम्मन ने इसी ज़माने मे, चहार दरवेश, का अनुवाद 'बागो बहार', के नाम से किया। इस मे चहार दरवेश वाले किस्सो का बहुत विस्तर से स्थान दिया गया है। सस्कृत कथा-कृतियो के उर्दू अनुवाद की भी और, शकुन्तला, नल माधव, सिंहासन बत्तोसो और बैताल पचीसी, के नाम उल्लेखनीय है। स्वतत्र सृष्टि के सबध मे, जिस का भावात्मक आधार फारसी की कथा-कृतियाँ थी, हैदर बक्स हेदरी ने आराइशे महफिल, और हातिमताई के किस्सो को लिखा। इस के अतिरिक्त, नस्रे बेनज़ीर, लैला मजनूँ, खिरदअफ-रोज भी उल्लेखनीय है। उर्दू कथा साहित्य मे वैज्ञानिक दृष्टि से मौलिक रचनाओ का आरम्भ इंशा अल्ला खाँ से न मान कर मिर्जा रजब अली बेग सरुर से मानना उचित होगा। इन की फिसानये अजानब, सर्वथा मौलिक रचना थी। इस के अतिरिक्त इस कृति मे सर्व प्रथम दास्तान शैली मे लखनऊ के समाज का चित्र खीचा है। उस के बाद ही इसी शैली के विकास के फल स्वरूप नज़ीर अहमद ने, 'तौबातुन्नसूह', नामक प्रथम मौलिक उर्दू उपन्यास लिखा। इस की शिल्पविधि से स्पष्ट है कि यह दास्तान, और क़िस्सा, शैली से हट कर उपन्यास की शैली के समीप है। इस के उपरान्त सरशार (१८७८ ई०)

का काल आता हे । उर्दू कथा-साहित्य मे सरशार का स्थान सर्वोत्कृष्ट है । इन का प्रसिद्ध उपन्यास 'फिसानये आजाद' उर्दू कथा-साहित्य मे एक युग की प्रतिष्ठा करता है । इन के अन्य उपन्यास 'जामे सरशार', 'सैर कोहसार', 'कामिनी', और पीं कहॉ है । इसी विकास-क्रम मे शरर का भी नाम उल्लेखनीय है । इन के भी उपन्यास, मसूर मोहना, मल्किुल अजीज वर्जिना, फ्लोरा फ्लोरेन्डा, मुकद्दसना-जमीन, आदि कलात्मक उपन्यास है। १८९० ई० के बाद अर्थात् उन्नीसवी शताब्दी के अतिम उपन्यासकार मे डा० हादी रुस्वा, का नाम आता है । इन के उपन्यासो मे शरीफजादा, उमराव जान अदा, दो उत्कृष्ट उपन्यास है ।

उपर्युक्त उर्दू कथा-साहित्य मे दो कथा-शैलियॉ मिलती है । पहली, किस्सा और दास्तान शैली, दूसरी अफसाना शैली । हिन्दी साहित्य के विकास-क्रम की दृष्टि से उक्त समस्त उर्दू कथा-कृतियाँ हरिश्चन्द्र युए के पूर्व तथा हरि-श्चन्द युग मे आती हैं । आलोचनात्मक दृष्टि से हिन्दी से इस युग मे भी कथा और उपन्यासो की भरमार थी । जहॉ तक इस युग मे हिन्दी-उर्दू के कथा-साहित्यो का एक दूसरे से प्रभाव का प्रश्न उठता है, दोनो एक दूसरे से बिल्कुल प्रभावित नही हुए । यद्यपि उर्दू कथा-साहित्य से हिन्दी का प्रभावित होना बहुत स्वाभाविक और सभावित था, क्योकि उर्दू भाषा और साहित्य के प्रति अग्रेजो का पूरा समर्थन था । लेकिन समूचे भारतेन्दु युग के पीछे आर्य समाज, राष्ट्रीय भावना, और जातीय भावना इतनी अपूर्व प्रेरणा का कार्य कर रही थी कि उस समय हिन्दी कथाकार उर्दू से बिल्कुल सपर्क ही नही रख सके । अतएव उन्नीसवी शताब्दी के उर्दू किस्से और दास्तान से उद्गम सूत्र और प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी का कोई सबध नही है । इस का सब से बडा कारण यही है कि इस शताब्दी मे उर्दू कथा-साहित्य की अपेक्षा हिन्दी का कथा-साहित्य सभवत अधिक प्रशस्त और शक्तिशाली था ।

जहॉ उर्दू अफसाने का प्रश्न आता है, इस का कोई भी रूप हम उन्नीसवी शताब्दी मे नही पाते, बल्कि हिन्दी की ओर, उन्नीसवो शताब्दी के अतिम वर्षों मे, 'हिन्दी प्रदीप' और 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के माध्यम से कहानी की उत्पत्ति का अवचेतन रूप अवश्य आरम्भ हो गया था । लेकिन उर्दू अफसाने की उत्पत्ति अथवा आरम्भ की दिशा मे, प्रेमचद से पहले यहॉ अफसाने का कोई प्रयोगात्मक रूप तक नही दिखाई पडता क्योकि उर्दू कथा साहित्य मे प्रेमचंद से पूर्व केवल उपन्यास लिखे गए हैं । सरशार, शरर, और, रुस्वा, की कथा-कृतियाँ उपन्यास हैं, कहानी या अफसाना नही । और अब तक जो कहानी

या अफसाने शब्द का प्रयोग होता चला आ रहा था, वह कहानी अफसाने के व्यापक रूप मे किया जाता रहा, जिस मे एक पृष्ठ का दृष्टान्त भी शामिल किया जाता था और सहस्त्र पृष्टो का उपन्यास भी। उदाहरण के लिए जैसे, 'रानी केतकी की कहानी', और, 'फसानये आजाद', वस्तुत: ऐसी रचना जिस का आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य, मानव जीवन अथवा समाज की समस्या अथवा व्यापक जीवन की किसी एक घटना पर रखा गया हो[१]।

इस तरह से उर्दू अफसाने के जन्मदाता प्रेमचद थे। इन्हो ने ही १६०८ ई० से नवाब राय के नाम से उर्दू अफसाना लिखना आरम्भ किया और १६०६ ई० मे, 'सोजेवतन', के नाम से इनका पहला कहानी-सग्रह प्रकाशित हुआ जो अवैध होने के कारण जला दिया गया। लेकिन उद्गम की दृष्टि से उर्दू अफसाने के जन्मदाता प्रेमचद (१६०६ ई०) के पूर्व ही 'सरस्वती', के माध्यम से हिन्दी कहानियो की उत्पत्ति हो गई था, फलत इस पर किसी तरह से भी उर्दू अफसाना के प्रभाव का प्रश्न नही उठता। दूसरी ओर प्रेमचद स्वय (१६१६ ई०) मे उर्दू अफसाना क्षेत्र से हिन्दी कहानी जगत् मे आ गए, 'सप्तसरोज', की कहानियाँ इस के उदाहरण मे सदा अमर रहेगी। अतएव उद्गम सूत्र की दृष्टि से उर्दू किस्से और अफसाने का कोई सबध हिन्दी कहानी शिल्पविधि की उत्पत्ति से नही है। इस के विकास से कुछ सबध अवश्यमेव है। प्रेमचद इस के उदाहरण है। लेकिन इन्हे उर्दू कहानी कार क्यो कहा जाय, ये तो हिन्दी कहानीकार है तथा हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि के विकास मे ये एक युग निर्माता हैं। अध्ययन की दृष्टि से हम इतना ही कह सकते है कि प्रेमचद के माध्यम से उर्दू अफसानो की यथार्थ भाषा शैली और व्यगात्मक रूप का प्रभाव हिन्दी कहानी शिल्पविधि पर अवश्य पडा लेकिन कटु सत्य तो यह है कि उर्दू के जिस अफसाना लेखक से यह प्रभाव हिन्दी कहानी दिशा पर पडा, वही स्वयं हिन्दी कहानियो के विकास का युग निर्माता था। उद्गम सूत्र की दृष्टि से उर्दू किस्से और अफसानो का आभार हिन्दी कहानी शिल्पविधि की उत्पत्ति पर कुछ भी नही है।

---

[१] हंस, फरवरी १६३६,\वर्ष ६ अङ्क ५, उर्दू गल्प का इतिहास

लोक कहानियाँ

विषय प्रवेश के अध्ययन मे हमने देखा है कि दन्त-कथाओ का आरम्भ मानव की कथा-प्रवृत्ति के साथ ही साथ हुआ है। कालान्तर मे चल कर यही दन्त-कथाएँ लोक गाथा के रूप मे भी विकसित हुई जिसमे गेयता और कथानक दोनो तत्वो का आश्चर्यजनक तादात्म्य स्थापित हुआ। ये गाथाएँ समस्त भारत मे, विशेष कर हिन्दी प्रान्त मे लोकरुचि की विशेष प्रवृत्ति के अनुरूप रही है। ये लोक गाथाएँ इस प्रदेश मे हिन्दी गद्य के जन्म से भी पूर्व अपने तीन रूपो मे मिलती हैं (१) प्रेमात्मक (Love-Ballads) (२) वीर कथात्मक (Heroic Ballads) और (३) रोमाञ्च कथात्मक गाथाएँ (Super naturalBallads) प्रभाव और सवेदनशीलता की दृष्टि से इन प्रेम, वीर, और रोमाच कथात्मक गाथाओ का सबध हमारे साहित्य के मध्य युगीन आख्यानक काव्यो से है और आशिक रूप मे इस का प्रभाव भारतेन्दु युग के कुछ उपन्यासो पर स्पष्ट है। लेकिन हिन्दी कहानियो के उद्गम सूत्र से जिस का सीधा सबध है, वह हे लोक कहानियो का साहित्य। ये लोक कहानियाँ मूलत. परम्परा से आती हुई दत-कथाओ की ही शाखाएँ हैं जिन की निश्चित परम्पराएँ हमारे प्राचीन कथा साहित्य, जातक, जैन कहानियाँ हितोपदेश, पचतत्र, कथा सरित्सागर, वैताल पच विशतिका और शुक सप्तति आदि से आरम्भ हुई है। वस्तुत लोकगाथाएँ इन्ही दत-कथाओ की प्रेरणा का व्यापक विकास है। लेकिन जो दत-कथाएँ अपने मूल और लघु रूप ही मे चली आ रही थी, उन्ही को आगे लोक कहानियो की सज्ञा मिली अर्थात् जब दंत-कथाओ को आगे चल कर मौखिक परम्परा से पुस्तक सग्रह के रूप मे आना पडा तब उन्हे लोक कहानियो के नाम से प्रसिद्धि मिली। उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध ही मे फोर्ट विलियम कालेज की प्रेरणा से ये दन्त-कथाएँ विविध लोक कहानियो के सग्रहो मे बाँधी गई। ये प्रयत्न उर्दू-हिन्दी दोनो क्षेत्रो मे समान रूप से हुए, जैसे, 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पचीसी', 'शुक बहत्तरी', 'तूतीनामा', 'सारगा सदाबृक्ष', आदि।

लेकिन लोक कहानियो का मूल और शुद्धतम क्षेत्र लोक वार्ता के अतर्गत आता है। लोक वार्ता से तात्पर्य हमारे जन विश्वास, आचरण, रीति-रिवाज' के आधार पर घर-गृहस्थी मे प्रचलित कहानियो, गीतो, कहावतो से है। -लोक रुचि मे इस प्रवृत्ति की मूल अधिष्ठात्री है नारी। इन्हो ने ही मुख्यतः

अपनी लोक सस्कृति, परम्पराओ, विश्वासो, अनुष्ठानो पूजा-विधानो को अपनी मौखिक कहानियो मे बाँध रखा है। दूसरी ओर उस ने अपने सासारिक उद्गार, उत्सव समारोहो को गीतो मे प्रचलित किया। अत. लोकवार्ता के अंतर्गत घर-गृहस्थी मे प्रचलित आख्यान और गीत आते है। ये लोकगीत भारतीय जनरुचि के प्राण है तथा इन का प्रचलन हिन्दी प्रदेश के समस्त भागो और उन की बोलियो भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुन्देलखडी और राजस्थानी मे है। ये लोक कहानियाँ मुख्यत चार प्रकार की मिलती है।

१. उपदेशात्मक
२ मनोरजनात्मक
३. वृत्तात्मक
४. प्रेमात्मक

इन समस्त प्रकार की कहानियो की शैली वर्णनात्मक होती है। यही कारण है कि ऐसी कहानियो को डा० दिनेशचन्द ने कथा कहा है तथा इन लोक कहानियो को अन्य प्रकाश मे चार भागो मे बाँटा[१] हे (१) रूप कथा (Supernatural Tales) (२) हास्य कथा (Humorous Tales) (३) व्रत कथा (Religious Tales) और (४) गीत कथा (Nursery Tales) वस्तुतः ऊपर के वर्गीकरण मे उपदेशात्मक और मनोरजनात्मक कहानियाँ शैली की दृष्टि से प्राय· रूपकथात्मक (Supernaltural) ही होती हैं, इन दोनो मे अमानवीय शक्तियो, देवताओ पृथ्वी और आकाश, आत्मा, तथा परलोक, शकुनो, अपशकुनो, भविष्य-वाणियो, आकाश-वाणियो तथा कभी-कभी भूत-प्रेतो तथा अन्य शक्तियो को लेकर कहानियाँ आती है। वृत्तात्मक और प्रेमात्मक कथाओ मे भी परमानवीय जगत्, वनस्पति जगत्, पशु जगत्, मानव जगत्, तथा भूत प्रेतो के जगत् से सवेदनाएँ लेकर कहानियाँ निर्मित हुई है। ब्रज की लोक कहानियाँ[२], बुन्देलखड की कहानियाँ[३], भोजपुरी, अवधी, और छत्तीसगढ़ी की लोक कहानियो मे इन बातो के विस्तृत उदाहरण है तथा उन के प्रकाश

---

[१] देखिये, फौक लिटरेचर आफ बंगाल · डा० दिनेशचन्द

[२] ब्रज की लोक कहानियाँ : संपादक श्री सत्येन्द्र एम० ए० ब्रज साहित्य मण्डल मथुरा, सं० २००४

[३] संग्रहकर्ता शिवसहाय चतुर्वेदी, पाषाण नगरी तथा बुन्देलखंड की कहानियाँ

मे अनेक कहानियाँ अपने सहज रूप मे मिलेगी। ये कहानियाँ अपने सहजतम रूप मे समूचे हिन्दी प्रदेश की धरती की आत्माएँ हैं और ये आत्माएँ जन जीवन मे आमोद-प्रमोद, मनोरजन और प्राणशक्ति देती रही है।

उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्द्ध मे उन लोक कहानियो, वार्ताओ की ओर डा० ग्रियर्सन ने हमारे शिष्ट समाज को सर्व प्रथम प्रेरित किया। अतः इन लोक कहानियो के विविध सग्रहो के लिए प्रयत्न आरम्भ हुए। बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे, जब हिन्दी कहानियो की उत्पत्ति हो रही थी और उस के रूप के विविध प्रयोग चल रहे थे, उस समय प्रयोग और प्रयास की दिशा मे जो शक्ति सब से अधिक प्राणशक्ति दे रही थी, वह इन्ही लोक कहानियो की शक्ति थी। इसी उद्‌गम सूत्र से हिन्दी कहानियो की उत्पत्ति को सब से अधिक प्रेरणा मिली और उस समय प्राय समस्त हिन्दी कहानीकारो की पहली मौलिक रचनाएँ इन्ही लोक कहानियो की प्रतिमाएँ थी। उदाहरणस्वरूप, पहले हम 'सरस्वती' की आरम्भिक कहानियो को लेते है। लाला पार्वती नदन की कहानियाँ प्रेम का फुआरा,[१] जीवनाग्नि,[२] भूतो वाली हवेली[३], नरक गुलजार[४] आदि। स्पष्ट रूप से इन्ही लोक कहानियो की प्रेरणा शक्ति से लिखी गई है। 'प्रेम का फुआरा' मे प्रेम का चमत्कार है। लोक कहानियो की भाँति इसका भी विकास, जादू और कौशल से किया गया है। जीवनाग्नि मे लोक कहानी के राजा-रानी, राजकुमार शैली की प्रेरणा है। जीवनाग्नि, मे "एक व्यक्ति को धनपत राय की चिट्ठी मिलती है कि वे मर गए और अपने एक मात्र लडके रज्जन को तथा एक बक्स को उन्हे सौप गए है। जब रज्जन बीस वर्ष का हुआ, तब उसने उस बक्स को खोला, उस मे पिता जी ने एक कागज छोड रखा था, जिसमे लिखा था कि दक्षिण सागर के आसपास एक द्वीप है वहाँ एक स्त्री हैं। उसके पास जीवनाग्नि का गोला है उसे देखने से आदमी सहस्रो वर्ष जीता रहेगा। वह वहाँ जाता है और अनेकानेक बाधाओ, यात्राओ को समाप्त करता हुआ अपने अभियान को सम्पन्न करता है।" 'भूतो वाली हवेली' और 'नरक गुलजार', मे भूतप्रेतो

---

[१] सरस्वती, भाग २ संख्या ५, पृष्ठ १६६

[२] सरस्वती, भाग २ संख्या ११ पृष्ठ ३६२

[३] सरस्वती, भाग ४ संख्या ५ से ८ तक

[४] सरस्वती, भाग ६ संख्या ६

[५] सरस्वती, भाग ४ संख्या ६

और अध विश्वासो के धरातल पर निर्मित कहानियाँ है । ये कहानियाँ लोक कहानियो के बहुत समीप है । इस तरह इन जासूसी कहानियो के भी उद्गम के सूत्र इन्ही लोक कहानियो मे है । शुक्ल जी की कहानी, 'ग्यारह वर्ष का समय' भी प्रेमात्मक लोक कहानियो से बहुत प्रेरित है "दो अनजाने, बिछडे हुए पति-पत्नी का एकाएक खडहर मे मिलना, कहानियाँ कहना, पहचान जाना और दोनो का आदर्श सयोग" ये सब लोक प्रेम कहानियो के तत्व है । दूसरी ओर 'इन्दु' मे प्रसाद की कहानी 'ग्राम', और 'चन्दा', इसी उद्गम सूत्र की प्रेरणा स्वरूप आई है । प्रसाद के आगे की समस्त प्रारम्भिक कहानियाँ, जैसे, 'करुणा की विजय, 'उस पार का योगी', 'प्रतिमा', 'दुखिया', और 'पाप की पराजय', आदि निश्चित रूप से लोक कहानियो से प्रेरित है । वही प्रेम, करुणा सवेदना, आदर्श, संयोग आदि लोक कहानियो वाले तत्व इन कहानियो मे सर्वत्र मिलते हैं । इलाचन्द जोशी की आदि कहानी, 'सजनवाँ'[१] और प० विश्वम्भर नाथ जिज्जा की आदि कहानी, 'विदीर्ण हृदय'[२], मे भी यही तत्व मिलते है ।

इस तरह से हिन्दी कहानियो की उत्पत्ति मे इन लोक कहानियो की प्रेरणा सब से अधिक रही है । मूलतः इसी उद्गम सूत्र से हिन्दी कहानियो मे जासूसी और सामाजिक प्रेमात्मक कहानियो की सृष्टि हुई है ।

सामाजिक आदर्शों तथा स्नेह, करुणा के मूलमत्रो की दीक्षा इन्ही कहानियो ने हिन्दी के आदि कहानीकारो को दी है । लोक कहानियो से विशुद्ध कलात्मक प्रेरणा हिन्दी कहानियो को भले ही न मिली हो लेकिन विशुद्ध भावात्मक प्रेरणा इसे निश्चित रूप से मिली है इस का सब से बडा कारण यही रहा है कि हिन्दी के प्राय. समस्त आदि कहानीकार किसी न किसी रूप मे जन-जीवन, जन-साहित्य, जन सस्कृति और ग्रामो से सबधित थे । वस्तुत. हिन्दी के आदि कहानीकारो को अत्यन्त स्वाभाविक रूपो मे ये लोक कहानियाँ दादा-दादी माँ-बाप, हित-मित्रो और दोस्तो से, मौखिक रूप मे सुनने को मिली होगी यही कहानियाँ उन की आत्माओ मे भावी कहानीकार की चेतना स्वरूप मे प्रतिष्ठापित हुई होगी । इन लोक कहानियो की ओर ये आदि हिन्दी कहानीकार इसलिए और भी आकर्षित हुए होगे कि उस समय पश्चिमी दृष्टिकोण लोक कथाओ के

---

[१] हिन्दी गल्प माला, भाग २ अंक ८, पृष्ठ ३५६, ३६५

[२] इन्दु, कला, ६ खंड २ किरण १, पृष्ठ ४४, ४८

पक्ष मे अधिक सहानुभूति मय हो गया था : फलतः इसकी ओर से हीन-ग्रन्थि की भावना नष्ट हो कर इन कहानीकारो मे जन-प्रेम, स्वाभिमान और आत्म-प्रेम की भावना जगी होगी और लोक कहानियाँ अपने भावात्मक और प्रेरणा स्वरूप मे अधिक अशो मे हिन्दी कहानियो की उत्पत्ति की उद्‌गम सूत्र बनी होगी ।

प्रारम्भिक बँगला कहानियाँ

व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि के उद्‌गम सूत्र का सबध प्रारम्भिक बगला कहानियो से बहुत हे । भारतेन्दु युग ही मे हिन्दी नाटको और उपन्यासो से बगला के उपन्यास और नाटको से सबध जुड चुके थे । इन के हिन्दी अनुवाद इस युग की सब से बडी विशेषता रही है । इन अनुवादो मे भारतेन्दु द्वारा बकिम कृत 'राजसिह', राधाकृष्ण दास द्वारा तारकचन्द्र गगुली कृत, 'स्वर्णलता', 'प्रतिप्राणा अबला', बकिम कृत 'राधारानी', गदाधर सिह द्वारा बंकिम कृत, 'दुर्गेशनन्दिनी', किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा, 'प्रेममयी', ओर 'लावण्य-मयी', राधाचरण गोस्वमी द्वारा 'श्रीमती सरन' कुमारी घोषाल कृत 'दीप निर्वाण', और 'विरजा', विजया नन्द त्रिपाठी द्वारा भूदेव मुखोपाध्याय कृत, 'सच्चा सपना', राधिकानाथ वन्द्योपाध्याय कृत 'स्वर्णवाई', प्रतापनारायण मिश्र द्वारा बकिम कृत, 'कपाल कुंडला', आदि के अनुवाद उल्लेखनीय है ।

नाटको की दिशा मे बगला मे हिन्दी अनुवाद उपन्यासो की अपेक्षा कम हुए । इन मे भी रायकृष्ण वर्मा द्वारा राजकिशोर दे कृत पद्मावती द्वारका नाथ गागूली कृत 'वीरनारी', मधुसूदन दत्त कृत, 'कृष्णाकुमारी', और मुशी उदित नारायण लाल द्वारा मनमोहन वसु कृत, 'सती' नाटक, मुख्य है । लेकिन भारतेन्दु युग मे प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी नाटको पर इन बगला अनुवादो का कोई भी विशेष प्रभाव नही पडा ।[१] परन्तु हिन्दी उपन्यासो पर बगला उपन्यासो का प्रभाव अपूर्व ढंग से पडा । इसी परम्परा सूत्र से बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे हिन्दी कहानियो की उत्पत्ति मे बंगला की प्रारम्भिक कहानियो ने अनन्य प्राण-शक्ति दी ।

विशुद्ध शिल्पविधि की दृष्टि से, बगला कहानियो के अनुवादो के

[१] **आधुनिक हिन्दी साहित्य डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृ० २६७**

साथ-साथ हिन्दी के आदि कहानीकारो ने मौलिक हिन्दी कहानियो की सृष्टि की। जिन प्रेरणाओ से हिन्दी कहानी कला का जन्म हुआ और इस की स्वतन्त्र शिल्प-विधि का विकास हुआ, उन समस्त प्रेरणा सूत्रो मे बगला की ये प्रारम्भिक कहानियाँ सब से अधिक प्राणशक्ति दे रही थी। इस के प्रमाण मे हम 'सरस्वती', 'इन्दु, और 'हिन्दी गल्प माला', के अको को देख सकते है। 'सरस्वती' के चौथे ही वर्ष से सख्या दो और तीन मे रवीन्द्र नाथ टैगोर की कहानी 'दृष्टिदान'* के नाम से हिन्दी मे अनूदित होकर आई। टैगोर की इस प्रथम हिन्दी अनूदित कहानी मे अपूर्व भावुकता तथा सूक्ष्म वर्णन-शैली का दर्शन होता है। स्थान-स्थान पर चिन्तन, मनन, (Reflection) मे कहानी मे कहानीकार के व्यक्तित्व की पैठ मिलती है। इस मे चरित्र प्रतिष्ठा के प्रकाश मे आदर्श का सफल पुट दिया गया है। आगे बग महिला श्रीमती नीरदवासिनी घोष द्वारा लिखित बगला कहानी का, 'कुभ मे छोटी बहू[१]' के नाम से अनुवाद हुआ है। उसी वर्ष आगे की सख्या मे बग महिला ने टैगोर की अन्य कहानी, 'दान प्रतिदान', का हिन्दी अनुवाद किया है। आगे चलकर इन्हो ने फिर' दालिया'[२] नाम मे टैगोर की कहानी का अनुवाद दिया है। इन्दु, मे बग भाषा के प्रसिद्ध प्रवासी पत्र से अनेक बगला कहानियाँ अनूदित होकर आई है। इन मे 'दीवार की आड'[३], 'जूता को कथा'[४], 'किरण'[५], 'मन का दान[६]' 'प्रेम पुस्तक[७]', 'ललिता',[८] 'प्रियम्बदा और पोस्टकार्ड'[९], और 'मेरी प्राण,[१०] बगला कहानिया आती हैं। ये कहानिया अधिकाश रूप मे प० पारसनाथ जी त्रिपाठी द्वारा अनूदित की गई है, जिन मे

---

* सरस्वती, १६०३ अंक ४ संख्या २, ३ वादक कुमुद बंधु मित्र

[१] सरस्वती, १६०६ अंक ७ संख्या ६ पृ० ३४२

[२] इन्दु कला, ४ खंड १ किरण १ पृ० ५४

[३] इन्दु कला, ४ खंड १ किरण ५ पृ५ ४४७

[४] इन्दु लका, ४ खंड १० किरण ५ पृ० ४४७

[५] १ इन्दु कला, ५ खंड १ किरण १ पृ० ८१

[६] इन्दु कला, ५ खंड १ किरण २ पृ० १४१

[७] इन्दु कला, ५ खंड १ किरण ४ पृ० ३६१

[८] इन्दु कला, ५ खंड २ किरण ५ पृ० ४४७

[९] इन्दु कला, ६ खंड १ किरण १ पृ० ४६२

[१०] इन्दु कला, ६ खंड १ किरण ५ पृ०४८०

अनुवादक ने मूल बगला कहानीकारो के नामो को नही दिया है। मूल बगला नामो के साथ आई हुई, 'इन्दु', मे अनूदित कहानियाँ कितनी है और इन बगला लेखको मे श्री पाचकौडी बन्द्योपाध्यय और अनादिघन बन्द्योपाध्याय के नाम विशेष ढंग से उल्लेखनीय हैं।

'हिन्दी गल्पमाला' मे भी अनादि धन बन्द्योपाध्याय कृत, 'चोट'[1] कहानी का हिंन्दी अनुवाद आया है। इस तरह से 'सरस्वती', 'इन्दु' 'हिन्दी गल्पमाला', हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि की उत्पत्ति के माध्यम से तीनो हिन्दी मासिक पत्रो मे बगला कहानियाँ अनवरत आती रही और इन से हिन्दी कहानियो के विकास मे अपूर्ण प्रेरणा मिलती रही। इस सबंध मे हिन्दी कहानी-कला अपने उद्गम सूत्र की दिशा मे टैगोर, चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय, पाचकौडी, और अनादिधन बन्द्योपाध्याय के नाम कभी नही भुलाये जा सकते। वस्तुत बगला कहानियों के जन्मदाता यही व्यक्ति थे और ये पश्चिम के कहानी-साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे। प्रभात कुमार बन्द्योपाध्याय, भी बगला कहानियो की उत्पत्ति और विकास के अन्य प्रसिद्ध कहानीकार है, और इन्हो ने भी बहुत कहानियाँ लिखी हैं। लेकिन इन की कहानियाँ, हिंदी[2] मे १९२६ ई० से अनूदित होकर आ सकी हैं। टैगोर और बन्द्योपाध्याय बधुओ के साथ नही, अत- हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि की उत्पत्ति और इस के उद्गम सूत्र की दिशा मे प्रभात कुमार की कहानिया बिल्कुल नही आती। इस दिशा मे बगला की वे प्रारम्भिक कहानिया आती है जिन्हे टैगोर आदि ने बगला कहानी-साहित्य के प्रारम्भिक चरण मे लिखी थी।

हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि के उद्गम सूत्र और इस पर प्रभाव की दृष्टि से उपर्युक्त समस्त प्रेरणाओ, धाराओ और शक्तियो के दो रूप है . एक विशुद्ध कलात्मक और दूसरा विशुद्ध भावात्मक रूप। शेक्सपियर के नाटको की कथा-वस्तु, सस्कृत नाटको की कथा-वस्तु बगला कहानियाँ आदि वस्तुत' हिन्दी कहानियो के कला-पक्ष के निर्माण मे प्रेरक शक्तियाँ रही हैं। दूसरी ओर लोक कहानियाँ, बगला कहानियाँ (दोनो रूपो मे इस की प्रेरणा रही हे) तथा तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक शक्तियाँ, और उन की विविध क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ

---

[1] **हिन्दी गल्पमाला, भाग १ अंक ६ पृ० १७०**

[2] **प्रभात कुमार मुखोपाध्याय की कहानियाँ : अनुवादक लल्ली प्रसाद पाण्डेय, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग १९२६**

इस की भावात्मक प्राणशक्तियाँ रही है, जिन की प्रेरणा से हिन्दी कहानियो को आविर्भाव युग अपने शिल्प-आकार को प्राप्त हुआ।

विकास युग

चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', प्रेमचद और 'प्रसाद' हिन्दी कहानियो के विकास युग के मेरुदड है। इन्ही की कहानी-कला अथवा शिल्पविधानात्मक प्रवृत्तियो से समूचा युग प्रभावित रहा। आविर्भाव युग से आगे चल कर इन तीनो शक्तियो ने हिन्दी कहानी शिल्पविधान को इतना समृद्धिशाली बनाया कि इन तीनो कलाकारो की प्रतिभा के सबध मे आश्चर्य होता है। इस का सब से बडा कारण यह था कि हिन्दी कहानियो के आविर्भाव मे भी इन शक्तियो का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। अतएव कुछ ही वर्षो की साधना के उपरान्त इन तीनो शक्तियो के द्वारा कहानी शिल्पविधान का इतना विकास हुआ कि शीघ्र ही हिन्दी साहित्य के सब प्रकारो के समक्ष हिन्दी कहानी-साहित्य का स्थान गौरवपूर्ण सिद्ध हुआ। इस युग के कहानी शिल्पविधान मे किन-किन उद्गम सूत्रो से इसे प्रेरणा और विकास मिला, यह प्रश्न आविर्भाव युग की अपेक्षा यहाँ पूर्ण स्पष्ट है। क्योकि इस युग मे आकर एक ओर हिन्दी कहानी साहित्य की स्वतत्र सत्ता स्थापित हुई, और दूसरी ओर इस की शिल्पविधि तथा इस की स्वतत्र प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा हुई।

उद्गम सूत्र के अध्ययन की दिशा मे जिस नई शक्ति का सबध इस युग मे स्थापित हुआ, वह है पश्चिमी कहानी साहित्य का सम्पर्क। वस्तुत. यह शक्ति आविर्भाव युग के उद्गम सूत्रो और प्रभाव डालने वाली शक्तियो से एक नई और स्वतत्र शक्ति है। इस तरह प्रेरणा और प्रभाव की दृष्टि से आविर्भाव युग की कुछ शक्तियाँ, जैसे प्रारम्भिक बगला कहानियाँ और लोक कहानियाँ इस युग को भी यथासभव प्रेरित करती रही। लेकिन इस दिशा मे जो एक नवीन उद्गम सूत्र इस युग को प्राप्त हुआ, वह है इसका पश्चिमी कहानी साहित्य का जीवत प्रत्यक्ष सम्पर्क।

पश्चिमी कहानी साहित्य का सम्पर्क

व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी प्रदेश का प्रथम पश्चिमी साहित्यिक सम्पर्क अग्रेजी के माध्यम से आरम्भ हुआ। अग्रेज हमारे शासक थे तथा हमे उन की शिक्षा-योजनाओ के बीच से गुजरना पडा। कहानी-साहित्य की दिशा मे अग्रेजी साहित्य (इगलैड) उन्नीसवी शताब्दी तक अमेरिका, रूस और फ्रास के सामने

नगण्य था। आरम्भ और विकास की दृष्टि से अमेरिका फ्रास और रूस कहानी-साहित्य की दिशा मे सब से पहले आते है। यही वे दो उद्गम सूत्र है, जहाँ से ससार मे कहानी-कला का विकास हुआ।

अमेरिका मे एडगर एलन पो, ने कहानी-कला को सर्व प्रथम जन्म दिया।[१] इस का समय १८०९ से १८४९ ई० के बीच आता हे। इस ने सर्व प्रथम मनोविज्ञान और चारित्रिक अतर्द्वन्द्व के धरातल से कहानियो को आविर्भूत किया। 'पो', के प्रभाव से फ्रास मे कहानी का जन्म हुआ और, वाल्जाक, मूसेट, गटियर, विगनी, मिरमी, बोल्तियर के हस्तलाघव से शीघ्र ही यह कला अपने विकास की ओर अग्रसर हुई। वस्तुतः बाल्जाक की प्रतिभा ने प्राचीन कला के स्थान पर आधुनिक कहानी-कला की प्रतिष्ठा की। इस ने जिस नवीन शिल्पविधान की अवतारणा की, उस के प्रकाश मे उस शताब्दी के समस्त प्रसिद्ध कहानोकारो ने कहानी-कला की सेवा की।

कहानी-कला के आरम्भ और विकास का दूसरा उद्गम सूत्र रूस है। अमेरिका मे पो, की भाँति यहाँ पुश्किन इस कला का स्वतत्र अधिष्ठाता है। इस ने १८३० ई० मे सर्व प्रथम पाँच लोकिक आधुनिक कहानिया का सग्रह (Tales of Balkin) 'टेल आफ बाल्किन' के नाम से प्रकाशित किया, तथा १८३१ ई० के बाद इस ने दो कहानियाँ दी, 'केप्टन डाटर', 'दी क्वीन आफ स्पेड' लिखी तथा रूसी कहानी साहित्य का यहाँ से आविर्भाव[२] किया। अमेरिका और रूस इन दो कहानी-कला के उद्गम सूत्रो के बीब फ्रास वस्तुतः अमेरिका से सबध था। अमेरिका मे पो, के उपरान्त ब्रेटहार्ड (१८३२, १९०२ ई०) ने अपनी शक्तिशाली कला द्वारा आधुनिक कहानी शिल्पविधान मे आश्चर्यजनक विकास किया[३]। इस के उपरान्त ओ० हेनरी मे अमरीकी कहानी कला अपने उत्कर्ष पर पहुँची। वस्तुतः ब्रेटहार्ड की ही धारा के साथ फ्रास मे, फ्लायवेयर, मोपासा, आदि

---

[१] Dictionary of world Literature, P 522

[२] History of Russian Literature by D S. Mirsky

[३] "Next to Poe in skill stands Bretharte, who in his early stories has left unique first hand record of the lawless times of the gold rush of 1850 -World's great short stories. Introduction P 8.

ने कहानी-कला को और भी उत्कृष्ट बनाया। क्योकि अमरीकी कहानी धारा की अपेक्षा मोपाँसा, फ्लायवेयर आदि फ्रासीसी कहानीकारो मे कुछ अधिक रंगीनी, चपलता और क्रियाशीलता थी। उधर रूसी-कहानी धारा मे इन्ही कलात्मक प्रवृत्तियो के समानान्तर तुर्गनेव, चेखव, भी थे। तुलनात्मक दृष्टि से इस रूसी-कहानी-धारा मे अमरीकी और फ्राँसीसी कहानी-धारा से शिल्पविधि के रूप मे अधिक सजीवता और क्रियाशीलता थी। क्योकि चेखव, के व्यक्तित्व मे (१८६०, १९०४ ई०) शिल्पविधान की गहराई और बारीकी दोनो अनन्य ढग की थी, जिस की तुलना मे विश्व के अधिक कहानीकार नही टिक सकते। इस ने कहानी-कला को जीवन के यथार्थतम धरातल पर उतारा और जीवन की नगण्य घटनाओ, कर्म-प्रेरणाओ द्वारा चरित्र का सूक्ष्म विश्लेषण किया। लेकिन सम्यक प्रभाव और ख्याति की दिशा मे टालस्टाय, चेखव से भी आगे हैं। इस का मुख्य कारण है टालस्टाय का भाव-पक्ष, जीवन के प्रति उसकी अनन्य निष्ठा और शोषित वर्ग के प्रति पूर्ण समवेदना। काल की दृष्टि से, चेखव, और टालस्टाय (१८२८, १९०४ ई०) प्राय: समकालीन ही कहानीकार हैं लेकिन प्रभाव की दृष्टि से चेखव, टालस्टाय के समक्ष कम है। चेखव का प्रभाव रूसी कहानी साहित्य पर बहुत ही कम पडा। ससार के कहानी-साहित्य मे चेखव की कला की वास्तविक उत्तराधिकारिणी इगलैण्ड की, कैथराइन मैसफील्ड (१८८८, १९२३ ई०) है। रूसी कहानी-साहित्य मे इस का एक भी उत्तराधिकारी नही मिलेगा। लेकिन टालस्टाय का प्रभाव ससार के इतिहास मे उस समय गेटे के उपरान्त साहित्य पर सब से अधिक पडा।

हिन्दी कहानी शिल्पविधि का विकास युग प्रभाव और उद्गम सूत्र की दृष्टि से वस्तुत: इसी रूसी कहानी-धारा से विशेष रूप से सबद्ध है। फ्रासीसी कहानी-धारा मे मोपाँसा की धारा से भी इस का सम्बन्ध जुडा था, जिस की चर्चा हम आगे करेंगे।

ऊपर की पक्तियो मे पश्चिम की कहानी-धारा के आरम्भ और विकास की चर्चा अत्यन्त सक्षेप और सूत्रात्मक ढग से की गई है। उक्त विवरण मे अग्रेजी कहानी-धारा की क्या स्थिति थी, इस की चर्चा अभी तक नही की गई। क्योकि उक्त धाराओ मे अग्रेजी कहानी साहित्य का स्थान अत्यन्त नगण्य है। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक जब अमेरिका फ्रास और रूस में कहानी-कला अपने विकास की एक सीमा पर पहुँच रही थी, उस समय अग्रेजी कहानी-धारा का आरम्भ हो रहा था। इस तरह उन्नीसवी शती के अन्तिम दिनो

मे कही जाकर इगलैण्ड मे कहानी-कला विकसित होकर लोकप्रिय हो सकी। अनेक लेखको ने इसे अपनाया, जिनमे स्टीवेन्सन, कोननडायल, किपलिग, और वेल्स आदि उल्लेखनीय है। इस तरह अग्रेजी कहानी-साहित्य उन्नीसवी शती मे अन्य देशो की कहानी-धारा की अपेक्षा अत्यन्त अजागरूक और पिछडा था। यद्यपि इस पर अमेरिकी और फ्रासीसी कहानी-धारा का प्रभाव तत्काल ही पडना अत्यन्त स्वाभाविक था। लेकिन ऐसा क्यो नही हुआ इस का एक ही कारण था कि उन्नीसवी शती के अग्रेजी कथाकार जैसे सर वाल्टर स्काट, (१७७१-१८३२ ई०) वाशिगटन इरविग (१७८३, १८५६ ई०) और चार्ल्स डिकन्स (१८१२-७० ई०) आदि कहानी-कला की अपेक्षा गद्य की अन्य विधाये जैसे, उपन्यास, निबध और लेख लिखने मे व्यस्त थे, ठीक उसी तरह जैसे भारतेन्दु युग मे हिन्दी के लेखक उपन्यास और नाटक के पीछे लगे हुए थे।

बीसवी शती के प्रारम्भ मे हिन्दी लेखको के सामने केवल अंग्रेज थे और उन का अग्रेजी साहित्य था। इसी के माध्यम से हमारा पश्चिमी कहानी-साहित्य से सम्पर्क स्थापित होना स्वाभाविक था। उस समय शिक्षा-केन्द्रो, योजनाओ और परीक्षाओ के साधन से जो कहानी-साहित्य के नाम से समग्र हिन्दी पाठको और लेखको के बीच मे था, वह मुख्यत अंग्रेजी कहानी साहित्य ही था। उदाहरण स्वरूप उस समय अग्रेजी कहानी-पुस्तको के नाम पर जो पुस्तके उच्च शिक्षा-केन्द्रो और योजनाओ मे निर्धारित थी, वे इस तरह की थी - मैथेनियल हार्थोन की 'कहानियाँ' वाशिंगटन इरविंग की 'स्केच बुक', चार्ल्स किंग्स्ले की 'दी हीरोज', चार्ल्स लैम्ब की 'टेल्स फ्राम शेक्सपियर'। इन के अतिरिक्त 'सेलेक्टेड शार्ट स्टोरीज', के नाम से एक स्वतत्र अग्रेजी कहानियो का सग्रह भी प्रचलित था। इस में सर वाल्टर स्काट, वाशिगटन इरविग और चार्ल्स डिकेन्स, की क्रमशः 'दी टू डोवर्स', रिपवान विकिल', और दी सेविन पुअर ट्रेवलर्स', आदि कहानियाँ सगृहीत थी।[१]

लेकिन उक्त कथा कहानी पुस्तको से उस काल की कहानियो जो कुछ भी प्रेरणा मिली होगी, उस का क्षेत्र बहुत ही सीमित रहा होगा, क्योकि उक्त पुस्तके लेखको के सामने साधारणतः और सहज रूप मे नही आती रही होगी। उन की सीमा शिक्षा-केन्द्रो तक ही रही होगी। अतएव बीसवी शती के प्रारम्भ मे

[१] English Influence on Hindi language & literature by Dr. Vishwanath Misra Chapter X

पश्चिमी कहानी साहित्य के सपर्क के प्रश्न मे उक्त अग्रेजी कथा कहानियाँ केवल अध्ययन के नाम पर हिन्दी कहानियो के उद्‌गम से सबद्ध है।

आगे चल कर विकास युग मे, हिन्दी कहानियो का सबध पश्चिमी कहानी-साहित्य से दो रूपो मे जुडा। एक अप्रत्यक्ष रूप था, अर्थात् रूसी-फ्रासीसी कहानियो के अग्रेजी अनुवाद से विकास युग की कहानी-कला इस के सपर्क मे आई। पहले के उदाहरण मे 'सरस्वती', 'इन्दु', और 'हिन्दी गल्पमाला' मे, और स्वतत्र पुस्तक रूप मे[२] भी टैगोर, चारुचन्द बन्द्योपाध्याय, और प्रभात कुमार आदि की वे कहानियाँ ली जा सकती है, जो बंगला से हिन्दी मे अनूदित होकर आ रही थी। जिन पर निश्चित रूप से फ्रासीसी और रूसी कहानियो की प्रेरणा थी, क्योकि हिन्दी कहानियो के विकास युग मे बगला कहानियो का विकास प्रत्यक्ष रूप से पश्चिमी कहानी-साहित्य के सपर्क से हो रहा था। दूसरे के उदाहरण मे हम उन रूसी और फ्रॉसीसी कहानियो को ले सकते है, जिन के अनुवाद सीधे अग्रेजी से हिन्दी मे हो रहे थे, जैसे प्रेमचन्द द्वारा अनूदित, 'टालस्टाय की कहानियाँ', गोपाल नेवटिया द्वारा अनूदित 'यूरोप की कहानियाँ', 'तुर्गनेव की कहानियाँ,' अनुवादक चन्द्रगुप्त विद्यालकार। और 'मोपासा की कहानियाँ'-अनुवादक इलाचन्द जोशी।

उक्त उदाहरणो से पूर्णत: स्पष्ट है कि पश्चिमी कहानी-साहित्य का सपर्क हिन्दी कहानी के विकास युग को मिल सका। इस के लिए प्रेमचन्द का उद्योग और उन की क्रियाशीलता कभी नही भुलाई जा सकती। उन्हो ने ही सर्व प्रथम इस का अनुभव किया कि बगला के माध्यम से कहानी शिल्पविधि की व्यापकता मे जाना अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे पश्चिमी कहानी-साहित्य के सपर्क मे आना सर्वथा भूल है। इस अप्रत्यक्ष रीति से हिन्दी कहानी शिल्पविधि को कोई सम्यक और सारभूत प्रेरणा नही मिल सकती। अतएव प्रेमचन्द ने सीधे टालस्टाय, चेखव, तुर्गनेव और मोपाँसा आदि प्रतिनिधि कहानीकारो की कला से हिन्दी का सपर्क स्थापित किया। इस प्रेरणा से विकास युग के कुछ अन्य कहानीकार जैसे कौशिक, सुदर्शन, सत्यजीवन वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, कृष्णानंद गुप्त और चतुरसेन शास्त्री प्रभावित हुए और उन्हो ने उक्त पश्चिमी कहानी धारा मे रूस और फ्रास के कहानीकारो का यथासभव अनुसरण किया। अतः विकास युग के उद्‌गम सूत्र की दिशा मे पाश्चात्य कहानी-साहित्य का सपर्क इस की सब से

---

[२] **टैगोर की कहानियाँ गल्पगुच्छ-पाँच भागों में—अनु०, रूपनारायण पाण्डेय**

प्रमुख विशेषता है। पश्चिम से मुख्यतः रूसी और फ्रासीसी मे कहानी शिल्पविधि की धारा से यह युग विशेषरूप से प्रभावित रहा। प्रेमचन्द इस सत्य के प्रतीक हैं। इन की कहानी-कला मे मानववाद, सुधार का उत्कट आग्रह, दलित-शोषित वर्ग के साथ सहानुभूति और विशुद्ध कथा-शिल्प की दृष्टि से घटना का प्राधान्य इतिवृत्त का स्पष्ट आकार, आदि विशेषताएँ टालस्टाय, मोपॉसा आदि की कला और इन के दृष्टिकोण के प्रभाव से सबधित है। विकास युग की दूसरी धारा के प्रतीक प्रसाद की कहानी धारा से इस पाश्चात्य कहानीधारा का सपर्क बिल्कुल नही था। यह सत्य उन की भावमूलक परम्परा से स्पष्ट हे। वस्तुत. उद्‌गम सूत्र की दृष्टि से प्रसाद की कहानी-कला का सबध आशिक रूप से प्राचीन प्रेमाख्यानो से जोडा जा सकता है, अन्य उद्‌गम् सूत्र से नही।

सक्रान्ति युग

पश्चिमी कहानी-साहित्य से हिन्दी कहानियोकी शिल्पविधि का जो सपर्क विकास युग मे स्थापित हुआ, उस का पूर्ण प्रतिफलन इस के संक्रान्ति युग मे प्रकट हुआ। इस युग मे अमेरिकी, फ्रासीसी, अग्रेजी और रूसी आदि समस्त प्रतिनिधि पश्चिमो कहानीधाराओ से हिन्दी कहानीधारा का पूर्ण सानिध्य स्पष्ट हुआ। एक प्रकार से संक्रान्ति युग की हिन्दी कहानी कला युगीन प्रवृत्तियो के धरातल से विकसित हुई। इस की प्रेरणा मे आधुनिक युग की वे प्रतिनिधि प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही हैं, जो इस युग के निर्माण मे सफल हुई है, जैसे मनोविज्ञान और इस के अतर्गत मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति, आर्थिक, सामाजिक और व्यक्तिगत स्थितियो के लिए साम्यवाद, (मार्क्सीय मत) यौनवाद, (फ्रॉयडियन मत) आदि। सम्यक जीवन-दर्शन की खोज और उस का विवेचन भी इस युग की एक प्रधान प्रवृत्ति रही है। फलत: इन युगीन प्रवृत्तियो के धरातल पर कहानी-कला के निर्माण की प्रेरणा ने इस युग के कहानीकारो को दो दिशाओ की ओर प्रेरित किया। एक थी नयी शिल्पविधियो की दिशा और दूसरी थी उन प्रवृत्तियो की दिशा, जिन से इस युग का कहानीकार प्रभावित होकर उन्हे अपनी कहानी कला मे अभिव्यक्त करना, इन दोनो दिशाओ के लिए उस का फ्रास अमेरिका, रूस और ब्रिटेन को ओर प्रेरित होना अत्यन्त स्वाभाविक था। क्योकि ये युगीन प्रवृत्तियाँ मुख्यतः पश्चिम से ही आई हैं और दूसरी ओर इन प्रवृत्तियो की अभिव्यक्ति के लिए अमेरिकी, फ्रासीसी, रूसी और अग्रेजी की कलाओ मे उपयुक्त शिल्पविधियो की भी अवतारणा हो गई थी और इस के विकास भी

नित्य प्रति होते जा रहे है। इस युग मे हम पश्चिम से क्यो इतने निकट आए इस के कुछ और भी कारण उपस्थित किए जा सकते है। विकास युग विशुद्ध राष्ट्रीयता का युग था, इस के विपरीत सक्रान्ति युग अतर्राष्ट्रीयता का युग है। हम अपने साहित्य को निरपेक्ष ढग से न देख कर अब पश्चिमी साहित्य की सापेक्षता मे देखने लगे, अतएव पश्चिमी कहानीधारा के विभिन्न कहानोकारो से इस युग के कहानीकार प्रभावित हुए, उन की कहानी-कला के प्रभाव, उन के शिल्प-विधान, उन की प्रवृत्तियाँ इस युग की हिन्दी कहानी-कला पर पूर्णत: स्पष्ट है।

रूसी कहानीधारा

अध्ययन-क्रम की दृष्टि से रूसी कहानी-कला का प्रभाव सक्राति युग पर सब से पहले पडा। इस प्रभाव के उद्गम सूत्र मे मुख्यत. तीन प्रतिनिधि रूसी कहानीकार, चेख़व, टालस्टाय और गोर्की आते है। विकास युग ही मे टालस्टाय की लका का प्रभाव प्रेमचद पर पड चुका था। इस युग मे आकर विशेषतया टालस्टाय की कला के सपर्क मे केवल जैनेन्द्र आए वह भी दार्शनिक धरातल की कहानियो मे। चेखव, की कला का सब से स्पष्ट प्रभाव इलाचन्द्र जोशी की कला पर है छोटी-छोटी नगण्य घटनाओ द्वारा[१] चरित्र का सूक्ष्म उद्घाटन करना, चेखव की कला की यह विशेषतया जोशी की कहानियो मे पूर्णत स्पष्ट है। व्यापक रूप मे चेखव की कहानी कला मे इतनी अपार शक्ति थी कि इस का प्रभाव पश्चिम के अन्य देशो पर पडा, ब्रिटेन की कैथराइन मैसफील्ड, इस के उदाहरण मे आती है। भारत मे चेखव का प्रभाव उन समस्त कहानीकारो पर पडा जिन्हो ने कहानी-कला सीखने तथाअध्ययन करने के लिए रूसी कहानी साहित्य का अनुशीलन किया। जैनेन्द्र, अज्ञेय की छोटी-छोटी कहानियो पर, चेखब, की कला की चपलता और मजाव स्पष्ट हे। गोर्की की कला का प्रभाव मुख्यत: यहाँ की उन यथार्थवादी कहानियो पर पडा जो समाजशास्त्र के अतर्गत आर्थिक प्रश्नो के धरातल से लिखी गई। आधुनिक रूसी कहानी-कला मे रिपोर्टाज, सूचनिका की प्रेरणा से हिंदी मे सूचनिका का आविर्भाव यहाँ अति आधुनिक प्रयोग है।

---

[१] The Lady with the Dog, My Life etc.- Select Tales of Tchehov.

फ्रासीसी कहानीधारा

फ्रासीसी कहानीधारा के अतर्गत केवल, गाइ द मोपॉसा (१८५०-९३) की कला का प्रभाव हिन्दी कहानी के सक्रान्ति युग पर पडा है। इलाचन्द्र जोशी उपेन्द्रनाथ अश्क, की कहानी-कला पर, मोपॉसा की व्यग शैली नितान्त स्पष्ट है। मुख्यत: जोशी की कला मे बौद्धिकता और सूक्ष्मविश्लेषण की प्रेरणा का उद्गम सूत्र मोपॉसा का वह व्यक्तित्व है, जहॉ उस ने अपनी कहानियो मे इन तत्वो को आश्चर्यजनक सफलता से अभिव्यक्त किया[१] है। दूसरी ओर उपेन्द्र-नाथ अश्क की कहानी कला ने व्यंग शैली की प्रेरणा का उद्गम-सूत्र मोपासा की वे कहानियाँ है जिनमे साधारण पात्र यथार्थ घटना के माध्यम से उच्चकोटि के व्यग द्वारा प्रस्तुत किए गए।

अमेरिकी कहानीधारा

विकास की दृष्टि से अमेरिकी कहानी-कला का प्रभाव इस युग पर सब से अधिक पडा। एडगर एलन पो से लेकर वर्तमान युग तक, फ्रासिस ब्रेटहार्ट, ओ० हेनरी, स्टीनबेक, सरोयान, अर्नेस्ट हैमिग्वे, और जानडास पेसोज, आदि के कला-विधानो का प्रभाव हिंदी कहानी के सक्रान्ति युग पर बराबर पडता चला आ रहा है। स्पष्ट शब्दो मे इस युग मे जितने भी कहानी शिल्प-विधियो की दिशा मे नित्य नये-नये प्रयोग हो रहे हैं, अथवा हुए है उन के उद्गम सूत्र मे प्राय: अमेरिकी कहानी-कला की प्रेरणा सब से अधिक है। ओ हेनरी[२] की कला मे इतिवृत्त का स्पष्ट होना, घटना का अप्रत्याशित घुमाव एक विशेष प्रकार की वक्रता और चरम सीमा पर सब से अधिक बल देना, आदि कलात्मक विशेषताओ का प्रभाव उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल, और पहाडी की कहानी-कला पर पूर्णत: स्पष्ट है। अज्ञेय की कहानी शिल्पविधि मे वह विधानात्मक प्रयोग जो उन की कुछ कहानिया जैसे, 'कविप्रिया', 'वसत' आदि मे

---

[१] The Mad Woman, Toine, The Signal etc The Great Short-stories of Manpassant Pocket-book.

[२] Best Short-Stories of O' Henry [Modern-Library]

आते है। उस की प्रेरणा मे स्टीनबेक[१] का व्यक्तित्व सर्वदा उल्लेखनीय है, अर्नेस्ट हैमिग्वे, और जॉनडोस पेसोज, की शिल्पविधि को प्रेरणा मे कुछ अति आधुनिक कहानीकार आते है।

अंग्रेजी कहानीधारा

उन्नीसवी शती के अतिम दिनो मे जा कर इगलैड मे कहानी-कला देश-समाज प्रिय हुई। स्टीवेन्शन, कौनन डायल, किपलिग और एच० जी० वेल्स प्रभृति लेखको ने उसे पूर्ण रूप से अपनाया। लेकिन उस समय तक अमेरिकी, फ्रासीसी और रूसी कहानीधारा मे इतना उत्कर्ष स्थापित हो चुका था कि अग्रेजी कहानीधारा उस के सामने नगण्य सिद्ध हुई। स्वभावतः उक्त अग्रेजी कहानीकार हमारे सक्रान्ति युग को किसी प्रकार का प्रेरणा न दे सके।

लेकिन अग्रेजी कहानीकला के विकास काल मे जैकान्स, कैथराइन मैसफील्ड, सोमेरसेट मॉम, और डी० एच० लारेन्स, के व्यक्तित्व से इस धारा मे भी आश्चर्यजनक सजीवता और क्रियाशीलता उपस्थित हुई। इस का मुख्य कारण यह था कि अग्रेजी कहानीधारा के ये विकासकालीन कहानीकार रूसी, फ्रासीसी और अमेरिकी कहानी कला से प्रेरणा ले कर अपने व्यक्तित्व को उन के अनुरूप बनाने के लिये प्रयत्नशील हुए और इस प्रवृत्ति मे इन्हे अपूर्व सफलता मिली। ब्रेटहार्ट का यथार्थवाद, कल्पनाशक्ति और नाटकीयता का प्रभाव जेकान्स पर पडा, चेखव (रूस) की कला का प्रभाव कैथराइन मैसफील्ड पर पडा। जी० बाल्जाक (फ्रास) से डी० एच० लारेन्स प्रभावित हुआ, और सोमेरसेट मॉम,

---

[१] Of Mice & Men, Jon Steinbeck [Modern-Library]

की कला पर मोपाँसा (फ्रास) की कला का इतना सशक्त प्रभाव पडा कि सोमरसेट अंग्रेजीधारा का मोपाँसा प्रसिद्ध हुआ।[१]

हिन्दी के सक्रान्ति युग पर, सोमरसेट मॉम, और डी० एच० लारेन्स, की कला का प्रभाव पडा। अज्ञेय की वे कहानियाँ जो उन के विस्तृत देशाटन और युद्ध कालीन अनुभवो के धरातल पर लिखी गई हैं, उन की शिल्पविधि की प्ररणा का उद्गम सूत्र सोमेरसेट मॉम की इस दिशा की कहानियाँ हैं। डी० एच० लारेन्स के शिल्पविधान से नाटकीयता के तत्व, स्थितियो की योजना मे कटाव, और दमक, जिस से कहानी का सपूर्ण वातावरण डरावना और रोमाचकारी हो जाय, यह तत्व अज्ञेय ने अपनी कहानी-कला मे डी० एच० लारेन्स से अपूर्व सफलता के साथ अपनाया है। डी० एच० लारेन्स की कहानियो की वर्ण्य वस्तु की प्रेरणा पहाडी की कहानियो मे स्पष्ट है।

बँगला कहानियाँ

उद्गम, सूत्र की दृष्टि से इस युग की कहानी-कला पर टैगोर की कहानी-कला का भी प्रभाव स्पष्ट है। हिन्दी कहानियो के आविर्भाव और विकास युग मे टैगोर, प्रभातकुमार और शरत्चन्द्र की प्रारम्भिक कहानियो की प्रेरणा निश्चित रूप से इस के विकास मे प्राणशक्ति दे रही थी। सक्रान्ति युग मे पहुँच कर मुख्यत टैगोर की कहानी-कला का सम्यक प्रभाव, अज्ञेय, जैनेन्द्रकुमार और इलाचन्द्र जोशी के व्यक्तित्व पर पडा है। प्रभात कुमार, शरतचन्द्र का प्रभाव इस युग की कहानी कला पर पूर्णत नगण्य हे। वस्तुत टैगोर की कला की नाटकीयता, स्थितियो की योजना मे अपूर्व गत्यात्मिकता और चरित्र-प्रतिष्ठा मे उच्चकोटि की मानव सवेदना और चरित्रनिष्ठा इन को शिल्पविधि की प्रमुख विशेषताएं है। इन कलात्मक तत्वो का प्रभाव, अज्ञेय, जैनेन्द्र, की कहानी कला

---

[१] Maugham has been called, "The English Manpassant, specially, because he followed his french predecessor's tradition in developing stories where irony of fate plays its part and life becomes a tragic joke."–World's Great short stories-Introduction p 10

पर कहीं-कहीं पूर्णतः स्पष्ट है। अज्ञेय की कुछ कहानियाँ जैसे, 'कोठरी की बात', 'सिगनेलर', 'पठार का धीरज', 'जयदोल', आदि पर टैगोर की कला की प्रेरणा नितान्त प्रकट है। टैगोर की कहानियाँ जैसे 'सड़क की बात', 'घाट की बात'[१] की प्रेरणा के अंतर्गत अज्ञेय की कहानी, 'कोठरी की बात' आती है। इसी तरह टैगोर की अन्य कहानियाँ जैसे, 'प्यासा पत्थर[२], और 'स्वर्ण मृग' की कला के उद्गम सूत्र से अज्ञेय की कहानियाँ क्रमशः, 'पठार का धीरज', 'जयदोल' और 'सिगनेलर' आदि संबद्ध हैं। जैनेन्द्र कुमार की कुछ कहानियाँ जैसे, 'एक रात', 'राजीव और भाभी', 'मास्टर साहब', आदि के विधान पर भी टैगोर की कला का प्रभाव पूर्णतः स्पष्ट है।

टैगोर के उपरान्त वर्त्तमान बंगाला-साहित्य में अचितकुमार सेन गुप्ता, वनफूल, विभूतिभूषन बनर्जी, सुबोध घोष, और ताराशंकर बनर्जी आदि अनेक प्रतिनिधि बंगला कहानीकार हुए हैं। लेकिन इन की कहानी-कला में टैगोर की भाँति वह आकर्षण नहीं हैं, जिस से इस युग का हिन्दी कहानीकार उस रूप में प्रेरित होता। वस्तुतः हिन्दी कहानी-कला के संक्रान्ति युग में हिन्दी कहानियाँ स्वयं अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गई हैं, यही कारण है कि सब इस युग की हिन्दी कहानी-कला बंगला आदि कहानीधारा से प्रेरणा की अपेक्षा बिल्कुल नहीं करती। इस का विकास स्वयं इतने वेग से हो रहा है कि इस का कहानी-साहित्य संसार के किसी कहानी-साहित्य की तुलना में रखा जा सकता है।

---

[१] घाट की बात, रवीन्द्र साहित्य, भाग १, सड़क की बात, भाग ३.
[२] प्यासा पत्थर, रवीन्द्र साहित्य, भाग २
[१] सड़क की बात, रवीन्द्र साहित्य, भाग ३ अनु०, धन्य कुमार जैन

कहानीकला की समीक्षा

कला की दृष्टि से कहानी, गद्यसाहित्य के समस्त रूपो प्रकारो मे श्रेष्ठ है और इस की यह कलात्मक श्रेष्ठता इस के रूप विधान मे है । अन्य रूपो की अपेक्षा इस मे जहाँ एक ओर भौतिक उपादानो की सब से कम, सब से साधारण स्तर की आवश्यकता पडती है, वहाँ दूसरी ओर इस का कार्य सब से महान् और गुरुतर होता है, क्यो कि गद्य साहित्य के अन्तर्गत कहानी-कला वह कला है जो मानव के बाह्य जीवन और उस के अन्तस्थल मे बनते-बिगडते हुए भाव-समूहो और समस्याओ को क्षणिक विद्युत प्रकाश की भाँति हमारे सामने ला छोडती है और पाठक का मन एव मस्तिष्क उस के भावो से घनीभूत हो जाता है ।

कहानी का विकासोन्मुख रूप

कहानी की सवेदना और इस की प्रतिपाद्य सीमा बहुत विस्तृत है । इतिहास और अतीत के स्वर्णिम पृष्ठो, सवेदनाओ से ले कर आधुनिक युग की समस्त समस्याएँ उस के वर्ण्य विषय मे आती है । चम्पा नगरी के 'आकाशदीप' से लेकर मध्यकालीन मुगल हरम मे 'दुखवा मै कासे कहूँ मोरी सजनी' के आसुओ मे रोती हुई बेगमो से आधुनिक काल के कफन-चोर किसान, मजदूरो और वर्तमान युग के पुरुष का भाग्य तक की सवेदनाएँ इस कला की वर्ण्य वस्तु हैं । विकास की दृष्टि से कहानी अपने विषय की दिशा मे स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढती आ रही है । आधुनिक कहानी की विषय-सीमा के अन्तर्गत आज का कहानीकार जो कुछ भी चाहता है, उसे अपनी कहानी का विषय बना लेता है । वह विषय कुछ भी हो सकता है—एक घोडे की मौत से ले कर किसी जवान लडकी के प्रेम-व्यापार तक की घटनाएँ । वह भी विषय लिया जाता है, जिस मे कोई कथानक या कथा-सूत्र, स्थूल रूप से उत्पन्न ही नही हो सकता, दूसरी ओर वह भी विषय लिया जाता है, जिस मे घूमती हुई मशीन और केमरा की परिधि मे आने वाली अनेक कथाएँ, उपकथाएँ, घटनाएँ, चित्र और रग घनीभूत रहते हैं । अतएव व्यापक विषय-सीमा के फलस्वरूप ही इस के शिल्पविधि मे आश्चर्यजनक वैविध्य उपस्थित हो रहा है ।[१]

---

[१] "The short story can be any thing–from the prose poem painted rather than written to the piece of

इसी वैविध्य के कारण आज तक कहानी-कला की कोई निश्चित परिभाषा नही हो सकी है। वस्तुत यह कार्य कठिन भी है। वैसे इस कला की परिभाषा मे बाँधने के लिये हमारे यहाँ और पश्चिम[१] दोनो जगह के विज्ञ आलोचकों और कहानीकारो ने प्रयत्न किये हैं। लेकिन कही भी कहानी की आत्मा परिभाषाओ मे नही बध सकी है, इस का मुख्य कारण यही है कि कहानी-कला की मान्यता और दृष्टिकोण मे अनवरत विकास होना चल रहा है। एक तरह से हमारे जीवन की द्रुतगामिता की यही सच्ची परिभाषा है। कहानी-कला की वास्तविक परिभाषा समझने के लिये हमे इस की मूल आत्मा से परिचय प्राप्त करना चाहिए जिस के धरातल से इस की सृष्टि होती है। वस्तुत कहानी सृष्टि की दो प्रेरणाएँ होती है, या तो कोई सवेद्य घटना अथवा समस्या किसी भी संवेदनशील

---

straight reportas in which style' colour and elaboration have no place, from the piece which catches like a cab-web the light subtle iridescence of emotions that can never be really captured or measured to the so'id tale in which all emotions all action, all reaction is measured, fixed, glazed and finished like a well build have with three coats of shinning and induring paint"—H E. Bates [The Modern Short Stories–page 16]

१ Tchechov held that a story should have lneither beginning nor end but reminded authors htfthey desir ecribed a gun hanging at the wall on page one, sooner or later that gun must go off" [The Modern short Stories, page 15-16] H. E. Bates.

H. G Wells defined short story as any piece of short fiction that could be read in half an hour.

× × × ×

Mr. John Hadfield describes the short-story, a story that is not long–John Hadfield-Editor-Modern Short Stories.

लेखक को कहानी लिखने को विवश करती है, या उस की कोई मनोवैज्ञानिक गति अथवा आत्मानुभूति उसे कहानीबद्ध करने को प्रेरित करती है । इस तरह से दोनो रूपो मे एक भाव प्रधान या अनुभूति के द्वारा लेखक अपने पाठक के ऊपर एकान्तिक प्रभाव डालना चाहता है । इस के लिए वह उस के ही अनुरूप एक कथानक तैयार करता है, कथानक मे सजीव पात्रो को जोडता है, दोनो के सहारे वह परिपार्श्व तथा उचित वातावरण प्रस्तुत करता है और उस मे शैली की क्रियाशीलता से वह पाठक को एक अत्यन्त सहज गति से अभिप्राय के चरमोत्कर्ष पर ला खडा कर देता है और स्वय दूर हट जाता है। इस तरह लेखक का अपने मनोवाछित अभिप्राय तक पहुँचने के लिये उसे कला-निर्माण में जो प्रक्रिया करनी पडती है, वही प्रक्रिया उस कहानी की कला है, टेकनीक है और उस के प्रति उसे जिन उपकरणो को एकत्र करना पडा है, वे समस्त उपकरण उस के मूल तत्व हैं और इस से जो कलात्मक प्रस्तुत हुई है, वह कहानी है ।

कहानी के तत्व

इस प्रकार रचना की दृष्टि मे कहानी के निम्नलिखित तत्व होते है—

(१) कथा-वस्तु
(२) पात्र और चरित्र-चित्रण
(३) कथोपकथन
(४) स्थिति अथवा वातावरण
(५) शैली
(६) उद्देश्य

कहानी के उक्त तत्वो मे से कहानीकार किसी एक या एकाधिक तत्वो पर बल दे सकता है, फिर भी समस्त तत्वो का सामूहिक प्रभाव कहानी-कला की मुख्य आत्मा है, क्योकि प्रत्येक तत्व अपने-अपने स्थान पर विशिष्ट और मूल्यवान हैं । किसी न किसी रूप और स्तर ने उन तत्वो का सहारा कहानीकार को अवश्य लेना पडता है ।

कथा-वस्तु

कहानी मे कथा-वस्तु का स्थान मुख्य है । यही कहानी का वह ढांचा है, जिस पर कहानी निर्मित होती हैं । कहानी के आरम्भ-काल मे कथा-वस्तु ही इस का सब कुछ हुआ करता था, लेकिन ज्यो-ज्यो कहानी-कला मे विकास होता गया, त्यो-त्यो इस का स्थान गौण होता जा रहा है । विशेषकर जब से कहानी मे मनोवैज्ञानिक अनुभूति और मनोविश्लेषण का प्रादुर्भाव हुआ है,

तब से इस का रूप अत्यन्त सूक्ष्म होता जा रहा है। वस्तुत कथा-वस्तु का जन्म कहानीकार की उन अनुभूतियो और लक्ष्यात्मक प्रवृत्ति से होता है जिस के धरातल अथवा मूल प्रेरणा से कहानीकार अपनी कहानी का निर्माण करने बठता है। अगर अनुभूतियाँ घटनाओ अथवा कार्य-व्यापारो की शृखला से निर्मित हुई है तब उन के प्रकाश मे कथावस्तु का रूप कहानी मे मुख्य होगा और कथानक पूर्ण इतिवृत्तात्मक और स्थूल होगा। लेकिन जब अनुभूतियो का प्रादुर्भाव हमारी मनोवैज्ञानिक सत्यता अथवा अतर्द्वन्द्व और मनोविश्लेषण के धरातल से हुआ है, तब कथानक का रूप कहानी मे अत्यन्त सूक्ष्म और गौण होगा। आधुनिक कहानी-कला मे कही-कही इस तत्व को बिल्कुल परोक्ष मे डाल कर केवल पात्रो और परिस्थितियो के चित्रण मे कहानी प्रस्तुत हो जाती है, किन्तु फिर भी व्यापक रूप मे कथा-वस्तु का सहारा किसी न किसी रूप मे कहानीकार को अपनी कहानी मे लेना ही पडता है। केवल इस के स्वरूप मे वैविध्य अवश्य उपस्थित होता रहता है, यही कारण है कि स्वरूप की दृष्टि से कथा-वस्तु के तीन प्रकार मिलते हैं।

१ घटना प्रधान २ चरित्र प्रधान ३ भाव प्रधान

घटना प्रधान कथा-वस्तु मे घटना अथवा कार्य-व्यापार की शृखलाएँ ही इस के निर्माण मे चरितार्थ होती हैं। इस मे कार्य-व्यापारो की सीमा स्वाभाविकता से बहुत आगे बढ जाती है—अर्थात् दैवी सयोग और अति मानवीय शक्तियाँ भी इस मे कार्यरत होती है। जासूसी कहानियों की कथा-वस्तु इस का सुन्दर उदाहरण है।

चरित्र प्रधान कथा-वस्तु मे घटना और संयोग गौण हो जाता है। चरित्र-चित्रण और विश्लेषण ही मुख्य हो जाता है। कथा सूत्र किसी मुख्य पात्र के चरित्र की रेखाओ मे अपना विकास पाता है। ऐसे कथानको मे जहाँ एक ओर सश्लिष्टात्मक शब्द मिलते हैं, वहाँ दूसरी ओर इस मे आरोह-अवरोह के क्रम बहुत कलात्मकता से स्पष्ट रहते है। एक तरह से ऐसे कथानको से चरित्र-विश्लेषण अथवा चरित्र-अध्ययन के धरातल से कार्य-व्यापार लिए जाते हैं। अतएव इस का रूप अपेक्षाकृत सूक्ष्म और पूर्ण कलात्मक होता है, क्योकि ऐसे कथानको के निर्माण मे बाह्य घटनाएँ, कार्य-व्यापार बिल्कुल नही प्रयुक्त होते, वरन् चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व पात्रो की मानसिक ऊहापोह और विभिन्न परिस्थितियो मे व्यक्त होने वाली उन की समस्त चरित्रगत विशेषताएँ उस के निर्माण मे चरितार्थ होती है। अज्ञेय और जैनेन्द्र कुमार की मनोवैज्ञानिक

धरातल की कहानियो[1] के कथानक इस के अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है।

भाव प्रधान कथा-वस्तु मे स्थूल पात्र से भी आगे उन की अनुभूति और भाव ही उस के मुख्य सूत्र के रूप मे आते हे । यहा कथा-वस्तु का रूप सब से अधिक सूक्ष्म और अमूर्त हो जाता है। न इस मे वर्णनात्मकता रहती हे न इतिवृत्तात्मकता, वरन् कथा-सूत्र की स्थापना केवल व्यजना और सकेतो द्वारा की जाती है। ऐसे कथानक मूलत मनुष्य को किन्ही शाश्वत भावो, जैसे, प्रेम, घृणा, करुणा और निर्वेद आदि के धारतल से निर्मित होते हैं। लगता कि है पात्र की कोई विशेष भाव-दिशा अथवा मनोदशा स्वय अपने समग्र विकास मे कहानी का मेरुदंड बन गयी जिसे हम अध्ययन की दृष्टि से कथानक कह सकते हैं। ऐसे कथा-सूत्रो मे चरित्र की मनोदशा और उस के व्यक्तित्व की समूची इकाइयाँ संकेतात्मक अथवा व्यजनात्मक रूप मे सगुफित की जा सकती है। अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी 'कोठरी की बात' मे कथा-सूत्र अथवा कथा-तत्व का वरूप पूर्णत यही है और यह कहानी इस दिशा मे पूर्णरूप से सफल है। वस्तु विन्यास की दृष्टि से दूसरी ओर कथानक के तोन अग होने है।[2] १. आरम्भ २. मध्य और ३ चरम सीमा अथवा अन्त।

आरम्भ कहानी का आदि भाग है। उसी की कुशल अभिव्यक्ति पर कहानीकार का हस्तलाघव निर्भर करता है। इस अश मे कहानी के प्राय समस्त बीज, उस की वास्तविक समस्या का सकेत और मुख्य पात्रो के परिचय किसी न किसी रूप मे अवश्य ही आ जाते हैं। दूसरी ओर कथानक के इसी भाग मे कहानी की मुख्य जिज्ञासा का परम आकर्षक रूप भी अपने कलात्मक रूप मे स्व्यजित होजाता है। फलत कथानक का यह भाग कलात्मक दृष्टि से कहानीकार की कुशलता की परीक्षा का द्योतक है। उत्कृष्ट कहानी के कथानक के आरम्भ अंश मे आकर्षण की प्रतिष्ठा उस की प्राथमिक आवश्यकता है । इसी की प्रेरणा से पाठक मत्र मुग्ध होकर सम्पूर्ण कहानी के पीछे आकर्षित होता है। कहानी की मुख्य सवेदना से इस भाग का पूर्ण सामजस्य इस की दूसरी विशेषता है। इस भाग मे किसी न किसी रूप मे कहानी का उद्देस्य अवश्य सन्निहित होता है। आकर्षण और लक्ष्य दोनो दृष्टियो से यह अन्तिम विशेषता वस्तु-विन्यास की सब से बडी अपेक्षा है।

---

[1] अज्ञेय—पुरुष का भाग्य, पुलिस की सीटी, छाया, और रोज। जैनेन्द्र कुमार—एक रात, मास्टर जी और क्या हो?

कथानक के मध्य भाग मे समस्या का परम विस्तार तथा अन्तर्द्वन्द्व का आरोह-अवरोह पूर्णत स्पष्ट हो जाता है। कथानक के सम्पूर्ण अग मे विस्तार ही उस का मुख्य अग है। इसी अग मे कहानी की वास्तविक आत्मा प्रस्फुटित होती है और कहानी के लक्ष्य की पूर्ण पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है, रचना-विधान की दृष्टि से वस्तु-विकास का मध्यभाग ही कहानी का विकास भाग है और विकास भाग कहानी का मूल शरीर है। कलात्मक दृष्टि से कहानी लेखक को विकास का उतना ही विस्तार करना चाहिए जितना उस के पात्रो और घटनाओ को आगे बढाने के लिए आवश्यक हो, अधिक बिल्कुल न हो। इस भाग मे कौतूहल की मात्रा को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए क्योकि विकास भाग से कहानी की चरम सीमा पूर्णरूप से संबद्ध रहती है और पाठक को वहाँ तक सहज गति से पहुँचाना कहानीकार का सब से बडा उत्तरदायित्व है। लेकिन यहाँ कौतूहल की सृष्टि किस रूप और स्तर मे हो, यह भी एक प्रश्न है। घटना प्रधान कथानक मे भ्रम, विपत्ति और उत्तेजनाजनक परिस्थितियो की सृष्टि मे इस की आवतारणा पूर्ण कलात्मक हो सकती है। ऐसी स्थितियो मे कभी-कभी कौतूहल तक का आवेग बडी तीव्रता मे बढने लगता है। ऐसे अवसर पर कहानीकार द्वारा उस का सतुलन परमावश्यक है, अन्यथा चरम सीमा पर कहानी का एकान्तिक प्रभाव नष्ट हो जायगा।

चरित्र प्रधान कथा-वस्तुओ के विकास भाग मे कुतूहल की सृष्टि परम सरलता से हो सकती है। यहाँ पात्र ही सब कुछ होते है उन के अन्तर्द्वन्द्व मानसिक घात-प्रतिघात के फलस्वरूप अनेक अप्रत्याशित समस्याएँ खडी हो सकती हैं और उन मे कौतूहल का समावेश स्वय अपने आप होता चलता है।

सफल कहानियो मे कौतूहल का आविर्भाव अनेक बार अनेक अगो पर होता है पर उस मे हर बार स्तर विभेद होता चलता है अर्थात् कौतूहल मे तीव्रता बढती रहती है। पहला कौतूहल प्रारम्भ मे उत्सुकता की सृष्टि करता हुआ कहानी को उस की चरम सीमा की ओर प्रेरित करता है। लेकिन चरम सीमा तक पहुँचने के पूर्व इस की गति मे तीव्रता लाने के लिये दूसरी और तीसरे कौतूहल की सृष्टि करनी पडती है, जिस के फलस्वरूप समूची कहानी मे भावो और अनुभूतियो की इतनी तीव्रता उत्पन्न हो जाती है कि छोटी-सी कहानी अपने एकान्तिक प्रभाव मे परम व्यापक और विस्तृत सिद्ध होने लगती है और चरम-सीमा तक पहुँचते-पहुँचते उस मे अप्रत्याशित आनन्द और सौन्दर्य उपस्थित

हो जाता हे । इस तरह चरम सीमा की ओर जाने वाली कौतूहल-जनक घटनाओ की सृष्टि का रूप प्राय. इस प्रकार का होगा —
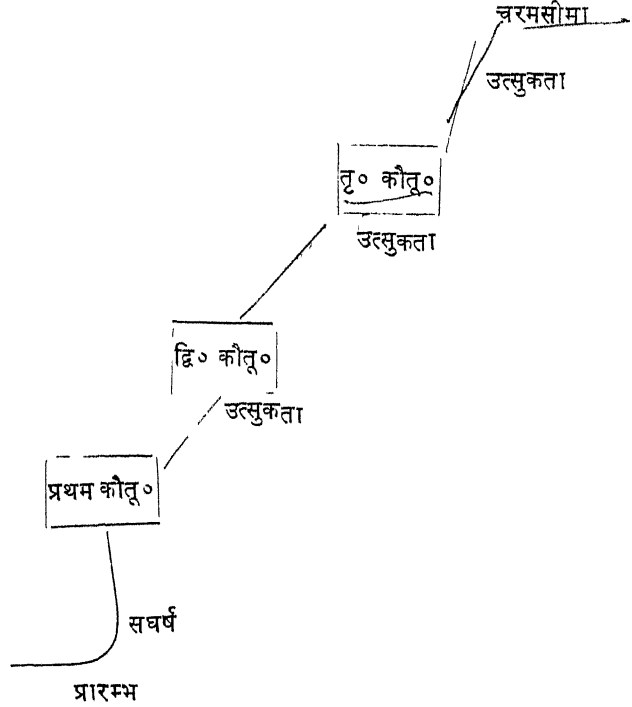
कौतूहल के अन्त मे चरम सीमा की स्थिति आती है अर्थात् इस भाग पर आकर कहानी की समस्त कौतूहल और कहानी का सम्पूर्ण अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है, तथा उस से आगे पाठक की गति समाप्त हो जाती है । एक तरह से यहाँ पहुँच कर कहानी का कार्य सम्पूर्ण हो जाता है । घटना प्रधान कथा-वस्तु की चरम सीमा घटनात्मक होगी और उस पर सयोग अथवा अप्रत्याशित कार्य व्यापार की अवतारणा निश्चत रूप से होगी । प्रसिद्ध अमेरिकन कहानीकार ओ० हेनरी ने इस प्रवृत्ति को अपनी कहानियो की चरम सीमाओ पर बहुत निर्वाह किया है । हिन्दी मे प्रेमचद, सुदर्शन, और कौशिक की कहानियों मे यह प्रवृत्ति पूर्ण सफलता से पायी जाती है । उपेन्द्रनाथ अश्क की भी कहानी-कला में चरम-सीमा पर विशेष बल इसी रूप मे दिया गया है ।

अध्ययन की दृष्टि से संसार की समस्त प्रसिद्ध कहानियाँ, जैसे, ओ हेनरी (अमेरिका) की 'अन्तिम पत्ती' मोपाँसा (फ्रास) का 'नेकलेस' चेखव (रूस)

की 'बाजी' और एच० जी० वेल्स (इगलैड) की 'कीटाणु' आदि की चरम सीमाएं अप्रत्याशित कार्य-व्यापार और घटना की तीव्रता पर ही आधारित है।

लेकिन आधुनिक कहानीकला के अनुसार ये कहानियाँ और इन की ऐसी चरम सीमाएँ पूर्ण स्वाभाविक और उत्तम नही मानी जा सकती। उत्कृष्ट कहानी वह मानी जाती है, जिसे बार-बार पढने और मनन करने की इच्छा हो। लेकिन उक्त कहानियाँ एक ही बार पूर्ण तन्मयता के साथ पढी जा सकती हैं और उन से पूर्ण आनन्द उठाया जा सकता है, क्योकि कहानी समाप्त करने के बाद कोई ऐसी समस्या, प्रश्न और रहस्यात्मकता नही रह जाती जिसे समझने या सुलझाने के लिए कहानी बार-बार पढी जाय।

आज की कहानी-कला मे चरम सीमा की ही मान्यता क्या, इस के विधान की समूची मान्यताओ मे परिवर्तन हो गया है। यद्यपि कहानी के मूल तत्व वही है लेकिन उन की प्रतिष्ठा की दशा मे आमूल परिवर्तन हुए हैं। आधुनिक कहानी कला मे भी कहानी के आरम्भ और अन्त-भाग पर विशेष बल दिया जाता है[१]। लेकिन अब इन भागो पर घटना अथवा कार्य-व्यापार के स्थान पर मानव संघर्ष, उस के शाश्वत अन्तर्द्वन्द्व उस की समूची आन्तरिकता की व्यजना उपस्थित की जाती है, जिस से पाठक बार-बार समूची कहानी की आदि से अत तक पढता हुआ, उन प्रश्नो और समस्याओ पर स्वय विचार करे। आज की कहानी-हमारे सामने समस्याएँ रखती हैं, और उस पर सोचने के लिए बाध्य करती है। आज की भी कहानी-कला मे कथा-वस्तु है, घटनाएँ है, सघर्ष है, लेकिन अब इन का सबध मन-मस्तिष्क से अधिक हो गया है। इस के भी विकास मे कौतूहल और जिज्ञासा की तीव्रता है, लेकिन अब इस का स्तर भावुकता से हट कर बौद्धिक हो गया है। आज की भी कहानी-कला मे आश्चर्य-वृत्ति मिलती है, लेकिन इस मे पूर्ण स्वाभाविकता लाने का आग्रह है। यहाँ चरम सीमा भी है, लेकिन आज की चरम सीमा इस घटना अथवा सयोग पर नही व्यक्त हुआ है कि कोई स्त्री अपने खोए हुए आभूषणो को हैट-बाक्स मे एकाएक पा जाती है, वरन् एक

---

[१] Mr Ellery Sedgewich held that "A story is like a horserace. It is the start and finish that count most."

[Sedgewich & Dominovitch Editor : Novel & story]

ऐसी स्त्री की मनोदशा की चरमसीमा है जो एकाएक अपनी स्मृति मे अपने खोए हुए आनन्द और शान्ति को पा जाती है।[१]

इस तरह आधुनिक कहानी-कला के मूलतत्वो मे परिवर्तन नही हुआ है, वरन् उन तत्वो के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण मे परिवर्त्तन उपस्थित हुआ है तथा उन के विन्यास मे आश्चर्यजनक विकास हुआ है।

पात्र और चरित्र-चित्रण

पात्र कथा वस्तु के सजीव सचालक है[२], जिन से एक ओर कथा वस्तु का आरम्भ, विकास और अन्त होता है और दूसरी ओर जिन से हम कहानी मे आत्मीयता प्राप्त करते हैं। कहानी मे पात्र-निर्माण के लिये कहानीकार को तीन बातो पर विशेष ध्यान देना चाहिए। पात्र सर्वथा सजीव और स्वाभाविक हो और इन की अवतारणा कल्पना के धरातल से न हो कर कलाकार की आत्मानुभूति के धरातल से हो, जिस से पात्र और पाठक मे पूर्ण सरलता से साधारणीकरण हो जाए। पात्रो की सृष्टि कहानी की मुख्य संवेदना के अनुकूल हो तथा पात्र ऐसे हो जो प्राय. सर्वसुलभ और सप्राण हो। जो कहानीकार अपने पात्रो को केवल घटनाओ के सचालक बना कर छोड देता है, वह अपने

---

[१] The modern story tellers have changed their nature. There is still adventure but it is now an adventure of the mind There is suspense, but it is less a nervous suspence than an emotional or intellectual suspense there is a climax, but it is not the climax of a woman who discovers her lost jewells in the hat-box, but the clemax of the woman who discovers her lost happiness in a memory,–Seon O' Faolain.

The Short Story-P. 164

[२] One of the best definitions ever given of the techinique of fiction is that action reveals character and that character demonstrates it self in action and action is only another word for incidents.—Seon' O' Faolain. The Short Story—P. 165

पात्रो को कभी अमरत्व नही प्रदान कर सकता और जब उन मे प्राणशक्ति ही नही तो उन से हमारा साधारणीकरण कैसे हो सकता है। पात्र अतीत, वर्तमान, भविष्य तथा स्वदेश-विदेश जहाँ के भी हो, उन की सृष्टि कहानी के क्षेत्र मे हो सकती है, लेकिन उन की सृष्टि मे केवल एक शर्त होनी चाहिए, उन की पार्थविकता और स्वाभाविकता मे हमे किसी प्रकार का सदेह न हो।[१] इस के लिए आवश्यकता इस बात की है कि पात्रो मे व्यक्तित्व, भाव, सघर्ष और मानव के शाश्वत प्रश्नो की शृखला गुथी होनी चाहिए, अत जो लेखक अप ने पात्रो मे जीवन की शक्तियाँ, अन्तर्द्वन्द्व और शाश्वत प्रश्नो को भरता है वह अपने पाठको के हृदय मे चिरस्थायी रूप से स्थान देता है। वे पात्र न केवल घटनाओ के जाल मे ही खेलते है किन्तु पाठको के अन्तर्मन मे प्रविष्ट हो कर उन मे प्राणशक्ति का सचार भी करते है। कहानी की विधानात्मक सीमा मे अधिक पात्रो का समावेश पूर्ण रूप से अनुचित है क्योकि ऐसी स्थिति मे एक भी पात्र का न तो चरित्र ही स्पष्ट हो सकता है न उस के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा ही हो सकती है। अतएव सफल कहानियो मे तो अधिक पात्रो की अवतारणा नही की जाती, अगर अधिक की भी जाती है तो शेष सभी पात्र उन्ही दो मुख्य पात्रो को अधिक स्पष्ट अधिक सन्निधानी बनाने के लिए अवतारित होते है।

व्यापक विभेद की दृष्टि से कहानी के पात्र प्रथमत ऐतिहासिक, पौराणिक पात्रता की परिधि मे आते है। ऐसे पात्रो की सृष्टि मे कहानीकार की कल्पना-शक्ति और पाडित्य की सब से बडी परीक्षा होती हे। इन पात्रो के आविर्भाव मे जो बात सब से अधिक ध्यान देने की होती है, वह है इन का बिशिष्ट व्यक्तित्व निर्माण, क्योकि ऐसे पात्रो को हम उन की रूपरेखा की अपेक्षा उन के विशिष्ट व्यक्तित्व से ही पहचान सकते है।

सामान्य पात्र हमारे समाज मे बीच के होते है। फलत इन पात्रो से हमारा पूरा साधारणीकरण यो भी सभव हो जाता है कि ये पात्र हमारे देखे-सुने और जाने-पहचाने रहते है [illegible] वस्तुत: लोकोत्तर पात्रो की अवतारणा बिल्कुल नगण्य है। आज का युग बुद्धिवादी युग है। इसे तर्क, विवेक और विश्लेषण मे अधिक आस्था है, अधविश्वास, कल्पना और निष्ठा मे कम। अतएव आधुनिक कहानी-कला मे सामान्य पात्र ही लिए जाते हैं, जो मानव सघर्षों और युग चेतना के प्रतीक होते है।

---

[१] **जो पात्र मिट्टी के धूयें की भाँति अपना कोई व्यक्तित्व न रखते हो वे पाठको में रुचि नहीं उत्पन्न कर सकते—गुलाबराय—काव्य के रूप—पृष्ठ २२०**

सामान्य पात्र दो प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार के पात्र वे हैं जो अपने व्यक्तित्व मे पूर्ण है। उन की अपनी व्यक्तिगत सत्ता है और यह सत्ता हमारी सामाजिकता की एक अभिन्न इकाई है। वे पात्र सर्वसाधारण से ले कर उच्चवर्ग तक फैले हुए है। दूसरे प्रकार के प्रात्र वे है जिन का कोई व्यक्तिगत चरित्र न हो कर, सर्वथा चरित्रो के प्रतिनिधि स्वरूप होते हैं। ये प्रतिनिधि पात्र अपने मे व्यक्ति नही होते, वे एक टाइप के प्रतिनिधि हुआ करते है। उन्हे अपने जातिगत व्यक्तित्व की इकाई समझना चाहिये, उन के व्यक्ति की इकाई नही। ऐसे पात्र सब जगह, सब नामो के नीचे एक ही मूल्य के द्योतक होते है। वे अपना निज का व्यक्तित्व बनाने के झंझट से पूर्णरूप से बचे रहते है और वे विश्वास स्वय कभी नही गढ़ सकते।

कहानी मे चरित्र-चित्रण का महत्व सब से अधिक है, क्योकि कलात्मक दृष्टि से एक ओर कहानी की सक्षिप्त सीमा के कारण चरित्र का विकास दिखाने का अवसर बहुत ही कम रहता है, और दूसरी ओर चरित्र-चित्रण की संभावनाएँ उनमे इतनी सीमित रहती है कि उन से चरित्रो को स्पष्ट करना परम हस्तलाघव की परीक्षा है। कहानी मे इतनी सुविधा भी नही होती कि पात्रो का पूरा विवरण दे कर उन की अवस्था, रूप, रग और अन्य स्थितियो को पूर्ण चित्रित किया जाय। यहाँ तो सीमाओ के अतर्गत गागर मे सागर भरने जैसा होता है। व्यावहारिक दृष्टि से चरित्र-चित्रण के लिए चार साधनो का उपयोग किया जाता है, वर्णन, सकेत, कथोपकथन, और घटना-कार्य व्यापार। इन्ही के माध्यम से पात्रो के चरित्र-चित्रण होने हैं। इन के विभिन्न उदाहरण निम्नलिखित है।

वर्णन द्वारा :

रोगी का नाम सुन्दरलाल है। फर्स्ट डिवीजन मे एम० ए० पास कर के उसने पी० सी० एस० का इम्तहान दिया था और उस मे सर्व प्रथम आया था। एक साल किसी नगर मे डिप्टी कलक्टर हो कर रहा। उस की स्त्री श्यामा भी इसी बीच उस के साथ रही। सुन्दरलाल, सुशील और मधुर स्वभाव का आदमी था बुद्धि का प्रखर, मिलनसार और ऐयाश तबियत। ऐयाशी की मात्रा अधिक होने से अथवा वशगत दोष के कारण उसे यक्ष्मा रोग ने पकड लिया।

संकेत द्वारा :

बीस-बाइस वर्ष की अवस्था मे मनुष्य की आकाक्षाएँ स्वप्न होती है उन को परिवरिश मिले तो वह पनपे, नही तो सूख कर मुरझा जाती है और यौवन

बीतते-बीतते आदमी अपने को चुका हुआ अनुभव करता है। वे आकाक्षाएँ स्नेह माँगती है। स्नेह अनुकूल समय पर और यथानुपात मिले तो हरी-भरी हो कर कैसे-कैसे फूल न खिल आएँ, कहा नही जा सकता नही तो अपने को खाती चुकाती हैं। मूल जिन के दृढ हो ऐसी प्रकृतियाँ विरोध मे से भी इसे खीचती है, अवश्य, और वे मानो चुनौती पूर्वक बढ़ती रहती हैं, पर इस शक्ति को प्रतिभा कहा जाता है, और प्रतिभा सरल नही है, वह तो विरल ही है। कहना कठिन है कि राजीव मे प्रतिभा की शक्ति कितनी थी किन्तु जब उस मे अतीव भूख थी कि कोई उसे पूछे तब वह अकेला अपने को पाता था।

जैनेन्द्र कुमार [एक रात 'राजीव और भाभी', पृष्ठ ७३]

कथनोपकथन द्वारा .

मैने सहसा कहा, इस वक्त कैसा वेध्य है। अगर मै मारना चाहूँ, तो यह निरीह मर जाय।

हा क्यो मारना चाहो, इतना सुन्दर

मैने अपनी ही झोके मे कहा, अभी ढीला मारू॑, तो वरन्

काटने को मुड न सके।

क्या जहरीला है ?

हो भी तो क्या इस समय असहाय है मौकै की बात है, कुछ कर भी न सके, सारा रूप लिए ज्यो-का-त्यो पडा रह जाय विट्टुर-विट्टुर ताकता।

उसकी पहिले की मुग्ध गोल आँखे करुणा से और बडी-वडी हो आयी, बोली—बेचारा कितना असहाय !

[अज्ञेय : जयदोल . 'साँप', पृष्ठ २७]

घटना कार्य-व्यापार द्वारा :

धीरे-धीरे दरी पर पाँव रखता हुआ चदन बढ़ा और जाकर दरवाजे के साथ पजो के बल खडा हो गया। अन्दर छत मे लाल रग का बल्व जल रहा था। उसके धीमे प्रकाश मे वह आँखे फाड-फाड कर देखने लगा किन्तु दूसरे ही क्षण वापस मुडा। उस का शरीर गर्म होने लगा था, अंगो मे तनाव आ गया था कंठ और ओठ सूखने लगे थे और उस की नसो मे जैसे दूध उबलने लगा था। उसी तरह पंजो के बल भागता वह बाहर आया। धीरे से उस ने दरवाजा लगाया और बाहर चाँदनी मे आ खडा हुआ। सामने जेकारेंड का तना खड़ा

था उस के जी मे आया कि अपने युवा वक्ष की एक ही चोट से वह उस तने को गिरा दे ।

[उपेन्द्र नाथ अश्क जुदाई की शाम का गीत, 'उबाल', पृष्ठ १११]

आधुनिक कहानी कला मे चरित्र-चित्रण के उत्तम प्रसाधनो मे से सकेत और कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण की शैली सब से अधिक कलात्मक स्वीकार की जाती है, और आधुनिक युग के प्रतिनिधि कहानीकारो ने इन्ही शैलियो को अपनाना है ।

चरित्रो मे व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के लिए चरित्र विश्लेषण की पद्धति आधुनिक कहानी-कला की सब से बडी देन है । इस स एक ओर चरित्र का व्यक्तित्व निश्चित हो जाता है, और दूसरी ओर इस पद्धति से पात्र पूर्ण सजीव और अमर बन जाता है । वह पूर्ण रूप से मानव मस्तिष्क के समस्त सघर्षों, प्रश्नो और निर्बलताओ का प्रतिनिधित्व करने लगता है । इस के लिए निम्नलिखित पद्धतियो का अनुसरण किया जाता है ।

अ निरपेक्ष विश्लेषण : अन्य पुरुष का विश्लेषण

आ: आत्म विश्लेषण स्वय अपने विषय मे अपना विश्लेषण

इ : मानसिक ऊहापोह द्वारा विश्लेषण : चिन्तन, मनन द्वारा आत्म-विश्लेषण

निरपेक्ष विश्लेषण :

हेमन्त का मन आत्मग्लानि से भर आया था वह तो जानता है उसे क्यो भूल सका, भूल नही सका क्यो उस की अनदेखी करना चाह सका ? सुधा की आँखों में वह दूसरा है और स्वयं उस को अपनी क्या उस की आँखो मे एक भी परछाई नही है और जब तक है तब तक यह उलझन यह गूँथन उस ज्योति शरीर का किरन जाल नही है, केवल साँप की गुजलक है जिसके डस मे केवल मरण है ।

[अज्ञेय : जयदोल . 'वे दूसरे', ७९, ८०]

आत्म विश्लेषण :

मुझे वह समूची वस्तु कुछ मैली मालूम होती है अपावन, अशुचि असुन्दर । मैं उस ओर देखना नही चाहता हूँ । तो क्या ? जी फिर रोने को आता है, नही मेरे भीतर अभी तक इस फाँसी की बात को लेकर तनिक भी रोना नही आ सका है । मैने कुछ किया, मैं जानता हूँ, मैने वह किया । वह करते समय भी

मैं जानता था कि उस के अन्त मे यही चीज हो सकती है, फाँसी, जिसको मैं अब भी ठीक नही जानता कि क्या है ? इस फाँसी के परिणाम के व्यापक भाव के इतने भाग को मै जानता था कि जिन से मै बोलता हूँ, मिलता हूँ, जिन से प्रेम लेता और जिन का प्रेम देता हूँ, जिन के भीतर अपने को फैला कर और जिन्हे अपने भीतर धारण कर के मेरा जीवन सभव बना चलता है, वे सब मेरे लिए न रहेगे, मै उन के लिए न रहूँगा।

[जैनेन्द्र कुमार : एक रात 'क्या हो', पृष्ठ २०८]

मानसिक ऊहापोह

मुझे कभी-कभी खेद होता है कि क्यो यह मेरा मित्र विद्याधर वहाँ है, जहाँ है। क्यो मुझे, उसे समाज मे उस के योग्य स्थान पर पहुँचाने नही देता। पर मैं उसे इतनी-सी छोटी बात समझाने मे असमर्थ हो जाता हूँ, कि गली का झम्मन भगी सम्राट जार्ज से छोटा है। मैं बहुत कहता हूँ, तो वह तनिक हँस पडता है। वह कमबख्त क्यो नहीं समझता दुनिया मे छोटा-बडा है, फिर है एक से लाख बडा है और हमेशा रहेगा, और उसे बडा बनना ही चाहिए, छोटा नही रहना चाहिए और मुझे खीज होती है कि मैं क्यो नही उसे बडा बनने को राजी नही कर सकता। जब वह छोटा है, तो मैं ही क्यो दुनियाँ मे बड़ा बना खडा हूँ।

[जैनेन्द्र कुमार : एक रात 'मित्रविद्याधर', पृष्ठ १६६]

आधुनिक कहानी-कला मे पात्र और चरित्र-चित्रण की महत्ता सर्वोपरि हो गई है। कारण, आधुनिक कहानी का मूलाधार मनोविज्ञान है और इस मनोविज्ञान का मूल केन्द्र चरित्र है। फलतः आज के पात्र कल्पना और चरित्र विधान मे कहानीकारो की व्यक्तिवादिता पूर्ण रूप से प्रतिफलित हो रही है। इस दिशा मे आधुनिक कहानीकार की प्रगति स्थूल से सूक्ष्म की ओर चरित्र के बाह्य संघर्ष से आन्तिरिक सघर्षों की ओर बढना, इस युग की कला की सब से बडी देन है।

कथोपकथन

कहानी कला के मूल तत्वो मे कथोपकथन एक नाटकीय तत्व है, अतएव उस मे नाटकीयता आना इस की परम स्वाभाविकता है। कथोपकथन तत्व कहानी-कला का सर्वोत्तम अश है। इस से कहानी मे आकर्षण, सजीवता और पाठको की जिज्ञासा वृत्ति को प्रेरणा मिलती है। कहानी के विकास क्रम मे यह तत्व उस कलात्मक श्रृखला का कार्य करता है जो एक घटना से कहानी की अन्य आगे आने वाली घटनाओ से हमारा तादात्म्य जोडती रहती है। इस तत्व से कहानी की मुख्य सवेदना और पात्रो मे सीधा सबध जुडा रहता है। इस तरह कहानी के अतर्गत कथोपकथन की तीन दिशाएँ होती है। कथा-वस्तु का विकास, पात्रो का चरित्र-चित्रण तथा समूची कहानी कौतूहलता के सहारे प्रवाह और आकर्षण की सृष्टि।

केवल वर्णनो द्वारा सपूर्ण कहानी की सृष्टि मे जो बात सब से अधिक अकलात्मक सिद्ध होती है वह है कहानी मे पात्रो का अव्यक्त हो जाना। ऐसी स्थिति मे कहानियो मे प्रभविष्णुता और संवेदनशीलता दोनो विशेषताएँ प्रायः नष्ट हो जाती हैं। लेकिन संपूर्ण कहानी की सृष्टि भी कथोपकथनो के माध्यम से कर देना कहानी को कुठित कर देना है, क्योकि इस स्थिति मे कहानी, कहानी न रह कर प्रायः एकाकी नाटक हो जाती है। वस्तुतः कथोपकथन और वर्णन विवेचन मे सुन्दर समन्वय और अनुपात होना चाहिए तभी कहानी का सम्यक रूप अत्यन्त कलात्मक हो सकता है।

कहानी के अंतर्गत कथोपकथन का सब से बड़ा गुण जिज्ञासा और कौतूहल उत्पन्न करता है। कथोपकथन का तारतम्य ऐसा हो जैसे नदी मे लहरो की गति और उस पर वायु का सहज सगीत, जिस के सहारे पाठक के हृदय मे उत्तरोत्तर कहानी पढने की आकाक्षा और जिज्ञासा दोनो बनी रहे। कथोपकथन सर्वथा देश-काल-पात्र-परिस्थिति और कहानी की गति के अनुकूल होना चाहिए। कहानीकार अपने व्यक्तित्व को दूर रख कर विभिन्न पात्रो के माध्यम से उस के कथोपकथनो मे उसे पात्रो के व्यक्तित्व की रक्षा करनी होगी। हास्य, विनोद और व्यंग का समावेश कथोपकथन के स्तर को पूर्ण रूप से ऊँचे उठाना है इस के लिए कथोपकथन की भाषा शैली मे लाक्षणिकता और व्यंजकता दोनो गुणो की अपेक्षा होती है। कथोपकथन छोटे गठित और स्थिति अनुकूल होने पर उन की महत्ता

कहानी के प्रवाह मे सब से अधिक हो जाती है। इस दिशा मे सम्भाषण की मौलिकता दृष्टिकोण की नवीनता ये दोनो तत्व इस की परम विशेषताओ में आते है।

रूप विधान की दृष्टि से कथोपकथन प्राय तीन शैलियो मे मिलते है। १. पूर्ण नाटकीयता के रूप मे, अर्थात् केवल कथोपकथन हो, उस में कहानी कार्य, स्थिति के सकेत न हो, जैसे—

कौन—वजीरा सिह।

हाँ—क्यो लहना क्या कयामत आ गई—जरा तो आँख लगने दी होती

होश मे आओ—कयामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आयी है।

क्या ?

लपटन साहब या तो मारे गए है या कैद हो गए है। उन की वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है सूबेदार ने इस का मुख नही देखा। मैंने देखा और बाते की हैं। शौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।

तो अब ?

[गुलेरी : 'उसने कहा था']

२ पात्रो की मुद्राओ के सकेत के साथ-साथ उन के कथोपकथन आगे बढ़ते है, अर्थात् कथोपकथन के बीच-बीच मे, कहानीकार पात्रो की मुद्रा और स्थितियों की ओर भी संकेत करता चलता है, जैसे :

"अनन्त एकाएक चुप हो गया। फिर बोला उफ कैसी कहान है यह... ज्योति ने धीरे-धीरे अपना हाथ खीच लिया दोनो फिर चुप हो गए मिनट भर बाद ज्योति ने फिर पूछा अब क्या सोच रहे हो ? वह अनन्त की ओर देखती नहीं थी, देख कर अपलक दृष्टि से ताज की ओर ही रही थी, फिर भी जाने कैसे अनन्त का नाडी-स्पंदन निरंतर उस मे प्रतिध्वनित होता जा रहा था।

कुछ चुप रह कर अनन्त बोला—बताओ, क्या दिन के प्रकाश मे प्यार भी उतना कठोर लगता है, जितना कि पत्थर। ज्योति ने कुछ विस्मय से कहा क्यो, क्या मतलब ? मैं नहीं समझी।

[अज्ञेय : परम्परा : 'ताज की छाया मे']

३. पात्रो की मुद्राओं और स्थितियों के विवेचन के साथ-साथ उन कार्य-

व्यापारो और घटनाओ के उल्लेख जो पात्रो के कथोपकथन, काल की स्थिति मे चरितार्थ होते रहते हैं, जैसे :

"राजीव ऊपर आया तब उसी छोटे-छोटे मे इशारे से बताया कि भाभी हाँ, उस पीछे वाले कमरे मे है। उधर को बढना ही था कि ऊपर की आवाज आई, क्या है ?

आवाज क्या काफी न थी, उस पर स्वय भाई साहब भी सामने आए। अजब डाँट उन की मुद्रा मे थी। बोल क्या है ?

राजीव ने कोठरी की ओर बढते हुए कहा कि कुछ नही।-

कुछ है भी, और जोर से भाई साहब ने कहा।

रग का लोटा है। राजीव धीमे से कहा।

[जैनेन्द्र कुमार : राजीव और भाभी]

उपर्युक्त तीनो शैलियो मे द्वितीय और अतिम शैली का प्रचलन आधुनिक कहानी-कला मे बहुत है। वस्तुत पात्रो के चरित्र-चित्रण और उस का संबंध कहानी की मूल सवेदना से जोडने के लिए उपर्युक्त दोनो शैलियाँ पूर्ण कलात्मक और सशक्त है। इन दोनो शैलियो मे आश्चर्यजनक गठन और सपूर्ण कहानी मे प्रवाह तत्व की गति मिलती है। नाटक मे कथोपकथन के साथ उस के अभिनयात्मक तत्व उस मे दिये रहते है, जो अभिनेता की भावभगिमा और उस के व्यापारो मे अपनी अभिव्यक्ति पाते रहते है, लेकिन कहानी तो विशुद्ध रूप से पठन-पाठन की वस्तु है। इस के कथोपकथन मे, अतएव पात्रो की मुद्राओ, स्थितियो की व्यजना और इस के साथ ही साथ कार्य-व्यापारो की विवेचना करते रहना आधुनिक कहानी-कला की परम विशेषता हे।

स्थिति अथवा वातावरण

कहानी-कला का मेरुदंड वास्तविक जीवन है, काल्पनिक लोक नही। वास्तविक जीवन देश, काल और जीवन की विभिन्न सत्-असत् परिस्थितियो से निर्मित होता है, अतएव इन तत्वो का एक स्थान पर संचयन और चित्रण करना कहानी मे वातावरण उपस्थित करना है। कहानी की कथा-वस्तु और उस के संचालक पात्रो का सीधा संबंध उक्त स्थितियो से होता है, अर्थात् इन का उद्गम

सूत्र और संबध किसी देश मे होगा या किसी विशिष्ट स्थान अथवा प्रदेश से होगा। इन का भी सबध किसो काल विशेष से होगा। वर्तमान, भूत, अथवा भविष्य किसी कला प्रकार से फिर इन मे भी विभेद हो सकते है। इस के उपरान्त इन दोनो का सापेक्षिक संबध जीवन की किन्ही परिस्थितियो से होगा। इन परिस्थितियो की सीमा मे समस्त मानवीय राग, द्वेष, अनुभूतियाँ और हर प्रकार के सघर्ष आ सकते है वस्तुत: इन सब के अलग-अलग चित्रण से कहानी मे विभिन्न परिपार्श्व प्रस्तुत होते है और इन सब के सामूहिक सकलन और प्रभाव से कहानी के वातावरण की सृष्टि होती है।

नाट्य कला मे नाटक की स्थिति और वातावरण के लिए रंगमंच, विशेष पर्दे, सजावट और अभिनेताओ के वेषभूषा आदि कार्य करते है, लेकिन कहानी-कला, पठन-पाठन की वस्तु होने के कारण इस मे स्थिति और वातावरण के लिये स्थान-स्थान पर यथोचित देश-काल-परिस्थिति के चित्रण प्रस्तुत करने होते है। क्योकि बिना तत्व के कहानी का पाठक, कहानी की मूल सवेदना और भाव-क्षेत्र से अपना तादात्म्य ही नही स्थापित कर सकता। एक तरह से कहानी मे यह तत्व सौन्दर्य और आकर्षण का वह तत्व है, जिस से केवल कहानी के विधान सौन्दर्य मे ही नही अभिवृद्धि होती, वरन् इस से पाठक कहानी मे सतत् आकर्षित और प्रेरित रहता है। इस से कहानी मे परिपार्श्व के साथ-साथ पाठक के संवेद्य जगत् अर्थात् मस्तिष्क मे भी उसी के अनुरूप वातावरण की स्वय सृष्टि हो जाती है और कहानी पढ़ते समय या कहानी समाप्त करने के बाद पाठक उसी कहानी के देश-काल और परिस्थिति लोक मे मग्न मिलता है। कहानी के एकातिक प्रभाव मे भी इस तत्व का बहुत बडा हाथ रहता है। इस से कहानी मे सहज प्रभविष्णुता और शक्ति उत्पन्न होती है जिस के फलस्वरूप कहानी का पाठक इस कला से अपना सबध स्थापित किये फिरता है।

ऐतिहासिक कहानियो मे स्थिति और वातावरण का निर्माण इस कला की प्रमुख विशेषता है। कार्य-वस्तु से सबधित देश-काल और परिस्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान और उस की सहज अभिव्यक्ति ऐसी कहानियो की मूल आत्मा है। अगर इस दिशा मे किसी प्रकार की अस्वाभाविकता और अज्ञानता उपस्थित हुई तो यह निश्चित है कि कहानी असफल हो जायगी और उस की सवेदना से किसी भी प्रकार पाठक का साधारणीकरण न हो सकेगा। यही कारण है कि सफल ऐतिहासिक कहानियो में वातावरण उपस्थित करने के लिये देश-काल और परिस्थिति का विशद् वर्णन प्रस्तुत किये जाते है। आधुनिक कहानियो में

इन तीनो के वर्णन और चित्रण एक साथ एक गति मे की जाती है और इस प्रवृत्ति का सामूहिक प्रभाव वातावरण प्रस्तुत करने से परम सफल सिद्ध हुई है। प्रसाद ने अपनी ऐतिहासिक कहानियो मे प्राय देश-काल और परिस्थिति का चित्रण अलग अलग अंशो मे करने का प्रयत्न किया है, लेकिन आज की कला मे इसी दिशा मे विकास हुआ है और इन तीनो तत्वो के सामूहिक प्रस्तुतीकरण से कहानी मे वातावरण की प्रतिष्ठा बहुत कलात्मक ढंग से हुई है: उदाहरण स्वरूप :

"वह नहा रही थी, ऋतु न गरमी की न सरदी की। इसलिए अपने आँगन मे निश्चिन्तता के साथ नहा रही थी। छोटे-से घर की छोटी-सी पौर के किवाड भीतर से बद कर लिए थे, घर की दीवारें ऊँची न थी, घर मे कोई था नही, इसलिए वह मौज के साथ नहा रही थी। सुन्दरी थी, युवती, गोरी नारी। पानी के साथ हँसते-मुस्कराते अठखेलियाँ कर रही थी।

पठान बादशाह शेरशाह सूरी का शाहजादा इस्लाम शाह झूमते हुए हाथी पर सवार उसी घर के सामने वाली सडक से चला आ रहा था। कारचोबी, जरीदार की अम्बरी, सुनहला रुपहला हौदा, गहरे हरे रंग की चमकती हुई मखमल की चाँदनी, हौदे पर चमकते हुए मोतियो की झालरें, चाँदनी के सुनहले बेल-बूटो से दमक मे होड लाने वाली।"

उपर्युक्त अवतरण मे एक ही गति मे देश-काल और परिस्थिति के चित्रण से कहानी मे पूर्ण सफलता से वह वातावरण प्रस्तुत हो गया है, जिस का मुख्य संबध कहानी की मूल संवेदना से है।

आधुनिक सामाजिक कहानियो मे देश-काल-परिस्थिति के अंतर्गत परिस्थिति तत्व के चित्रण मे अपूर्व बल दिया जाता है। इस के चित्रण मे इतनी व्यापकता आती जा रही है कि एक ओर इस के अतर्गत देश-काल के वर्णन की अभिव्यक्ति अत्यन्त व्यजनात्मक रूप मे हो जाती है, और दूसरी ओर इसकी विशदता से कहानी मे ऐसा सुगठित वातावरण प्रस्तुत होता है जिस के सफल परिपार्श्व मे कहानी की समूची सवेदना, पात्रो की गति के साथ पाठक के सामने चित्रित हो जाती है। अतएव आधुनिक कहानी-कला के अंतर्गत मुख्यतः परिस्थिति के चित्रक द्वारा कहानी के वातावरण की अवतारणा कर देना इस की शैली की विशेषता है। इस का कारण यह है कि आज की कहानी-कला प्राय: व्यक्ति के चरित्र के धरातल से निर्मित होकर अपने वास्तविक स्वरूप मे पूर्ण मनोवैज्ञानिकता की ओर विकसित हो रही है। अतएव इस मे वातावरण प्रस्तुत

करने के लिये मुख्य. परिस्थिति के चित्रण की ओर ध्यान दिया जाता है, देश-काल की ओर बहुत ही कम । वस्तुतः इन दोनो तत्वो के चित्रण अपने व्यंजनात्मक रूप मे परिस्थिति चित्रण मे स्वय ही हो जाते हैं जैसे—

"हेमन्त कई क्षण तक चुपचाप बालू की ओर देखता रहा यह नही कि उस के मन मे शून्य था, यह भी नही कि मन की बात कहने को शब्द बिल्कुल ही नही थे केवल यही कि बालू पर उसके अपने पैरो की जो छाप हुई थी गीली बालू जो चिकनी माटी की तरह होती है उसमे उसके लिए एक आकर्षण था जिसमे निरा कौतूहल नही, जिज्ञासा की एक तीखी तात्कालिता थी । छालियाँ उसके पास तक आकर लौट जाती थी क्या कोई बडी लहर आकर उस छाप को लील जायगी । क्या एक लहर मे वह छाप मिल जायगी, न कि केवल हल्की पड जायगी मिटने के लिये कई लहरो को आना होगा जिन लहरो को पैदा करने के लिए समुद्र की, पृथ्वी की आन्तरिक हलचल की चन्द्र, सूर्य तारागण के आकर्षण की एक विशेष अन्योन्य सबद्ध स्थिति को बार-बार आना होगा . . क्या उस का एक एक अनैच्छिक पद-चिह्न मिटाने के लिए सारे विश्व चक्र के एक विशेष आवर्तन की आवश्यकता है ।

[अज्ञेय · जयदोल . वे दूसरे, पृष्ठ ७३]

उपर्युक्त अवतरण मे मुख्यत परिस्थिति-चित्रण के माध्यम से कहानी के आरम्भ ही मे कितने शक्तिशाली वातावरण की अवतारणा हो गई है । इस चित्रण मे कहानी की मनोवैज्ञानिकता पात्रो के आन्तरिक संघर्ष दोनो बाते स्पष्ट हैं । आधुनिक कहानी-कला मे स्थिति अथवा वातावरण के तत्व इस मे परम आवश्यक तत्वो मे से है । इस के माध्यम से कहानी मे एकातिक प्रभाव लाने की स्थिति उत्पन्न होती है और समूची कहानी मे वह आकर्षण और प्रेरणा आती है, जिस से मुक्त होकर कहानी का पाठक इस मे रत रहना है ।

शैली

कथा-वस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण कथोपकथन और वातावरण आदि कहानी-कला के विभिन्न तत्व हैं लेकिन शैली-तत्व, कहानी-कला की वह रीति है जो इस के तत्वों को अपने विधान मे उपयोग करती है । स्पष्ट शब्दों में शैली-

तत्व, कहानी-कला के समस्त उपकरणो के उपयोग करने की रीति है। इस मे एक तरह से विधान की व्यजना है। वस्तुतः कहानी-कला मे रूप विधान का चातुर्य और हस्तलाघव का सब से बडा प्रमाण देना पडता है। एक तरह से इस कला मे इस के भाव-पक्ष की सफलता और उत्कृष्टता इस के कला-पक्ष के आधीन है और कला-पक्ष के अन्तर्गत इस का शैली तत्व सबसे महत्वपूर्ण है क्योकि कहानी कला मे हस्तलाघव और विधानात्मक सफलता इस के दो मुख्य शर्तें है।

अध्ययन की दृष्टि से शैली-तत्व के अन्तर्गत इस के दो पक्ष आते हे प्रथम भाषा पक्ष, द्वितीय रूप विधान पक्ष। भाषा शैली कहानीकार के मनोभावो की अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन है इसी के आधार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अनेक कहानी सरल, सुबोध और सरल शैली मे है तथा अमुक कहानी गूढ़, अस्पष्ट और दुर्बोध शैली मे है। अतएव कहानी की भाषा शैली मे गद्य का महत्व सब से अधिक है। गद्य मे शब्द और वाक्य योजना की स्वाभाविकता और भावो के साथ इस का गठन और सयम इस की परम विशेषता है। कहानी के गद्य मे शब्द-चयन और वाक्य-योजना ही भाषा की वह कलात्मकता है जिस के विविध प्रयोग और रूपो से कहानीकार अपने भाव-चित्र को मूर्त्त करता रहता है। शब्द-शक्ति का ज्ञान उस की गभीरता और सयम तथा विषय और वस्तु के अनुकूल उस मे परिवर्तन, कहानी की भाषा शैली की मुख्य विशेषता है।

भाषा शैली

व्यापक रूप से प्रत्येक कहानीकार की अपनी अलग-अलग भाषा शैली होती है। प्रत्येक के गद्य मे अपना स्वतन्त्र सगीत, भाषा-सौष्ठव और शब्द-संयम होता है लेकिन प्रकार की दृष्टि से प्राय· तीन प्रकार की भाषा शैलियाँ होती है।

१. बोलचाल की भाषा शैली
२. गंभीर और परिष्कृत भाषा शैली
३. अलकृत, तत्सम भाषा शैली

इस के उदाहरण प्रेमचन्द से लेकर आज की कहानी भाषा शैली मे से कही से भी दी जा सकती है लेकिन निश्चित भाषा शैलियो के दृष्टिकोण से प्रथम के अन्तर्गत प्रेमचन्द, अश्क और यशपाल आदि की भाषा शैलियाँ आती हैं। द्वितीय के अतर्गत अज्ञेय, जैनेन्द्र कुमार और तृतीय के अन्तर्गत ऐतिहासिक कहानीकार जयशङ्कर प्रसाद।

उदाहरण

१. "विरला ही भला कोई आदमी होगा जिसके सामने बुढिया ने दुख के आँसू न बहाये हो। किसी ने यू ही ऊपरी मन हूँ-हाँ करके टाल दिया, किसी ने उस अन्याय पर जमाने की गालियाँ दी और कहा कब्र मे पाँव लटके हुए है आज मरे या कल दूसरा दिन हो पर हवस नही मानती। अहा तुम्हे क्या चाहिए। रोटी खाओ और अल्ला का नाम लो तुम्हे खेती बारी से क्या काम।

[प्रेमचन्द पच परमेश्वर]

"दूर कही मुसलमानो के मुहल्ले मे मुर्ग ने अजान दी। चौक कर शकरी उठी। उसने अपने सब गहने उतार कर ट्रक मे बन्द किए, कपडे बदल, फिर तह लगा कर रखे और दबे पाँव ऊपर पहुँची। चाँद तब दायी ओर के ऊँचे मकान की ओर चला गया था और चारपाइयो पर हलका-सा अधेरा छा गया था। चुपचाप शंकरी अपनी चारपाई पर जा लेटी।"

[उपेन्द्रनाथ 'अश्क' . अङ्कुर]

२ "अभिमान? स्त्री का क्या अभिमान? और अगर करे ही तो कनिष्ठा करे जो उत्तराधिकारिणी होती है। वह तो सबसे बडी थी, केवल उत्तर-दायिनी। हीली के ओठ एक विद्रूप की हँसी से कुटिल हो गये। युद्ध की अशान्ति के इन तीन-चार वर्षों मे कितने ही अपरिचित चेहरे देखे थे, अनोखे रूप, उल्लसित उच्छ्वासित, लोलुप, गर्वित, याचक, पाप सकुचित, दर्प स्फीत-मुद्राएँ, और वह जाती थी कि इन चेहरो और मुद्राओ के साथ उसके गाँव की कई स्त्रियो के सुख दुख, तृप्ति और अशान्ति, वासना और वेदना, अकाक्षा और सन्ताप उलझ गए। यहाँ तक कि वहाँ के वातावरण मे एक पराया और दूषित तनाव आ गया था।"

['अज्ञेय' . हीली बोन की बत्तखे]

"इसके मन का सब सँशय भाग गया। अभाव विलुप्त हो गया। अशेष प्रश्न, उसका जी मानो चारो दिशाओ को एक साथ अभिवादन देना चाहता है। सब ओर उसे प्रीति, सब ओर उसे मगल है। इस प्रभातकालीन ऊषा के प्रकाश मे अपने जयराज को देखा। कौन उसके लिए आज वर्जित हैं, कौन उसके लिए आज निषिद्ध है। किसके साथ पार्थक्य उसके लिए अनिवार्य है।'

[जैनेन्द्र कुमार : एक रात]

३. "उद्यान की शैलमाला के नीचे एक हराभरा छोटा-सा गाँव है। बसन्त का सुन्दर समीर उसे आलिंगन करके फूलो के सौरभ से उसके झोंपडे को भर देता है। तलहटी के हिम शीतल करने उसको अपने बाहुपाश मे जकडे हुए है। उस रमणीय प्रदेश मे एक स्निग्ध सगीत निरन्तर चला करता है, उत्पन्न करता है।"

[जयशङ्कर प्रसाद : बिसाती]

उक्त विविध शैलियो के प्रयोग से कथा-वस्तु के प्रवाह और पात्रो की स्वाभाविकता मे अन्तर पडता है। स्थिति और पात्र के अनुकूल कहानी की भाषा का होना अत्यन्त आवश्यक है, यही कारण है कि बोलचाल की भाषा शैली का महत्व कहानी मे अत्यधिक है। गभीर तत्सम् भाषा शैली मे प्रायः कृत्रिमता आ जाती है।

रूपविधान अथवा रचना विधान पक्ष

शैली के रूप विधान पक्ष के अन्तर्गत कहानी-निर्माण की विभिन्न प्रणालियाँ आती है, जैसे :

१ कथात्मक शैली	२. आत्मचरित्र शैली
३. पत्रात्मक शैली	४ डायरी शैली
५ नाटकीय शैली	६ मिश्रित शैली

कथात्मक शैली

इस शैली के अन्तर्गत कहानीकार एक कथावाचक की भाँति पूर्णतः तटस्थ हो कर कहानी की सृष्टि करता है। यह सृष्टि पूर्ण वर्णनात्मक ढग की होती है, अतः समूची कहानी का सूत्रधार स्पष्ट रूप से कहानीकार होता है और इस का नायकत्व 'वह' अथवा किसी अन्य पुरुष को दी जाती है। कथावाचक की भाँति कहानीकार पात्रो के वर्णन, घटना के चित्रण और कहानी के समस्त तत्वो को अपनी वर्णनात्मिकता मे समेट कर कहानी को पूरा करता है। स्थान-स्थान पर बौद्धिक विवेचन, भावात्मक वर्णन और विश्लेषण आदि को भी स्थान मिलता है। इस तरह समूची कहानी वर्णन-कथन के माध्यम से सुगठित की

जाती है। ऐतिहासिक शैली कहानी की समस्त शैलियों में सब से अधिक सरल, सुगठित और बोधगम्य शैली है। यह कहानी कहने की सब से आदि और प्रचलित शैली है। इस मे वर्णनात्मकता के माध्यम से कहानी की समूची गति-विधि कार्य-व्यापार अन्य पुरुष मे अभिव्यक्त होती है, जैसे,

"बेदो गाँव मे महादेव सोनार एक सुविख्यात आदमी था। वह अपने सायवान मे प्रातः से सध्या तक अगीठी के सामने बैठा हुआ खटखट किया करता था। लगातार ध्वनि सुनने के लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारण वह बद हो जाती, तो जान पडता था, कोई चीज गायब हो गयी है।"

[प्रेमचंद : आत्माराम]

और इस तरह कहानी कार समूची कहानी को सुना जाता है। इस के विकास मे वह कभी भी स्थिति-विवेचन और चरित्र-चित्रण करता रहता है। प्राकृतिक वर्णन और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व आदि की भी अभिव्यक्ति वह इन्हीं वर्णनो के माध्यम से करता है। इस मे कहानीकार को सब से अधिक स्वतंत्रता और सुगमता प्राप्त होती है, यही कारण है कि इस शैली का प्रचलन और प्रसार अन्य सब शैलियो की अपेक्षा अधिक है।

आत्मचरित्र शैली

आत्मचरित्र शैली मे कहानीकार अथवा कहानी का कोई पात्र 'मैं' के धरातल से आत्मवर्णन और आत्मचित्रण के द्वारा पूरी कहानी कह डालता है। इस तरह समूची कहानी मे से केन्द्रित और प्रेरित हो कर इसी की सीमा मे वर्णित होती है, यही कारण है कि इस शैली को उत्तम पुरुषात्मक शैली भी कहते हैं। रूप विधान की दृष्टि से इस के अन्तर्गत तीन शैलियाँ हैं। यथा :

१. कहानी का मुख्य पात्र आरम्भिक से अन्त तक सम्पूर्ण कहानी स्वय कहता है, जैसे, इलाचंद्र जोशी की, 'दीवाली और होली' शीर्षक कहानी—"आज प्रातः भ्रातृ द्वितीया के बाद का तीज है। तीन दिन तक काम की भीड थी। आज अवकाश का दिन है। प्रातःकाल के कामो से छुट्टी पा कर सब को खिला-पिलाकर, स्वय खा-पीकर अपने कमरे मे चारपाई पर बैठ कर खिडकी से बाहर का दृश्य देख रही हूँ।"

२. कहानी के विभिन्न पात्र क्रमशः आत्मवर्णन अथवा आपबीती कथा सुनाते है, और सब की आत्मकथाओ के समन्वय से समूची कहानी, अपनी पूरी

एकसूत्रता से निर्मित हो जाती है, जैसे, सुदर्शन की 'कवि की स्त्री' और उपेन्द्रनाथ अश्क की 'चित्रकार की मौत' शीर्षक कहानी जिस मे लालचद, जगत किशोर और राधारानी अपनी-अपनी आत्मकथाओ द्वारा एक समूची सवेदना की सृष्टि करते हैं और कहानी अपने सम्यक रूपो मे सफल होती है।

६ कहानीकार स्वय आत्म-भाषण के रूप मे समूची कहानी पूरी करता है। कलात्मक दृष्टि से उस का 'मै' कहानी का मुख्य पात्र बन जाता है और वह अपनी आत्मकथाओ मे कहानी के अन्य पात्रो का भी समेट कर चलता है : जैसे, अज्ञेय की 'मसो' शीर्षक कहानी :

जब उस दिन एक विचित्र विस्मय से भर कर अपने झोपडे के द्वारा पर आते ही मैंने अपने हाथो को हथकडियो मे बंधे हुए पाया, तब उस अनहोनी, यद्यपि चिर अपेक्षित घटना के दबाव के बीच में भी, मैंने यह सोचा था कि इस विघ्न द्वारा कुछ पूर्ण हो गया है कुछ ऐसा जिस का और कोई अन्त मे सोच नही पाता था।

इस शैली के अन्तर्गत मे चरित्र का आत्म-विश्लेषण उत्कृष्ट ढग का होता है। उस के अन्तस्तल के अमूर्त्त से अमूर्त्त तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों, अन्तर्द्वन्द्वो की अभिव्यक्ति स्वाभाविकता से हो जाती है। जिन कहानियो मे एक ही पात्र का विश्लेषण करना हो, उस के लिये यह शैली उत्कृष्ट है।[१] रूप विधान की दृष्टि से इस शैली के अन्तर्गत कहानीकार आत्मकथा अथवा स्वगत-भाषण की सीमाओ मे रह कर कहानी की पूरी संवेदना उस के आरोह-अवरोह की पूर्ति करनी पडती है, फिर भी कहानी मे सहज कुतूहल और पाठक के लिये आकर्षण को अक्षुण्ण रखना, कहानीकार का प्राथमिक उत्तरदायित्व रहता हैं। आधुनिक कहानी-कला मे इस शैली का प्राथमिक उत्तरदायित्व रहता है। आधुनिक कहानी-कला मे इस शैली का अपूर्व प्रचलन और प्रसार है, क्योकि आज की कहानी-कला का मुख्य धरातल मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत मनोविश्लेषण की पद्धति ने आधुनिक कहानीकारो को असीम वर्ण्य वस्तु का क्षेत्र दिया है और वह आत्म-विश्लेषण के माध्यम द्वारा उन्हे सहज गति से अपना रहा है। आधुनिक कहानी शैलियो मे यह शैली सब से अधिक सशक्त और प्रभाव-

---

[१] जिन कहानियों में एक ही प्रधान चरित्र होता है और अन्य सभी चरित्र गौण होते हैं, उन कहानियों के लिये यह शैली अत्यन्त उपयुक्त है।
: डा० श्रीकृष्णलाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृष्ठ ३४६

शाली है। मानव अन्तस्तल के गूढ़ से गूढ विषय और सवेदनाएँ इस शैली के द्वारा कहानी के रूप मे अभिव्यक्त हो रही हैं।

पत्रात्मक शैली

इस शैली मे कहानीकार पत्रो के माध्यम से कहानी की सृष्टि करता है। प्रभाव की दृष्टि से यह शैली अन्य शैलियो से असफल है। इस मे प्रयोगशीलता और कलात्मक आडम्बर ही अधिक है, कहानी की मूल आत्मा अप्रस्फुटित ही रह जाती है। यही कारण है कि इस शैली का प्रचलन और विकास बहुत ही कम हुआ है। इस शैली मे रूप विधानात्मक दो सीमाएँ उपस्थित होती है जिन के फलस्वरूप कहानी मे अस्पष्टता आ खडी होती है। प्रथम विभिन्न पत्रो मे कहानी की सवेदना बिखरी होने के कारण कहानी की एकसूत्रता नष्ट हो जाती है और कहानी मे वातावरण का निर्माण नही हो पाता, जिस से कहानी आकर्षण शून्य हो जाती है। द्वितीय कहानी के विभिन्न इकाइयो मे बँट जाने के कारण उस का सम्यक् विकास नही हो पाता, अतएव इस मे प्रभाव की शक्ति नष्ट हो जाती है। इस शैली के अन्तर्गत कहानी लिखने की तीन प्रणालियाँ हैं। यथा—

१ कई पत्रो के माध्यम से कहानी की सृष्टि की जाती है, जैसे, चद्रगुप्त विद्यालकार का 'एक सप्ताह', उपेन्द्रनाथ अश्क का 'नरक का चुनाव'।

२. एक ही पत्र के माध्यम से समूची कहानी का निर्माण, जैसे, विनोद शकर व्यास की 'अपराधी', इलाचन्द्र जोशी की 'चौथे विवाह की पत्नी'।

३. आरम्भ और विकास भाग की अभिव्यक्ति विभिन्न पत्रो के द्वारा की जाती है और कहानी का अन्तिम भाग स्वतंत्र विवेचन, विश्लेषण और वर्णनो द्वारा सम्पन्न होता है, जैसे, अज्ञेय का 'सिगनेलर' और उपेन्द्रनाथ अश्क की 'मरीचिका'।

प्रभाव की दृष्टि से पत्रात्मक शैली की उक्त तीसरी प्रणाली, प्रथम और द्वितीय की अपेक्षा उत्कृष्ट है। इस मे कहानी का एकातन्तिक प्रभाव और कहानीकार की आत्मानुभूति दोनो की यथासभव अभिव्यक्ति हो जाती है।

डायरी शैली

डायरी शैली वस्तुतः पत्रात्मक शैली का ही दूसरा रूप है। इसमे डायरी के विभिन्न पृष्ठो द्वारा सम्पूर्ण कहानी कही जाती है। इस शैली मे अतीत का वर्णन पूर्ण अनुभूति और भावुकता से किया जाता है। आत्मचरित्र शैली और

इस शैली मे बहुत सामीप्य है इस मे भी आत्म-विश्लेषण और विवेचन की सारी स्थितियाँ उत्पन्न मिलती है। इलाचन्द्र जोशी की प्रसिद्ध कहानी 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' और भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'अन्ना' इस शैली के सुन्दर उदाहरण है।

नाटकीय शैली

नाटकीय शैली के अन्तर्गत दो मुख्य शैलियाँ आती हैं, प्रथम, संलाप शैली, दूसरी वह शैली जो एकाकी नाटक के विधान को लेकर चलती है। वस्तुतः इस दूसरी शैली का प्रचलन आधुनिक कहानी-कला की देन है।

संलाप शैली

भोजन की थाली पर बैठे छोटे राजकुमार ने पूछा, माँ वह महल लाल पन्नो का है न ?

रानी ने कहा—कौन-सा महल बेटा ? यह तुम कुछ खा नही रहे हो। खाओ

राजकुमार ने कहा – माँ, सात समुन्द्र पार जो नीलम के देश की छोटी-सी रानी है। उनका महल लाल पन्नो का तो है न ?

माँ ने कहा—हाँ बेटा, लाल पन्ने का है, और उसमें हीरे भी लगे हैं और उस महल का फर्श......पर वह तो कहानी रात को होगी। अब तुम खाना खाओ।

[जैनेन्द्र कुमार : एक रात, 'राजपथिक', पृष्ठ १२३]

एकांकी नाटक शैली

और ठीक उसी समय स्त्री का पति प्रवेश करता है। पति जैसा ही उस का स्वर है, साधारण, न रूखा न मीठा, जिस में कुछ अपनाया भी है, कुछ उदासीनता भी लेकिन क्या अपनाया और उदासीनता प्यार के परिचय के ही दो पहलू नही हैं ?

पति—मालती

स्त्री—जी

पति—(चिढ़ता हुआ) अगर मैं बाहर खड़ा रहता, तो सोचता कि

न जाने कौन तुम से बाते कर रहा है। यह क्या पता था कि आप जूठ बरतनो से भी बातें कर सकती है।

स्त्री—नही-हाँ

पति—यानी इतनी तन्मय हो कर बात कर रही थी कि तुझे मालूम ही नही। कौन था आखिर वह मन मोहन सुध बिसरावन कौन...आया था ?

स्त्री—(अनयनी-सी) वसन्त।

पति—(न समझते हुए) कौन वसंत ?

[अज्ञेय : जयदोल, 'वसन्त', पृष्ठ ५१]

मिश्रित शैली

कहानी-निर्माण की एक शैली यह भी है, जिस मे अनेक शैलियो, जैसे, ऐतिहासिक, पत्रात्मक, डायरी, सलाप और आत्मचरित्र शैली आदि का सहारा लिया जाता है। जैसे अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी 'छाया' और 'कैसेन्ड्रा का अभिशाप', उपेन्द्रनाथ अश्क की 'पिंजरा', जैनेन्द्रकुमार की 'एक रात' आदि। रूप विधान की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियाँ मिश्रित शैली मे ही लिखी जा सकती है, क्योकि इस मे कहानीकार को इतनी विधानात्मक स्वतत्रता रहती है कि वह अपनी कहानी मे प्रभाव लाने के लिये, चरित्र-चित्रण और विश्लेषण आदि के लिये उन समस्त कहानियो का सदुपयोग कर सकता है, जो उस की अभिव्यक्ति के लिये पूर्ण सहज और शक्तिशाली सिद्ध होगी। इस शैली के माध्यम से कहानी मे सम्यक विकास और इस मे व्यापकता उपस्थित होती है। हिन्दी की प्रायः सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ इसी शैली के अन्तर्गत आती है। इस में न प्रयोग का आग्रह होता है न शैली की चमक-दमक, वरन् समूची कहानी पूर्ण संयम गंभीरता और अपूर्व प्रभाव की शक्ति लिये हुए पाठक के सामने आती है।

उद्देश्य

कहानी-कला के अन्तर्गत उद्देश्य इस का वह तत्त्व है जिस की मूल प्रेरणा से कहानी में इतने कलात्मक प्रयत्न, हस्तलाघव और विधानात्मक कुशलता के परिचय देने होते है। स्पस्ट रूप से समूची कहानी-कला का यह तत्व वह

अन्तिम लक्ष्य है, जिस की प्राप्ति के लिये कहानीकार अपनी कहानी में विविध प्रयोग करता है। समाज की नाना परिस्थितियो, समस्याओ के प्रति कहानीकार का अपना दृष्टिकोण और उन के प्रति उस के निदान, उस के निर्णय आदि कहानी के उद्देश्य बनते है, तथा इसी उद्देश्य के भाव-विन्दु पर कहानी का कथानक, चरित्र और शैली आदि की अवतारणा होती है। उन्ही उद्देश्यो को पूर्ण रूप से व्यजित और चरितार्थ करने के लिये कहानीकार का अपनी कहानियो का विभिन्न शैलियो और रूप विधानो के रखनी पडती है। क्योकि एक शैली मे उद्देश्य की एक ही दिशा सफलतापूर्वक चरितार्थ की जा सकती है और उस को कहानी के उद्देश्य तत्वो कहानीकार के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा' आधुनिक कहानी की सब से बडी विशेषता है। कहानी की शैली, कहानी के रूप विधान मे इतनी चाल, इतने हस्तलाघव केवल व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के लिये ही किये जाते है, अन्य लक्ष्य से नहीं।[१] कहानी का यह व्यक्तित्व इत ना व्यापक और महान है कि उस की इस सीमा मे समस्त मानव व्यापार, उस की समस्त समस्याये, विदान, और भाव स्वीकृत रहती है। अतएव कहानी के चरम उद्देश्य पर यह सत्य निश्चित है कि उस मे मानवता और मानव मूल्यो की व्याख्या होगी, मनुष्य के शाश्वत भावों अनुभूतियो और समस्याओ पर प्रकाश डाला गया होगा। इन विशेषताओ से शून्य कहानी किसी भी तरह आधुनिक कहानी नही कही जा सकेगी।[२]

कहानीकार के अपने इसी व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के अन्तर्गत कहानी मे यथार्थवाद आदि इकाइयाँ आती है। कभी-कभी उद्देश्य के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही प्रधान रूप से मिलती है और इसी अनुभूति के धरातल पर पूरी कहानी प्रतिष्ठित होती है। ऐसी कहानियाँ अपने एकान्तिक प्रभाव मे अत्यन्त

---

[१] The purpose of all these trick or conventions is to communicate personality which appering only to tell a story. Sean O' Faolain.

[२] I think it is safe to say that unless a story makes this subtle coment on human nature, on the permanat relatioship between people. Their variety, their expedness, it is not a story in modern sense—
Seam O' Faolain. Short Stories page 154

शक्तिशाली और उत्कृष्ट होती है। उन के उद्देश्य-बिन्दु मे जहाँ एक ओर मनोवैज्ञानिक अनुभूति मिलती है, वहाँ दूसरी ओर हमे एक ऐसे सत्य का दर्शन होता है जिस मे हमारे मनोविज्ञान, युग-चेतना और व्यक्तित्व-चेतना, तीनो का सामजस्य उपस्थित होता है।

कलात्मक दृष्टि से ऐसे उद्देश्यो की अनुभूति अत्यन्त परोक्ष रूप से कहानी मे करायी जाती है, तभी कहानी सफल हो जायगी, अपितु कहानी कहानी न रह कर प्रवचन और वार्ता हो जायगी। वस्तुतः जिस कहानीकार की अनुभूति, सवेदना, जितनी गहरी और महान होगी, उस की कहानी उतनी शाश्वत होगी, और जिस कहानीकार का उद्देश्य, उस का व्यक्तित्व जितना महान होगा, उस की कहानी उतनी ही महान होगी।

कहानियों का वर्गीकरण

कहानी-कला के मूल तत्त्वो मे कथानक, चरित्र, वातावरण ही इस के मुख्य तत्व है। इन्ही के सम्यक और आनुपातिक संयोग से कहानी की सृष्टि होती है। लेकिन कहानी-विधान की दृष्टि से सवेदना के अनुकूल कहानीकार कभी अपनी सृष्टि मे कथानक और कार्य-व्यापार को मुख्यता देता है, कभी पात्र और चरित्र-चित्रण की, कभी वातावरण की। इस तरह एक तत्व की प्रमुखता से प्रत्येक कहानी अपने रूप और प्रकार मे एक दूसरे से भिन्न हो जाती है, और सब मे अलग-अलग आकर्षण उत्पन्न हो जाते हैं। किसी मे इतिवृत्त अथवा कार्य-व्यापार की सुन्दरता रहती है, किसी मे चरित्र-चित्रण तथा उस के विश्लेषण और किसी मे वातावरण के आकर्षक का सुख मिलता है। इस भाँति विभिन्न तत्व की प्रधानता के धरातल से कहानियों का निम्नलिखित वर्गीकरण हो सकता है यथा—

१. कथानक प्रधान कहानी

२. चरित्र प्रधान कहानी

३. वातावरण प्रधान कहानी

४. विविध कहानियाँ

कथानक प्रधान कहानी

मूल्य की दृष्टि से कथानक प्रधान कहानी सब से साधारण कोटि की होती है। लेकिन व्यापकता और प्रसार की दिशा मे इस कहानी को सब से अधिक महत्व मिला है। कहानी अपने आविर्भाव युग मे मुख्यत इसी रूप मे थी और इस रूप का विकास आज तक की कहानियो मे मिलता आ रहा है। कथानक प्रधान कहानियो के, चरित्र प्रधान, घटना प्रधान और कार्य प्रधान तीन रूप होते है और तीनो रूप इस के मुख्य धरातल है, जहाँ से कहानीकार अपनी सवेदनाओ की कलात्मक अभिव्यक्ति उपस्थित करता है। चरित्र प्रधान कथानक मे चरित्र ही वह मूल केन्द्र होता है, जहाँ पर कहानी की मुख्य सवेदना स्थिर होती है। चरित्र का विकास, उस की सारी गति-विधि, कार्य-व्यापार ऐसी कहानी की मूल प्रेरणा होती है, जैसे, कौशिक की 'पावन पतित' प्रेमचद की 'आत्माराम' और यशपाल की 'उत्तराधिकारी' आदि कहानियाँ। 'उत्तराधिकारी' कहानी मे हरीस वह चरित्र है, जिस के केन्द्र-विन्दु से एक बहुत लम्बा और इतिवृत्तात्मक कथानक निर्मित होता है। हरीस गाँव मे छोड कर लाभ पर चला जाता है। बहुत वर्ष बीत जाते है, वह घर नही लौटता, इधर इसी बीच मे उस की पत्नी, मानी को किसी अन्य से बच्चा पैदा होता है। हरीस कुछ वर्ष बाद घर लौटता है और मानी तथा उस के बच्चे का खून करना चाहता है, लेकिन मानी सदा के लिये भाग जाती है। हरीस पुनः एक अन्य स्त्री, कुशली को अपने घर बैठाता है और उस से एक सतान की आकाक्षा में जीता है। परन्तु हरीस लडाई मे जख्मी हो जाने के कारण शारीरिक रूप से असमर्थ था, फिर उत्तराधिकारी कैसे आए। कुशली मेले मे जाती है, ईश्वर से सतान के लिये वरदान मागती है। वही उस से और गनेर सिंह से संबध हो जाता है। उसे गर्भ रह जाता है और वह गनेर सिंह की घरवाली बन जाती है। उसे बच्चा पैदा होता है। हरीस पचायत करता है और बहुत प्रसन्नता-सतोष से कुशली और उस के बच्चे को अपने घर लाता है। क्योकि हरीस को एक उत्तराधिकारी की अमिट इच्छा थी।

घटना प्रधान कथानक मे घटनाएँ ही कथानक-निर्माण मे मुख्य होती है। इन्ही घटनाओ के माध्यम से समूचा कथानक निर्मित होता है लेकिन ऐसे कथानक कलात्मक दृष्टि से बहुत निम्नकोटि के होते है। क्योकि इस का अधार मानव की शाश्वत समस्याएँ तथा मनोभाव न होकर केवल जीवन की बाह्य

घटनाएँ होती हैं। ऐसे कथानको के विकास मे दैव घटना और सयोग का विशेष सहारा लिया जाता है। 'कौशिक' की 'ताई' कहानी इस के उदाहरण मे सर्वश्रेष्ठ है। कार्य प्रधान कथानक, घटना प्रधान कथानक का ही एक विकसित रूप होता है। इस मे भी घटनाएँ आती है लेकिन कार्य-व्यापार की एक सूत्रता मे आती है अर्थात् कथानक मे कार्य-व्यापार की मुख्यता मिलती है और घटनाएँ उस मे साधन के रूप मे आती है। इस तरह ऐसे कथानको से निर्मित कार्य प्रधान कहानियो मे सब से अधिक मुख्यता कार्य-व्यापार पर दिया जाता है और इस के अन्तर्गत जासूसो, रहस्यपूर्ण तथा अद्भुत कहानियाँ आती हैं। इस प्रकार की कहानियो के प्रतिनिधि कहानीकार गोपालराम गहमरी और दुर्गा प्रसाद खत्री सर्वथा उल्लेखनीय हैं।

कथानक प्रधान कहानियो मे वर्णन और इतिवृत्त इस के दो प्रधान अग है। इस मे मानव की बाह्य उलझनो और कार्य-व्यापार पर बहुत बल दिया जाता है। चरित्रो की विविध परिस्थितियो मे डाल कर, उस से कथावस्तु के निर्माण तथा आरोह-अवरोह से कहानी की सृष्टि होती है। ऐसी कहानियो मे प्रवाह और कौतूहल तत्व की विशेष प्रधानता होती है, लेकिन कला की दृष्टि से कथानक प्रधान कहानियो साधारण स्तर की समझी जाती है।

चरित्र प्रधान कहानी

चरित्र प्रधान कहानियो का मुख्य उद्देश्य चरित्र-चित्रण और चरित्र-विश्लेषण होता है। अतएव इन कहानियो का मुख्य धरातल मनोविज्ञान होता है। उदाहरण के लिये प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कहानी—'कफन' चरित्र प्रधान कहानियो की दिशा मे अमूल्य देन है। गरीब बाप-बेटे, जाडे के दिनो मे बाहर अलाव के किनारे बैठे है। भीतर बेटे की पत्नी प्रसव-पीडा मे कराह रही है। लेकिन उसे देखने मात्र के लिये उन दोनो मे से कोई भी भीतर नही जाता। क्यो ?—इसलिए कि वे दोनो भूखे थे, और अलाव मे कुछ आलू भूने जा रहे थे। उन्हे डर था कि अगर कोई भीतर जाता, तो दूसरा अलाव से आलू निकाल कर खा जायगा। इसलिए दोनो वही बैठे रहे और असीम पीडा से सुबह होते-होते औरत मर जाती है। गरीब, निकम्मे, कामचोर, दोनो रोते हुए बैठे रहे। गाँव के लोगो ने कफन के लिये चन्दा करके उन्हे दिया और बाप-बेटे कफन खरीदने के लिये बाजार गये। भूखे, लालची और असन्तुष्ट—वे दोनो कफन के लिये

कपडा देखते-देखते शराब की दूकान पर पहुँचे। गोस्त खाये, चटपटे लिये और पूरे रुपये की दोनो ने शराब पी डाली और मदमस्त होकर यही नाचने-गाने लगे। इस कहानी मे उन दोनो भूखे, निकम्मे और नीच चरित्रो को स्पष्ट किया गया है। चरित्र के इतने सुन्दर और सत्य चित्रण के केन्द्र-विन्दु से पूरी कहानी निर्मित हुई है। इस कहानी मे कार्य-व्यापार, घटनाएँ और प्रसग बिल्कुल नाममात्र के लिये है, और जो कुछ है भी वे सब उन दो चरित्रो की छाया है, जिनसे वे चरित्र बिल्कुल स्पष्ट रूपये मे हमारे सामने खडे है।

विकास युग मे चरित्र प्रधान कहानियो के सर्वश्रेष्ठ लेखक प्रेमचन्द है। इन की कहानियो मे मनोविज्ञान अपने तात्विक रूप मे अधिक प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी कहानियो के सक्रान्ति युग मे मनोविज्ञान की उन्नति और उस से पायी हुई मनोविश्लेषण की पद्धति से चरित्र प्रधान कहानियाँ और भी सुदृढ तथा समुन्नत हुईं। जैनेन्द्र कुमार आधुनिक मनोविज्ञान के धरातल से चरित्र प्रधान कहानियों की सृष्टि के जन्मदाता है। अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी और यशपाल इस प्रवृत्ति के उन्नायको मे से है।

चरित्र प्रधान कहानियो मे चरित्र के बाह्य विश्लेषण की अपेक्षा अब चरित्र के आन्तरिक विश्लेषण की प्रतिष्ठा हुई। व्यक्ति की कर्म-प्रेरणाओ का विवेचन एक पैना दृष्टि से हुआ। चरित्र प्रधान कहानियाँ घटनाओ को छोड कर स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर हुई। इन मे विशुद्ध व्यक्ति विश्लेषण, आत्म विश्लेषण और मानसिक उहापोह की प्रवृत्ति आई। जैनेन्द्र कुमार की, 'एकरात', 'मास्टर जी', 'राजीव और भाभी', 'एक टाइप', 'मित्र विद्याधर', 'क्या हो', 'अज्ञेय की', 'छाया', 'साँप', 'मसो', 'नम्बर दस', 'सिगनेलर', 'पुलीस की सीटी', 'पुरुष का भाग्य', इलाचंद्र जोशी की, 'मैं', 'एकाकी', 'दुष्कर्मी' और यशपाल की 'एक राज', 'अगर हो जाता' 'कुल मर्यादा', उपेन्द्रनाथ अश्क की 'उबाल', 'पिंजरा', बैंगन का पौदा' और 'नासूर' आदि कहानियाँ इस क्षेत्र की प्रतिनिधि कहानियाँ है।

वातावरण प्रधान कहानी

कहानी कल्पना लोक की वस्तु न होकर जीवन की वस्तु है। जीवन स्वतः वातावरण सापेक्ष है। हमारे जीवन के कार्य-व्यापारो मे एक अलौकिक पश्चिआर्श्व और वातावरण की प्रेरणा होती है। इसी प्रेरणा को कहानी की संवेदना के साथ-साथ पूर्ण रूप से चित्रित करने से कहानी वातावरण प्रधान हो

जाती हे। वातावरण के निर्माण मे प्रकृति चित्रण, तथा रूप-चित्रण इस की मुख्य विशेषताएँ है। सामाजिक कहानियो मे वातावरण का निर्माण उस मे एकान्तिक प्रभाव और स्वाभाविकता के साथ-साथ सौन्दर्य की अवतारणा करती है और कहानी के चरम उद्देश्य का प्रभाव पाठक पर अनन्य ढग से पडता है, जैसे, 'प्रसाद' की 'बिसाती', 'बनजारा', 'आधी', 'प्रतिध्वनि' तथा प्रेमचद की 'अलग्योझा', 'पूस की रात' और 'गुलीडण्डा' आदि कहानियाँ इस दिशा की उत्कृष्ट देन है।

ऐतिहासिक कहानियो मे वातावरण की अवतारणा परम आवश्यक तत्व है, क्योकि बिना इस के कहानी मे न तो ऐतिहासिकता ही आ सकती है और न कहानी का वह चरम उद्देश्य ही चरितार्थ हो सकता है, जिस के आधार पर कहानी लिखी गई है। प्रसाद की प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ, जैसे 'देवरथ' 'सालवती', 'स्वर्ग का खडहर' और 'आकाशदीप' इस दृष्टिकोण से परम सफल कहानियाँ है। इन मे चित्र फलक, परिपार्श्व और वातावरण का इतना आकर्षण और वेग है कि पाठक कभी भी इन से दूर नही जा सकता तथा कहानियो से उस का सीधा साधारणीकरण होता जायगा। इन कहानियो मे वातावरण प्रस्तुत करने मे कहानीकार ने अपनी आश्चर्यजनक प्रतिभा का उदाहरण दिया है। फलत: इन कहानियो मे ऐतिहासिकता के साथ-साथ कलात्मक सौन्दर्य अपूर्व ढंग से प्रस्तुत हुआ है। वस्तुत: वातावरण-प्रधान कहानियो मे कवित्व-पूर्ण भा ाना, उस की कलात्मक अभिव्यक्ति, नाटकीय स्थितियो की अवतारणा और उन मे चरित्रो के सघर्ष, इस की मुख्य विशेषताएँ है। विकास युग मे इस दिशा मे 'प्रसाद' अद्वितीय है और सक्रान्ति युग मे 'अज्ञेय' और जैनेन्द्र कुमार। सक्रान्तियुगीन कहानीकला के अनुसार कहानी मे वातावरण प्रस्तुत करने के लिये नाटकीय स्थितियो को उत्पन्न करना और उन मे चरित्रो के सघर्ष की अभिव्यक्ति करना, इस की प्रधान कला है। विकास युग मे इस का संबध आदर्शवाद, स्वच्छन्दतावाद से था, लेकिन सक्रान्ति युग मे इस का सम्बन्ध यथार्थवाद मे है।

विविध कहानियाँ

उक्त तीन प्रकार की मुख्य कहानियो के अतिरिक्त हिन्दी कहानी-साहित्य मे कुछ ऐसी भी विविध ढंग की कहानियाँ है, जो अपने मे स्वतन्त्र है तथा वे उक्त किसी भी प्रकार मे नही आ सकती, जैसे प्रकृतवादी, प्रतीकवादी और सांकेतिक कहानियाँ।

हिन्दी मे प्रकृतवादी कहानियो के जन्मदाता बेचन शर्मा उग्र है। इन्होने अपनी कहानियो मे सामाजिक कुरीतियो, घृणास्पद और लज्जाप्रद वर्ण्य विषयो को लेकर समाज की तीखी, और व्यग्यात्मक आलोचना की है। संक्रान्ति युग मे यशपाल और 'पहाडी' इस प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार है। यशपाल मुख्यत: समाजालोचन के कहानीकार है और अनेक स्थलो पर प्रकृतवादिता की प्रेरणा से उन की कहानियो मे स्त्री-पुरुष सम्बन्धो को लेकर वर्णन हुए है, 'वो दुनियाँ' 'पिंजरे की उडान' और 'भस्मावृत चिनगारी' आदि कहानी सग्रहो मे कतिपय कहानियाँ इस के उदाहरण मे रखी जा सकती है। यशपाल की इन प्रकृत-वादी कहानियो मे समाजालोचन के पीछे निर्वैयक्तिक सामाजिक शक्तियाँ पूर्ण रूप से स्पष्ट हैं। पहाडी मे यह प्रकृतवाद सब से अधिक तीखे और वीभत्स रूप में व्यक्त हुआ है। इन्होने मुख्यत स्त्री-पुरुष के लैंगिक सम्बन्धो को लेकर काम वासना की अधिक से अधिक विकृतियो की अभिव्यक्ति अपनी कहा-नियो मे दी है। इस दिशा मे 'पहाडी' की 'विश्राम', 'केवल प्रेम ही', 'चार विराम', 'यथार्थवादी रोमान्स', 'छिपकली', 'एस्पिरीन की टेबलेट' और 'राजधानी' आदि कहानियाँ उपयुक्त उदाहरण है। विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से, अर्थात् कला-कला के लिये प्रकृतवादी कहानियाँ अत्यन्त सशक्त चरित्र-चित्रण मे पूर्ण सफल यथार्थवादी परम्परा की सजीव अभिव्यक्ति है। इन की कला सर्वथा निर्दोष है, लेकिन प्रभाव और उद्देश्य दोनो दृष्टियो से ये कहानियाँ कुरुचिपूर्ण और अमंगलकारी है।

प्रतीकवादी कहानियो का आरम्भ राय कृष्णदास से हुआ लेकिन उस का पूर्ण विकास संक्रान्ति युग मे जैनेन्द्र कुमार और 'अज्ञेय' की कहानी कला द्वारा हुआ। जैनेन्द्र ने अपनी 'लाल सरोवर', 'तत्सत्', 'वह साँप', 'कामनापूर्ति' 'राजपथिक', 'नीलमदेश की राजकन्या' आदि कहानियो मे विभिन्न प्रतीको के माध्यम से जीवन के अमृत तत्वो तथा सूक्ष्म सवेदनाओ को लिया है। अज्ञेय ने 'पैगोडा वृक्ष', 'पुरुष का भाग्य', 'चिडियाघर' और 'कोठरी की बात' आदि कहानियो मे प्रतीको के सहारे मानसिक सघर्षो के चित्र उपस्थित किये है। वस्तुत' प्रतीकवादी कहानियाँ अपने कलात्मक और भावात्मक दोनो रूपो मे उत्कृष्ट है। अमूर्त विषयो और मनुष्य के अन्त सौदर्य तथा मानसिक सघर्षो के चित्र इस मे प्रस्तुत हुए है।

साकेतिक कहानियो के जन्मदाता जैनेन्द्र कुमार हैं। इन्हो ने दृष्टात, वार्ता, और कथा-शैलियो मे जीवन की रहस्यवादी समस्याओ और दार्शनिक पक्ष

को लेकर और उनसे कहानियो की सृष्टिकर उपदेश और प्रवचन का काम लिया है। 'क पन्था', 'देवी-देवता', 'उर्ध्वबाहु', 'भद्रबाहु', 'गुरु कत्यायन' और 'नारद का अर्ध्य' आदि कहानियाँ इस दिशा की उत्कृष्ट कहानियाँ है। इन साकेतिक कहानियो मे वर्ण्य वस्तु की सूक्ष्मता, किन्तु उन की व्यजनात्मक अभिव्यक्ति दोनो उल्लेखनीय है। सियाराम शरण गुप्त की भी 'मानुषी' तथा 'कोटर और कुटीर', इस शैली की सफल कहानियाँ है।

कहानी-कला के मूल तत्वो और कहानियो के वर्गीकरण के निरूपण मे जो सब से विशेष बात है, वह है कहानी-कला का निरन्तर विकास और इस की मान्यताओं मे परिवर्तन और परिवर्द्धन।

●

उपसंहार

(क) कहानीकला और साहित्य के अन्य प्रकार

आधुनिक युग मे कहानी-कला को जितनी प्रमुखता मिली है, उस की तुलना मे साहित्य के अन्य प्रकार जैसे, उपन्यास, एकाकी नाटक, निबध, गद्यगीत, रेखा-चित्र, गीत और खडकाव्य आदि नही आ सकते। यह युग गद्य का युग हे, लेकिन गद्य साहित्य के भी अन्य प्रकारो मे जितना प्रचलन और व्यापकता इस कला को मिली है, वह अनन्य है। इस की शिल्पगत सुगमता और सरलता के अतिरिक्त इस मे आनन्द और मनोरंजन की संभावनाएँ अपेक्षाकृत सब से अधिक है। वस्तुत: इस सत्य का दर्शन हम कहानी-कला और साहित्य के उक्त अन्य प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से कर सकेंगे।

काहनी और उपन्यास

कहानी और उपन्यास कथा-साहित्य की दो विशिष्ट शैलियाँ है और समूचे गद्य साहित्य पर उन के प्रभाव अपूर्व है। लेकिन कहानी-कला का स्थान और इस की व्यापकता तथा लोकप्रियता उपन्यास से भी अधिक है। कहानी और उपन्यास के मूल तत्वो मे समानता है लेकिन दोनो की शिल्पविधि और रूप विधान मे अपार भिन्नता है। यह भिन्नता और अन्तर दोनो के धरातल और भाव परिधि मे ही हैं। उपन्यास का क्षेत्र विस्तृत है। इस मे हमारा सम्पूर्ण समाज, हमारा सम्पूर्ण जीवन, एक समूचा युग सगुंफित हो सकता है, क्योकि इस की परिधि अपार है। इस के विस्तार और प्रसार मे कोई विशेष सीमा नही। सौ पृष्ठो से लेकर हजार पृष्ठो तक मे उपन्यास की सवेदना फैली मिलती है, लेकिन उस के विपरीत कहानी का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। यह सम्पूर्ण जीवन के लिये किसी एक सत्य की ही दीप्ति दिखा सकती है।

उपन्यास मे जहाँ अनेक भाव अनेक रसो की निष्पत्ति होती है, वहाँ कहानी मे केवल एक ही विचार और एक ही भाव की अभिव्यक्ति हो सकती है। उपन्यास के निर्माण और विकास मे एक से अधिक सवेदनाएँ और एक से अधिक इतिवृत्ति तथा अनेक रूप की घटनाओ कार्य-व्यापारों की अवतारणा होती है, लेकिन कहानी के निर्माण और विकास मे केवल एक सूक्ष्म सवेदना, एक

सूक्ष्म इतिवृत्ति और एक ही मुख्य घटना की प्रेरणा होती है। इन के कलात्मक तादात्म्य तथा कौतूहल की उत्तेजना से कहानी कुछ ही क्षणो मे आरम्भ से चल कर अधिक से अधिक तीन चार घटनाओ के प्रवाह से अपने लक्ष्य के चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है, उपन्यास मे पात्रो और घटनाओ के समूह होते है, और पात्रो के चरित्र-चित्रण और विश्लेषण के लिये उपन्यासकार अधिक से अधिक घटनाओ की अवतारणा कर सकता है और इस से भी आगे बढ कर वह अपने उपन्यास मे जितने वर्णन, जितनी व्याख्या चाहे, कर सकता है। लेकिन कहानी-कला की इस दिशा मे कठिन सीमाएँ है, क्योकि मूल रूप से कहानी मे एक ही घटना विशेष, भाव विशेष और चरित्र विशेष की अभिव्यक्ति सीमित पात्रो और वर्णनो, चित्रणो मे होती है। इस मे न उतनी व्याख्या की सभावना है, न वादविवाद की। इस का कार्य दो संकेतो और व्यंजनाओ से होता है।

कहानी का प्रत्येक शब्द प्रत्येक वाक्य उस के केन्द्रैक्य और लक्ष्य-विन्दु से संबधित होता है और सबका सामूहिक प्रवाह कहानी के चरमोत्कर्ष की ओर बढता रहता है। अतएव कहानी मे उपन्यास की अपेक्षा आश्चर्यजनक गति, उत्तेजना और प्रवाह रहता है, जिस से आकर्षित होकर पाठक थोडे से थोडे समय तथा परिश्रम मे एक अद्भुत आनन्द और मनोरजन प्राप्त करता है। आधुनिक कहानी-कला में उत्तरोत्तर इतनी सूक्ष्मता और व्यजना का प्रादुर्भाव होता जा रहा है कि अब व्याख्या, वर्णन आदि का स्थान कम होता जा रहा है तथा मनोवैज्ञानिक अनुभूतियो और संवेदनाओं का अश बढता जा रहा है। ये दोनो कम से कम घटनाओ के अन्दर संगुफित किये जा रहे हैं। इन प्रयोगो की तुलना मे उपन्यास-कला बहुत पीछे पडती जा रही है, क्योकि आज के जीवन मे इतनी द्रुतगामिता और तेजी आ गयी है कि आज का बुद्धिजीवी पाठक सम्पूर्ण उपन्यास पढ़ नही पाता। वह कम से कम अवकाश और परिश्रम मे अधिक से अधिक आनन्द—मनोरंजन चाहता है। इसी माँग की पूर्ति के लिये आधुनिक समय मे वृहद् उपन्यास के स्थान पर 'नावेलेट'-लघु उपन्यास और 'लाग स्टोरी' लम्बी कहानी-लिखने की शैली आरम्भ हुई है।

कहानी और एकाकी नाटक

जिन सामाजिक शक्तियों और पाठक की मनोवृत्तियो के फलस्वरूप उपन्यास के आगे कहानी की अवतारणा और व्यापकता प्रस्फुटित हुई है उन्ही शक्तियो ने सम्पूर्ण नाटक के आगे एकाकी नाटक कला को सर्वग्राह्य सिद्ध किया है। अतएव

कहानी और एकाकी नाटक दोनो कलाओ का चरम लक्ष्य इस एक सन्धि-विन्दु पर समान है कि क्षणिक अवकाश मे हम अधिक से अधिक आनन्द और मनोरंजन प्राप्त कर सके। वस्तुत: इस लक्ष्य-विन्दु पर कहानी और एकाँकी दोनो को समान रूप से सफलता मिली है। कहानी और एकाकी नाटक-कला मे कथा-वस्तु, पात्र, और सँवाद आदि तमाम तत्वो के होते हुए दोनो कलावस्तुएँ अपने रूप विधान मे विभिन्न है।

एकाकी दृश्य काव्य के अन्तर्गत आता है। एकाकी से आनन्द और मनोरजन के लिये उन समस्त शिष्टाचारो को पूरा करना होगा जो एक सम्पूर्ण नाटक से आनन्द लेने की दिशा मे करना होता है : अर्थात् इस कला का सम्पूर्ण प्रभाव और इस की स्वय की सम्पूर्णता रगमच की समस्त आवश्यकताओ की अपेक्षा करता है। इस मे से किसी भी अग के अभाव से एकाकी नाटक की आत्मा मारी जाती है और इस मे सम्पूर्ण प्रभाव की सृष्टि नही हो सकती। लेकिन कहानी-कला इन समस्त मान्यताओ से निरपेक्ष और स्वतत्र है। यह प्रत्येक रूप और दिशाओ से सर्वजन सुलभ है। इस मे एकाकी नाटक की भाँति किसी की बाह्य स्थिति का प्रतिबन्ध नही है, परन्तु मूल तत्वो की दिशा मे एकाकी नाटक कहानी-कला के बिल्कुल समीप है। दोनो की तत्वगत मान्यताओ मे पूर्ण समानता है।

दोनो कलाएं एक ही सवेदना के धरातल से चलती है। दोनो ही कथा-वस्तुओ मे एक भाव और उस भाव से सबधित अनेक अनुभूतियाँ उस मे घनोभूत रहती है। ये अनुभूतियाँ घटना और पात्रो द्वारा व्यक्त होती रहती है। लेकिन एकाकी कला मे अपेक्षाकृत घटना से अधिक शक्तिशाली पात्र होते है।[१] क्योकि पात्रो के ही माध्यम से उन की गति-शीलता, कार्य-व्यापार से नाटक की घटनाएँ और घटनाओ से संबध सारी अनुभूतियाँ व्यजित होती है।

सभाषण एकाकी कला का मूल तत्व है। इसी मे एकाकी की सवेदना और उस की सारो गति निर्धारित होती है। कहानी-कला मे एकाकी के वे

---

[१] इसीलिए एकाकी में पात्र ही महारथी होता है। घटनाएँ रथ बन कर समस्या संग्राम मे उसे गति प्रदान करती हैं। मेरी दृष्टि पात्र प्रधान एकाकी कला की दृष्टि से अधिक शक्तिशाली हुआ करते हैं।

डा० रामकुमार वर्मा, भूमिका, ऋतुराज, पृष्ठ १४

सारे तत्व तो होते ही हैं, इन के अतिरिक्त इस कला मे वर्णन, विवेचन और चित्रण के अन्य अधिकार भी प्राप्त है। एकाकी-कला अपनी शिल्पगत मान्यताओ मे सीमित होकर अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचती है। कहानी-कला उसी धरातल से पूर्ण स्वतंत्र और अधिक से अधिक शिल्पगत अधिकारो के साथ अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचती है। अतएव कहानी-कला मे एकाकी-कला की अपेक्षा पूर्ण सुगमता और सरलता के साथ एकात प्रभाव, मनोरंजन और आनन्द प्रस्तुत करने की क्षमता अधिक होती है। आधुनिक कहानी-कला और एकाकी-कला उत्तरोत्तर एक दूसरे के समीप होती जा रही है। इस का सब से बडा कारण यह है कि रंगमच और अभिनय के अभाव से कहानी की भाँति एकाकी भी पढने के लिये अधिक लिखे जा रहे है।

कहानी और निबंध

किसी विषय अथवा समस्या को ले कर उस पर अपनी ओर से चिंतन, व्याख्या और विश्लेषण करने की व्यवस्था को निबध कहते है। इस मे एक भाव अथवा एक ही समस्या मुख्य होती है और उस पर व्यक्तिगत विचार प्रस्तुत करना निबंध-कला की शोभा है। इस तरह निबंध-कला व्यक्तित्व प्रधान होती है। यह तत्व वस्तुत: कहानी के तत्व के समान है अर्थात् निबन्ध और कहानी का भाव-पक्ष प्रायः समान होता है। लेकिन उस का प्रतिपादन और उस की कलात्मक अभिव्यक्ति दोनो कलाओ मे विभिन्न रूप से होती है।

कहानी-कला उस भाव अथवा समस्या के चित्रण विश्लेषण के लिये उस के अनुरूप एक कथावस्तु ढूँढेगी और उसे आकर्षण इतिवृत्त मे बाँधेगी। पात्रो और घटनाओं के माध्यम से उस मे आश्चर्यजनक सजीवता और गति पैदा होती है। कौतूहल जिज्ञासा वृत्ति से समूचे कहानी के कार्य-व्यापार मे आकर्षण उपस्थित होता है और अन्त मे कहानी अपने सामूहिक प्रभाव के साथ लक्ष्य के चरम उत्कर्ष पर पहुँच जाती है। इस प्रकार हमे सजीव और व्यावहारिक रूप से उदाहरण सहित किसी भी विषय और समस्या का हल, उस पर कलाकार का दृष्टिकोण ज्ञात हो जाता है। निबध मे इन कलागत तत्वो का अभाव रहता है इस मे केवल विषय समस्या से संबधित बौद्धिक विश्लेषण सूखे ज्ञान, तर्क और व्याख्या के अंश होते है।

कहानी और गद्यगीत तथा रेखाचित्र

गद्यगीत और रेखाचित्र से भी कहानी भिन्न है। गद्यगीत मे किसी भाव के धरातल से कलाकार की भावात्मक उडान होती है और रेखाचित्र मे किसी एक मानसिक स्थिति या चरित्र के आन्तरिक व्यक्तित्व को वर्णन और चित्रण की रेखाओ मे बाँधने का प्रयास होता है। कहानी-कला इन दोनो से महान् होती है, ये दोनो शैलियाँ और गद्य रूप उस के अन्तर्गत आते हैं अर्थात् कहानी के रूप-निर्माण मे गद्यगीत और रेखाचित्र की अवतारणा सदा होती रहती है और इन शैलियो से कहानी के रूप-निर्माण मे सहायता ली जाती है। उत्कृष्ट कहानियो म सदैव उस की कथा-वस्तु की पूर्ति, चरित्र-चित्रण, और वातावरण निर्माण के लिये इन शैलियो से निर्मित भाव-चित्र और रेखा-चित्र मिलते है। आधुनिक कहानी-कला मे रेखाचित्र शैली को कही-कही प्रमुखता मिल रही है, लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से अभी तक रेखाचित्र कहानी के समग्र सहायक तत्वो मे आती है।

कहानी और गीत

कहानी गीत से भिन्न है। गीत मूलत: भाव-जगत् की अनुभूतियो के आधार पर लिखा जाता है। उस मे कल्पना-तत्व के साथ-साथ सगीत-तत्व का तादात्म्य उपस्थित किया जाता है, लेकिन कहानी जीवन के धरातल से जीवन की आलोचना और सत्य-दर्शन से लिखी जाती है। इस मे चिन्तन, मनन और व्याख्या-विश्लेषण के तत्व होते है।

गीत मुक्तक काव्य के अन्तर्गत है अतएव इस मे घटनाओ, कार्य-व्यापारो की असम्बद्धता, अव्यवस्था आदि का कोई प्रश्न ही नही उठता, लेकिन कहानी शिल्पविधि प्रधान होती है और उस की शिल्पगत मान्यताओ के अनुरूप उस मे घटना की/क्रमबद्धता आवश्यक है, सत्य-दर्शन और जीवन की सजीव व्याख्या अपेक्षित है। गीत मे मूल रूप से एक भाव ही मुख्य है, जिस मे किसी कथा-वस्तु और उस की एक निश्चित सवेदना तथा लक्ष्य-विन्दु परम आवश्यक तत्व हैं।

कहानी और खण्डकाव्य

गीत मे कहानी-कला के अनुरूप जिन तत्वो का अभाव है, उन की कुछ और पूर्ति खण्डकाव्य मे हो जाती है अर्थात् इस मे एक निश्चित सवेदना और उस से निर्मित एक कथा-वस्तु होती है। कथा वस्तु का धरातल जीवन की किसी विशिष्ट घटना को बनाया जाता है। इस मे पात्र होते है और पात्रो से घटनाओ की अवतारणा होती है और सब का सामूहिक प्रभाव उस के लक्ष्य पर स्पष्ट होता है। लेकिन खण्डकाव्य और कहानी की निर्माण-शैली और रूपविधान मे बडा अन्तर है। कहानी मे इतिवृत्ति का जितना आकर्षण और कौतूहल के साथ वर्णन चित्रण का जितना बल होता है, वह खण्डकाव्य मे नही मिलता। यद्यपि प्रभाव और लक्ष्य की दृष्टि से खण्डकाव्य कहानी से कही अधिक महान और व्यापक है, फिर भी कहानी मे आकर्षण और सुगमता अधिक है।

(ख) कहानी के शिल्पविकास की मान्यता

पिछले पृष्ठो मे कहानी-कला के इतने व्यापक और विस्तृत अध्ययन से हम जिन निष्कर्षो पर पहुंचते है, वे ही निष्कर्ष कहानी-कला के उन समस्त मूल तत्वो से सबधित है, जो कहानी के शिल्प-विकास की विशिष्ट मान्यताएं है।

मानव जीनन मे कहानी का आदि स्थान है। ज्योही मनुष्य को बोलना आया होगा, उसी क्षण से किसी न किसी रूप मे कथा-कहानी का आरम्भ हुआ होगा। कौतूहल और जिज्ञासा, अर्थात् क्यो, कैसे की स्वाभाविक प्रवृत्ति ने इस के जन्म मे इतनी बलवती प्रेरणा दी होगी कि साहित्य के इस माध्यम ने बहुत ही शीघ्र मानव-समाज को अपने आकर्षक और अनिवार्यता की सीमा मे बाँध लिया होगा। कौतूहल और जिज्ञासा से परिपूर्ण कथा-सूत्र जब अपने रूप-विधान मे बहुत विस्तृत और अनेक कार्य-व्यापारो के साथ निर्मित हुआ, तब इस से कथा, आख्यान, और लम्बी-लम्बी कहानियो की सृष्टि हुई। इस के आधार पर कही प्रबन्ध काव्य रचे गए, कही इस के मेरुदड पर नाटक और नीति ग्रंथ प्रस्तुत हुए। इस से कही धर्मोपदेश दिए गए, कही दार्शनिक तत्वो के निरूपण और कही इस के माध्यम से विशुद्ध मनोरजन उपस्थित हुए।

ज्यो-ज्यो मनोरजन की वृत्तियाँ बढ़ती गयी, और आधुनिक जीवन मे द्रुतगामिता आती गयी, त्यो-त्यो कहानी के निश्चित शिल्पविधि का विकास होता गया। इस की सवेदनात्मक सीमा, रूप और शिल्पविधान मे उत्तरोत्तर पश्चिम की कहानी-कला के अनुरूप, गठन और मँजाव आता गया। इस की सवेदना मे पहले जीवन की एक लम्बी कथा आई, फिर धीरे-धीरे सीमा सकुचित हुई, और इस मे केवल जीवन की कुछ विशिष्ट घटनाएं आई और उन के प्रकाश मे मानव-जीवन की व्याख्या हुई। इस के उपरान्त नित्यप्रति के जीवन और उस की अलग-अलग समस्याओ मे से केवल एक समस्या, समस्या का भी एक अग और मूल घटना के आधार पर कहानी का निर्माण होने लगा। फिर शीघ्र ही विकास-क्रम से इस मे मनोविज्ञान का प्रवेश हुआ और इस के संविधान मे अनुभूतियो की प्रेरणा प्रधान हुई।

अध्ययन की दृष्टि से कहानी-कला के उक्त समस्त विकास क्रमो मे,

सौंदर्य और सत्य दर्शन ही इस कला का चरम लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की पूर्ति के साधन मे एक ओर शिल्प-विधान मे उत्तरोत्तर विकास होता चला आ रहा है, तथा दूसरी ओर कहानी-कला जीवन के अधिक से अधिक समीप आती जा रही है और अपनी सवेदनात्मक सीमा मे जीवन के विविध समस्याओ तथा अनेक दायित्वो को समेटती जा रही है। विशुद्ध भाव पक्ष की दिशा मे कहानी-कला का यह विकास स्थूल से सूक्ष्म की ओर जा रहा है। बाह्य समस्याओ से आन्तरिक समस्याओ के चित्रण और निदान प्रस्तुत करने मे कहानी-कला अग्रसर होती जा रही है।

विकास युग मे, अर्थात् प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानी-कला मे अपेक्षाकृत जीवन, जगत्, बाह्य परिस्थितियाँ, बाह्य समस्याएँ, और व्यापक रूप से जीवन अपने बहिरङ्ग रूप मे प्रतिपादित हुआ और जीवन का व्यावहारिक संतुलन उन की विषय-सीमा मे प्रतिष्ठित हुआ और जीवन के विविध अङ्गो पर सवेदनात्मक दृष्टि डालना उन की कहानी-कला का चरम लक्ष्य निश्चित हुआ। उस युग मे समकालीन सामाजिक राजनीतिक कुरीतियो के प्रति सुधार का उत्कट आग्रह तथा यथार्थ समस्याओ के सम्मुख आदर्श की प्रतिष्ठा राष्ट्रीय जागरण का जोश, कहानी-कला की विशिष्ट मान्यताएँ बनी। कथा-शिल्प की दृष्टि से घटना का प्राधान्य, इतिवृत्ति का स्पष्ट आकार और शिल्पविधान की स्पष्टता और सुगमता का प्राधान्य रहा।

लेकिन इस के उपरान्त अर्थात् सक्राति युग मे हिन्दी कहानी कला अपूर्व गति से नया रूप ग्रहण करने लगी। वस्तु और विधान दोनो की दृष्टि से उस ने नयी दिशाओ मे फैलना आरम्भ किया। इस के मूलत॰ दो कारण थे, प्रथम इस मे हिन्दी कहानी-कला का अमरीकी, फ्रासीसी, अँग्रेजी और रूसी कहानी-कला से सीधा सपर्क, द्वितीय, मनोविज्ञान की उन्नति और उस से पायी हुई विश्लेषण पद्धति का अनुसरण। फलत. इस युग मे आकर कहानी की मान्यताओ मे आमूल परिवर्तन हुए। इस युग की प्रतिनिधि कहानी लेखको की कला मे सुगठित घटनाक्रम, प्रभावोत्पादक स्थिति तथा सरल साधारण स्पष्ट चरित्र के लिए कोई विशेष आग्रह नही रह गया। जीवन की एक द्रुत झाँकी, स्वभाव, चरित्र या मनः स्थिति को एकाएक आलोकित कर देने वाली समस्या या घटना को ही आधुनिक कहानीकार अपनी कला का उपजीव्य बनाता है। स्पष्ट शब्दो मे कहानी-कला का मेरुदण्ड व्यक्ति अथवा चरित्र हो गया है। मानव मन कितना जटिल, उस के कर्म की अन्त प्रेरणाएँ किस प्रकार चेतन-अवचेतन के असमञ्जस्य

से दुर्बोध और रहस्यमय हो गयी है, इस सवेदना की व्यापकता कहानीकला मे होती जा रही है। इस प्रकार चरित्र के इन रूपो की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए कहानी-कला मे वे नये-नये रूपविधानो, शिल्पविधानो के विकास हुए। चरित्र की अन्त प्रेरणाओ तथा मानव मन की जटिलताओ को सामान्य शिल्पविधानो मे न बाँध सकने के कारण, कहानी कला मे रेखाचित्र, सूचनिका, झाँकी व्यङ्ग चित्र, अध्ययन चित्र, सस्मरण, खाके आदि रूप विधानो की अवतारणा हुई।

आधुनिक कहानी-कला मे मनोविश्लेषण तथा समाजशास्त्र के अन्तर्गत मार्क्सीय मत, यौनवाद आदि की प्रेरणाओ ने इस के लक्ष्य तथा अनुभूति मे महान् अन्तर उपस्थित किया। विकास युग के कहानीकार का लक्ष्य प्रतिपाद्य विषय, और उस की सवेदना स्पष्ट होती थी, क्योकि उन की नैतिक मान्यताएँ, आदर्श-सुधार का दृष्टिकोण निश्चित होता था।

लेकिन आधुनिक कहानीकार की दृष्टि अनेक अर्थों मे व्यापक हुई फलतः उस की कहानी कला मे व्यक्ति, समाज तथा अन्य मानवीय सम्बन्धो पर निश्चित विचार, स्पष्ट सहानुभूति तथा निर्णय देने की दृष्टि उलझ गई। उस की लक्ष्यात्मक दृष्टि मे झिझक उत्पन्न हुई। इस के स्थान पर कहानी मे आत्मविश्लेषण, आत्मचिंतन और मानसिक ऊहापोह बढा और कहानी अपने समग्र रूप मे अस्पष्ट और अस्थायी अवस्था से पूर्ण होने लगी अर्थात् आधुनिक कहानी बौद्धिक हो गई। दूसरी ओर कहानियो म अनेक मतवादो, मूल्यो और पद्धतियो के आरोप होने लगे। इस तरह हिन्दी कहानी कला प्रेमचद, प्रसाद के विकास युग से विकसित होकर आधुनिक युग मे आश्चर्यजनक प्रगति-विन्दु पर पहुँची।

परिशिष्ट (क)

कहानी शिल्प में कथानक का ह्रास

प्राचीन काल मे, नियमित समाज-व्यवस्थाओ मे जब मनुष्य को सुख-शान्ति से अर्जित अवकाश मिला और उस अवकाश को जब वह मनोरजक साहित्य के सहारे व्यतीत करने चला, तब उसे ऐसी सरल कथाएँ अपेक्षित हुई, जिनमे उसे न अपनी बुद्धि लगानी पडती थी न विशेष स्मरण-शक्ति, बस सहज कौतूहल के सहारे वह दैवी-अदैवी, स्वाभाविक-अस्वाभाविक घटनाओ और कार्य-व्यापारो के इतिवृत्त के पखो पर उड जाना चाहता था। लेकिन ज्यो-ज्यो मनुष्य के वही अवकाश के क्षण सीमित हो चले और जीवन सघर्षमय होने लगा, तब कलाकार ने कथा से आगे बढकर उसे कहानी-जैसी सुगठित कलात्मक वस्तु दी, जिसमे कथा को उसने बुद्धि-तत्त्व और शिल्प-चातुर्य से परिष्कृत करके कथानक बना दिया।

इस तरह मानव ज्यो-ज्यो विकास करता गया, कहानीकार उसके अनुरूप ही अपने कथानक-निर्माण मे उत्तरोत्तर प्रयोग करता गया और यह प्रयोग भावभूमि की दृष्टि से स्थूल-से सूक्ष्म की ओर और शिल्प की दृष्टि से क्रमश. घटना-क्रम के ह्रास की ओर बढ़ता गया।

हिन्दी-कहानियो के विकास के प्रथम चरण से लेकर आज तक की कहानी-प्रगति को देखने से कथा-तत्त्व मे यह ह्रास स्पष्ट होता चला गया है। लेकिन वह ह्रास भौतिक तत्त्वो के आधार से कहा गया है, विधानात्मक आधार से नही। शिल्प-विधि की दृष्टि से कथानक का भौतिक ह्रास कहानी-कला का उत्थान है, जहाँ कहानी अपने कथानक तत्त्व मे बाह्य उपकरणो से आगे बढ़कर आन्तरिक उपकरणो तथा स्थूल से सूक्ष्म तत्त्वो को क्रमशः अपना उपजीव्य बनाती चलती है।

हिन्दी-कहानियो मे कथानक का यह ह्रास बहुत ही क्रमिक और कुछ निश्चित विधानात्मक अवस्थाओ और कारणो के फलस्वरूप हुआ है।

प्रेमचंद और 'प्रसाद' के पूर्व हिन्दी की जितनी प्रारम्भिक कहानियाँ 'सरस्वती' के माध्यम से आई वे सब कथानक-प्रधान कहानियाँ है। इसका निश्चित कारण है। वस्तुत: इन कहानियो के कथानको पर एक ओर प्रायः

शेक्सपियर के सम्पूर्ण नाटको के इतिवृत्त की छाया पडी थी और दूसरी ओर इनके निर्माण सस्कृत के नाटको और लोक-कथाओ की कथावस्तु के आधार पर हो रहे थे। इनके उदाहरण मे क्रमश: किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती', गिरजादत्त वाजपेयी का 'पति का पवित्र प्रेम', केशवप्रसादसिंह-कृत 'चन्द्रलोक की यात्रा', लाला पार्वतीनन्दन-कृत 'प्रेम का फुआरा' आदि कहानियो के कथानक लिये जा सकते है। शैली, विस्तार और अपने सम्पूर्ण रूप-विधान मे उक्त कहानियो के कथानक कथा के समीप चले गए है। रामचन्द्र शुक्ल-कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानी का कथानक, कथा-तत्त्व की इतिवृत्तात्मकता, विस्तार और सम्पूर्णता का सबसे सुन्दर उदाहरण है। दैवी सयोग, आकस्मिकता और आश्चर्यजनक भाग्य-व्यापारो के बीच से कथानक निर्मित हुआ है और इस निर्माण-सूत्र मे तीन लम्बी-लम्बी कथाएँ (प्रथम, स्वय कहानीकार के मुख से, द्वितीय, कहानी के नायक के मुख से, तृतीय, कहानी की नायिका के मुख से) एक मे गुँथकर आई है। देश काल-परिस्थिति मे इस लम्बे कथानक का विस्तार क्रमशः गाँव के खण्डहर से लेकर बनारस तक, फिर बनारस से कलकत्ता तक, ग्यारह वर्ष की अवधि तक घूमता हुआ एक दैवी-सयोग बिन्दु पर समाप्त होता है।

कथानक का यही रूप-विधान आगे 'सरस्वती' के १९०९ तक के अंको मे प्रकाशित कहानियो-जैसे, बग-महिला-कृत 'कुम्भ मे छोटी बहू', चतुर्वेदी-कृत 'भूलभुलैया', लक्ष्मीधर वाजपेयी-कृत 'तीक्ष्ण छुरी', बंग-महिला-कृत 'दुलाईवाली', वृन्दावन लाल वर्मा-कृत 'राखीबन्द भाई' और 'तातार और एक राजपूत' आदि-मे मिलता रहता है।

उक्त समस्त कहानियो के कथानक कथा की-सी इतिवृत्तात्मकता, विस्तार और रूप-विधान लेकर इसीलिए आए है, क्योकि इस प्रारम्भिक विकास-काल मे वर्णनात्मकता के पुट से घटनाओ का विस्तार, सयोग और अप्रत्याशित कार्य-व्यापारो की प्रतिष्ठा से निर्मित कथा-सूत्र ही मे पाठक को आनन्द मिलता था। उसे कही से भी कथा-सूत्र के साथ चरित्र को देखने या आँकने की अपेक्षा नही थी। एक तरह से कथा-निर्माण की प्रक्रिया मे चरित्र यो ही आ जाते थे, उनकी कोई भी व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा नही थी। अस्तु इस काल की कहानियो मे मुख्यता केवल कथानको की थी, चरित्र की नही।

इसके उपरान्त कहानी-क्षेत्र मे चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, प्रेमचंद और 'प्रसाद' का आविर्भाव होता है।

यहाँ सर्वप्रथम कथानक और चरित्र की समान विशेषता मिलती है। यहाँ यह स्पष्ट हुआ कि बिना चरित्र-स्थापना के कथानक का सजीव निर्माण ही नही हो सकता। यहाँ यह भी पता चला कि कथा-सूत्र मे घटने वाली समस्त घटनाएं, कार्य-व्यापार, चाहे सयोग या अप्रत्याशित ढग से ही क्यो न सही, यो अपने-आप वर्णनात्मकता के माध्यम से नही होते चलते, वरन् चरित्र स्वय सामने आते है, कार्य-सूत्र अपने हाथो लेते है तथा जीवन-सग्राम और काल-चक्रो से थपेडे खाते हुए अपने अद्भुत किन्तु अत्यन्त मानवीय कथानक अपने-आप निर्मित कर जाते है। कहने का तात्पर्य यह नही कि गुलेरी-कृत 'उसने कहा था', 'सुख-समय जीवन', 'बुद्धू का काँटा' तथा 'प्रसाद' की प्रथम उत्थान की कहानियाँ, 'सिकन्दर की शपथ', जहाँनारा', 'अशोक', 'चित्तौर उद्धार' और प्रेमचद की प्रथम उत्थान कहानियाँ, जैसे, 'रानी सारन्धा', 'पाप का अग्नि-कुण्ड' 'नमक का 'दरोगा', 'पच परमेश्वर' और 'बडे घर की बेटी' आदि अपने कथा-विस्तार मे पहले से कुछ कम है। बल्कि पहले की अपेक्षा इन कहानियो के कथानक अधिक लम्बे, अधिक विस्तृत और अधिक देश-काल-परिस्थिति के साथ आए हैं। लेकिन इन कथानको मे पूर्ववर्ती कथा के तत्त्व (दैवी सयोग, अस्वाभाविकता, केवल वर्णनात्मकता) नही है। अर्थात् यहा कथानक कथा-तत्त्व के लिए इतने विस्तृत नही हुए हैं वरन् चरित्र-चित्रण के लिए कथानक को इतने विस्तार मे जाना पड़ा है। 'उसने कहा था' के लहनासिह और सूबेदारनी, जो बचपन मे एक बार बम्बूकार्ट वालो के बीच मे मिले थे, उनके सम्पूर्ण चरित्र-चित्रण के लिए कथानक को बम्बूकार्ट से फ्रास तक खिचना होता है, बचपन से युवा के पच्चीस वर्षों के अन्तराल को लाँघना पडता है। इस तरह यहाँ चरित्र के सम्पूर्ण जीवन को बाँधने मे तथा उसके चरित्र आँकने मे कथानक को इतना विस्तृत होना पडा है, केवल कथा-सूत्र के मनोरंजक विस्तार के लिए नही।

प्रेमचंद के प्रथम उत्थान की कहानियाँ, जो क्रमश: 'सप्त सरोज', 'नवनिधि' और 'प्रेम पचीसी' मे आई है, इनके कथानाको की लम्बाई और विस्तार पर तो आज आसानी से उपन्यास लिखे जा सकते है। एक-एक कथानक के निर्माण और विकास मे बीसो मोड तैयार किये गए हैं। लेकिन फिर भी इन कथानकों की लम्बाई घटना और कार्य-व्यापारो का इतिवृत्त नही, बल्कि विस्तृत जीवन की भावभूमि के खाके अधिक हैं। यहाँ कथानको का धरातल, विषय के एक प्रसंग के स्थान पर वह पूरा विषय होता था, जिसमे न जाने कितनी अन्य

सवेदनाएँ और जीवन की इकाइयाँ आ जाती थी। फलत कथानक स्वभावतः लम्बे और विस्तृत हो जाते थे, क्योकि इनकी लडी मे प्रेमचद एक समूचे परिवार, एकवश या व्यक्ति के जीवन का पूरा भाग गूँथते थे। यही कारण हे कि प्रेमचद को उक्त सग्रह की कहानियो के मूल कथानक के साथ सहायक कथानक भी कही-कही जोढना पडेता था।

प्रसाद की 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की उन कहानियो मे, ऐतिहासिक इतिवृत से निर्मित हुई हैं, कथानक का रूप-विधान प्राय प्रेमचद सा ही है। लेकिन प्रसाद की इस चरण की वे कहानियाँ जो कल्पना, भावुकता की भावभूमि से निर्मित हुई है, जैसे, 'प्रलय', 'प्रतिभा' 'दु:स्वप्न' और 'कलावती की शिक्षा, आदि, इनके कथानक अत्यन्त छोटे और सूक्ष्मता की ओर बढे है। इन कथानको मे सम्पूर्ण जीवन न लेकर जीवन का एक प्रसग लिया गया हे और उन प्रसगो मे भी एक विशिष्ट भावना का ही प्रधानन्य है, घटना या कार्य-व्यापार का नही।

प्रेमचंद के द्वितीय उत्थान-काल, 'प्रेम प्रसून' और 'प्रेम द्वादशी' आदि संग्रह की कहानियो के कथानक छोटे हुए हैं। अब कथानक मे सम्पूर्ण जीवन के स्थान पर जीवन का एक अंश लिया जाने लगा है और उस अश मे भी अब अधिक ध्यान चरित्र पर दिया जाने लगा है। कथानक मे अब उतने ही मोड, उतने ही कार्य-व्यापार और घटनाएँ आने लगी हैं, जिनसे चरित्र के जीवन का एक विशिष्ट अश प्रकाशित हो जाय।

और इस काल मे आकर कथानक के छोटे होने के पीछे चरित्र पर मनोविज्ञान की सफल और जागरूक प्रतिष्ठा कारण-स्वरूप है, प्रेरणा-रूप है।

प्रेमचद की 'बूढी काकी', 'शतरज के खिलाडी' 'मैकू', 'वज्रपात', और 'डिक्री के रुपये' आदि कहानियो के कथानक उतनी ही सीमा मे हैं, जितने से कहानी की मूल सवेदना और चरित्र का विशेष मनोविज्ञान सम्बन्धित हे। अतएव यहाँ सहायक कथानक अपने-आप नष्ट हो गए है। कथानको मे कही भी द्विपक्षता नही, उसके स्थान पर यहाँ सकेतो, व्याख्याओ और कथोपकथनो से कमा लिया गया है। य ाँ कथ ानको मे जीवन की एक इकाई, एक सवेदना और एक प्रसग लिया गया है, अस्तु कथानक छोटे हो गए है और उनके स्थान पर चरित्र उभर आए है। 'आत्माराम', 'बूढी काकी' 'मैकू' 'शतरज के खिलाडी' आदि कहानियो के कथानक हमे भूलने लगे हैं, लेकिन सुनार आत्माराम, भूखी बूढी काकी, और शतरंजबाज, मीर और मिर्जा साहब, हमे याद

रहने लगे हैं। और इस याद के पीछे उनके जीवन के एक पक्ष का मनोविज्ञान हमें हरदम अभिभूत किये रहता है।

'प्रसाद' के द्वितीय उत्थान-काल की कहानियाँ 'आकाश-दीप' की कहानियाँ है। 'आकाश-दीप', 'स्वर्ग के खण्डहर मे', 'चूडी वालो' और 'बिसाती' कहानियो के कथानक लम्बे अवश्य है, लेकिन नाटकीयता के साथ व्यजना किये हुए हैं। दूसरी ओर 'हिमालय के पथिक', 'प्रतिध्वनि', 'वैरागी', 'अपराधी' और 'रूप की छाया', आदि कहानियो के कथानक अत्यन्त छोटे और प्रासगिक हुए हैं।

'आकाश दीप', 'चूडी वालो' और 'बिसाती' मे मनोविज्ञान के आधार पर अन्तर्द्वन्द्व और मानवीय सघर्ष की प्रतिष्ठा हुई है और इन कहानियो के कथानक इसी मनोवैज्ञानिक सघर्ष के प्रतिरूप है, इन कथानको का अपना कोई मूल रूप नही। यहाँ कथानको मे जीवन की लम्बी-लम्बी सवेदनाएँ, और इतिवृत्त को एक छोटे से कथानक-सूत्र मे समेट लिया गया है और उनमे कौतूहल का चमत्कार पैदा कर दिया गया है। 'प्रसाद' ने यहाँ कथानक निर्माण मे एक नये कथानक-तन्त्र की सहायता ली है और इस तन्त्र-निर्माण मे उन्होने अपनी नाटकीयता, व्यजना और सन्दर्भ की सामूहिक सहायता ली है।

कथोपकथनो से कहानी आरम्भ करके कथानक मे द्वन्द्व पैदा करना, इसके उपरान्त वस्तुस्थिति को वर्णन या व्याख्या द्वारा स्पष्ट न करके सकेतो द्वारा स्पष्ट करना· फिर कथोपकथनो द्वारा अन्तर्द्वन्द्वो की अभिव्यक्ति और अन्त मे साकेतिक वर्णनो से कथानक को चरम सीमा पर सहसा छोड देना—कथानक की यही वस्तुस्थिति प्रसाद के तृतीय उत्थान-काल की कहानियो, जैसे, 'पुरस्कार', 'आँधी', 'नीरा', 'दासी', 'गुण्डा' और 'सालवती' आदि मे भी पाई जाती हैं।

प्रेमचद के तृतीय उत्थान-काल की कहानियो मे कथानक का रूप-विधान और भी कलात्मक हो गया है। इनके मुख्यत· तीन धरातल है—

१—किसी व्यक्ति के या समस्या के केवल एक पक्ष को धरातल मानकर, जैसे, 'कुसुम' 'गुल्ली डण्डा' और 'मिस पद्मा' आदि।

२—व्यक्ति के बाह्य सघर्ष और आन्तरिक मनोविज्ञान के प्रकाश मे उसके जीवन के लम्बे भाग को धरातल बनाकर, जैसे, 'दो कब्रे', 'अलग्योझा' और 'नया विवाह' आदि।

३—मनोविज्ञान की अनुभूति के धरातल से निर्मित कथानक, जैसे, 'कफ़न', 'मनोवृत्ति' और 'पूस की रात' आदि।

तीसरे धरातल के कथानक अत्यन्त छोटे और व्यंजनात्मक हैं, यहाँ लगता है, जैसे कोई मनोवैज्ञानिक बिन्दु ही कहानी-भर मे कथानक के नाम पर सूक्ष्म-सी रेखा बनाता गया हो।

प्रेमचद और प्रसाद युग के उपरान्त हिंदी कहानियो के विकास-क्रम मे जैनेन्द्रकुमार और अज्ञेय कला की दृष्टि से दो महान् क्रान्तिकारी और सफल लिपी कहानीकार आते हैं। इनके हाथो से कथानक के रूप-निर्माण और शैली मे आश्चर्यजनक प्रयोग हुए। यहाँ उनकी कला का मूल केन्द्र चरित्र बना और इसी चरित्र के मेरुदण्ड से इन्होने कथानक के प्रयोगो मे अपूर्व उद्भावनाएँ की। मुख्यता इसके दो कारण थे—

क मनोविज्ञान के विकास से उपलब्ध मनोविश्लेषण की पद्धति का प्रयोग होना।

ख. व्यक्तिगत चरित्रो की उद्भावना और अपने व्यक्तित्व मे उनका अधिक-से-अधिक अन्तर्मुखी होना।

जैनेन्द्र ने प्रेमचंद और प्रसाद कथानक-विधान से बहुत ही आगे बढकर अपने विधान को स्थूल उपकरणो से सूक्ष्मता की ओर बढ़ाया। इनमें सर्वप्रथम बाह्य से अन्तर लाने का आग्रह पूर्ण सफलता से स्पष्ट है। यही कारण है कि जैनेन्द्र की कहानी-कला मे कथानक-विधान के नये-नये कौशल,नये-नये प्रयोग हुए हैं और इनमे उन्हे आश्चर्यजनक हस्तलाघव का परिचय मिला है।

जैनेन्द्र की समस्त कहानियो का मेरुदण्ड चरित्र है और उस चरित्र का प्रतिष्ठा उन्होने मनोविज्ञान पर की है। इस दृष्टि से हम उनकी समस्त कहानियो को चार भागों मे बाँट सकते है—

प्रथम : जो व्यक्ति के जीवन के एक लम्बे पक्ष को लेकर लिखी गई हैं; जैसे, 'मास्टर जी'।

द्वितीय : जो एक रात या कुछ घण्टो के जीवन-चक्र के आधार पर निर्मित होकर चरित्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन उपस्थित करती हैं, जैसे, 'एक रात'।

तृतीय : जो चरित्र के विशिष्ट क्षेत्रो के आधार पर लिखी गई है और वे उसके जीवन के किन्ही विशिष्ट चित्रो की द्रुत झाँकी उपस्थित करती हैं, जैसे, 'क्या हो'।

चतुर्थ : जो मात्र चरित्र-विश्लेषण और अध्ययन के आधार पर लिखी गई हैं, जैसे, 'मित्र विद्याधर'।

प्रथम प्रकार मे कथानक सुस्पष्ट तथा अपने निश्चित इतिवृत्त के साथ आया है। यहा कथानक का निर्माण चरित्र के विकास-क्रमो और घटना-चक्रो के माध्यम से हुआ है। दूसरे प्रकार मे कथानक अत्यन्त बौद्धिक धरातल से निर्मित हुआ है। इसके विकास और निर्माण मे बाह्य कार्यव्यापारो की अपेक्षा मानसिक सूत्रो का सहारा लिया गया हे। अतएव ऐसे कथानक अत्यन्त सूक्ष्म हो गए है। इन्हे हृदयगम करने के लिए पाठक को भी पूर्ण जागरूक, बौद्धिक और सशक्त रहना होगा। तीसरे प्रकार के कथानक अपेक्षाकृत और सूक्ष्म तत्त्वो से निर्मित हुए है। वे कुछ क्षेत्रो की मन:स्थिति की आधार-शिला से मनोद्वेगो, घात-प्रतिघातो के साधन से व्यक्त हुए हैं। ये नाम-मात्र के कथानक है। वस्तुत: ऐसी कहानियो मे जैसे, कोई भाव ही फैलकर स्वय कहानी बन गया है और उसमे कथातत्त्व, चरित्र आदि इस तरह सकुचित हो गये हो कि इन सव तत्त्वो की अपनी स्वतन्त्र सत्ता ही एक-दूसरे मे खो गई हो। 'क्या हो' मे सब-कुछ स्मृति-चिन्तन द्वारा ही किया गया है, लेकिन फिर भी कथानक-तत्त्व इतने सूक्ष्म स्वरूप मे होता हुआ भी अपने मे इतना वेग रखता है कि सपूर्ण कहानी, जैसे किसी अग्निशिखा-सी प्रतीत होती हो, जो किसी तूफान की गति मे जलती-जलती सहसा टूट जाती है। चौथे प्रकार मे एक तरह से कथानक का पूर्णह्रास हो गया है, क्योकि ये कहानियाँ चरित्र की आन्तरिकता के रेखा-चित्र है, फलत: यहाँ सूक्ष्म भावो, मनोविकारो को स्थूल कथानक मे समेटा ही न जा सका है।

कुछ अर्थों म अज्ञेय इस दिशा मे जैनेन्द्र से भी आगे बढ़ गए है। यद्यपि यह सत्य है कि कथानक-विधान मे सबसे पहले क्रान्ति जैनेन्द्र ने ही की है और इसमे प्रयोग के अनेक मार्गों की सम्भावना उपस्थित की है, अज्ञेय ने मुख्यत: व्यक्तिगत पहलू को अपनी कला का केन्द्र बनाकर अपनी सब तरह की कहानियाँ लिखी है। इनकी कहानियो की चार विभिन्न कोटियाँ है—पहली कोटि मे, सामाजिक आलोचना-सम्बन्धी कहानियाँ है, दूसरी मे राजनीतिक बन्दीजीवन-सम्बन्धी, तृतीय—चरित्र विश्लेषण-सम्बन्धी, और चतुर्थ—प्रतीको के सहारे मानसिक संघर्षों के अध्ययन-सम्बन्धी। अज्ञेय ने कथा-विधान मे नूतन प्रयोग अपनी इन्ही तृतीय और चतुर्थ कोटि की कहानियो मे किया है।

अगर चरित्र संश्लिष्ट है, उसकी मन स्थिति मे गूढ ग्रथियाँ हैं, तो कहानी मे ऐसे चरित्रो को बाँधने के लिए उन कथानको की रचना हुई है, जिनके विधान मे उस चरित्र से संबंधित अनेक कर्म-प्रेरणाओ के विवरण दिये गए हैं। 'पुरुष का भाग्य' मे एक ऐसे स्त्री-चरित्र का विश्लेषण किया गया है जो राह

चलते-चलते इस नगण्य सयोग से कँपकर गिरने लगी थी कि उसका पैर एक बच्चे के गीले पैर की छाप पर पड गया था।

प्रतीको के सहारे मानसिक सघर्षों के चित्र प्रस्तुत करने वाली कहानियो मे भी कथानक विधान दो ढग से प्रयुक्त हुए है—

प्रथम : व्यक्ति के आत्म-चिन्तन, तथा उससे सम्बन्धित भूत, वर्तमान और भविष्य की अनेक स्फुट समवेदनाओ के तादात्म्य से, जैसे, 'पठार का धीरज', 'सिगनेलर' और 'नम्बर दस' के कथानक।

द्वितीय : चिन्तन और छोट -छोटी घटनाओ के मेल से, जैसे, 'साप', 'कोठरी की बात' और 'पुलिस की सीटी' आदि के कथानक।

कथानक-विधान का यही स्वरूप इलाचन्द्र जोशी की उन कहानियो मे सफलता से मिलता है जो व्यक्ति के अह-विश्लेषण और अहं की एकान्तिकता पर निर्भय प्रहार के लक्ष्य से लिखी गई हैं, जैसे, 'मै' 'मिस एल्किन्स', 'रात्रिचर', 'पागल की सफाई' और 'मेरी डारी के दो नीरस पृष्ठ'। इन कहानियो मे कथानक अपने व्यजनात्मक रूप मे केवल भावो, मनोद्वेगों के विश्लेषण के बीच मे चला है। 'मैं' मे तो कथानक ही नहीं है, बस केवल आत्म-विश्लेषण के आधार पर चिन्तन की एक स्फुट झाँकी है। इसे हम कहानो न कहकर निबन्ध भी कह सकते हैं।

इस काल मे जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी के अतिरिक्त उपेन्द्रनाथ 'अश्क' और यशपाल की कुछ कहानियो के कथा-तत्त्व मे यही सूक्ष्मता सफलता से आई है। 'अश्क' की दो कहानियाँ 'पिंजरा' और 'पत्नी-व्रत' मे कथा-सूत्र अपनी इतिवृत्तात्मकता को एकदम से छोडकर टुकडो मे बँटा हुआ है; जिसे पाठक अपनी ओर से जोडकर कथानक की एकसूत्रता को समझ सकता है, सीधे कहानी से नहीं।

युग ज्यो-ज्यो बौद्धिक होता जा रहा है, चरित्र ज्यो-ज्यो सश्लिष्ट, अन्तर्मुखी और दुरूह होते जा रहे है, हमारे चेतन और अवचेतन से अनुपात न होने के कारण ज्यो-ज्यो मानव मन अज्ञेय होता जा रहा है, उसीके अनुरूप आज का कहानीकार कथानक को पीछे छोडता हुआ केवल चरित्र-विश्लेषण, और अध्ययन के लिए दौड रहा है। इसके फलस्वरूप कथानक अपने मूल रूप मे नष्ट होता हुआ निम्न लिखित रूपो मे देखने को मिलता जा रहा है—

(१) बिखरे हुए टुकडो के रूप मे कथा-सूत्र ।

(२) साकेतिक और व्यजना के रूप मे ।

(३) कहानी जहाँ समाप्त होती है, वहाँ से कथानक आरम्भ होता है ।

(४) कहानी की चरम सोमा पर कथा-सूत्र स्पष्ट होता है ।

(५) कथानक कहानी मे न रहकर पाठक को अपने मन मे उसकी कल्पना करते चलना पडता है ।

कथानक के उक्त पॉच रूपो मे टूटकर बिखर जाने के पीछे प्राय: इतने ही कारण और स्थितियाॅ भी गिनाई जा सकती है। आज कहानी-निर्माण का समूचा और एक-मात्र सूत्र चरित्र होने के नाते, कहानी की शिल्प-रेखाये अत्यंत कोमल पर अपेक्षाकृत अतर्मुखी हो गयी हैं । इस विधान का सब से बडा प्रभाव कहानी के चरित्र पर पडा है । चरित्र जैसे निष्क्रिय हो गए है, फलतः कहानियो के पात्र प्राय. स्थिर होने लगे है । वे कार्य रत न होकर चिन्तन रत हो गए है । कहानी मे जैसे न कोई घटना ही घटती है, न कार्य व्यापार ही होते है . और जो कुछ इस दिशा मे होते भी है, वे सर्वथा चरित्र के मन मे होते—घटते हैं ।

कथा सूत्र की इसी विशृङ्खलता के फल स्वरूप कहानी के विधान मे अत्यधिक नये-नये प्रयोग हुए । कहानियाॅ इस से अपने दृष्टिकोण और चरम परिणित मे अस्पष्ट और रहस्यात्यमक हुई । इनमे निश्चित इतिवृत्त तथा स्पष्ट सहानुभूति के इस तरह ह्रास के कारण साधारण पाठको के लिये कहानियाँ कठिन और दुर्बोध हुई ।

●

दूसरी कथा धारा

स्पष्ट सुबोध और सुगम

हिन्दी कहानियो मे (विशेषकर १६४० से ५० के बीच) कथातत्त्व के ह्रास और उसकी अस्पष्टता तथा सूक्ष्मता के पीछे रचना की दृष्टि से मुख्यत· दो कारण कार्य कर रहे थे। जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी की उक्त तथ्य की कहानियाँ वस्तुतः कथा शिल्प की दिशा मे प्रेमचद युग की इतिवृत्तात्मक और सीधे ढग की पद्धति के विरुद्ध विद्रोह लेकर आयी थी। जैनेन्द्र अज्ञेय और इलाचँद्र जोशी की मुख्यत प्रथम चरण की कहानियाँ इस रचना शिल्प के विद्रोह के रूप मे बहुत ही स्पष्टता से देखी जा सकती है।

इसके अतिरिक्त इस काल मे मनोविज्ञान से प्राप्त मनोविश्लेषण की नई दृष्टि भी इस मे कार्य रत थी। इस दृष्टि से जीवन की अभिव्यक्ति और उसका मूल्याकन स्वभावत· साकेतिकता, सूक्ष्म अस्पष्ट चित्रो तथा प्रतीकात्मकता के सहारे किया गया। निश्चय ही उसे वह सक्रान्ति काल समझना चाहिये, जब हिन्दी कहानी नयी-रचना पद्धति खोजने मे लगी थी। और उनका अनुकरण उस काल मे अन्य कहानीकार कर रहे थे। परन्तु उस सक्रान्ति काल के बाद जब हिन्दी कहानी को अपना निश्चित रूप-शिल्प प्राप्त हो गया तब उसकी रचना मे निखार और सुबोधता आयी है। अज्ञेय, जैनेन्द्र, जोशी आदि की परिवर्ती कहानियाँ इसके उदाहरण मे है।

इससे भी विशेष बात यह कि उसी से आगे जैनेन्द्र अज्ञेय आदि के शिल्प, मनोविश्लेषण की पद्धति, साकेतिकता और प्रतीकात्मकता के व्यावहारिक और कलात्मक तत्त्व को ग्रहण करते हुए कहानी और कथातत्त्व की दूसरी धारा का विकास हुआ, जिसने वर्तमान हिन्दी कहानी को अधिक स्पष्ट, सुबोध और सुगम बनाया।

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की कहानियो मे अनावश्यक शिल्प कौशल और कला चमत्कार के गुण नही है। जितनी तटस्थता, जितनी सूक्ष्म दृष्टि और साथ ही साथ सरलता और सुबोधता प्रेमचंद की कहानियो मे प्राप्त है, उसके विकास सूत्र 'निर्गुण' की कहानियो मे सहज ही प्राप्त है।

'खोज' कहानी सँग्रह की प्रतिनिधि कहानियो जैसे, 'अश्रु' 'अनुभव' और

'खोज' से लेकर 'जिन्दगी' और 'प्यार के भूखे' कहानी संग्रहो की कहानियो के भाव भूमि से स्पष्ट है कि 'निर्गुण' की सवेदना और भाव क्षेत्र प्रेमचद की भाँति कितना व्यापक और मानवीय है। इसमे भी मुख्यत ग्रामीण जीवन तथा कसबे के जीवन पर आधारित जितनी कहानियाँ आयी है, वे वास्तव मे सदा के लिये श्रेष्ठ बन पडी है। गाम्य चित्रण, गृहस्थ जीवन, व्यक्ति और समाज इन सब जीवनस्तरो से 'निर्गुण' ने जो कहानिया लिखी है उनके केन्द्र विन्दु मे सर्वथा सामान्य मनुष्य के ही जीवन को लिया गया है: 'जिन्दगी' 'तिवारी' 'छोटा डाक्टर' जैसी 'निर्गुण' की श्रेष्ठ और प्रतिनिधि कहानियाँ इसके उदाहरण मे है।

बिना किसी भूमिका, विश्लेषण तथा प्रस्तावना के कहानी मे सीधा—स्पष्ट प्रवेश—ऐसा कि जो पाठक की सारी सवेदना और ध्यान को अपनी ओर बरबस आकर्षित कर ले, निर्गुण की कहानी शैली की परम विशेषता है। हमारे समस्त जीवन का अभाव, करुणा और व्यथा को 'निर्गुण' की लेखनी चरित्र के मूलाधार से उभारती है और उसके प्राणतत्त्व की प्रतिष्ठा निश्चित, स्पष्ट हृदय-ग्राही कथानक रूपी शरीर के भीतर होती है। सामाजिक स्थिति की विडम्बना और भयकरता दिखाने मे 'निर्गुण' की रचना पद्धति अनेक कथा सूत्रो, स्मृति चित्रो और साकेतिक भूमिकाओ को समेट कर चलती है, किन्तु कहानी के अंत मे बिल्कुल स्वाभाविक ढग से कथा और चरित्र का ऐसा मोड देते है कि सारा कलुष, सारी निर्धनता और भयानकता को मागलिक जीवन आधार मिल जाता है। 'तिवारी' और 'छोटा डाक्टर' का अत अपनी स्वाभाविकता और चारित्रिक विशेषता के कारण सदा स्मरणीय रहेगा।

'निर्गुण' की कहानियो मे शिल्पविधान की एकरूपता मन को कही भी नही उबाती, वरन् रचना शिल्प की अकृतिमता और स्वाभाविकता से हमारे मन को मोह लेती हैं।

'निर्गुण' की कहानी शिल्प से अलग विष्णु प्रभाकर की कहानियो का कुछ दूसरा ही ढग है। कहानी के प्रारम्भिक भाग अथवा अश मे प्रस्तावना अथवा भूमिका का संस्पर्श। कहानी के मध्य मे कही-कही समस्या का विश्लेषण और चरित्राकन की रेखाओ मे जीवनगत मूल्य स्तर का विवेचन। 'निर्गुण' की ही भाँति यह भी कही यथार्थ के प्रति निर्मम नही हो पाते। एक विशुद्ध मानवीय नैतिक सहानुभूति सदैव इनके पात्रो तथा जीवन-स्थितियो को इनसे मिलती रहती है।

'अगम अथाह' 'स्वप्नमयी' 'अभाव' 'गृहस्थी' 'जज का फैसला' 'सबल' और 'डायन' आदि कहानियो विष्णु प्रभाकर की श्रेष्ट कहानियाँ है, और उनके सुगम सुबोध कथा शिल्प के सुन्दर उदाहरण है।

विष्णु प्रभाकर की कहानियो की चरम सीमा अथवा अंत पर कही-कही उनकी आदर्शवादिता, सोद्देश्यता का आग्रह स्पष्ट हो उठा है, और वहाँ कहानियो का एकात प्रभाव अथवा परिणाम निर्बल हो गया हे। किन्तु इनकी रचना प्रक्रिया मे जीवन के गहरे, अनुभूति पूर्ण क्षणो और स्थितियो को पकडने और उन्हे कलात्मक अभिव्यक्ति देने मे बडा कमाल हासिल हैं।

शिल्प की सरलता, प्रत्यक्ष प्रभाव डालने की क्षमता कमल जोशी की कहानी कला की विशेषता है। कथा का सूत्र सहसा बीच मे से पकडकर उन्हे कहानी के रगो मे उभार देना—ऐसा कि पूर्व कथा अथवा पूर्व भूमिका अपने आप कहानी से व्यजित हो जाय। सम्पूर्ण इतिवृत्त को न लेकर केवल वहाँ से कहानी को सहसा उठा देना कि पाठक की सारी सवेदना अपनी तीव्र अनुभूतियो से उसमे समाहृत हो जाय—कमल जोशी के शिल्प की अपनी विशेषता है। 'लाश' 'कामरेड' 'चार के चार' 'कन्हैया की माँ' इस शिल्प के उदाहरण मे आने वाली कहानियाँ है।

कथा तत्त्व की इतनी सरलता, कहानी के सम्पूर्ण स्वर की इतनी सुबोधता के बावजूद भी कमल जोशी की प्रतिनिधि कहानियाँ विशुद्ध 'चरित्रो' पर आधारित कहानियाँ हैं। ये चरित्र प्रायः व्यक्ति के चरित्र है—कही-कही 'टाइप' जैसे भी दिखने लगते है। पर जोशी की कला की विशेषता यह है कि इनके चरित्रो की अभिव्यक्ति गहरी मनोवैज्ञानिकता के प्रकाश में होती है।

यह कहानी धारा—जिसमे अन्य प्रतिनिधि नाम अमृतराय, भैरव प्रसाद गुप्त, चन्द्र किरन सौनरेक्सा आदि के है, अपने पूर्ण संस्कारो से पुष्ट होकर अपनी उक्त विशेषताओ से, आगे की कहानी धारा मे उपलब्धि मय सिद्ध हुई हे। यह कहानी धारा किसी विशेष वर्ग तथा विशिष्ट पाठक समुदाय के लिये नही लिखी गयी है। इस धारा की कहानियाँ अगम, दुर्बोध तथा अस्पष्ट नही है। मनोविज्ञान, प्रतीक-पद्धति, लाक्षणिकता और प्रतीक योजना तथा साकेतिक विधियो को अपना कर भी इनमे निश्चित इतिवृत्त तथा स्पष्ट सहानुभूति का ह्रास नही हुआ है।

●

परिशिष्ट (ख)

आज की हिन्दी कहानी

दिशा और मूल्यांकन

आज की हिन्दी कहानी परम्परा-अर्जित उपलब्धि है। यह विशुद्ध भारतीय है, जिसका अपना ऐतिहासिक दाय है। इसके अन्तस मे प्रेमचद, रवीन्द्र-जैसे कई कथा-शिल्पियो के स्वस्थ स्वर, स्वस्थ सस्कार और स्वस्थ मन कार्यरत है। नयी कविता की तरह नयी कहानी का आन्दोलन नही है, यह परम्परा-पुष्ट, नयी रूढियो को रूढि है, जिसने कहानी-कला को वास्तव मे एक नयी दिशा दी है। जो कहानी १६५०-५२ के बीच किन्ही ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियो के फलस्वरूप, या रचना-प्रक्रिया को असगति से किन्ही अभेद्य गह्वरो मे जा रही थी, अथवा सतह पर फलकर सूखने को थी, उसे नयी कहानी से मुक्ति मिली है, और उसे आज स्वस्थतम दिशा प्राप्त हुई है। यह अपने-आप मे कोई सामान्य उपलब्धि नही है। कविता के आन्दोलन जहाँ अन्य देशो मे साहित्य की अन्य विधाओ को बल प्रदान करते है, दिशा-सकेत कर, उन्हे जीवन-दान देते है, दुर्भाग्यवश हिन्दी मे नयी कविता के आन्दोलक उसके उलटा कर रहे है। आज की हिन्दी कहानी का मै यही सबसे बडा सौभाग्य मानता हूँ कि वह नयी कविता की तरह जीवन से कटी नही है। वह अपने पूरे ऐतिहासिक दाय को स्वीकार करके, जीवन की बहुलता, सम्पर्क-जन्य वास्तविकता की आधार-शिला पर वस्तु और उसी से अर्जित शैली के साथ-ही-साथ विकसित हो रही है।

गत पाँच-छः वर्षो मे जिन नये कहानीकारो की रचनाएँ हिन्दी कहानी-साहित्य को मिली, और उनसे जो कहानी को दिशा, अर्थ और गति प्राप्त हुई, वह अपने-आप मे बहुत ही मूल्यवान और आशाजनक है। पर इनका एक किंचित दुर्भाग्य भी रहा है। आलोचको और स्वय कहानीकारो की लेखनी से जो इनका मूल्यांकन हुआ है, वह इनके गौरव के अनुकूल नही रहा। इसी बीच अनेक अच्छी अच्छी कहानियाँ लिखी गयी और लिखी जा रही है, पर इनकी स्थिति और दिशाओ का सही मूल्याकन जैसे बिलकुल हुआ ही नही, ठीक, जैसे अच्छी नयी

कविता कम लिखी गयी, पर उसके 'श्रेष्ठ मूल्याँकन' बहुत हुए और होते जा रहे है। यह ठीक है कि मूल्याकन भविष्य करेगा, पर यह भी ठीक है कि सम्प्रति मूल्याकन का बहुत बडा प्रभाव समसामयिक लेखन पर पडता है। सही मूल्याकन से दिशा ही नही मिलती, स्वस्थतर मानदडो का विकास भी होता चलता है, और लेखक की रचना प्रक्रिया और चेतना को बल मिलता है।

आज की कहानियो का रूप बहुत बदल गया है, इसलिए हमे कहानी के मान-दड मे भी विकास करना होगा। आज की कहानी की सफलता इसमे नही है कि वह हमे कितना पठन-पाठन का रस देती है, बल्कि इस अवधारणा मे है कि आज की कहानी हमारे सामान्य जीवन और उसमे अतर्निहित विराट शील-सवेदनाओ को कहाँ तक स्पर्श करती है। हमारा और हमारे चारो ओर का महत्तर जीवन, अनेक देखे-अनदेखे प्रभावो और शक्तियो से हर क्षण बदल रहा है और अनुशासित हो रहा है, उन्ही को दृष्टि मे बाँधकर, और अपनी नयी ग्रहणशीलता और अर्थ-बोध की जीवित रेखाओ मे उसे रचकर प्रस्तुत करना आज कहानी का काम है, पर शर्त यह है कि कहानी मे कहानी की आत्मा भी अक्षुण्ण रहे; उसका बदला हुआ रूप ही सामने झलककर न रह जाय।

आज की कहानियो मे केवल बदले हुए रूप और प्रकृति की झाँकियाँ भी कम देखने को नही मिल रही है।

प्रेमचद, यशपाल वगैरह की कहानियो को आरम्भ करने के पूर्व यह खतरा और चिन्ता नही रहती थी, कि ऐसा न हो कि कहानी पढी ही न जाय; ऐसा न हो कि कुछ भी हाथ न लगे। परन्तु आज आलोचकों-द्वारा प्रतिष्ठित कुछ ऐसे नये कहानीकार है, जिनकी कहानियो को पढने के पूर्व विशुद्ध पाठक के स्तर से थोडा हिचकना पडता है।

आज की हिन्दी कहानी के उदय के समय हिन्दी कहानी-कला मे दो परम्पराभ्रष्ट प्रवृत्तियाँ कार्यरत थी, एक ओर राजनीतिक विचार-धारा के प्रचार एवं प्रसार के निमित्त नीरस और कलाहीन कहानियाँ और दूसरी ओर वासनाजन्य; सस्ते रोमास की काल्पनिक कहानियाँ। आज की हिंदी कहानी को अपने उदय के साथ ही इन दोनो प्रवृत्तियो से बचना था। उन प्रवृत्तियो को अपने उन्नत एव उदात्त उदाहरणो से कुचलकर आज की कहानी आगे बढ आयी है। आज की कहानी जीवित संवेदनाओ और अनुभूतियों से अभिभूत है। पर कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि किसी भय से, प्रतिक्रियावश कल्पना को त्यागते हुए, कहानी के आन्तरिक सगठन में कला-स्पर्श को भी लोग त्याग रहे हैं। कहानी प्रभाव डाल देती है,

उसका इतना ही धर्म नही है । धर्म पूछता है, कितना और कैसा प्रभाव डालती है, किस स्तर का कितने काल और समय का प्रभाव ? इस धर्म के लिए, कहानी के लिए, कहानी के अन्तर्गठन मे उन तत्वो की अति अपेक्षा है, उन्हे कलाकार के सम्मोहक एव द्रष्टा हाथो का स्पर्श कहते है । इनकी सहज उपेक्षा से कहानी की गहराई तो मारी ही जाती है, साथ ही उसकी प्रभाविष्णुता भी भग होती है ।

एक और बडा प्रश्न कहानियो के स्मरणीय होने का है । एक कहानी बार-बार पढ़ी जाय, और उतनी ही बार उसकी सवेदना, उसके चरित्र हमे अपने-आप मे विमोहित करते जायँ, अपने अर्थ मे भी कुछ नया देते जायँ, आज की कहानी का गन्तव्य यह है, यही इसकी ऐतिहासिक मर्यादा भी है । कहानी मे जिस चरित्र का दर्शन हमे प्राप्त होता है, उसका व्यक्तित्व हमे कभी भूलता नही । और इससे भी आगे, उसका वह व्यक्तित्व हमारे व्यक्तित्व को भी निर्मित करता है । हम अपने-आप को, उसी के जीवित परिप्रेक्ष्य मे, दर्पण मे सदा देखते है, बार-बार देखने की इच्छा करते है, और जब भी देखते है, तो हम अपने-आपमे निहाल हो जाते है और उनमे अपने जीवन का सच्चा अर्थ पाने लगते है । मै समझता हूँ, आज की कहानी की सामाजिक उद्देश्यता यही है और यही उसका 'रस' भी है, जो कभी बासी नही होता, पाठक को सदा स्पदित करता रहता है ।

आज के कुछ कहानी-लेखक 'ग्राम-कथा' और 'नगर-कथा' दो शिविरो की बातें करने लगे है । ऐसी भावना, न प्रेमचद के समय मे उठी थी, न उनके बाद के यशस्वी कहानीकारो मे ही । पर यह भावना आज के कहानी-लेखको की पतिनिधि भावना नही है, यह बडे सौभाग्य की बात है ।

प्रेमचद और यशपाल के बाद फीकी, उदास और मरणोन्मुख कहानी-धारा कहाँ से आयी थी ? इसका जिम्मेदार कौन है ? इसे बहुत गहराई और ठडे दिल से देखना होगा । अपनी अमलय सम्पत्ति, जिसमे जैनेन्द्र यशपाल, अज्ञेय, अश्क आदि की अनेक उत्कृष्टतम कहानियाँ भरी हुई है, उनपर कीचड उछालने तथा नकारने का अर्थ है, अपने-आपको नकार देना । इससे उन यशस्वी कहानी-कारो का क्या बिगडेगा ? उनका स्थान, उनकी उपलब्धि उनके सामने ही सुदृढ एवं सुनिश्चित है । वस्तुत: हिन्दी कहानियो की इस स्वस्थ, उदात्त परम्परा से वह मरणोन्मुख, फीकी, उदास कहानियो की धारा नही जुडती । वह धारा आयी थी उस समय उ[illegible]नी की ओर से, कृशन चन्दर और ख्वाजा अहमद अब्बास जैसे कहानीकारो की नकल करने की प्रवृत्ति से, जो हिन्दी के नये लेखको को बेहद आकर्षित किए हुए थे । और दूसरी ओर कहानी-प्रकाशन के व्यावसायिक

साधनो के विकास के फलस्वरूप अनेक कहानी मासिको मे कहानियो की अत्यधिक माँग के कारण व्यावसायिक दृष्टि से सस्ती, मनोरजनपूर्ण, चमत्कार-पूर्ण, विलासपूर्ण और सस्ते रोमास की असख्य कहानियो की परम्परा-च्युत बाढ आयी थी। वस्तुत यही दो शक्तियाँ उस समय की मरणोन्मुख कहानी-धारा के लिए विशेष उत्तरदायी है।

इस अन्तर्निहित एव सूक्ष्म सत्य को न समझने के कारण आज की हिन्दी कहानी पर कई प्रभाव परिलक्षित है। सबसे मुख्य बात, एक प्रतिक्रिया की है, जो आज के कई [illegible] की कलम पर और दृष्टिकोण पर छायी हुई है और उनका विकास अवरुद्ध है।

अपने ऐतिहासिक दाय और स्वस्थ विकास-क्रम को न समझने, या उपेक्षा करने की दृष्टि से एक अन्य स्तर पर और भी क्षति हो रही है। वह है हमारी आज की कहानी, उसकी समस्त नूतन शक्ति और रचना-गति का ऐतिहासिक पार्श्व मे मूल्याकन न होना।

आज की हिन्दी कहानियो की कुछ उपलब्धियाँ सबके सामने है। उन्हे एक-एक करके यहाँ गिनाना अभीष्ट नही, क्योकि उनमे आज का विशाल और जागरूक पाठक वर्ग सुपरिचित है। समीक्षको ने उपलब्धियो को अलग-अलग ढंग से देखा है, और बताया है।

आज के कहानिकारो को अपनी मानसिक चेतना, बुद्धि एव शील को इतना उदात्त एव व्यापक करना चाहिए कि इस कला से समस्त रूपो मे जीवन सस्पर्श की व्यापक ग्रहणशीलता का अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत हो सके। जो सीमाएँ प्रेमचंद-युग की थी, तथा जो न्यूनताएँ अथवा त्रुटियाँ अज्ञेय, यशपाल तथा जैनेन्द्र की थी, वे सब हमारे ऐतिहासिक दाय मे स्पष्ट रहे, ताकि वे फिर से दुहरायी न जायँ, और जो इन धाराओ की ज्वलन्त और अति महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही है, उन-सबका बल हमारी दृष्टि मे रहे, ताकि हम अपने ऐतिहासिक दाय को परम सफलता से वहन कर साहित्य मे अपनी नूतन गति का उदाहरण दे सके, ताकि भाविष्य के इतिहास मे पूर्व काल की परम्परा और हमारे समय की रूढ़ियाँ स्पष्टत: दृटिगोचर हो सकें।